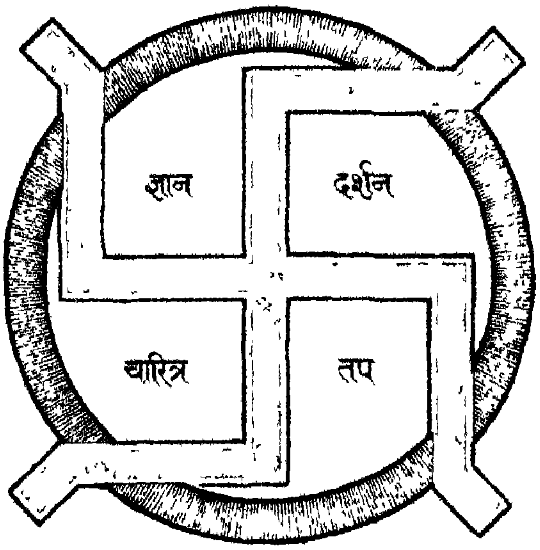
सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र

मूल पाठ, हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद, विशेष टिप्पण तथा भावपूर्ण चित्रों सहित



सम्पादक

उप प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

सह-सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक

आत्म-ज्ञान पीठ,

मानसा मंडी (पंजाब)

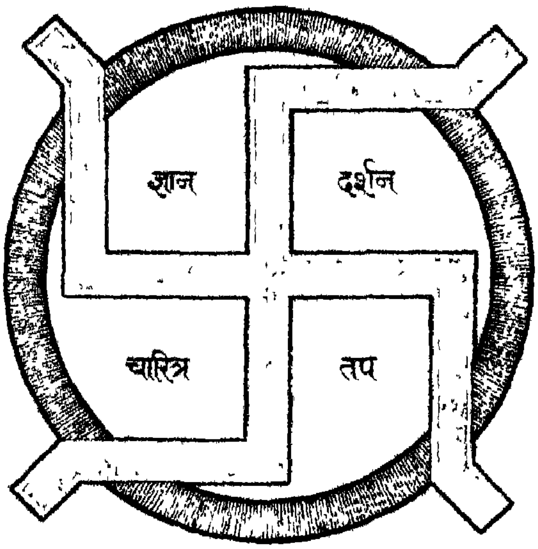
उत्तरभारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराज के
हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य पर प्रकाशित

सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र

सम्पादक	:	उप प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि
सह सम्पादक	:	श्रीचन्द सुराना "सरस"
अंग्रेजी अनुवाद	:	डा. बृजमोहन जैन
चित्रकार	:	सरदार पुरुषोत्तम सिंह
मुद्रण सज्जा	:	दिवाकर प्रकाशन आगरा-२८२ ००२
प्राप्ति स्थान	:	दिवाकर प्रकाशन ए-७ अवागढ़ हाउस एम. जी. रोड आगरा-२८२ ००२ फोन : ६८३२८, ६४१४०
	:	श्री रमेश जैन P Z 1st पीतमपुरा, दिल्ली-३४ फोन : निवास-७११८३५१
मूल्य	:	चार सौ पच्चीस रुपया मात्र (डाक व्यय अतिरिक्त)
मुद्रक	:	कक्कड़ प्रेस एवं मोहन मुद्रणालय आगरा

ILLUSTRATED UTTARĀDHYAYANA SŪTRA

(Original Text, Hindi-English Version, Variant readings, Salient Elucidations and Sentimental Illustrations)



Editor

Up-Pravarttaka Sri Amar Muni

Assistant Editor

Srichand Surana 'Saras'

Publishers

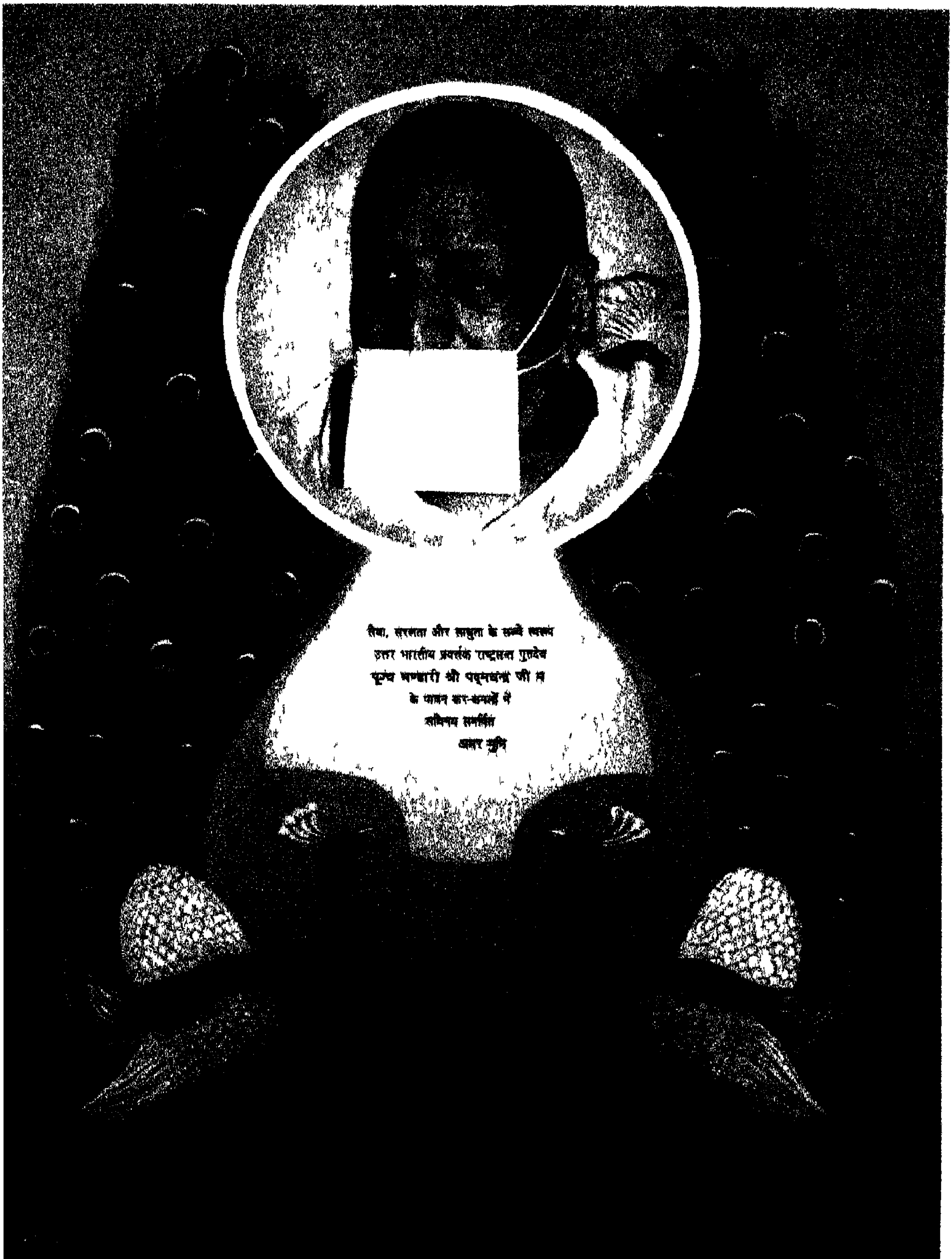
Atma Gyanpith,

Mansa Mandi (Punjab) (India)

Published at holy occasion of Diamond Jubilee of Uttar Bhartiya Pravarttaka Bhandari Sri Padma Chandraji Maharaj

Illustrated Uttarādhyayana Sūtra

Editor	:	**Up-Pravarttaka Sri Amar Muni**
Assistant Editor	:	**Srichand Surana 'Saras'**
English Version	:	**Dr. Brij Mohan Jain**
Illustrations	:	**S. Purusottam Singh**
Designing, Decorating, Printing	:	**Diwakar Prakashan** AGRA-282 002
Available at	:	**Diwakar Prakashan** A-7 Avagarh House, M. G. Road, AGRA-282 002 (U. P.) India Phone 68328, 64140 **Sri Ramesh Jain** P Z 1st Pitampura Delhi-34 Phone – Residence 7118351
Price	:	**Rupees Four Hundred Twenty Five (425/-) Only** (Postage extra)
Printed at	:	**Kacker Press & Mohan Mudranalaya** AGRA


सेवा, सरलता और साधुता के सच्चे स्वरूप
उत्तर भारतीय प्रवर्तक राष्ट्रसन्त गुरुदेव
पूज्य भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म.
के पावन कर-कमलों में
सविनय समर्पित
अमर मुनि



बाल वैरागी तरुण कुमार जैन

बाल वैरागी तरुणकुमार प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्रजी म. एवं उप प्रवर्त्तक गुरुदेव श्री अमर मुनिजी म. की सेवा में रहकर श्री सुयश मुनि "विद्यार्थी" के सान्निध्य में शास्त्र तथा प्राकृत, संस्कृत, अंग्रेजी आदि का अध्ययन करते हैं। धर्माराधना भी करते रहते हैं। आप श्री विजयकुमार जैन, श्रीमती कान्ता जैन, फतेहाबाद के सुपुत्र हैं।

श्री सूरज प्रकाशजी जैन

(विवेक विहार, दिल्ली)

आप गुरुदेवश्री के परमभक्त श्रावक हैं। दान-सेवा आदि कार्यों में दिल खोलकर सहयोग करते हैं। आपने शास्त्र प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया है।

श्री ललित जैन

सुपुत्र : श्री चमनलालजी जैन (जैन नगर, मेरठ)

आपने भी शास्त्र प्रकाशन कार्य में उदारता पूर्वक सहयोग किया है।

गुरुदेवश्री के परम-भक्त हैं आप।

स्वकथ्य

जैन आगम साहित्य चार भागों में विभक्त है–१. अंग, २. उपांग, ३. मूल और ४. छेद। उत्तराध्ययन सूत्र "चार मूल सूत्र" में गिना जाता है।

कल्पसूत्र (१४६वीं वाचना) के अनुसार यह माना जाता है कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण से पूर्व अन्तिम समय में पावापुरी की धर्म सभा में इस आगम का प्रवचन किया था। इस सूत्र की अन्तिम गाथा (३६/२६८) में भी यही भाव स्पष्ट हुआ है कि भगवान महावीर उत्तराध्ययन का कथन करते-करते परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस दृष्टि से यह सूत्र "जिनभाषित" है और "जिनभाषित" सूत्र, अंग शास्त्र में गिना जाना चाहिए, परन्तु उत्तराध्ययन की गणना अंग बाह्य "मूल सूत्र" में की जाती है। इससे लगता है कि भगवान महावीर की इस पवित्र अन्तिम देशना में बहुश्रुत स्थविरों का भी योगदान सम्मिलित है। कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम १८ अध्ययन प्राचीन हैं और पश्चाद्वर्ती १८ अध्ययन उत्तर काल की संकल्पना हैं। परन्तु इस मान्यता के पीछे भी कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विषय प्रतिपादन, शैली तथा भाषा आदि दृष्टियों से इसकी समीक्षा करने पर अनेक मतभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। बहुत संभव है, इस सूत्र के कुछ अध्ययनों का संकलन पश्चाद्वर्ती स्थविरों तथा आचार्यों ने किया हो, परन्तु इससे उत्तराध्ययन सूत्र के महत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इस आगम की प्रतिपादन शैली और प्रतिपाद्य विषय जीवन के सर्वतोमुखी विकास और आध्यात्मिक उन्नयन में अतीव सहायक हैं। उत्तराध्ययनसूत्र–व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में भगवान महावीर के विचारों का एक निचोड़ है, नवनीत है।

भगवान महावीर के एक हजार वर्ष बाद देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने उत्तराध्ययन सूत्र का जो रूप/स्वरूप स्थिर कर दिया था वह आज भी ३६ अध्ययनों के रूप में हमारे पास सुरक्षित है और वह हमारी महत्वपूर्ण थाती है।

उत्तराध्ययन सूत्र के महत्व के विषय पर चर्चा करना सूर्य की महिमा का बखान करने जैसा है। जब कि वही सम्पूर्ण लोक का जीवन है। उत्तराध्ययन अध्यात्म-लोक का सूर्य है। यदि इसका प्रकाश जीवन के आंगन में नहीं चमकेगा तो जीवन शून्य हो जायेगा।

उत्तराध्ययन सूत्र का प्रथम अध्ययन, दूसरा परीषह प्रविभक्ति तथा तृतीय-चतुर्थ अध्ययन मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को अनुशासित, संयमित, सहिष्णु और प्रतिक्षण जागरूक रहने की प्रेरणा देते हैं। इन अध्ययनों में वास्तव में मनुष्य मात्र को जीने की कला सिखाई गई है।

किन्तु उत्तराध्ययन केवल व्यावहारिक जीवन की शिक्षा देने वाला शास्त्र ही नहीं है, इसमें अध्यात्म-जीवन के अनुभूतिपूर्ण उपदेश, वैराग्य और अनासक्ति की धारा प्रवाहित करने वाले सुवचन तथा प्रतिक्षण अप्रमत्त, जागरूक और कर्त्तव्यशील रहने की शिक्षाएँ भी पद-पद पर अंकित हैं। इस सूत्र में भगवान महावीर के क्रान्तिकारी विचारों के स्वर भी मुखरित हैं तो बुद्धि और प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करने का सन्देश भी गुम्फित है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र जीवन और अध्यात्म का सामंजस्य पूर्ण शास्त्र है।

वैदिक परम्परा में जो स्थान 'गीता' का है, बौद्ध परम्परा में जो स्थान 'धम्मपद' का है, जैन परम्परा में वही स्थान उत्तराध्ययन सूत्र को प्राप्त है। उत्तराध्ययन का स्वाध्याय जीवन अभ्युदय का सोपान है।

प्रस्तुत संस्करण

उत्तराध्ययन सूत्र के अब तक अनेक सुन्दर/सुन्दरतम संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें मेरा प्रयत्न उनसे कोई श्रेष्ठ हो, ऐसा मैं नहीं कहता, क्योंकि पूर्वाचार्यों व मनीषी विद्वानों के समक्ष मैं स्वयं को अल्पज्ञ और अल्पबुद्धि मानता हूँ। किन्तु उत्तराध्ययन के रूपक-दृष्टान्त एवं कुछ विशेष तथ्यों को चित्रमय प्रस्तुत करने का हमारा यह प्रयत्न अवश्य ही नवीन और सर्वसाधारण के लिए उपयोगी होगा यह विश्वास करता हूँ। मैं देखता हूँ कि अधिकतर लेखक अपनी कृति को विद्वद्‌भोग्य बनाने का तो प्रयत्न करते हैं, परन्तु सर्व-साधारण की चिन्ता कम ही करते हैं। सर्व-साधारण व लोकोपयोगी होने से ग्रंथ का स्तर गिर नहीं जाता, या उसकी महत्ता कम नहीं होती, अपितु मेरे विचार में तो जो पुस्तक या ग्रंथ सर्व-साधारण के लिए उपयोगी होता है, वह ज्यादा सफल और महत्वपूर्ण माना जाता है, जबकि विद्वद्‌भोग्य महाग्रंथ केवल अलमारियों की शोभा बढ़ाते रहते हैं। अस्तु·················· ।

पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के दीक्षा हीरक जयन्ती वर्ष पर हम सब भक्त शिष्यों की यह अभिनव भेंट उनके कर-कमलों में समर्पित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि इस शुभ प्रसंग पर हमने एक नई और सर्वजन उपयोगी भेंट प्रस्तुत की है।

इस भगीरथ कार्य-सम्पादन में उपप्रवर्तिनी साध्वीरत्न स्व. श्री शशीकान्ता जी म. की सुशिष्या उपप्रवर्तिनी विदुषी महासती सरिता जी एम. ए., पी-एच. डी. तथा उपप्रवर्तिनी श्री रविरश्मि जी म. का हार्दिक सहयोग मिला है।

जैन समाज के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत श्रीचन्द सुराना ने चित्र तैयार कराने से लेकर सभी उत्तरदायित्वों का बड़े स्नेह एवं आत्मीय भाव पूर्वक निर्वाह किया है तथा अनेक गुरुभक्त उदारमना सज्जनों ने अर्थ सहयोग प्रदान कर प्रकाशन कार्य को सम्पन्न करवाया है। मैं उन सभी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। और विश्वास करता हूँ कि चित्रमय आगम प्रकाशन का हमारा यह महनीय प्रयत्न आगम-सम्पादन-प्रकाशन के क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित करेगा तथा आगे व्यापक रूप लेता जायेगा। इसी विश्वास के साथ..................

—अमर मुनि

जैन स्थानक,
त्रीनगर, दिल्ली
६ अक्टूबर (विजयादशमी)

FOREWORD

Jain Āgama literature is divided in four divisions-(1) Aṅga (2) Upāṅga (3), Mūla and (4) Cheda. Uttarādhyayana Sūtra is one of the four Mūla Sūtras.

According to Kalpasūtra (Reading 146) it is accepted that Bhagawāna Mahāvīra precepted this holy scripture in his religious assembly gathered in Pāvāpuri, at the last moments of his life, just before his salvation. The last couplet (36/268) also shows the same that Bhagawāna Mahāvīra obtained salvation while precepting this holy text. By this viewpoint, this scripture is told by Bhagawāna himself and so it should be enumerated in Aṅga texts; but it is enumerated in Aṅga-bāhya Mūla Sūtras. Thus it seems that in this last pious precept of Bhagawāna Mahāvīra, some contribution of old experienced sages also amalgamated.

Some scholars presume that the previous 18 chapters of this Sūtra are old and later 18 chapters are compiled later. But for this presumption, there is no solid proof. Analytical study of subject matter, style, language etc., also brings forth many opinion differences. It is more possible that some chapters may be compiled by some old sages and preceptors. But it does not effect any way the importance of this Sūtra because the style and subject matter are very much helpful in alround development and upgrading of spiritual life.

Uttarādhyayana Sūtra is the cream of thoughts of Bhagawāna Mahāvīra, regarding practical, behavioural and spiritual life.

One thousand years after Bhagawāna Mahāvīra, the form of Uttarādhyayana, decided by Devardhigaṇī Kṣamāśramaṇa, that is still with us in the form of 36 chapters and it is our most valuable asset.

The discussion about the importance of Uttarādhyayana is like to describe the greatness of sun; because sun is the life of whole world. In the same way Uttarādhyayana is the sun of spiritual world, without its shining, life will be desolate.

First four chapters of this Sūtra inspire the man to remain disciplined, self-controlled, tolerant and ever cautious in his behavioural life. The real technique of living a worthy life taught by these chapters.

But Uttarādhyayana is not the holy text, which gives teachings about only behavioural life. But we find sermons regarding spiritual life, sayings which flow the current of disinclination and apathy and the teachings inspiring to be ever cautious, wakeful and

performing duties. In this Sūtra on the one hand the revolutionary thinking of Bhagawāna Mahāvira is elaborated then on other hand, to criticise and determine the concept of religion by intelligence and pure reason, this message also incorporated. Subsequently, it can be said that Uttarādhyayana is really a co-ordinated scripture of behavioural and spiritual life.

The regard which has Gita in Vaidic tradition, Dhammapada in Bauddha, the same deserves Uttarādhyayana in Jain tradition. Study of Uttarādhyayana is the aggrandizement of life.

This Edition

Many good, beautiful editions of Uttarādhyayana Sūtra have been published till now. I can not daresay that my this effort is better among all of them; because I myself feel ignorant and innocent in comparison to the former preceptors and learned scholars. Still I believe that my effort to produce this Sūtra with paradigms, metaphors and illustrations of some special facts would be altogether new and beneficial for all the persons. Generally I see that most of the writers make their creations heavy and readable by intelligentia only and do not care for general readers. Neither the status of book befall, nor its greatness lessened if written with the view of general readers and average men; but in my opinion such writing possesses more importance because it is read abroad by numerous persons, while the books made heavy only decorate the almirahs.

All we devoted disciples are feeling hearty happiness that we became able to present such a new and beneficial to all creation in the lotus hands of Pūjya Pravarttaka Gurudeva Bhaṇḍārī Sri Padmachandraji Maharaj at the auspicious occasion of his Diamond Diksa Jayanti.

We get the cordial co-operation of learned Up-Pravartinī Mahāsati Saritājī, M.A., Ph.D. (able disciple of Up-Pravarttinī Sadhvī-Ratnā late Sri Shashīkāntājī Mahārāja) and Up-Pravarttinī Srī Raviraśmijī Mahārāja in hazardous work of editing this Sūtra.

Famous literary man of Jain-world Sri Srichand Surana cordially co-operated us taking all the responsibilities from preparing illustrations to produce the book in this shape. Many other devotees to Gurudeva, the liberal gentleman became helpful to this publication possible by generous donations (co-operation by money). I pay my cordial thanks to all of them.

I also believe that this great effort of publishing Illustrated Agamas will establish a new amplitude in the sphere of Āgam-Editing-Publishing and get expansion beyond imagination.

With this belie. . . . . .

–Amar Muni

Jain Sthanak Trinagar, Delhi
6 October, 1992,
(Vijayadashmi)

श्रुत-सेवा में विशिष्ट सहयोग



तपःसूर्या परम सरलमना महासती श्री हेमकुंवरजी म.

आपने इस वर्ष गुरुदेव प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के ७५वें वर्ष के अवसर पर भटिण्डा में ७५ दिन का दीर्घ तप करके जिन शासन की महती प्रभावना की है। शास्त्र प्रकाशन के कार्य में आपकी विशेष प्रेरणा रही है। आपकी सुशिष्या हैं—उपप्रवर्तिनी श्री रविरश्मिजी म., पौत्र शिष्या हैं—श्री प्रदीपरश्मि जी. म., श्री राकेशरश्मि जी म. तथा प्रपौत्र शिष्या हैं—श्री रजतरश्मि जी म.।



उपप्रवर्त्तिनी साध्वी रत्ना स्व. महासती श्री शशिकान्ताजी म.

आपने अपने तप-त्याग-सेवामय जीवन से सदा ही जिन शासन की विशेष प्रभावना की है। आपश्री की पाँच शिष्याएँ हैं:–

- उपप्रवर्तिनी श्री सरिताजी म. (डबल एम. ए.)
- श्री स्नेह कुमारी जी म. (बी. ए.)
- श्री अनिल कुमारी जी (डबल एम. ए.)
- श्री अजय कुमारी जी म. "प्रभाकर"
- श्री मीना कुमारी जी म. (एम. ए.)

पूज्य महासती जी का पौत्र-प्रपौत्र शिष्याओं का भरा पूरा धर्म परिवार जिन शासन की शोभा में चार चाँद लगा रहा है। उपप्रवर्तिनी पूज्य महासती सरिता जी का शास्त्र प्रकाशन कार्य में विशेष प्रेरणा एवं सहयोग प्राप्त हुआ है।

श्रुत-सेवा में विशिष्ट सहयोग



श्री सुभाषचन्द जैन
(पानीपत)



श्री सुभाषचन्द जैन
(विवेक विहार, दिल्ली)

श्री सुभाषचन्द जैन (पानीपत) सुपुत्र–श्री हरिचन्द जैन, हुड्डा कालोनी, पानीपत। आप उदार हृदय वाले परम गुरुभक्त सज्जन हैं। शास्त्र प्रकाशन कार्य में दिल खोलकर सहयोग दिया है।	**श्री सुभाषचन्द जैन** (विवेक विहार, दिल्ली) आप बड़े ही उत्साही और दिलदार व्यक्ति हैं। समाज सेवा के कार्यों में सदा आगे रहते हैं। पूज्य गुरुदेव श्री के परमभक्त हैं। शास्त्र- प्रकाशन में विशेष सहयोग प्रदान किया है।
श्री रमेशचन्द जैन, सुपुत्र-श्री रामेश्वरदासजी जैन मुआना वाले, (वर्तमान-पीतमपुरा, दिल्ली) आप बड़े ही सेवाभावी उदार हृदय सज्जन हैं। पूज्य प्रवर्तक श्री के प्रति आपकी तथा समस्त परिवार की अगाध श्रद्धा है। शास्त्र प्रकाशन कार्य में आप विशिष्ट सहयोगी हैं।	**श्री अशोक जैन** (गांधीनगर, दिल्ली) आप जय चन्द्रा ड्रेसेज के मालिक हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा भक्ति है। आप पूज्य महासती श्री मोहनमाला जी म. के परमभक्त हैं। शास्त्र-प्रकाशन में विशेष सहयोग प्रदान किया है।



श्री रमेशचन्द जैन
(पीतमपुरा, दिल्ली)



श्री अशोक जैन
(गांधीनगर, दिल्ली)

प्राथमिक

शास्त्र मनुष्य का तृतीय नेत्र है। शास्त्र के स्वाध्याय से जब मनुष्य का अन्तर विवेक जागृत होता है तो वह मन के कलुषित विचारों, विकारों और दुर्भावों का नाश कर परम आनन्दमय आत्म-स्वरूप का दर्शन कर लेता है। इसलिए परम आनन्द की कामना करने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए शास्त्र का स्वाध्याय कल्पवृक्ष के समान है।

जैन शास्त्रों में उत्तराध्ययन सूत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है। इसमें मानव जीवन के सर्वांगीण विकास और अभ्युदय के लिए विविध दृष्टियों से सुन्दर उपयोगी शिक्षाओं का संग्रह हुआ है। अतः इसे हम जैन धर्म की "गीता" कह सकते हैं। दीपमालिका के दिन जो भगवान महावीर का निर्वाण दिवस भी है, स्थान-स्थान पर उत्तराध्ययन सूत्र के वाचन और श्रवण की पावन-परम्परा है। उस दिन इस सूत्र का पठन-श्रवण विशेष महत्व रखता है। यों भी उत्तराध्ययन सूत्र प्रत्येक श्रद्धालु और जिज्ञासु के लिए पठनीय तथा मननीय है।

उत्तराध्ययन सूत्र की वर्णन-सामग्री बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद होने के साथ ही आत्म-जागृति में भी अतीव सहायक है। यही कारण है कि अब तक उत्तराध्ययन सूत्र के सैंकड़ों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी प्रतिदिन इसकी मांग बनी हुई है।

उत्तराध्ययन सूत्र के चित्र युक्त प्रकाशन की अभिनव कल्पना सचमुच में एक मनोरम और लोकोपकारी साहसिक संकल्प है। यह तो सुनिश्चित है कि गंभीर से गंभीर और जटिल विषय भी चित्र के द्वारा बहुत ही सुगम और सुबोध बन जाते हैं। अरूप विषय वस्तु को रूपायित कर बुद्धिगम्य बनाने में चित्रों की अपनी उपयोगिता है, इस दृष्टि से जैन सूत्रों के प्रेरक प्रसंगों और गहन तात्विक विषयों को चित्रित कर प्रकाशित करने का यह ऐतिहासिक प्रयत्न आगम-प्रकाशन की दिशा में एक नया प्रयोग सिद्ध होगा। इससे आगमों का कठिन विषय भी पाठकों के लिए रुचिकर और सहज-गम्य बन सकेगा। इस साहसिक सत्संकल्प और सत्प्रयास के लिए विद्वद्रत्न श्री अमर मुनि जी का जैन साहित्य के अभिनव प्रयोग क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।

आगम रत्नाकर, जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी म. के पौत्र शिष्य–राष्ट्र सन्त उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज आधुनिक युग में महावीर युग के प्रतिनिधि प्रतीक, सरल परिणामी, निर्मल आत्मा देवगुरुभक्त और आगम वाणी के अत्यन्त श्रद्धालु सन्त रत्न हैं। आप्रश्री की प्रेरणा से आपके प्रतिभाशाली शिष्यरत्न उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म. ने सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण और भगवती जैसे विशाल जैन सूत्रों की हिन्दी टीकाएँ लिखकर स्व. आचार्य देव श्री आत्माराम जी महाराज के श्रुत-सेवा के अवशिष्ट कार्य को पूर्णता प्रदान करने का महान प्रयत्न किया है। आगम सम्पादन की उसी उज्ज्वल परम्परा में अब एक अभिनव शुभ प्रयत्न सम्पन्न हो रहा है : **उत्तराध्ययन सूत्र का चित्रमय प्रकाशन।**

कुछ वर्ष पूर्व कल्पसूत्र का सचित्र प्रकाशन हुआ था। वह हमारे सामने है। प्राचीन चित्र शैली के छोटे-छोटे चित्र हैं उसमें। प्राचीनता की दृष्टि से या स्वर्ण-खचित होने की दृष्टि से उनका अपना महत्व है, किन्तु चित्रों की रमणीयता, सहज भावाभिव्यक्ति और रंग-सज्जा की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय बात उनमें नहीं लगती। कल्पसूत्र के अतिरिक्त अन्य आगमों का चित्रमय प्रकाशन अब तक देखने में नहीं आया है। एक वर्ष पूर्व हमने जब श्री उत्तराध्ययन सूत्र के चित्रमय प्रकाशन की योजना बनाई थी, तो हमारे सामने किसी प्राचीन सचित्र आगम का आधार नहीं था। इस विषय में अनेक विद्वानों से सम्पर्क किया गया। कुछ

ज्ञान-भंडारों का अवलोकन भी किया। इसी प्रसंग में श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन परीक्षा बोर्ड अहमदनगर का हस्त लिखित शास्त्र भंडार भी देखने की सुविधा प्राप्त हुई। पूज्य आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी म. की कृपा से श्री कुन्दन ऋषि जी म. ने स्वयं बड़ी उदारतापूर्वक ज्ञान भंडार की अनेक सचित्र प्रतियाँ दिखाईं। उनमें उत्तराध्ययन सूत्र के भी कुछ प्रासंगिक चित्र प्राप्त हुए जिनमें भारंड पक्षी का प्राचीन चित्र महत्वपूर्ण था। इसके पश्चात् कला मर्मज्ञ श्री विजय यशोदेव सूरी जी म. के ज्ञान भंडार जैन साहित्य मन्दिर पालीताणा में भी दो दिन तक मैंने प्राचीन सचित्र आगमों का अनुसंधान किया। स्वयं आचार्य श्री यशोदेव सूरी जी म. ने उत्तराध्ययन सूत्र की स्वर्णाक्षरों में लिखित कुछ प्राचीन प्रतियाँ तथा एक स्वर्ण-चित्रांकित प्रति भी बताई। इस अवलोकन से हमें प्राचीन चित्र शैली को समझने तथा उसे आधुनिक चित्र शैली में परिवर्तित करने की कल्पना में काफी सहायता मिली। हम उक्त ज्ञान भंडारों व आचार्यदेवों की कृपा के सदा ऋणी रहेंगे।

उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययनों के ५२ बहुरंगी चित्र तथा ७ दो रंगे चित्र इस आगम के लिए तैयार किये गये हैं। चित्र संख्या की निश्चित सीमा के कारण अन्य अनेक उपयोगी विषयों को छोड़ भी दिया है। चित्रों की कल्पना में आगम की टीका आदि के वर्णन, अन्य ग्रंथों के वर्णन तथा प्राचीन परम्परा हमारी सहायक रही है। चूँकि इन चित्रों का मूल आधार कोई प्राचीन चित्र नहीं है, किन्तु सिर्फ टीकागत जानकारी एवं हमारी परम्परा ही है, अतः इन के रूपांकन में मतभेद भी रह सकते हैं, और भूल भी रह सकती है। अपनी-अपनी दृष्टि से भिन्न प्रस्तुतीकरण भी हो सकता है। अतः इन चित्रों के साथ हमारा कोई आग्रह या स्थापना नहीं है, किन्तु मात्र आगमों के गंभीर विषय को सुबोध तथा रुचिकर बनाने की दिशा में एक शुभ अध्यवसाय युक्त प्रयत्न है। जहाँ-जहाँ मुनि की वेश-भूषा का प्रश्न है, वहाँ हमने समझ-बूझकर अपनी स्थानकवासी परम्परा को ही मान्यता दी है। क्योंकि आगम और इतिहास की भाँति परम्परा भी एक महत्वपूर्ण आधार होता है। अस्तु.................।

उत्तराध्ययन सूत्र के हिन्दी अनुवाद के साथ ही अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। आज भारत के बाहर बसे हजारों जैन परिवार, तथा हजारों अहिन्दीभाषी जैन धर्म एवं आगमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिए हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा ही एक सक्षम माध्यम हो सकती है। अतः ग्रंथ की व्यापकता को दृष्टिगत रखकर हमने अंग्रेजी अनुवाद भी देना आवश्यक समझा है। हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पण लेखन में जिन-जिन विद्वानों तथा पुस्तक प्रकाशकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, हम हृदय से उनके आभारी हैं, कृतज्ञ हैं। आधारभूत ग्रंथों की सूची भी साथ में दी जा रही है।

इस सम्पादन एवं चित्रांकन में मुख्य सम्पादक उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी का सम्पादन-श्रम, मार्ग-दर्शन तथा सतत प्रेरणा इस कार्य का मूल आधार है। यह उन्हीं की विशुद्ध बुद्धि एवं सतत श्रम का मधुर फल है। अतः उनके प्रति आभार ज्ञापन जैसी औपचारिकता अपेक्षित नहीं है। उपप्रवर्तिनी विदुषी रत्न पूज्य महासती श्री सरिता जी एम. ए., पी-एच. डी. का मार्गदर्शन, सहयोग हमारे लिए विशेष सौभाग्य की बात है। पूज्य सरिता जी म. स्वयं जैन आगमों की गंभीर विदुषी हैं, उनकी तर्क-प्रवण प्रज्ञा, विनम्र मधुर स्वभाव और सूक्ष्म-निरीक्षण कला का हमें गौरव है कि समय-समय पर उनके मार्गदर्शन से हम लाभान्वित होते रहे हैं। भविष्य में भी हमें उनका आत्मीय सहयोग मिलता रहेगा।

चित्रकार सरदार पुरुषोत्तमसिंह एवं उनके सुपुत्र हरिबिंदरसिंह तथा अंग्रेजी अनुवाद के लिए डा. बृजमोहन जैन का आभारी हूँ। साथ ही प्रकाशन में अर्थ-सहयोग देने वाले उदारमना सद्गृहस्थों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन सबके सहयोग और सौजन्य से यह एक ऐतिहासिक दिव्य साहित्य-मणि पाठकों के कर-कमलों में पहुँच रही है। प्रसन्नता !

—श्रीचन्द सुराना "सरस"

PREFACE

Holy texts are the third eye of man. By studying holy texts the internal discretion of man awakens and then he perceives the blissful concept of soul and soul-virtues, destructing the ill-feelings-thinkings-perversions of mind. Therefore, to study the holy texts is like a divine tree for every man, who wishes to experience the greatest happiness.

Uttarādhyayana Sūtra deserves the most prominence among Jain scriptures. It is the last precept of Bhagawāna Mahāvīra. For entire development and progress of human-life, in it many beneficial and good teachings are collected with various view points. Hence, we can say it the Gīta of Jainism. The tradition of reading and hearing Uttarādhyayana Sūtra on the day of Deepawali festival, is of more importance, because this very day is the salvation day of Bhagawāna Mahāvīra. Uttarādhyayana Sūtra is readable and considerable for every man, who fixes faith in it and curious about it.

The subject matter of Uttarādhyayana Sūtra is very interesting and instructive and also helpful in soul-awakening. This is the reason, that hundreds of editions are published of this Sūtra, but the demand is not fulfilled, still persists.

The publication of Uttarādhyayana Sūtra with illustrations is really a quite new fanciful planning and a bold step, which is heart-attractive and beneficial to all. It is quite definite that even most serious and very difficult subjects become easily graspable by the help of illustrations. Illustrations give the form to the subtle and formless subjects and make them comprehensive, it is their special utility. Taking this in mind the effort has been made to publish the Jain-sūtras, illustrating the inspirational episodes and most serious elemental subjects. In the direction of Āgama publication this experiment will be proved a quite new and historical step. By this, the deep and tough subject of Āgamas would be interesting and easily understandable to the readers. For this bold resolve and good effort the name of Vidvadratna Śrī Amar Munijī Mahārāja would take an important place in this newly experiment of Jain literature.

Grand disciple of Āgama Ratnākar, Jain Dharma Diwākara (Jain Sun) Acārya Sāmrāṭ Sri Ātmārāmji Mahārāja; Raśṭra santa, Uttar Bhāratiya Pravarttaka Bhaṇḍārī Sri Padmachandraji Mahārāj is a symbol of Bhagawāna Mahāvīra age in modern time, simple hearted, pious soul, devotee to god and preceptors, having deep faith in Āgamas and a jewel among saints. By his inspiration, his genius disciple Up-Pravarttak Sri Amar Muniji Mahārāj wrote the commentaries in Hindi to bulky and important Āgamas like Sūtrakṛitaṅga, Praśnavyākaraṇa and Bhagawatī Sūtra. Thus he completed the incomplete service of canonical literature of

Acārya Ātmārāmji Mahārāja. In the same splendid tradition of Āgama publication, this quite new effort of being accomplished–the publication is Illustrated Uttarādhyayana Sūtra.

Some years before Kalpasūtra was published with pictures (illustrations). That edition is before us. This editions contains the small pictures of old style. They bear their own importance on account of old heritage and decorated with golden-powder; but regarding beauty, gesticulation and colour-scheme there is nothing which may attract us. Except Kalpsūtra, the pictorial or illustrated editions of other Sūtras did not undergone our sight till now. One year before when we planned to publish Illustrated Uttarādhyayana Sūtra, then there was no base of any ancient illustrated Āgama. We contact many scholars, serched some Śastra bhaṇḍāras (storehouses). During this search we saw the canonical store-house of Tiloka Ratna Sthānakvāsī Jain Parīkṣā Board, Ahmadnagar, where many hand-written copies of ancient Āgamas were preserved. By the kindness of Reverend Ācārya Samrāṭ Ānand Riṣiji Mahārāj, Śri Kundan Rishiji Mahārāj himself shown us many copies of pictorial sutras with great generous co-operation from the canonical store-house. Among those we get some pictures refering to the Uttarādhyayana Sūtra. The ancient picture of Bhāraṇḍa bird was of importance, among those pictures. After it I searched till two days the ancient Āgamas with pictures in the holy text storage of Śri Vijayayaśodeva Suriji Mahārāj, named Jain Sāhitya Mandir, Pālitāṇā. Ācārya Śrī Yaśodeva Suriji Mahārāj himself shown me some copies of Uttarādhyayana Sūtra written in golden letters and one was with golden pictures. This proved helpful for understanding old style of picture to proceed in conversion the pictures (illustrations) in modern style. We would always be grateful of those Ācāryas and holy text stores.

Fiftytwo multi-coloured and seven bi-coloured illustrations (pictures) have been prepared for thirty six chapters of this Uttarādhyayana Sūtra. On account of limitation of the number of pictures, some subjects have been left, though they were useful. In the imagination of pictures, the descriptions of the commentaries of this Sūtras, descriptions of other holy texts and old tradition remained helpful for us. As there is no fundamental base of these pictures; the knowledge derived from commentaries and our tradition is the only base of these pictures; so there may arouse difference of opinions and changes of our oblivions–slips too. Different presentations may be given according to different views. Therefore we have no prejudice and establishment about these pictures. But it is only our effort with good intention to make the serious and deep subject matter easily understandable and attractive to all the readers. As regard the dress and robe of sages we accepted knowingly our Sthānakavāsī tradition. Because tradition is also a strong base like Āgama and History

English version has also been given of Uttarâdhyayana Sūtra along with Hindi translation. Now a days numerous Jain-families reside in foreign countries and thousands in the States where Hindi is not popular. These all haye keen desire to know about Jain religion and Jain Āgamas, for such persons English version was most essential and a perfect medium of knowledge. Hence for the comprehensiveness of this Sūtra, English version was thought most necessary. We are grateful to the scholars and their works which were helpful while writing Hindi, English versions and salient elucidations. We are mentioning the main basic works with the names of their authors and publishers.

The foremost base of this work editing as well as picturising is the editing labour, guidance and continuous inspiration of chief editor Sri Amar Muniji Mahārāj. This is fruit of his vast intelligence and continuous hard working capacity. Therefore the formality of gratefulness to him is of no use. The guidance and co-operation of Up-Pravartinī, Viduṣī Ratna Pūjya Mahāsati Sri Saritāji (M.A., Ph.D.) proved much helpful to us. Pūjya Saritāji herself is very learned of Jain Āgamas. We feel proudy of her logical intelligence, modest-sweet-nature and subtle-espial art. We became beneficial by her guidance. We hope to get such co-operation from her in future also.

I am cordially grateful to Dr. Brij Mohan Jain of Agra for fluent and upto the point English version and to artist S. Purushottam Singh and his able son Harbinder Singh for illustrations (pictures). Along with I express my hearty gratefulness to the liberal hearted householders by whose financial co-operation this work is accomplished.

By the cordial co-operation and gentility of all these this historical and divine literature gem is reaching in the hands of readers.

Hearty happiness. . . . . .

–Srichand Surana 'Saras'

अनुक्रम

SEQUENCE

सहायक ग्रंथ सूची : आभार दर्शन

- उत्तराध्ययन सूत्र (तीन भाग)
  (आत्म-ज्ञान प्रकाशिनी टीका युक्त)
  व्याख्याकार : आचार्य श्री आत्माराम जी म.
  प्रकाशक : जैन शास्त्र माला कार्यालय, लाहौर
- उत्तराध्ययन सूत्र : सम्पादन–साध्वी श्री चन्दना जी
  वीरायतन प्रकाशन, आगरा-२
- उत्तराध्ययन सूत्र : सम्पादन–श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री
  आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (प्रस्तावना : श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री)
- उत्तरज्झयणाणि (दो भाग)
  वाचना प्रमुख–आचार्य श्री तुलसी
  विवेचक सम्पादक–मुनि नथमल (युवाचार्य महाप्रज्ञ)
- उत्तराध्ययन सूत्र (तीन भाग)
  निदेशक–आचार्य श्री हस्तीमल जी म.
  सम्पादक–श्रीचन्द सुराना 'सरस'
  सम्यग् ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर
- उत्तराध्ययन सूत्र : एक परिशीलन
  डॉ. सुदर्शन लाल जैन,
  सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर
- Uttarādhyayana Sūtra–K. C. Lalwani,
  Publishers–K. C. Lalwani, Prajñānaṃ
  12, Duff Street, Calcutta-6
- Jain Sūtras–Uttarādhyayana–Hermann Jacobi
  Pub.–Motilal Banarsidass Publishers. Delhi

- हम उक्त सम्पादक, प्रकाशकों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं जिनके महत्वपूर्ण ग्रंथों से हमें सम्पादन में सहयोग प्राप्त हुआ।

SOURCE BOOKS

* Uttarādhyayana Sūtra (Three Volumes)
(with Atma-Gyan Prakashini Commentary)
Annotator–Acharya Sri Atmaramaji Maharaj
Publisher–Jain Shastramala Karyalaya, Lahore

* Uttarādhyayana Sūtra–Editor-Sadhvi Sri Chandnaji
Publishers–Virayatana Prakashan, AGRA-2

* Uttarādhyayana Sūtra–Editor–Sri Rajendra Muni Shastri
Publishers–Agama Prakashan Samiti, Beawar
(Preface–Sri Devendra Muni Shastri)
Uttar-jjhayaṇāṇi (two volumes)
Vachna pramukha Acharya Sri Tulasi
Annotator-Editor–Muni Nathmalji (Yuvacharya Mahapragya)

* Uttarādhyayana Sūtra (three volumes)
Guidance–Acharya Sri Hastimalji Maharaj
Editor–Srichand Surana 'Saras'
Publishers–Samyak-Gyan Prakashan Mandal, Jaipur

* Uttarādhyayana Sūtra : Ek Parishilan
Dr. Sudarshan Lal Jain
Publishers–Sohan Lal Jain Dharma Pracharak Samiti, Amritsar

* Uttarādhyayana Sūtra–K. C. Lalwani
Publishers–K. C. Lalwani Prajñānaṃ
12, Duff Street, Calcutta–6

* Gaina Sūtras
(Part II– The Uttarādhyayana Sūtra
The Sūtrakṛitāṅga Sūtra)
Translated from Prakrita by Hermann Jacobi
[The Sacred Books of the East-Edited by F. Max Muller] [Volume 45]
Publishers–Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi

Diacritical Letters (Pronunciation)

Vowels (स्वर)

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	लृ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ḷ	e	ai	o	au	ṅ, ṁ	ḥ

Consonants (व्यंजन)

क	ख्	ग्	घ्	ङ्	च	छ	ज्	झ्	ञ्
k	kh	g	gh	ṅ	c	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	त्	थ्	द्	ध्	न्
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ	t	th	d	dh	n
प	फ	ब	भ	म्	य्	र्	ल्	व	
p	ph	b	bh	m	y	r	l	v, w	
श्	ष्	स्	ह्	क्ष्	त्र्	ज्ञ्			
ś	ṣ	s	h	kṣ	tr	jñ			
ऽ	अइ	अउ							
ã	aï	aü							

Illustration (Picture) Index

S. No.	Ch. No.	Description
1.	1	(1) **Last preception** : In the religious assembly of Pavapuri, last preception of Bhagavana Mahavira—Sermon of Uttaradhyayana Sutra. (2) **Connection-free monk** : Renouncing home, family, wealth etc., external connections; and passion, myness etc., internal connections and breaking fetters of affection etc., accepting the houseless monk-order, moving forward on the path of attachment-free—such a mendicant.
2.	1	**Conception of Discipline** : Humble disciple aims at the nodes and motions of preceptor (preacher, teacher), sits humbly and attains knowledge of holy texts remaining near the teacher (couplets 3—23), (2) Humble disciple serves his teacher by reciting Agamas, bodily servitude and by giving medicinal aids while teacher caught by sickness.
3.	1	As a bitch with sore ears driven away everywhere so indisciplined gets dis-respect at every place. As a pig leaves a trough filled with rice and eats filth so an indisciplined ingnorant leaves virtues and goes to bad ways. (Couplets 4–6) introduction page.
4	1	Indisciplined pupil needs the whip of teacher's command like an untrained horse; while disciplined pupil moves like a trained horse, by mere hints of the teacher (couplet 12)
5	2	Monk should bear the troubles of hunger etc., with even-mind (Couplet 2 to 13)
6	2	Monk should bear the woman-trouble etc., fixing himself in soul virtues, with equanimity. (Couplets 16–18)
7	3	(Four essentials difficult to obtain) (1) Difficult human existence—Human life is attained after transmigrating in innumerable existences. (2) Listening the true religion from teacher is difficult, (3) Fixing of faith in God, preachers and religion (canons) is very difficult (4) It is difficult to exert in self-control, meditation, study of holy texts etc.
8.	3	Where the four causes of pleasure—fields fill with greenary, palaces for residence, gold and silver, cattles, sevants, slaves exist; there the fortunate souls take birth. (Couplet 17)

9.	4	**Result of deeds done** : (1) The thief breaking the wall caught red-handed, he suffers punishment by the ruler in this world and in the next world he suffers the agonies of hell as the pungent fruits of his ill-deeds. (Couplet 3).
10.	4	Wise and witty propiliator remains awakened (non-negligent) among sleeping (negligent) persons. He remains always alert like Bharand bird, who has two mouths and one stomach. (Couplet 6)
11.	5	(1) Crossing the wordly ocean, which is very difficult to cross but reached on the shore Bhagawana Mahavira has precepted thus (Couplet 1), (2) Who are addicted to flesh and liquors, afflicted to wealth and women; such ignorant persons get unwilling death, (3) The fortunate persons indulged in meditation, study, restrained and subduers of senses get wilful and pleasant death.
12	6	(1) Sinful man goes to hell after exhausting human age-duration. (2) Knowing the even path the cartman carrying his cart on uneven path sorrows when the axle is broken. (3) There are two existences for propiliator of restrain and vowful person—either he attains salvation exhausting all Karmas or takes birth in heaven. (4) Practising Samayika, Pausadha etc., religious rituals the virtuous householder takes birth in heaven completing his human age duration.
13	7	(1) **Sorrow underlying delicious diets** : Eaters of dry grass the lean cow and calf feels sorrow once seeing the lamb eating rice, gram and green grass and becoming fattened; but large bellyed lamb is slaughtered for the sake of guest and cow and calf remain safe (previous part of chapter) (Couplets 1-3)
14	7	**Loss of much for less** (1) Lumplish (beggar) repents losing thousand Karsarpanas for the sake of one Kakini (Couplet 11). (2) Even forbidden by minister the king caught hazardous disease by taking mango, which is harmful to him and died. (Couplet 11)
15	7	(1) Three merchant-sons go for trade taking equal amount from their father. (2) One returns with enormous profits, one with basic amount and one becoming penniless–wretched (couplets 14–15).
16	7	(1) Basic amount is like human existence, profits like god-existence, and loss of basic amount is like hellish and crooked existences of soul. (Couplet 16) (2) Amusements and pleasures of human existence are transient and momentary like a dew-drop on the blade of grass; while the pleasures of gods are like ocean full of water

17.	8	(1) **Kapila in the court of king** : Wandering in midnight for getting one masa gold soldiers caught Kapila supposing him a thief and presented him before king in the morning. (2) Desire of one masa gold increased extensively. It could not be pacified even by enormous wealth, gold coins, fortunes. women, palaces etc.
18.	8	(1) Coming from garden Kapila said to King–I obtained the wealth of contentment. Now I want nothing. Kapila became a sage. (2) In the forest he precepted religion in sweet words to 500 thieves, so being enlightened all the thieves became his disciples.
19.	9	**Awakening of Namiraja** : (1) Queens began to grind sandal wood with water for pacifying burning fever of king, then the noise of bracelets became intolerable to king. (2) Queens kept only one bracelet in hand then no sound created even rubbing sandal wood with water. King experienced peace and undergone in light sleep.
20.	9	(1) Enquiring by King Namiraja, chief queen told—we have only one bracelet in our hands, how can one bracelet make sound. King took these words to heart. He thought—In this world, where are many, there are struggles and pains; and where is one, there is peace and happiness.
21.	9	(1) Enlightened by the feeling of loneliness Namiraja went to wood renouncing kingdom, family, fortunes and even the costly costumes and ornaments of his body. Ministers, queens, army–commanders etc., tried their best to stop but the footsteps advancing towards apathy could not be hindered. (Couplet 3)
22.	9	Ruler of gods questioned Royal Sage Nami, who was prepared to be consecrated—why there is uproar in Mithila city today ? Royal sage Nami replies—Huge tree has fallen down, so unsheltered birds are crying; that is why this uproar (Couplets 8–10).
23.	10	(1) This life is transient like a yellow leaf of a tree. It falls down as green leaves—new sprouts (child) originate. (2) Dew-drops at the tip of grass shine like pearls for a few time but as the rays of sun-light touch them, they dried up. Such momentary is the human life. (Couplets 1–2)
24.	10	(1) Earth-bodied beings—mountain, clay, jewels, gems (2) Water-bodied beings—water of ocean, tank, river, well, ice etc. (3) Fire-bodied beings—all kinds of fires and flames (4) Air-bodied beings—various kinds of air, (5) Vegetation-bodied beings–tree, flowers, roots, etc., (6) Two-sensed beings—conch, shell, insect etc.

		(7) Three-sensed beings—ants, small insects, (8) Four-sensed beings—mosquito, midge, spider etc. (9) Five-sensed crookeds; animals—cow, horse etc., birds—pigeon, birdie, etc., moving in water—fishes etc., creepers on arms—mongoose etc., creepers on breast—serpent etc. (10) Hellish beings, (11) Deities and gods—sun, moon etc. Jyotishka gods, gods, residing in Vimanas (Vaimanika gods) Asura, Nag Kumar etc. (12) Human beings—noble and unnoble men etc. Thus the soul is continually transmigrating in this circle of world (cycle of births and deaths) (Couplets 5–16).
25.	10.	(1) Your body became powerless and feable by old age. (Couplet 25). As autumn lotus remains unmoistened by water, so you should remain unaffected by worldly pleasures. (Couplet 28) (3) Once renouncing wealth, women and pleasure-things, do not wish them again (Couplets 29–30) (4) You are advancing-walking smoothly on the highway of right knowledge and faith; leaving thorny path of ignorance and addictment, (5) Weak burden-carrier repents moving on uneven path, you should not face such position. (Couplets 32–33).
26.	11	**Fifteen Similes of Learneds** As the milk kept in a conch remains defectless, so the religion and learning in a learned remain immutable and adorn. (4) Adorned like a strong bullock, chief of his herd. (1) Superb like a Kamboja horse. (5) Unconquerable like a lion, the head of animals. (2) Magnificent by knowledge like a warrior on horse. (6) Unconquered like Vasudeva, who has conch, wheel and rod weapons. (3) Unconquered like strong elephant surround by she-elephants. (7) Preserving the vast knowledge of fourteen Purvas like the monarch who is the owner of fourteen exalts (gems).
27.	11	(8) Most influential like the king of gods having thunderbolt in his hand. (12) Supermost like Jambu tree. (9) Shining like a rising sun. (13) Greatest like Sita river which is originated from Nilavanta mountain. (10) Adorned by many branches of learning like lustrous full moon. (14) Great like Sumeru mountain.

(11) Opulent with knowledge and faith like the owner of storehose filled with grains and wealth.

(15) Full of virtues as Swayambhu ocean is full of precious gems.

28. 12 (1) Harikesha saw—"All the persons kill the poisonous snake but no one kills the poisonless one," thinking thus he underwent deep pondering (Foreview).

29. 12 (2) Worshipping Yaksha deity, when princess Bhadra came and saw an ugly monk sitting there, she spat at him hatefully. Monk-devotee Yaksha angried and made her swoon. When all the treatments failed to bring her to senses, then Yaksha told—When princess would be wedded to monk, only then she will come to senses (Foreview).

30. 12 (3) King prayed to monk to marry princess, who was adorned with costly costumes, ornaments and various gifts.

(4) (beneath) Seeing the monk came for alms to sacrificial canopy, the brahmanas, being angry, beat the sage with sticks, canes etc. Then princess Bhadra tried to hinder them to do this ill-deed and told about the influence of penance of the monk. (Couplets 9–23)

31. 12 (4) Fervent devotee of monk, Yaksha became angry. He scattered whole commodities of oblation, distressed brahmanakumars. Then princess persuaded—all these are the pungent consequences of insulting the sage, beg pardon from him (Couplets 24–30).

Trembling from fear all begged pardon from sage and prayed to accept alms. Monk accepted alms with calm mind. (Couplet 34).

32. 13 (1) Once both the brothers born as sons of slave-maiden, were sleeping under a tree in the field, died by biting of a poisonous snake.

(2) Took birth as deers in a forest, died by the arrow of a hunter (3) Then became geese, a fisherman twisted their neeks, so they died (4) Born as Chandala-sons in Varanasi, began to amuse public by singing songs and dances. King's soldiers beat the both, becoming sorrowful, accepted sagehood and began to observe penances. Cruelly beaten by soldiers one of the monk exposed fire exalt (tejoleshya) to burn the city to ashes. (5) From here both the brothers became god in heaven (Five former births).

33. 13 (1) Monk listened the first part of stanza then he uttered the later part, stanza completed. (2) Water puller expressed full stanza to Monarch, Monarch came to Chitta monk with his seraglio. (3) Monk Chitta tried to enlighten Monarch Brahmadutta by giving

		the example of a deer caught by lion and thus expressing that life is the morsel of death.
34.	14	Completing god duration of heaven six soul born as human beings—(1) King, (2) queen, (3) purohita, (4) wife of purohita (5–6) two sons of purohita. Seeing sages both the sons of purohita run away, hide themselves climbing on a tree. Looking at the peaceful face and pitiful behaviour of sages, the fear of both the brothers flew away. Coming down the tree they began to bow the sages (Couplets 1–5).
35.	14	Expressing the duties of a brahmana, father said—first of all study Vedas, feed the brahmanas, marry with maidens then become sage. Sons replied—This world is encircled by death (cycle of Time), occlused by old age and death. As such what is the belief of life. (Couplets 9–23).
36	14	Watching the sons going away renouncing the home Bhrigu Purohita said to his wife Yasha—As a snake casting off the slough of his body, as fishes and geese breaking down the snare go along free and easy; so our sons are going free from worldly ties. Now what we will do living in the home like wingless birds and branchless tree (Couplets 29–37).
37	14	Queen advised the King—Desires are infinite like limitless sky. If a man gets the whole wealth of three worlds even then his desires can never be satisfied. I am in this palace like a bird in cage. The vulture who has flesh with it, other meat-eater vultures pounce upon him and who has no flesh, none rushes upon him. Only for the worldly pleasures and merriments there are snatches and assaults. (Couplets 39–49).
38.	16	Practiser of the most difficult great vow of celibacy, protected by ten condition to such a monk all gods, demons, gandharvas, rakshasas, kinnaras and monarchs bow with devotion (Couplet 10–13/16).
39.	17	**Sinful Sage** : One who accepts consecration boldly as a lion; but due to comfort-wishing he becomes coward like a jackal, sleeps eating and drinking according to his own will, accumulates clothes and vessels, gossips with the people—such indiscriminate, lustful of tastes called as sinful sage (Couplets 1–3).
40.	18	King Sanjaya, the ruler of Kampilya Nagar, went out for hunting with his fourfold army. Chasing the frightened deers king approached the Keshar park. Watching the wounded deers near the meditated monk, King filled with fear—Probably, these deers are of this monk. King began to beg pardon for the offence he had done. (Couplets 1–7).

41.	18	Kshatriya monk said to Royal sage Sanjya, that Bhagawana Mahavira has precepted—the persons who do the sinful deeds, like theft, violence, drink liquors etc. they go to hells and who practise religious activities, like—meditation, donation etc. they attain divine existence (Couplet 25).
42.	19	Mrigaputra was watching the activities of royal path standing by the window of his palace, then he began to gaze the sage. He went deep in his thoughts, he recollected the memories of his former births. He began to experience vividly practised sagehood in his former birth. (Couplet 1–9)
43.	19	Awakened by the memories of former birth, Mrigaputra came to his parents for their consent to observe consecration. He spoke—As the owner of house takes out his valuable assets from the house at fire. In the same way, I wish to take out my soul from the fire of passions. (Couplets 23–24). Parents said—As it is very difficult to swallow the flames of burning fire, crossing the ocean by arms, to weigh mountain Meru by scale and to move on the sharp edge of a sword; so too much difficult is to practise restrain (Couplets 40–43/38).
44.	19	The description of hellish agonies experienced by Mrigaputra is according to the couplets numbering 50, 51, 52, 53, 54, 55.
45	19	The description of hellish agonies experienced by Mrigaputra is according to the couplets numbering 57, 58, 59, 60, 61, 63.
46	19	The description of hellish agonies experienced by Mrigaputra is according to couplets numbering 64, 67, 69, 70, 71, 56.
47	20	Once king Shrenika saw a great monk in deep meditation, in an avenue of Mandikukshi garden full of trees and tendrils, which was situated outside the city Rajagriha. On completion of meditation King asked many questions to monk. Monk told—'I am unprotected' then King began to laugh. (Couplets 1—9).
48	20	Monk expressed his own life-story—I am the son of great rich man of Kaushambi city. Once I was caught by severe eye-pain; but agony could not be pacified, even by spending enormous wealth. Then pondering, I resolved—If my eye-pain subsides then I will become a quit-home sage. My eye-agony uprooted and I renounced my home, family etc. and become a sage (Couplets 19–34).
49	21	The wife of rich trader Palita, gave birth to a son during voyage, for this reason baby was named as Samudrapala. Once Samudrapala saw a culprit on royal road, who was being carried to murderspot by King's

men, and dressed in red clothes and wearing the garland of red oleander flowers. Pondering at this very point, he recollected the memories of his former birth, and then became aware of the fact that good deeds bear the fruits of heaven and bad deeds are way to hell (Couplets 4–5).

50. 22 (1) Advancing towards Wedding Canopy prince Arishtanemi heard the screams and screeches of encaged birds and animals in an enclosure. His heart filled with compassion. Asking to charioteer (elephant driver) he came to know all these innocent birds and animals are caught for his marriage feast.

(2) Compassionate heart of Arishtanemi trembled. Giving his ear-rings etc. as gift to charioteer he ordered him to let free all the birds and animals (Couplets 14–20).

51. 22 (1) Apathetic minded Arishtnemi became consecrated. Vasudeva, Samudravijaya, Balabhadra and Vasudeva bowed to him. (2) Hearing the news of returning from pylon (arched gateway) and consecration of Arishtanemi, bride Rajimati swooned. (Couplets 25–28).

52 23 (1) Disciples of Bhagawana Parshwanath and Bhagawana Mahavira, when came into contact then began to ask one another—why this difference between us ? (Couplets 11–12)

(2) In the park of Shravasti city, Keshi Kumar Shramana and Ganadhara Gautama, with their disciples, sat together and discussed many points. Thousands of men, deities, gandharvas came to visualise the religious intercourse of both the saints and pacify their curiosity (Couplets 14–20).

53. 23 (2) Ganadhara Gautama explained answering the various questions of Keshi Kumar Shramana—

(1) I quench the fire of passions by the excellent water of knowledge, conduct and penance. (Couplet 53). I govern this stupid horse of mind by the bridle of knowledge. (Couplet 56). (3) In the flood of water religion is an island (Couplet 68) (4) By the boat of body great sages cross the ocean of world (Couplet 73), (5) In the dense darkness the sun of knowledge (Bhagawana Mahavira) has arisen (Couplet 78).

54. 25 Bathing in the river Ganga Jayaghosha saw that a serpent is swallowing a frog and a Kurar bird is swallowing that serpent. Jayaghosha became a sage. Wandering for seeking alms he approached the sacrificial canopy of Vijayaghosha. There telling about the kernel (element) monk

		Jayaghosha said—None can become a sage by tonsure, nor a brahmana by chanting syllable Om (ॐ), nor a hermitage by wearing clothes of Kausha—grass. (Couplet 31).
55.	28	Advancing on the united path of Right Knowledge-Faith-Conduct-Penance, the soul obtaining good existences attains salvation in the end. (Couplet 3).
56.	32	Indulged in form (colour) moth, deer in sound (voice), serpent in fragrance, fish in taste—as these are destroyed, so the ignorant person indicted to these subjects (pleasures) experiences pains and agonies. (Couplets 24, 37, 50, 63).
57	32	Lustful of cool water he-buffalow (bison) and delusioned he-elephant in the lust of she-elephant destroy themselves due to their indictment. (Couplets 76, 79).
		And like unmoistened lotus in water, attachment-free person remain always happy. (Couplet 99).
58	34	**Gradation of tinge-feelings** :
		Possessing the most cruel feelings black-tinged man for getting fruits wants to uproot the tree. Possessing the less cruel feelings than first (black tinged man) he is blue-tinged, he wants to cut the branches of tree, grey-tinged wants to cut twigs (small branches), red-tinged wants to pluck ripe and unripe fruits, yellow-tinged wants to pluck only ripen fruits and white-tinged possessing good and beneficial feelings wishes to gather ripen fruits fallen down on ground from tree only according to his needs. (In accordance to commentaries).
59.	34	In this tinge-tree the colours, tastes, smells, touches and symptoms of all the six tinges as described in this scripture, are expressed through the medium of examples. For more clarification read couplets 4–30 of this chapter.

■

उत्तराध्ययन सूत्र के चित्रों का विवरण युक्त परिचय

चित्र क्रम	अध्ययन	चित्र-परिचय
१	१	(१) अन्तिम उपदेश : पावापुरी के समवसरण में भगवान महावीर की अन्तिम देशनाः उत्तराध्ययन सूत्र का प्रवचन दृश्य। (२) संयोग त्यागी अणगार : घर, परिवार, धन आदि बाह्य संयोगों एवं कषाय, ममता आदि अन्तरंग संयोगों की बेड़ियाँ तोड़कर अणगार वृत्ति धारण करके वीतराग-मार्ग पर बढ़ने वाला भिक्षु।
२	१	विनय का स्वरूप : (१) विनीत शिष्य गुरु के संकेत एवं मनोभावों पर लक्ष्य रखता है। नम्रता पूर्वक बैठता है, और गुरु के समीप शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करता है। (गाथा ३-२३) (२) विनीत शिष्य गुरु को आगम स्वाध्याय सुनाकर, शारीरिक परिचर्या करके, रुग्ण होने पर यथा समय पथ्य, औषधि आदि देकर उनकी सेवा करता है।
३	१	(१) जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया सभी स्थानों से निकाल दी जाती है, उसी प्रकार अविनीत को सर्वत्र तिरस्कार मिलता है। (२) सूअर चावलों की भूसी को छोड़कर विष्ठा आदि खाता है उसी प्रकार अज्ञानी सदाचार छोड़कर दुराचार की ओर जाता है।
४	१	अडियल घोड़े की भाँति अविनीत शिष्य को बार-बार गुरुवचन रूप चाबुक की जरूरत होती है, जबकि सुविनीत शिष्य सुशिक्षित अश्व की भाँति संकेत मात्र से सीधे रास्ते चलता रहता है। (गाथा १२)
५	२	क्षुधा आदि परीषह उत्पन्न होने पर मुनि समभाव पूर्वक उन्हें सहन करें। (गाथा २ से १३ तक)
६	२	स्त्री परीषह आदि के समय मुनि आत्म-स्वरूप में लीन रहता हुआ उन्हें समता पूर्वक सहन करें। (गाथा १६ से २८)
७	३	(चार दुर्लभ अंग) (१) दुर्लभ मानव जन्म : अनेकानेक जीव योनियों में परिभ्रमण करने के पश्चात् मानव जन्म प्राप्त होता है। (२) गुरु मुख से सद्धर्म का सुनना (श्रुति) दुर्लभ है। (३) देव, गुरु व धर्म (शास्त्र) के प्रति श्रद्धा बहुत दुर्लभ है। (४) संयम, ध्यान, स्वाध्याय आदि संयम में पुरुषार्थ दुर्लभ है।
८	३	(१) जहाँ चार काम स्कन्ध–क्षेत्र–हरे, भरे खेत, वास्तु–भवन, हिरण्य–स्वर्ण, पशु, दास, सेवक आदि होते हैं, वहाँ पुण्यशाली जीव जन्म लेते हैं। (गाथा १७)
९	४	कृत-कर्म फल : (१) घर में सेंध लगाता हुआ चोर पकड़ा जाने पर इस लोक में अपने अपराध के लिये राजा आदि से दण्ड पाता है और परलोक (नरक) में दुष्कर्मों का कटु-फल भोगता है। (गाथा ३)
१०	४	(२) प्रज्ञाशील ज्ञानी साधक सोये (प्रमादी) लोगों में जागता (अप्रमत्त) रहता है। दो मुख एवं एक उदरवाले भारण्ड पक्षी की भाँति यह प्रतिक्षण सजग (चोकन्ना) और अप्रमादी होकर विचरता है। (गाथा ६)
११	५	(१) दुस्तर संसार सागर को पारकर तट पर पहुँचे हुए संसार सागर पारगामी भगवान महावीर ने यह उपदेश दिया है। (गाथा १) (२) जो मद्य-मांस आदि का सेवन करने में गृद्ध है; धन एवं स्त्रियों में आसक्त हैं; ऐसे अज्ञानी जीव अकाम-मरण प्राप्त करते हैं। (३) ध्यानी, स्वाध्यायी संयमी और जितेन्द्रिय, पुण्यात्माओं का सकाम-मरण (मरण-उत्सवमय) होता है।

१२ ५ (१) पापकर्मा मनुष्य आयुष्य क्षीण होने पर नरक में उत्पन्न होता है। (२) समतल मार्ग को जानता हुआ भी गाड़ीवाला विषम मार्ग पर जाते हुये धुरी टूट जाने पर शोक-परिताप करता है। (३) संयम आराधना करने वाले सुव्रती की दो गतियाँ हैं–वह कर्मक्षय कर मोक्ष में चला जाता है अथवा देव लोक में उत्पन्न होता है। (४) सामायिक, पौषध आदि धर्म की आराधना करने वाला सद्गृहस्थ आयुष्य पूर्ण होने पर देव लोक में जाता है।

१३ ७ (१) भोग में शोक : चावल, हरी घास आदि खाकर हृष्ट-पुष्ट होने वाले मेमने को देखकर सूखी घास खाने वाली दुर्बल गाय और बछड़ा एक बार दुःखी होते हैं, परन्तु अन्त में माल खाने वाला मेमना, मेहमान के लिए मारा जाता है और सूखी घास खाने वाली गाय बच जाती है। (अध्ययन से पूर्व का भाग) गाथा १–३)

१४ ७ थोड़े के लिए बहुत हानि : (१) एक काकिणी के लिये–भिखारी हजार मोहरें खोकर पछताता है। (गाथा ११) (२) मंत्री द्वारा मना करने पर भी स्वाद के लोभ में अपथ्य भोजन (आम) करके राजा रोगी हो गया और एक दिन जीवन से हाथ धो बैठा। (गाथा ११)

१५ ७ (१) तीन वणिक पुत्र पिता से समान धन लेकर व्यापार के लिये जाते हैं।

(२) एक भरपूर लाभ कमाकर, एक मात्र मूल धन लेकर तथा एक मूल धन हारकर दरिद्र होकर लौटता है। (गाथा १४-१५)

१६ ७ (१) मूल धन के समान मनुष्य गति है। लाभ के समान देवगति है। मूलधन की हानि के समान जीव की नरक एवं तिर्यंच गति है। (गाथा १६) (२) मनुष्यभव के काम-भोग सूखे घास पर गिरी ओस बिन्दु के समान क्षणिक एवं तुच्छ है, जबकि देवताओं के दिव्य-सुख समुद्र के समान विशाल है।

१७ ८ (१) राज सभा में कपिल–एक मासा सोना पाने के लिये आधी रात में घूमते हुये कपिल को पहरेदारों ने चोर समझकर पकड़ लिया और प्रातः राजा के सम्मुख उपस्थित किया। (२) एक मासा स्वर्ण की इच्छा असीम तृष्णा बन गई। अपार धन, स्वर्णमुद्रा, ऐश्वर्य, सेना, स्त्रियाँ, भवन सब कुछ माँग लेने पर भी कपिल की तृष्णा शान्त नहीं हुई। (गाथा १७)

१८ ८ (१) कपिल ने आकर राजा से कहा–मुझे सन्तोष धन मिल गया, अब कुछ भी नहीं चाहिये। कपिल मुनि बन गये। (२) जंगल में पाँच सौ चोरों को मधुर स्वर में धर्म उपदेश सुनाया तो सभी चोर प्रबुद्ध होकर उनके शिष्य बन गये।

१९ ९ नमिराज का जागरण : (१) नमिराज के दाह ज्वर की शान्ति के लिये रानियों ने चन्दन घिसना प्रारंभ किया तो हाथ की चूड़ियों (कंगन) का शोर राजा को असह्य होने लगा। (२) रानियों ने सिर्फ एक-एक कंगन हाथ में रखा, जिस कारण चन्दन घिसने पर भी आवाज नहीं हुई। राजा को शान्ति अनुभव होने पर हल्की सी नींद लग गई।

२० ९ (१) नमिराज के पूछने पर पट रानी ने कहा–हमारे हाथ में सिर्फ एक ही कंगन है, फिर एक कंगन से आवाज कैसे होगी ? राजा के चिन्तन ने नया मोड़ लिया, "संसार में जहाँ अनेक हैं, वहीं दुःख है, संघर्ष है। जहाँ एक है, वहाँ पर सुख-शान्ति है।" (पूर्वालोक)

२१ ९ (१) एकत्वभाव से प्रबुद्ध होकर नमिराज ने राज्य, परिवार, वैभव, यहाँ तक कि अपने शरीर के वस्त्र-आभूषणों का भी त्यागकर वन की ओर प्रस्थान कर दिया। मंत्री, पुरोहित, सेनापति और रानियाँ आदि ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वैराग्य की ओर बढ़ते दृढ़ चरण नहीं रुके। (गाथा ३)

२२ ९ प्रव्रज्या के लिये प्रस्तुत हुये नमिराजर्षि के सामने ब्राह्मण वेषधारी देवेन्द्र ने प्रश्न किया–आज मिथिला नगरी में हृदय विदारक कोलाहल क्यों सुनाई दे रहा है? नमि राजर्षि उत्तर देते हैं–एक विशाल चैत्य वृक्ष के ढह जाने से आश्रयहीन हुए पक्षी क्रन्दन कर रहे हैं; उसी का यह कोलाहल है। (गाथा ९-१०)

२३ १० (१) यह जीवन वृक्ष के पत्ते की तरह नश्वर है। हरी-हरी कौपलें (शिशु काल) समय आने पर पीला पत्ता बनकर (जरा-जीर्ण होकर) झड़ जाती है। (२) कुश (डाभ) की नोंक पर टिकी हुई ओस की बूँदें कुछ समय तक मोती की भाँति चमक कर धूप लगते ही सूख जाती हैं–ऐसा क्षणिक है मानव जीवन। (गाथा १-२)

२४ १० (१) पृथ्वीकाय–पर्वत, मिट्टी, मणिरत्न आदि। (२) अप्‌काय–समुद्र, सरोवर, नदी, कूप, हिम आदि का जल। (३) अग्निकाय–सभी प्रकार की अग्नियाँ। (४) वायुकाय–अनेक प्रकार की हवा। (५) वनस्पति काय–वृक्ष, फूल, कन्द-मूल आदि। (६) द्वीन्द्रियकाय–शंख, सीप, कृमि आदि। (७) त्रीन्द्रियकाय–चींटी, मकोड़े आदि। (८) चतुरिन्द्रियकाय–मक्खी, मच्छर, मकड़ी आदि। (९) पंचेन्द्रिय–तिर्यंच, पशु–गाय, घोड़ा आदि, पक्षी–कबूतर, चिड़िया आदि, जलचर–मछली आदि, उरपरिसर्प–सांप आदि। भुजपरिसर्प–नेवला आदि। (१०) नारक। (११) देव–सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, असुर, नागकुमार आदि। मनुष्य–आर्य अनार्य आदि। इस प्रकार संसार चक्र में जीव सतत परिभ्रमण करता रहा है (गाथा ५ से १६)

२५ १० (१) तुम्हारा शरीर जरा से जीर्ण और अशक्त हो गया है। (गाथा २५) (२) शरदकालीन कमल जैसे पंक से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार तुम विषयों से अलिप्त रहो। (गाथा २८) (३) धन, स्त्रियाँ, भोग-सामग्री को त्यागकर पुनः भोग की इच्छा मत करो। (गाथा २९-३) (४) तुम अज्ञान एवं आसक्ति के कंटक पथ को छोड़कर ज्ञान एवं श्रद्धा के राजपथ पर बढ़ चले हो। (५) जैसे दुर्बल भार वाहक ऊबड़-खाबड़ पथ पर चलता हुआ पछताता है, तुम्हारी यह स्थिति नहीं हो। (गाथा ३२-३३)

२६, ११ बहुश्रुत-महिमा : १५ उपमाएँ : जिस प्रकार शंख में रखा हुआ दूध निर्विकार रहता है। उसी प्रकार
२७ बहुश्रुत में धर्म एवं श्रुत निर्विकार रहकर शोभित होते हैं। (स्पष्टीकरण चित्रों में देखें)

२८ १२ १. हरिकेश ने देखा, "जहरीले सांप को सभी मारते हैं, परन्तु विष रहित अलसिये को कोई नहीं मारता", वह सोचता हुआ गहरा उतर गया। (पूर्वालोक)

२९ १२ (१) यक्ष-पूजा करके आई राजकुमारी भद्रा ने जब एक कुरूप मुनि को वहाँ बैठा देखा तो उसने घृणा पूर्वक मुनि के ऊपर थूक दिया। (२) मुनि भक्त यक्ष ने क्रुद्ध होकर राजकुमारी को मूर्च्छित कर दिया। जब वह किसी भी उपचार से स्वस्थ नहीं हुई तो यक्ष ने स्वप्न में निर्देश दिया–राजकुमारी मुनि के साथ विवाह करेगी तभी स्वस्थ हो पाएगी। (पूर्वालोक)

३० १२ (१) राजा ने विविध उपहारों के साथ राजकुमारी को सजाकर मुनि से पत्नी रूप में स्वीकारने की प्रार्थना की। (२) यज्ञशाला की ओर मुनि को भिक्षा के लिए आया देखकर ब्राह्मणों ने क्रोधित होकर मुनि को दण्डों आदि से पीटा। भद्रा राजकुमारी ने उन्हें यह दुष्कृत्य करने से रोक कर मुनि के तपः प्रभाव का वर्णन किया। (गा. ९–२३)

३१ १२ (१) मुनि-भक्त यक्ष ने क्रुद्ध होकर यज्ञ की सब सामग्री बिखेर दी। ब्राह्मण कुमारों की दुर्दशा की। तब राजकुमारी ने ब्राह्मणों को समझाया–यह सब मुनि के अपमान का दुष्फल है उनसे क्षमा मांगो। (गा. २४-३०) (२) भयभीत ब्राह्मणों ने मुनि से क्षमा माँगी और भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मुनि ने शान्त भाव से भिक्षा ग्रहण की। (गा. ३४)

३२ १३ (१) एक बार दोनों भाई दासी पुत्र बने, खेत में वृक्ष के नीचे सोये थे, सांप के काटने से मृत्यु हुई। (२) जंगल में हिरण बने, वहाँ शिकारी के तीर से घायल होकर दम तोड़ दिया। (३) फिर राजहंस बने, वहाँ एक निर्दय मछुए ने गर्दन मरोड़कर मार डाला। (४) वाराणसी में चंडाल पुत्र बने, नृत्य-गीत से जनता का मनोरंजन करने लगे। राजपुरुषों ने चंडाल पुत्रों को पीटा, दुःखी होकर साधु बन तपस्या करने लगे। राजपुरुषों द्वारा सताये जाने पर क्रोध में आकर एक मुनि ने नगर को भस्म करने तेजोलेश्या छोड़ी। (५) वहाँ से दोनों भाई स्वर्ग में उत्पन्न हुए। (पूर्व जन्म के पांच भवः गाथा ६)

३३ १३ (१) रैंहट चलाने वाले के मुख से आधा श्लोक सुना तो मुनि ने आगे का श्लोक पूरा कर दिया। (२) रैंहट चालक ने चक्रवर्ती को श्लोक की पूर्ति सुनाई। चक्रवर्ती सपरिवार चित्तमुनि के पास आया। (३) चित्तमुनि ने चक्रवर्ती को सिंह द्वारा गृहीत हरिण का उदाहरण देकर जीवन को काल का ग्रास बताते हुए उद्बोधन दिया। (गाथा २२)

३४ १४ (१) स्वर्ग से च्यवकर छः प्राणियों में से, दो राजा-रानी, दो पुरोहित दंपती, दो पुरोहित पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। (गाथा ३) (२) मुनियों को देखकर पुरोहित पुत्र भयभीत होकर दौड़े। एक वृक्ष पर छुप गये। मुनियों का शान्त मुख और दयामय व्यवहार देखकर उनका भय दूर हुआ और वृक्ष से नीचे उतरकर वन्दना करने लगे। (गा. १-५)

३५ १४ (१) पिता ने ब्राह्मण का कर्त्तव्य बताते हुए कहा–पहले वेद पढ़ो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ, विवाह करो, फिर साधु बनना ! (२) पुत्रों ने उत्तर दिया–यह संसार क्रूर कालचक्र के बीच में फंसा हुआ है। जरा और मृत्यु से घिरा हुआ है। ऐसे में जीवन का क्या भरोसा है ? (गा. ९-२३)

३६ १४ (१) पुत्रों को गृहत्याग कर जाते देखकर भृगु पुरोहित ने पत्नी यशा से कहा–सांप जैसे कैंचुली को छोड़कर, मत्स्य और हंस जैसे जाल को काटकर बंधन-मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही हमारे पुत्र बंधन-मुक्त होकर जा रहे हैं। अब हम पंख कटे पक्षी की तरह, शाखाहीन वृक्ष की तरह घर में रहकर क्या करेंगे? (गा. २९-३७) (२) रानी कमलावती ने देखा–चारों प्राणी विरक्ति के पथ पर चल पड़े हैं और उनका परित्यक्त धन, राज-भंडार में आ रहा है।

३७ १४ (१) राजा को समझाते हुए रानी बोली–राजन् ! इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। यदि तीन लोक का सम्पूर्ण वैभव मिल जाये तब भी इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो सकती। इस घर में मेरी स्थिति वैसी ही है जैसे पिंजरे में पक्षिणी की। (२) जिस गिद्ध के पास मांस का टुकड़ा होता है उस पर दूसरे पक्षी झपटते हैं। जिसके पास मांस नहीं है उस पर कोई नहीं झपटता। संसार में काम-भोग के लिए ही छीना-झपटी होती है। (३९-४९)

३८ १६ दस समाधि स्थानों से संरक्षित दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले मुनि को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, चक्रवर्ती सम्राट आदि सभी नमस्कार करते हैं। (गाथा १०-१३-१६)

३९ १७ पाप श्रमण : सिंह वृत्ति से प्रव्रजित होकर जो सुख-शीलता के कारण शृगाल वृत्ति धारण कर मनचाहा खा-पीकर सोता है, वस्त्र-पात्र का संग्रह करता है, लोगों के साथ गप-शप मारता है वह अविवेकी, रस-लोलुप, पापश्रमण कहलाता है। (गा. १-३)

४० १८ काम्पिल्य नगर का राजा संजय अपने दल बल के साथ शिकार करने निकला। भयत्रस्त हिरणों के पीछे दौड़ता हुआ राजा केशर उद्यान के लता मण्डप में पहुँच गया। वहाँ एक ध्यानस्थ मुनि के पास घायल हिरणों को देखकर राजा भयभीत हो उठा; हो न हो; ये हिरण मुनि के ही हैं। अज्ञान में हुए अपराध के लिए राजा मुनि से क्षमा याचना करने लगा। (गाथा १-७)

४१ १८ क्षत्रिय मुनि ने संजय राजर्षि को बताया—भगवान महावीर ने कहा है, जो मनुष्य, चोरी, हिंसा, मद्य-सेवन आदि पाप कर्म करते हैं वे घोर नरक में जाते हैं। ध्यान, दान आदि धर्म का आचरण करने वाले दिव्य गति को प्राप्त करते हैं। (गाथा २५)

४२ १९ राज महलों के गवाक्ष में खड़ा मृगापुत्र राजपथ पर नगर की हलचलें देख रहा था कि एक तपस्वी संयमी श्रमण को आते हुए अनिमेष निहारने लगा। वह विचारों में गहरा खो गया तो उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व जन्म में आचरित मुनिधर्म का वह साक्षात् अनुभव करने लगा। (गाथा १-९)

४३ १९ (१) जातिस्मरण से जागृत मृगापुत्र माता-पिता के पास संयम की अनुमति लेने आया। वह बोला—जिस प्रकार आग में जलते हुए घर से गृहस्वामी अपनी मूल्यवान वस्तु निकाल लेता है, उसी प्रकार मैं कषायों की अग्नि में जलती हुई अपनी आत्मा को निकालना चाहता हूँ। (गाथा २३-२४) (२) माता-पिता ने कहा—जैसे प्रज्वलित अग्नि शिखा को पीना, समुद्र को तैरना, मेरू पर्वत को तराजू में तोलना और तलवार की धार पर चलना कठिन है, वैसे ही संयम का आचरण अति दुष्कर है। (गाथा ४०-४३/३८)

४४ १९ मृगापुत्र द्वारा नरक वेदनाओं का वर्णन गाथा ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५ के अनुसार है।

४५ १९ मृगापुत्र द्वारा नरक वेदनाओं का वर्णन-गाथा ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६३, के अनुसार है।

४६ १९ मृगापुत्र द्वारा नरक वेदनाओं का वर्णन गाथा ६४, ६७, ६९, ७०, ७१, ५६ के अनुसार है।

४७ २० राजगृह के बाहर मण्डिकुक्षि उद्यान में राजा श्रेणिक ने वृक्ष एवं लताओं से आकीर्ण एक लता मण्डप में मुनि को ध्यान करते हुए देखा। ध्यान समाप्त होने पर राजा ने मुनि से अनेक प्रश्न पूछे। मुनि ने बताया, 'मैं अनाथ हूँ' तो राजा जोर से हँसने लगा। (गाथा १-९ तक)

४८ २० मुनि ने अपनी आत्मकथा सुनाई—मैं कोशाम्बी के ईभ्य सेठ का पुत्र हूँ। एक बार मेरी आँखों में तीव्र वेदना हुई, परन्तु पानी की तरह धन बहाने एवं अनेक उपचार करने पर भी पीड़ा शान्त नहीं हुई। तब आत्म-चिन्तन करते हुए मैंने संकल्प किया—यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊं, तो संसार त्याग कर श्रमण बन जाऊँगा। मेरी वेदना शान्त हो गई और मैंने घर-परिवार का त्याग कर दिया। (गाथा १९-३४)

४९ २१ पालित सेठ की पत्नी ने समुद्र यात्रा में ही पुत्र को जन्म दिया। जिस कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा। एक बार समुद्रपाल ने राजमार्ग पर एक अपराधी को लाल कपड़े और गले में लाल कणेर की माला पहने वध्यभूमि की ओर ले जाते देखा। एकाग्र चिन्तन करते हुए उसे पूर्व जन्म की स्मृति हुई—तो जाना, मनुष्य को अच्छे कर्मों से स्वर्ग और बुरे कर्मों से नरक मिलता है। (गाथा ४-९)

५० २२ (१) विवाह मण्डप की ओर बढ़ते हुए राजकुमार अरिष्टनेमि ने बाड़े में बन्द पशु-पक्षियों की करुण चीत्कार सुनी तो हृदय द्रवित हो उठा। सारथि (महावत) से पूछने पर पता चला कि ये सब आपके विवाह-भोज के लिए बन्द है (२) अरिष्टनेमि का हृदय करुणा-विगलित हो गया। सारथि को अपने कुण्डल आदि पुरस्कार में देते हुए आज्ञा दी, समस्त पशु-पक्षियों को तत्काल मुक्त कर दिया जाय। (गाथा १४-२०)

५१ २२ (१) विरक्तमना अरिष्टनेमि प्रव्रजित हो गये। वसुदेव, समुद्रविजय, बलभद्र एवं वासुदेव श्री कृष्ण ने उन्हें वन्दना की। (२) तोरण द्वार से लौटकर प्रव्रजित होने की सूचना मिलते ही दुल्हन बनी राजीमती मूर्छित हो गई। (गाथा २५-२८)

५२ २३ १. भगवान पार्श्वनाथ तथा भगवान महावीर के शिष्य जब परस्पर मिले तो एक-दूसरे से पूछने लगे– हम में यह भेद क्यों ? (गाथा ११-१२) (२) श्रावस्ती के उद्यान में केशीकुमार श्रमण तथा इन्द्रभूति गौतम ने अपने शिष्य परिवार के साथ बैठ-मिलकर परस्पर विचार चर्चा की। हजारों मनुष्य तथा देव-गंधर्व भी कुतूहलवश यह सन्त समागम देखने आये। (गा. १४-२०)

५३ २३ २. केशीकुमार श्रमण के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देते हुए गणधर गौतम ने बताया–

१. मैं कषायों की अग्नि को श्रुत-शील और तप के जल से शान्त कर लेता हूँ। (गा. ५३) २. मनरूपी दुष्ट अश्व को ज्ञान की लगाम से वश में कर लेता हूँ। (गा. ५६) ३. जरा-मरण रूपी जल प्रवाह में धर्म ही एक द्वीप है। (गा. ६८) ४. शरीर रूपी नौका से संसार समुद्र को महर्षि जन तैर जाते हैं। (गा. ७३) ५. गहन अंधकार में ज्ञान रूपी भास्कर (भगवान) उदित हो चुका है।

५४ २५ गंगा स्नान करते हुए जयघोष ने देखा–मेंढ़क को सर्प और सर्प को कुरर पक्षी निगल रहा है। वैराग्य पाकर जयघोष मुनि बन गये। भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए विजयघोष के यज्ञ मण्डप में पहुँचने पर तत्व बताते हुए जयघोष मुनि ने कहा–कोई सिर मुंडाने मात्र से श्रमण, ॐकार जपने मात्र से ब्राह्मण, और कुश-चीवर धारण करने मात्र से तापस नहीं होता। (गा. ३१)

५५ २८ २८. सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र तप के सम्मिलित मार्ग पर आरूढ़ आत्मा सद्‌गति को प्राप्त करता हुआ क्रमशः मोक्ष गति को प्राप्त कर लेता है। (गा. ३)

५६ ३२ (१) रूप में आसक्त पतंगा, (२) शब्द में आसक्त मुग्ध हरिण, (३) गंध में आसक्त सर्प और (४) रस में आसक्त मत्स्य जिस प्रकार विनाश को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इन विषयों में आसक्त अज्ञानी प्राणी दुःखी होता है। (गाथा २४, ३७, ५०, ६३)

५७ ३२ (१) शीतल जल का लोभी भैंसा, (२) और हथिनी के मोह में अन्धा हाथी–रागभाव के कारण विनाश को प्राप्त होते हैं। (गाथा ७६, ७९)

तथा जल में कमल की भाँति निर्लेप वीतराग पुरुष सदा शान्त एवं प्रसन्न रहते हैं। (गाथा ९९)

● लेश्या-परिणामों की तर-तमता का दृष्टान्त–

५८ ३४ संक्लिष्ट क्रूरतम भावना वाला कृष्ण लेश्यी व्यक्ति फल के लिए वृक्ष को जड़मूल से काटने वाले के समान है। फिर उससे कुछ कम क्लिष्ट परिणाम वाला व्यक्ति क्रमशः शाखा काटने वाले (नीललेश्यी) टहनी काटने वाले (कापोतलेश्यी) कच्चे-पके फल मात्र तोड़ने वाले (तेजोलेश्यी) तथा सिर्फ पके फल तोड़ने वाले कोमल परिणामी (पद्म लेश्यी) एवं आवश्यकतानुसार मात्र पके फल बीनने वाले कोमलतम भद्र परिणामी (शुक्ल लेश्यी) के प्रतीक हैं। (टीका अनुसार)

५९ ३४ इस चित्र में प्रस्तुत सूत्रानुसार छहों लेश्याओं के वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और भाव (लक्षण) को उदाहरणों के माध्यम से समझाया गया है। स्पष्टीकरण हेतु गाथा ४ से ३० तक का भाव देखें।

●●

Illustrated
Uttrādhyayana Sūtra

सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र

उत्तराध्ययन : लोकोत्तर आगम

प्रस्तुत आगम का नाम उत्तराध्ययन सूत्र है। उत्तर शब्द के कई अर्थ हैं—श्रेष्ठ (*best*), उत्तम (*utmost*), अन्तिम (*last*) आदि।

ऐसा विश्रुत है कि भगवान् महावीर अपृष्ट वागरणा के रूप में उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों का वर्णन पूरा करके ३७वें 'प्रधान' नामक अध्ययन का प्रवचन करते-करते शैलेशी अवस्था को प्राप्त होकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये। इसलिए यह आगम भगवान महावीर की अन्तिम वाणी के रूप में मान्य है।

इस आगम की श्रेष्ठता और उत्तमता इसमें निहित अनेक विशेषताओं पर आधारित है। यह आगम श्रमण-धर्म का संपूर्ण और विशद विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उत्तराध्ययन सूत्र की सम्पूर्णता इस तथ्य में निहित है कि जैन धर्मानुमोदित तत्त्व-विज्ञान, सम्यक्-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का वर्णन, विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन की प्रेरक घटनाएँ, श्रमणाचार के नियम, गुरु और शिष्य के कर्त्तव्य आदि सभी कुछ इसमें गुम्फित हैं।

इसे जैन धर्म के विशाल वाङ्मय का संक्षिप्त सार संग्रह (*compendium*) के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

प्रस्तुत आगम की इन्हीं तथा अन्य ऐसी ही विशिष्टताओं के कारण यह जैन जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय, पठनीय तथा श्रद्धा का केन्द्र रहा है।

इसके ३६ अध्ययन हैं। सभी अध्ययन पृथक्-पृथक् होते हुए भी, एक ही माला के ऐसे मनके हैं जो अपनी अलग-अलग आभा बिखेरते हुए, सम्पूर्ण हार को बहुरंगी विविध वर्णी प्रभा से प्रभास्वर करते हैं। सम्पूर्ण सूत्र को दिव्यता से ओत-प्रोत कर देते हैं। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण सूत्र दिव्य तथा लोकोत्तर आगम के रूप में जन-जन का कंठहार बन गया है।

UTTARĀDHYAYNA
AN EGREGIOUS JAIN APHORISM

The present Jain Scripture is entitled as *Uttarādhyayana sūtra*. The word *uttar* has many meanings, e. g., best, utmost, last etc.

It is renowned that *Bhagawāna Mahāvīra* precepted this *sūtra*, without any question or querry raised by any body. He expressed these thirtysix chapters. After this while he was expressing the thirtyseventh chapter entitled *Pradhāna*, he attained salvation. So this scripture *Uttarādhyayana sūtra* is believed as the last precept of *Bhagawāna Mahāvīra*.

The uniqueness and supremity of the *sūtra* depends upon many inherent qualities amalgamated in it. This presents the exhaustive analysis of *śramaṇa* religion or Jainism. Hence, it can be said as the *Gīta* of Vaidic religion, *Tripiṭaka* of Buddhism, Bible of Christianty and *Qurān* of Muslims.

The completeness of this *sūtra* lies in the fact that all the subjects propounded by Jainology are included in this, namely–right–knowledge–faith–conduct–penance, special incidents and episodes of the great-men, code of conduct for monks, duties of teacher–preceptor and pupil etc.

Therefore it can be dignified as the compendium of immense Jain canonical literature.

Due to these and many other prevalences this *sūtra* from the very beginning till now remained the centre of faith, popular in the Jain world and thousands of Jains read this with their utmost belief.

There are thirtysix chapters in this *sūtra*. Though every chapter deals the different topic of Jainology; still they are like the beads of a single rosary. Every bead has its own shining so assimilated they profuse the whole chaplet with multi-coloured rosary and gives a divine touch to whole *Uttarādhyayana*. That is why, this egregious and divine *sūtra* became the guttural of Jains.

प्रथम अध्ययन : विनय श्रुत

र्वालोक

विनयश्रुत, यह प्रथम अध्ययन है। प्राकृत भाषा के शब्द 'सुयं' के संस्कृत भाषा में दो रूपान्तर होते हैं—सूत्र ार श्रुत। प्रस्तुत अध्ययन के लिए ये दोनों ही सार्थक हैं। इसमें विनय के सूत्र भी दिये गये हैं और गुरु-शिष्य म्परा से श्रुत का प्रवाह तो परम्परित है ही।

विनय, आचार—श्रमणाचार की नींव है, धर्म का मूल है, मोक्षप्राप्ति का सोपान है।

अहंकार का विसर्जन विनय है। जो व्यक्ति अपने अहंकार का त्याग कर देता है, वही नमता है, झुकता है, रु-वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनकर स्वीकार करता है और उनकी आज्ञा का पालन करता है। ऐसा व्यक्ति थवा शिष्य विनीत कहलाता है और इसके विपरीत आचरण वाला व्यक्ति अथवा शिष्य अविनीत।

प्रस्तुत अध्ययन में विनीत और अविनीत की स्पष्ट परिभाषा न देकर उनके लक्षण बताये गये हैं, उनकी त्ति, प्रवृत्ति, कार्य शैली और व्यवहार का विशद वर्णन किया गया है।

मनीषियों ने विभिन्न अपेक्षाओं से विनय के भेद-प्रभेद किये हैं।

उदाहरणार्थ—दो भेद (१) लौकिक विनय और (२) लोकोत्तर विनय।

चार भेद (१–३) ज्ञान-दर्शन-चारित्र विनय (४) लोकोपचार विनय।

सात भेद—(१) ज्ञानविनय, (२) दर्शनविनय, (3) चारित्रविनय, (४) मन विनय, (५) वचन विनय ६) काय विनय, (७) लोकोपचार विनय।

वस्तुतः विनय जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार में परिलक्षित है। अनुशासन, आत्म-संयम, सदाचार, शील, दूव्यवहार, मानसिक-वाचिक-कायिक नम्रता, गुरु की आज्ञा का पालन, उनके इंगित आदि को समझना, नकी सेवा शुश्रूषा, अनाशातना, अप्रतिकूलता, कठोर अनुशासन को भी अपने लिए हितकर समझना, तथा मय का महत्व समझकर प्रत्येक कार्य नियत समय पर करना—सभी विनय के ही विविध रूप हैं।

साथ ही गुरु के समक्ष किस प्रकार उठना-बैठना, गमनागमन करना, प्रश्न पूछना, शैया-संस्तारक आदि त्येक गति-विधि के संबंध में सम्पूर्ण सूचन प्रस्तुत अध्ययन में दिया गया है। तथा यह बताया गया है कि नीत शिष्य ही गुरु से आगमों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अन्त में कहा गया है कि जिस प्रकार जीवों के लिए पृथ्वी आधार रूप है उसी प्रकार धार्मिक जनों के नए गुरु से ज्ञान-प्राप्त विनीत शिष्य भी आधार रूप होता है। उसे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार इस अध्ययन में विविध प्रकार से विनय के सम्पूर्ण रूप को वर्णित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ४८ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 1
DECORUM–DISCIPLINE

Foreview

Decorum or discipline is the title of this first chapter. The word *Suyaṁ* of *Prākrta* language has two versions in *saṅskṛta–sūtra* and *śruta*. Both the *Saṅskṛta* renderings are meaningful for this chapter. The maxims of the decorum are given and the current of canonical scriptures is also flowing through the tradition of preceptor–teacher and pupil.

Courtesy–verecundity and conduct is the base of monk conduct, root of religion and step for salvation.

Modesty is the renouncement of pride. He, who resigns the pride, bows; hearing the preceptor's words accepts with faith and obeys him–the teacher or the preceptor. Such person or pupil known as courteous–disciplined. And the hostile one–the person or pupil is called as non-courteous–undisciplined.

In this chapter disciplined and non-disciplined are not defined clearly; but their symptoms, activities, behaviour, style of work etc., are described in detail.

Thinkers have described divisions and subdivisions of decorum–courtesy.

First division–two types–(1) Worldly courtesy and (2) Courtesy not pertaining to worldly activities.

The second–four types–(1–3) courtesy pertaining to knowledge, faith and conduct (4) worldly activity courtesy.

The third–seven types (1) Knowledge pertaining Courtesy, (2) faith pertaining (3) Conduct pertaining, (4–6) Courtesy pertaining mental, vocal and bodily, (7) Worldly courtesy.

In fact courtesy overwhelms whole the life. Discipline, self control, good conduct, civility, good behaviour, mental–vocal–bodily modesty, obedience to preacher, to understand his nods and motions, his service, uncontrariness, to bear hard discipline thinking as beneficial, understanding the importance of time to do every work at the time specified for–all these are the various kinds of modesty.

It is also described that how pupil should sit–stand, go–come, question, bed etc., do all activities before his preacher. And that disciplined pupil can get the deep knowledge of scriptures from his preacher.

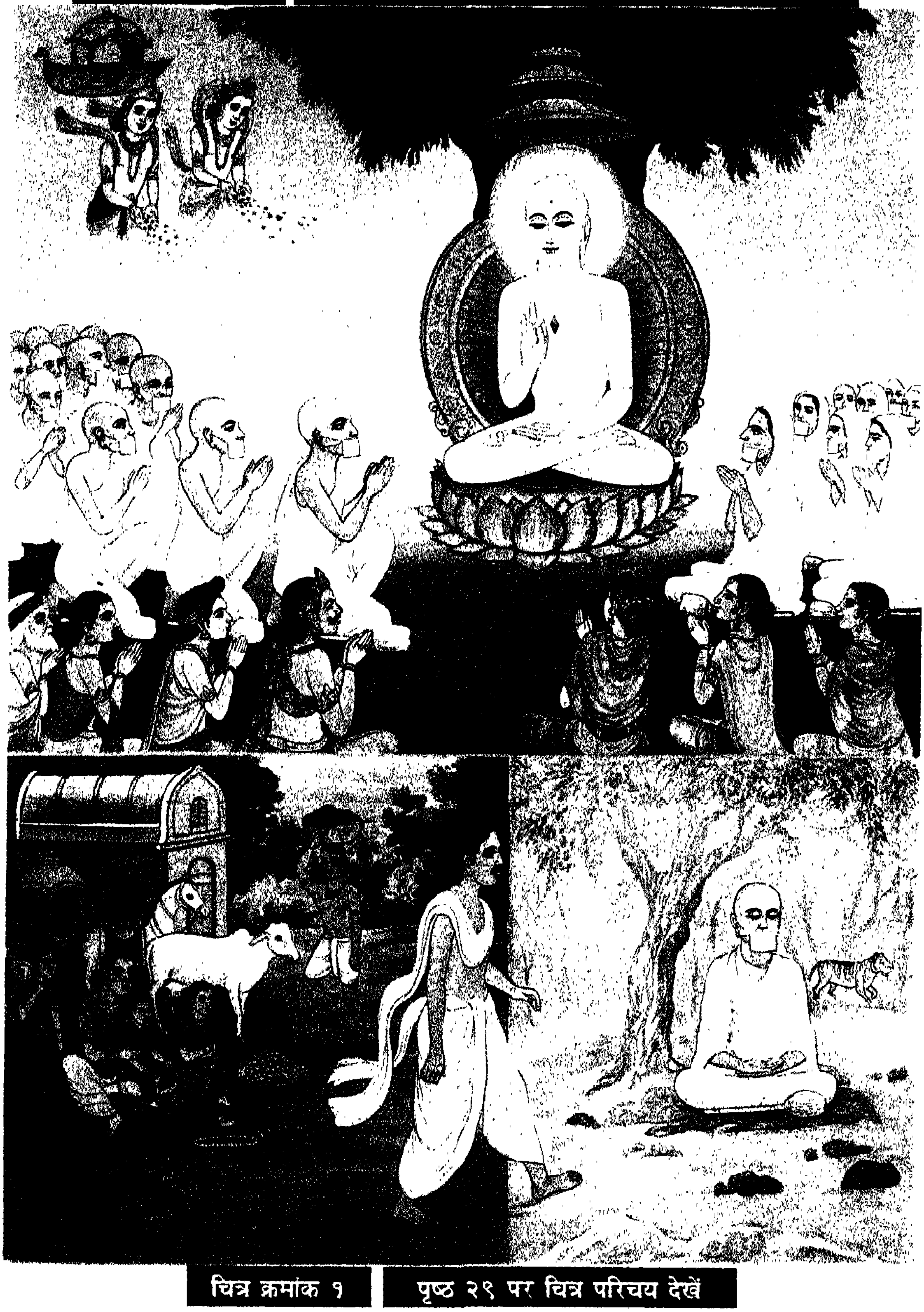
It is said in the end that as the earth is the base for all worldly souls so the disciplined disciple having secured knowledge from preacher, such pupil becomes the base for all religious people.

Thus, through various ways discipline is vividly described in this chapter.

This chapter consists 48 stanzas (*gāthā*).

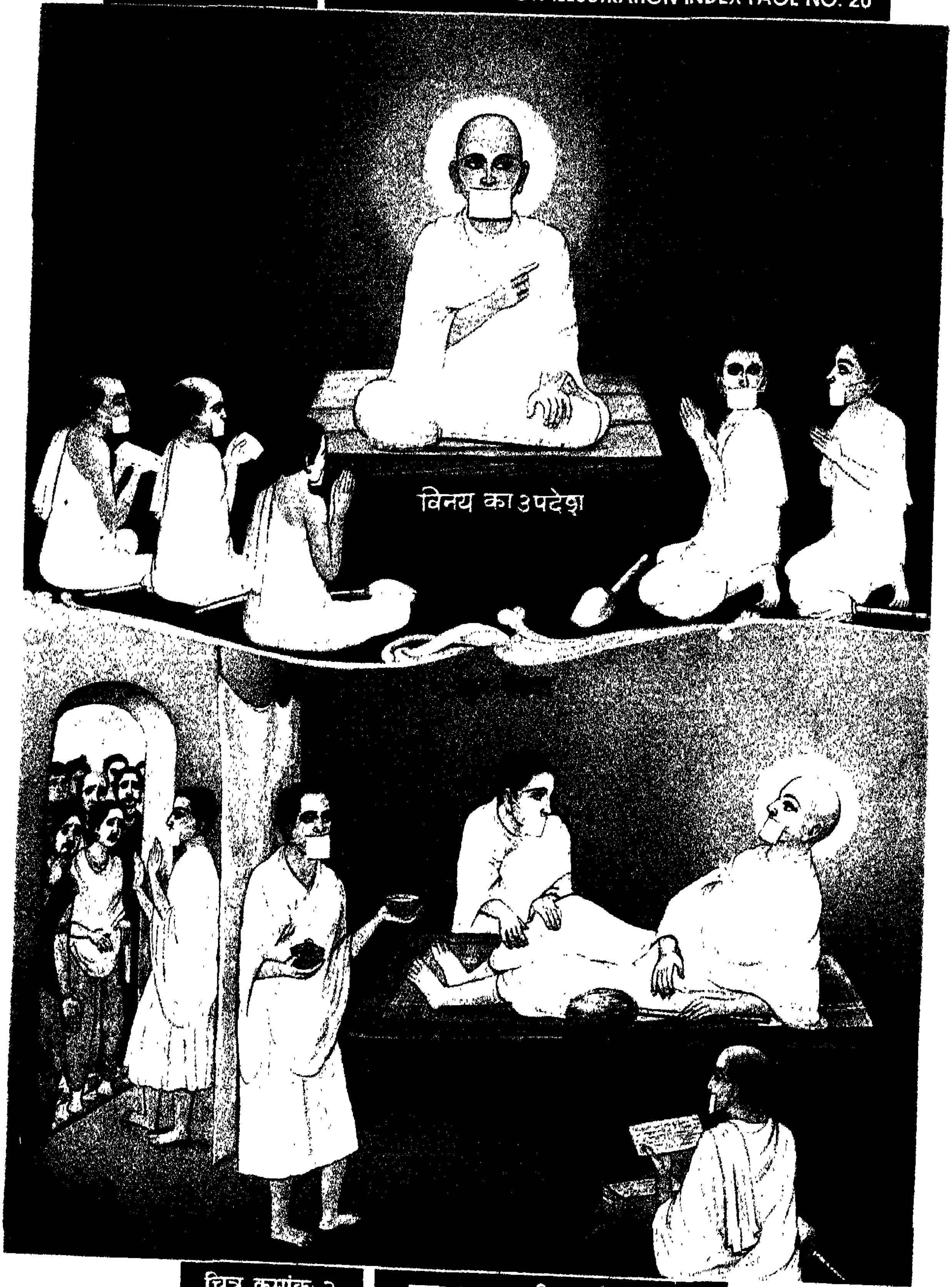
卐

ILLUSTRATION NO. 1 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20



चित्र क्रमांक १ | पृष्ठ २९ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 2 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20



चित्र क्रमांक २ पृष्ठ २१ पर चित्र परिचय देखें

पढमं अज्झयणं : विणय-सुयं
प्रथम अध्ययन : विनय-श्रुत

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

जो सभी संयोगों (सांसारिक आसक्ति युक्त सम्बन्धों) से विप्रमुक्त–सर्वथा पृथक् है, गृहत्यागी अनगार है, (निर्दोष भिक्षा से जीवन यापन करने वाला) भिक्षु है; उसके विनय (अनुशासन एवं आचार) का मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ॥१॥

I shall describe the conduct, behaviour and discipline, in due order of one who is free from worldly ties, renouncer of domestic affairs (गृहत्यागी) and mendicant (भिक्षु). Listen to me attentively. (1)

आणानिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए ।
इंगियागारसंपन्ने, से 'विणीए' त्ति वुच्चई ॥२॥

गुरु की आज्ञा (आदेश) एवं निर्देश (संकेत) का पालन करने वाला, उनकी सेवा करने वाला, उनके समीप रहने वाला और उनके मनोभावों के अनुसार आचरण करने वाला विनीत कहलाता है ॥२॥

One who responds to nods and motions of the preceptor (आचार्य), serves him and remains in his sight, called well-behaved and disciplined. (2)

आणाऽनिद्देसकरे, गुरूणमणुववायकारए ।
पडिणीए असंबुद्धे, 'अविणीए' त्ति वुच्चई ॥३॥

जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता है, उनसे दूर-दूर रहता है, उनके मनोभावों और संकेतों के प्रतिकूल कार्य करता है तथा जो असंबुद्ध–तत्त्व को नहीं जानता है, उसे अविनीत कहा जाता है ॥३॥

One, who does not respond to nods and motions of the preceptor, remains out of his sight, disobey him, such unwise, called ill–behaved and indisciplined. (3)

जहा सुणी पूई-कण्णी, निक्कसिज्जई सव्वसो ।
एवं दुस्सील-पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ॥४॥

जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया (घृणापूर्वक) सभी स्थानों से निकाल दी जाती है, उसी प्रकार गुरु के प्रतिकूल आचरण करने वाला, दुःशील और वाचाल शिष्य भी सभी स्थानों से (तिरस्कृत करके) निकाल दिया जाता है ॥४॥

As a sore–eared bitch driven away hatefully from every place, so the ill–natured, talkative and perverse to the preceptor, such disciple also driven out disgracefully from everywhere. (4)

कण-कुण्डगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरे ।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए ॥५॥

जैसे चावल मिश्रित भूसी को छोड़कर सूअर विष्ठा खाता है, वैसे ही (मृग) पशु प्रवृत्ति वाला शिष्य शील (उत्तम आचार) को छोड़कर निम्न कोटि के आचरण (दुःशील) में प्रवृत्त होता है ॥५॥

As a pig leaving the trough of rice, eats fifth; so a beast-natured pupil abandons good-behaviour and indulges himself in ill-conduct. (5)

सुणियाऽभावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो ॥६॥

अपनी आत्मा का हित चाहने वाला साधु सड़े कानों वाली कुतिया और विष्ठा खाने वाले सूअर के समान अपनी हीन (तिरस्कृत) स्थिति को समझे और अपने आपको (अपनी आत्मा को) विनय धर्म में स्थापित करे ॥६॥

Hearing a man (indisciplined disciple) thus compared with a sore-ear bitch and pig, desirous of self-welfare should adhere himself to well conduct and discipline. (6)

तम्हा विणयमेसेज्जा, सीलं पडिलभे जओ ।
बुद्ध-पुत्त नियागट्ठी, न निक्कसिज्जई कण्हुई ॥७॥

शील (सदाचार) की प्राप्ति के लिए विनय का पालन करना चाहिए (क्योंकि) बुद्धिमान गुरु के प्रिय पुत्र के समान प्रिय शिष्य (बुद्धपुत्र) को उसकी विनयशीलता के कारण कहीं से भी निकाला नहीं जाता। वह कहीं भी तिरस्कृत नहीं होता ॥७॥

Hence for acquiring good-conduct one should be modest; because like the beloved son of wise preceptor-wise pupil is never turned out from any where due to his modest behaviour. (7)

निसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया ।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खेज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए ॥८॥

शिष्य गुरु-चरणों में सदा शांत भाव से रहे, अल्पभाषी बने, अर्थयुक्त (मोक्ष के उपाय रूप) वचनों को सीखे और निरर्थक वचनों (लोकोत्तर अर्थरहित)-पदों को छोड़ दे ॥८॥

Disciple should remain calm near the preceptor, he should talk less, he should learn the dogmas pertaining to avail salvation and leave other non-useful words. (8)

अणुसासिओ न कुप्पेज्जा, खंतिं सेवेज्ज पण्डिए ।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए ॥९॥

(विवेकवान) शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन (शिक्षा, ताड़न-तर्जन) से कुपित न हो, हृदय में क्षमा (क्षांति) धारण करे तथा क्षुद्र व्यक्तियों से सम्पर्क न रखे, उनके साथ हँसी, मजाक तथा किसी प्रकार की क्रीड़ा न करे ॥९॥

Discriminate disciple should not be angry by strict discipline of preceptor, he should have forbearing attitude. He should discard the company of mean persons, neither he should laugh nor play with them. (9)

ILLUSTRATION NO. 3 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20

[illegible] कानों वाली कुतिया की तरह अविनीत एवं दुःशील [illegible] (गाथा-४)



दुःशील अज्ञानी व्यक्ति का स्वभाव सूअर की तरह है, जो चावलों की भूसी आदि छोड़कर विष्ठा खाता है। (गाथा-४)



अड़ियल घोड़ा : अविनीत शिष्य : मूर्ख शिष्य को शिक्षा देता गुरु खिन्न हो जाता है।
जैसे कि अड़ियल घोड़े को चाबुक आदि से हाँकता हुआ घुड़सवार। (गाथा-३७)



बुद्धिमान शिष्य को शिक्षा देने वाला गुरु प्रसन्नता का अनुभव करता है।
जैसे कि अच्छे घोड़े को संकेत मात्र से दौड़ाने वाला घुड़सवार (गाथा-३७)



मा य चण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे ।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाएज्ज एगगो ॥१०॥

शिष्य क्रोध के आवेश में आकर (चाण्डालिक कर्म) न असत्य बोले और न क्रूरतापूर्ण व्यवहार करे। अधिक न बोले। अध्ययन काल में अध्ययन करे और बाकी समय एकान्त में ध्यान करे ॥१०॥

Disciple should not do any mean act i.e., violence or telling a lie with the excited mood of anger and cruel behaviour; talk less, should read scriptural texts at proper time and should meditate alone at a lonely place. (10)

आहच्च चण्डालियं कट्टु, न निण्हविज्ज कयाइ वि ।
कडं 'कडे' त्ति भासेज्जा, अकडं 'नो कडे' त्ति य ॥११॥

यदि क्रोध आदि कषाय के आवेश में शिष्य ने असत्य भाषण अथवा क्रूर व्यवहार कर भी लिया हो तो उसे छिपाये नहीं; गुरु के समक्ष प्रगट कर दे। यदि किया है तो 'मैंने किया है–ऐसा कहे' और यदि नहीं किया है तो 'मैंने नहीं किया है–ऐसा कहे' ॥११॥

If the disciple had done my mean act due to the excitement of passions, he must not hide it from preceptor. If he had done, he should say–'I have done it', if not–'I have not done it.' (11)

मा गलियस्से व कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ॥१२॥

अनुशासनप्रिय समझदार शिष्य, अड़ियल घोड़े के समान, बार-बार गुरु-आदेश रूप वचनों के चाबुक की इच्छा न करे; अपितु सुशिक्षित उत्तम अश्व के समान गुरु के संकेत को देखकर ही पाप कर्म का त्याग कर दे ॥१२॥

Disciplined, wise disciple should not want the command–whip of preacher (preceptor) like an intactable horse; but he should renounce the sinful activities only by a hint of preceptor like a trained–good horse. (12)

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउं पि चण्डं पकरेंति सीसा ।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि ॥१३॥

गुरु की आज्ञा को सुनी-अनसुनी करने वाले, अधिक बोलने वाले, कुत्सित अथवा दुष्ट आचरण करने वाले शिष्य कोमल-स्वभावी गुरु को भी कठोर (चंड) बना देते हैं। (इसके विपरीत) गुरु-आज्ञापालक, अल्पभाषी, कार्यदक्ष शिष्य क्रोधी (चण्ड) गुरु को भी प्रसन्न तथा प्रशान्त कर लेते हैं ॥१३॥

Heedless, talkative, ill–behaved disciple make rude even a tender–tempered preceptor while obedient, meek, alert and witty disciple pacifies and pleases a rude and angry-tempered preacher. (13)

नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमप्पियं ॥१४॥

बिना पूछे कुछ भी न बोले और पूछने पर सत्य ही बोले। यदि कभी क्रोध आ भी जाये तो उसे तुरन्त (निष्फल) शांत करले तथा गुरु के प्रिय और अप्रिय वचनों को अपने लिए हितकारी शिक्षा समझकर धारण करे ॥१४॥

Disciple should not speak unasked, if asked vocate true. He should make his anger ineffective and should bear preacher's tender and harsh discipline thinking beneficial for himself. (14)

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥१५॥

स्वयं अपनी (रागद्वेष युक्त) आत्मा का ही दमन करना चाहिए। उसी पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। स्वयं की आत्मा पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। लेकिन जो अपनी आत्मा को जीत लेते हैं, वे इस लोक और परलोक–दोनों लोकों में सुखी होते हैं ॥१५॥

Egotic (indulged with attachment and aversion) self (soul) is verily subduable, though to subjugate egotic self (soul) is a most difficult task; but who subjugates his own egotic self (soul) becomes happy in this world and the next (birth to come after). (15)

वरं मे अप्पा दन्तो, संजमेण तवेण य ।
माहं परेहि दम्मन्तो, बन्धणेहि वहेहि य ॥१६॥

(शिष्य विचार करे) तप और संयम के द्वारा मैं स्वयं अपनी आत्मा का दमन कर लूँ, यही श्रेष्ठ है; अन्यथा वध और बन्धन द्वारा अन्य मुझ पर शासन करेंगे, यह अच्छा नहीं होगा ॥१६॥

(Disciple should think) It would be better if I overcome my own egotic self by restrains and penances; otherwise others will subdue me by punishment and captivation, it would be not good. (16)

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि ॥१७॥

प्रबुद्ध गुरुजनों अथवा आचार्यों के समक्ष प्रगट में अथवा एकान्त में वचन किंवा शरीर से कभी भी उनके प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए ॥१७॥

Disciple should never do anything unagreeable to the wise preachers and preceptors, neither by words nor by deeds, even by body and neither secretly nor openly. (17)

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुंजे ऊरुणा ऊरुं, सयणे नो पडिस्सुणे ॥१८॥

(कृत्य) अर्चनीय–वन्दनीय आचार्य आदि गुरुजनों की दाहिनी अथवा बाईं ओर उनसे सटकर न बैठे; न आगे-पीछे ही सटकर बैठे, उनकी जाँघ से जाँघ भिड़ाकर भी न बैठे। अपनी शैया पर लेटा या बैठा ही गुरु के आदेश को न सुने ॥१८॥ (चित्र देखें)

Disciple should never sit right or left akin to the venerable preceptors and preachers neither before or behind; he should not rub or touch their thighs with his own and should not hear their call sitting in his own bed. (18)

नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिण्डं व संजए ।
पाए पसारिए वावि, न चिट्ठे गुरुणन्तिए ॥१९॥

संयमी साधु गुरु के सामने पालथी लगाकर न बैठे, और न दोनों भुजाओं से घुटनों को बाँधकर बैठे तथा अविनयपूर्वक पाँव पसार कर भी नहीं बैठे ॥१९॥ (चित्र देखें)

Restraint saint (well-versed disciple) should not sit in a posture with his leg on thighs-hams (पल्हत्थियं), nor with crossed arms around his knees, nor stretch his legs at full length and not sit too near to his preacher. (19)

आयरिएहिं वाहिन्तो, तुसिणीओ न कयाइ वि ।
पसाय-पेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया ॥२०॥

मोक्षार्थी तथा गुरुकृपाकांक्षी विनीत शिष्य आचार्य (गुरु) द्वारा बुलाये जाने पर चुप बैठा देखता न रहे किन्तु तुरन्त गुरु के समक्ष उपस्थित हो जाये ॥२०॥

Salvation-wishing and seeking preacher's favour the disciplined disciple should never be unresponsive-silent on the call of preacher; but should politely approach to him. (20)

आलवन्ते लवन्ते वा, न निसीएज्ज कयाइ वि ।
चइऊणमासणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥२१॥

गुरु के द्वारा एक बार अथवा बार-बार बुलाये जाने पर धैर्यशाली बुद्धिमान शिष्य बैठा न रहे; तुरन्त आसन छोड़कर यतनापूर्वक गुरु के समक्ष उपस्थित होकर उनके आदेश को स्वीकार करे ॥२१॥

Calling once or many times by preacher the constant wise disciple should not remain sitting on his seat but approaching near to preacher carefully accept his command. (21)

आसण-गओ न पुच्छेज्जा, नेव सेज्जा-गओ कया ।
आगम्मुक्कुडुओ सन्तो, पुच्छेज्जा पंजलीउडो ॥२२॥

शिष्य अपने आसन अथवा शैया पर बैठा हुआ गुरु से कोई बात न पूछे अपितु गुरु के समीप आकर और उकडू आसन से बैठकर तथा विनयपूर्वक अंजलिबद्ध होकर पूछे ॥२२॥ (देखें प्रश्न मुद्रा चित्र)

Disciple should never ask any question or other thing from his preacher, sitting on his seat or bed but approaching near the preacher and sitting on the hams with the soles of feet touching the ground (उकडू) posture and making submission with folded palms, should make any query. (22)

एवं विणय-जुत्तस्स, सुत्तं अत्थं च तदुभयं ।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरेज्ज जहासुयं ॥२३॥

विनयी शिष्य के इस प्रकार, विनय से परिपूर्ण शब्दों द्वारा पूछे जाने पर गुरु भी सूत्र, अर्थ और दोनों का जैसा उन्होंने जाना-सुना हो, वैसा ही यथार्थ प्ररूपण करे ॥२३॥

When asked by humble disciple observing such rules any question to his preacher, the preacher should describe fully the sacred text, its meaning and both, as he has heard and known from tradition-preceding preceptors. (23)

मुसं परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए ।
भासा-दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया ॥२४॥

भिक्षु मृषा–असत्य भाषा का त्याग कर दे और निश्चयकारी भाषा भी न बोले। भाषा के जो अन्य दोष हैं, उनका भी परित्याग कर दे तथा माया (छल-कपटपूर्ण वचन) का भी त्याग करे ॥२४॥

Mendicant (भिक्षु) should forbear falsehood, should not speak definite language, renounce all other defects of language and resign conceit words. (24)

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं !
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा ॥२५॥

भिक्षु किसी के पूछने पर भी अपने लिए, अन्य के लिए अथवा दोनों के लिये या निष्प्रयोजन ही पापकारी (सावद्य) वचन न बोले और न ही मर्मघाती वाणी का उच्चारण करे ॥२५॥

Mendicant (disciple) should not tell any thing sinful for his own sake, for other's sake or for both sake, nor meaningless, even when asked by anybody. He should not speak the words, which may hurt others. (25)

समरेसु अगारेसु, सन्धीसु य महापहे ।
एगो एगित्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे ॥२६॥

लुहार की शाला अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों में, घरों में, घरों की सन्धियों और राजमार्गों पर अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ न तो खड़ा रहे और न ही उसके साथ किसी प्रकार का वार्तालाप (बात-चीत) ही करे ॥२६॥

Alone ascetic (साधु) should never stand or talk with an alone woman at the places, like black–smith's shop or battle–fields, houses, space between two houses, highways etc. (26)

जं मे बुद्धाणुसासन्ति, सीएण फरुसेण वा ।
'मम लाभो' त्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे ॥२७॥

"गुरुजन जो मुझे मृदु अथवा कठोर शब्दों से अनुशासित करते हैं, वह मेरे ही लाभ के लिए है", ऐसा सोचकर विनीत शिष्य उस अनुशासन अथवा हितशिक्षा को सावधानी से सुनकर स्वीकार करे ॥२७॥

'The enlightened preachers discipline and instruct me harshly or tenderly, is beneficial to me' thinking thus humble disciple listening carefully accept that. (27)

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं तं मन्नए पण्णो, वेसं होइ असाहुणो ॥२८॥

गुरुजनों (आचार्य) का कोमल अथवा कठोर अनुशासन दुष्कृत का निवारण करने वाला होता है। बुद्धिमान शिष्य उसे अपने लिए लाभकारी मानता है, जबकि वही असाधु (बुद्धि-विवेकविकल) शिष्य के लिए द्वेष का हेतु बन जाता है ॥२८॥

Tender or harsh discipline of preceptors and preachers is for avoidance of mis-deeds. Intelligent disciple thinks useful it for himself; but the same becomes the cause of aversion for unwise ascetic pupil. (28)

हियं विगय-भया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं ।
वेसं तं होइ मूढाणं, खन्ति-सोहिकरं पयं ॥२९॥

कठोर अनुशासन (शिक्षाप्रद वचन) को भी निर्भीक और तत्त्वज्ञ शिष्य अपने लिए कल्याणकारी, क्षान्ति और आत्म-विशुद्धि करने वाला मानते हैं; जबकि वही शिक्षापद मूर्ख-शिष्यों के लिए (गुरु के प्रति) द्वेष का कारण बन जाता है ॥२९॥

Fearless and intelligent disciple considers the harsh discipline (of preachers) for his own welfare, peace and self-purification; while the same instructions become a cause of hate towards the preacher for the foolish disciples. (29)

आसणे उवचिट्ठेज्जा, अणुच्चे अकुए थिरे ।
अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्जऽप्पकुक्कुए ॥३०॥

शिष्य ऐसे आसन पर बैठे जो गुरु के आसन से नीचा हो, स्थिर हो, किसी प्रकार की आवाज न करता हो; उस आसन पर से भी शिष्य बार-बार न उठे, प्रयोजन होने पर भी कम उठे, चपलता रहित होकर स्थिरतापूर्वक बैठे ॥३०॥

Disciple should take the lower seat than that of preacher, it should be firm, does not rock. Disciple should seldom rise from the seat, never without cause and he should sit motionless, (30)

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥३१॥

भिक्षु साधक नियत काल में भिक्षा के लिए जाये और नियत काल में ही प्रतिक्रमण करे। सभी कार्य नियत समय पर करे, अनियत काल में कोई भी प्रवृत्ति न करे ॥३१॥

Mendicant should sally forth (भिक्षाचर्या) at the proper time and should return at the right time. He should do his religious activity of exculpation (प्रतिक्रमण) at the time specified for. He should do all the activities at proper time and nothing in disappropriate peridod (31)

परिवाडीए न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥३२॥

भिक्षार्थी साधु अन्य जनों (याचकों) की पंक्ति (क्यू-Q) में खड़ा न रहे, मुनि-मर्यादा के अनुरूप गृहस्थ द्वारा दिया हुआ, एषणीय भोजन ग्रहण करे और शास्त्र में बताये गये समय में परिमित आहार करे ॥३२॥

A mendicant wandering for food should not stand in the Q of other beggars. He should accept the food (and water) according to the rules of monk. He should eat petty portion of it at the proper place as laid down in sacred texts. (32)

नाइदूरमणासन्ने, नन्नेसिं चक्खु-फासओ ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघिया तं नइक्कमे ॥३३॥

यदि गृहस्थ के द्वार पर पहले से ही अन्य भिक्षु (याचक) खड़े हों, तो श्रमण न उनके अति समीप और न ही अधिक दूर, और न ही दाता गृहस्थ की दृष्टि के सामने खड़ा रहे। उन याचकों को लांघकर भी आगे न जाय ॥३३॥

If other beggars were standing before the gate of house-holder, the sage (श्रमण) should stand neither too far nor too near them and not even in the sight of giver, and he should not cross those beggars. (33)

नाइउच्चे व नीए वा, नासन्ने नाइदूरओ।
फासुयं परकडं पिण्डं, पडिगाहेज्ज संजए ॥३४॥

संयमी भिक्षु प्रासुक–अचित्त तथा अन्य के लिए निर्मित (परकृत) आहार विधिपूर्वक गृहस्थ से ले किन्तु वह भोजन भी अधिक ऊँचे या अधिक नीचे स्थान से लाया न हुआ हो, तथा अति दूर और अधिक पास से दिया जाने पर भी नहीं लेवे ॥३४॥

A restrained (संयमी) mendicant should accept food devoid of life (प्रासुक-अचित्त) and which is cooked for other's use, from a house holder. It must also not brought from a more high or a more lower place and must not be given from too far off and too close. (34)

अप्पपाणेऽप्पबीयंमि, पडिच्छन्नंमि संवुडे।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥३५॥

संयत साधु प्राणि और बीज रहित, ऊपर से (छत आदि द्वारा) ढके हुए तथा दीवार से घिरे हुए (दीवार वाले) घर (मकान-स्थान) में सहधर्मी साधुओं के साथ, भूमि पर न गिराता हुआ, (प्रासुक अचित्त) खाद्य पदार्थ का विवेक पूर्वक आहार करे ॥३५॥

The restrained ascetic should eat that food with other saints, without rejoicing and scattering crumbs, at a place free from flora and life, covered atop and all sides. (35)

सुकडे त्ति सुपक्के त्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे।
सुणिट्ठिए सुलट्ठे त्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥३६॥

आहार करते समय भी भिक्षु–'यह अच्छा बनाया है, पकाया है, काटा है, अच्छा प्रासुक बना है, बहुत ही बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ है,' इत्यादि भोजन के विषय में सावद्यकारी वचन न बोले ॥३६॥

While eating that food a mendicant should not utter or mutter the sinful words about the food; like–it is 'well–prepared' 'well cooked', 'nicely cut,' 'well–pressed,' 'well–seasoned', 'tasty' and 'delightful' etc. (36)

रमए पण्डिए सासं, हयं भद्दं व वाहए।
बालं सम्मइ सासन्तो, गलियस्सं व वाहए ॥३७॥

जिस प्रकार वाहक (अश्व शिक्षक) अच्छे घोड़े को हाँकता हुआ सुखी होता है और अड़ियल अश्व को हाँकता हुआ दुःखी होता है। उसी प्रकार गुरुजन बुद्धिमान विनीत शिष्य को शिक्षा देते हुए प्रसन्न होते हैं तथा मूर्ख अविनीत शिष्य को शिक्षा देते हुए खिन्न होते हैं ॥३७॥(चित्र देखें)

As the horse–rider pleases driving a well trained horse but he tires driving an intactable horse. So the preachers delight instructing an humble and intelligent disciple and become tired guiding a foolish and unmodest pupil. (37)

'खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे ।'
कल्लाणमणुसासन्तो, पावदिट्ठि त्ति मन्नई ॥३८॥

पापदृष्टि वाला शिष्य गुरुजनों के कल्याणकारी शिक्षा शब्दों-वचनों को इस प्रकार मानता है-जैसे, ये मुझे ठोकर मारते हैं, चाँटा मारते हैं, गाली देते हैं, अपशब्द बोलते हैं, मारते-पीटते हैं-मुझे कष्ट देते हैं ॥३८॥

The disciple having a sinful outlook, the welfare instructions of preachers, consider as–He has beaten me, knocked and given me boxes, given me a slap, abused me, and hurt me. (38)

'पुत्तो मे भाय नाइ' त्ति, साहू कल्लाण मन्नई ।
पावदिट्ठी उ अप्पाणं, सासं 'दासं व' मन्नई ॥३९॥

विनीत शिष्य (गुरुजनों के अनुशासन को) यह सोचकर स्वीकार करता है कि ये मुझे अपना पुत्र, भाई, आत्मीय समझकर कल्याणकारी शिक्षा देते हैं; जबकि पापदृष्टि वाला अविनीत शिष्य हितशिक्षा से शासित होने पर स्वयं को 'दास' के समान हीन मानता है ॥३९॥

The humble disciple considers the instructions of preachers and accept thinking thus–He is kind to me, treats me like a son, younger brother and a kin, he is my well–wisher; while the sinful outlook–disciple feels himself as a slave. (39)

न कोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए ।
बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्तगवेसए ॥४०॥

विनीत शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु को कुपित न करे और न स्वयं ही क्रोधित हो; वह गुरु के मन को क्षोभ पहुँचाने वाली (उपघात) चेष्टा न करे और न उनका छिद्रान्वेषण करता रहे ॥४०॥

It is the duty of humble disciple that he should neither make his preacher angry nor himself. He should do no activity which may anguish the mind and heart of the preacher and never look for his (preacher's) loopholes. (40)

आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्ज पंजलिउडो, वएज्ज 'न पुणो' त्ति य ॥४१॥

यदि विनीत शिष्य अपने किसी अशोभनीय व्यवहार से यह जाने कि गुरु अप्रसन्न हैं तो तुरन्त प्रीतिभरे वचनों से उन्हें प्रसन्न करे और अंजलिबद्ध होकर 'मैं फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा'-विनम्र शब्दों से ऐसा कहे ॥४१॥

If humble disciple perceives that his preacher is displeased due to his (disciple's) inelegant behaviour then at once he should please him with smooth words and should say with folded palms–'I shall never behave thus again'. (41)

धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहायरियं सया ।
तमायरन्तो ववहारं, गरहं नाभिगच्छई ॥४२॥

धर्म (धर्मोपासना) से युक्त (अर्जित) और तत्त्वज्ञ आचार्यों द्वारा आचरित व्यवहार का आचरण करने वाले साधक की कहीं भी–किसी भी व्यक्ति के द्वारा निन्दा नहीं की जाती ॥४२॥

Acquired by adherence of religious observations and practised by enlightened preceptors, pursuing such behaviour, the disciple no–where and never incurs blame by any person. (42)

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽऽयरियस्स उ ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥४३॥

गुरुजनों (आचार्य) के मनोगत और वचन के भावों को जानकर शिष्य वाणी से उन्हें स्वीकार करे और फिर आचरण में उतारे ॥४३॥

Guessing the preceptor's thoughts and purport of his words disciple should express his assent clearly in words and then practise it in action. (43)

वित्ते अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए ।
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सया ॥४४॥

विनीत शिष्य गुरु द्वारा बिना प्रेरणा किये ही सुप्रेरित के समान कार्य करने के लिए तत्पर रहता है और गुरु द्वारा बताये गये कार्य को तो शीघ्र ही भली भाँति सम्पन्न कर देता है ॥४४॥

The disciplined disciple always remains ready to execute his duties even without the inspiration of the preacher and if the preacher tells for any work he does it quickly and nicely. (44)

नच्चा नमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायए ।
हवई किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा ॥४५॥

जो बुद्धिमान शिष्य विनय के स्वरूप को जानकर विनम्रता धारण कर लेता है, संसार में उसका यश स्वतः बढ़ता है। जिस प्रकार प्राणियों के लिये यह पृथ्वी आधारभूत है, उसी प्रकार वह धार्मिक जनों के लिए शरणभूत होता है ॥४५॥

Knowing discipline an intelligent disciple bows, so his fame automatically enhances. He becomes the shelter of all religious people as the earth is for all living beings. (45)

पुज्जा जस्स पसीयन्ति, संबुद्धा पुव्वसंथुया ।
पसन्ना लाभइस्सन्ति, विउलं अट्ठियं सुयं ॥४६॥

शिष्य की विनम्रता आदि से परिचित हुए आचार्य आदि गुरुजन उस पर प्रसन्न होकर उसे मोक्ष का लाभ देने वाला अर्थगंभीर विपुल ज्ञान प्रदान करते हैं ॥४६॥

Worthy, enlightened and well versed in conduct preceptors and preachers satisfied and fully acquainted with the discipline and humbleness of the disciple, delightfully bestow the deep–meaning fully vast scriptural knowledge, which leads to attain salvation. (46)

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठइ कम्म-संपया ।
तवोसमायारिसमाहिसंवुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया ॥४७॥

ऐसे विनीत शिष्य के शास्त्रीय ज्ञान का संसार में समादर होता है। वह (शिष्य) साधु समस्त संशयों से रहित और समस्त कर्म सम्पदा (साधुयोग्य कर्त्तव्य–साधु समाचारी) से युक्त हो जाता है। वह गुरु के मन को प्रियकारी होता है तथा तप के समाचरण एवं समाधि से युक्त रहता है। वह आस्रवों का निरोध (संवृत) करके पाँच महाव्रतों का पालन करता है, महान तेजस्वी होता है ॥४७॥

The scriptural knowledge of such humble disciple begets respect in the world. Being doubtless and enjoined to ascetic code of conduct (साधु समाचारी) that (disciple) ascetic observes penances (तप) and contemplation (समाधि) and becomes dear to his preacher. He retains the inflow of *Kārmic* energy and by fulfilling the five great vows acquires glow. (47)

स देव-गन्धव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं ।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥४८॥

–त्ति बेमि

वह (विनीत शिष्य) देव-मानव-गंधर्वों द्वारा वन्दनीय हो जाता है तथा मल-पंक (रक्त-वीर्य) से निर्मित इस वर्तमान मानव शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्धि प्राप्त करता है अथवा अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव बनता है ॥४८॥

–ऐसा मैं कहता हूँ।

Such disciplined pupil–ascetic begets honour by gods, *gandharvas* (a kind of gods) and human beings. After leaving this impure and filthy human body either he attains eternal salvation or becomes a god of great paraphernalia and having a–few *karma*–particles. (48)

–Such I speak.

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–संजोग का अर्थ आसक्तिमूलक सम्बन्ध है। वह बाह्य (परिवार तथा संपत्ति आदि) और आभ्यन्तर (विषय, कषाय आदि) के रूप में दो प्रकार का है। (सुखबोधा)

"अणगारस्स भिक्खुणो"–में अनगार और भिक्षु दो शब्द हैं। अनगार का अर्थ है–अगार (गृह) से रहित–अर्थात् जो आहार या वसति आदि की प्राप्ति के लिये जाति, कुल आदि का परिचय देकर दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर आत्मीय (स्वजन) नहीं बनाता है। (बृ. वृ. शान्त्याचार्य)

विनय का एक अर्थ आचार है, और दूसरा है नमन अर्थात् नम्रता।

गाथा २–आज्ञा और निर्देश समानार्थक हैं। फिर भी चूर्णि के अनुसार आज्ञा का अर्थ होता है–"आगम का उपदेश" और निर्देश का अर्थ होता है–"आगम से अविरुद्ध गुरुवचन"। (बृ. वृ. शा.)

इंगित और आकार शरीर की चेष्टा–विभिन्न मुद्राओं के वाचक हैं। किसी कार्य के विधि या निषेध के लिये सिर हिलाना आदि सूक्ष्म चेष्टा इंगित है, और इधर-उधर दिशाओं को देखना, जँभाई लेना, आसन बदलना आदि स्थूल चेष्टायें (आकार) हैं।

"संपन्ने" का अर्थ सम्पन्न (युक्त) भी है और संप्रज्ञ (जानने वाला) भी। बृहद्वृत्ति में दोनों अर्थ हैं।

गाथा ५–चूर्णि के मतानुसार "कणकुण्डगं" के दो अर्थ हैं–चावलों की भूसी अथवा चावल मिश्रित भूसी।

गाथा ७–बुद्धपुत्त नियागट्ठी–बुद्धपुत्र अर्थात् आचार्य का विनीत प्रीतिपात्र शिष्य, नियागट्ठी–निजकार्थी, आत्मार्थी, (सुखबोधा)

गाथा १०–चण्डालियं–इसमें चण्ड (क्रोध) और अलीक (असत्य) दो शब्द हैं (चूर्णि)। क्रोध के वशीभूत होकर असत्य भाषण करना, तथा क्रूर व्यवहार करना–चाण्डालिक कर्म माना जाता है। (बृहद् वृत्ति)

गाथा १२–"गलियस्स" का अर्थ है–अविनीत घोड़ा।

"आकीर्ण" विनीत अश्व और बैल को कहते हैं।

गाथा १८–कृति का अर्थ–वन्दन है। जो वन्दन के योग्य हो, वह कृत्य अर्थात् गुरु एवं आचार्य आदि पूज्य व्यक्ति।

गाथा २६–"समर" का अर्थ–लोहार की शाला है, (चूर्णि)। लोहार की शाला तथा नाई की दुकान। एवं इसी प्रकार के साधारण निम्न स्थान (बृ. वृ.) "समर" का दूसरा अर्थ–युद्ध भूमि है। (बृ. वृ.)

गाथा ३५–"अप्पपाण" और **"अप्पबीय"** में 'अल्प' शब्द अभाववाची है। (बृहद्वृत्ति)।

गाथा ४०–उपघात–का अर्थ है–आचार्य आदि को मानसिक क्लेश पहुँचाना, या किसी कार्य के लिये बाध्य करना (चूर्णि)

गाथा ४७–कर्मसंपदा के दो अर्थ हैं–साधुओं के द्वारा समाचरित, समाचारी और योगजन्य विभूतियां (लब्धियां) (बृ. वृ.)

Salient Elucidations

Gāthā 1–The word *sanjogā* which is translated in the text as worldly ties denotes the attachment. Externally the causes of attachment are–wealth, family members etc., and internal causes are–passions, sensual pleasures etc. (*Sukhabodhā*)

In this couplet two words have been used *Aṇagārassa Bhikkhuṇo*. Here *aṇagāra* stands for an adept who is homeless. He does not attract others by giving introuction of his clan, class, lineage, family etc., *for getting food, lodging, etc. (Vṛhad Vṛtti–Śāntyācārya)*

Vinaya (विनय) has two interpretations–(1) Conduct, and (2) Courtesy–modesty.

Gāthā 2–Instruction (आज्ञा) and order (निर्देश) are synonyms. Still according to the *Cūrṇi* instruction is the precept of canonical scriptures (आगम का उपदेश) while order (निर्देश) denotes the words of the preacher which are uncontrary to scriptures (*V. V, Ś*)

Nods (इंगित) and Motion (आकार) both stands for the bodily gestures. But the subtle movement of head for allowing and disallowing any activity is Nod. To see hither and thither in various directions, yawnring and change of posture is Motion (आकार).

Opulent (संपन्न) has two interpretations (1) to have, to enjoin and (2) acknowledger, if this word is formed as संप्रज्ञ. *Vṛhad Vṛtti* gives both the meanings.

Gāthā 5–Cūrṇi consists two interpretations of the word *Kaṇakuṇḍagaṁ*–(1) rice mixed with chaff and (2) chaff of rice.

Gāthā 7–Buddhaputta niyāgaṭṭhi–Here *Buddhaputta* word stands for pupil who is modest and favourite to the preceptor. *Niyāgaṭṭhi* means–self–intended. (*Sukhabodhā*)

Gāthā 10–The word *Caṇḍāliyaṃ* consisted of two words, (1) anger (चण्ड) and (2) falsehood (अलिय) (*Cūrni*). Overpowered by the emotion of anger to tell a lie and to do cruel behaviour, is called a *chāṇḍālika* deed. (*Vṛhad Vṛtti*)

Gāthā 12–Intactible horse is *galiassa.*

Tactible or disciplined horse or ox is known as *ākirṇa* (आकीर्ण)

Gāthā 18–Obeisance is the meaning of *Kṛti* (कृति). Who is adorable, is called *kṛtya* (कृत्य). Those adorables are preceptors and preachers.

Gāthā 26–The word *samara* (समर) has many meanings. Black-smith's shop, smithy (*Churṇi*) Barber's shop and other such lower type places, even it may mean donkey's shed. The other meaning is battle field. (*V. V*)

Gāthā 35–The words (अप्पपाण अप्पबीय) here by अप्प–अल्प few is not meant, it denotes entire devoidance–absence.

Gāthā 40–(बुद्ध उवघात) To create mental tribulation to preceptor etc. or to compel for doing any kind of activity or deed (*Cūrni*).

Gāthā 47–The word *Karmasampadā* is interpretated in two ways–(1) conducted by the ascetics or the correct behaviour of ascetics and the (2) occult powers derived by Yoga (योग संपदा)।

卐

द्वितीय अध्ययन : परीषह-प्रविभक्ति

पूर्वालोक

उत्तराध्ययन सूत्र के प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन का नाम परीषह प्रविभक्ति है। परीषह का अर्थ है–स्वीकृत मोक्षमार्ग से न डिगते हुए, आये हुए कष्टों को समभावपूर्वक सहन करना।

इससे पहले विनयश्रुत अध्ययन में साधक शिष्य को विनय–अनुशासन, सदाचार आदि की प्रेरणा दी गई थी। विनय में परिपक्व साधक अनुशासित तो होता ही है, साथ ही उसमें धीरता, गंभीरता, साहस आदि गुणों का भी संचार हो जाता है। वह निर्भय, निःशंक और कष्टसहिष्णु बन जाता है।

अपने इन्हीं गुणों के कारण वह परीषह विजेता बनता है।

परीषह वे कष्ट हैं, जो परिस्थितियों, ऋतुओं, मनुष्यों, देवों, तिर्यंचों आदि की प्रतिकूलता के कारण आते हैं। यद्यपि इनमें मूल कारण तो साधक के अपने पूर्वकृत कर्म ही होते हैं लेकिन बाह्य निमित्त परिस्थितियाँ आदि होते हैं।

साधक न तो कष्टों को आमंत्रण देता है, न शरीर व इन्द्रियों को स्वयं ही कष्टित करता है और न ही परीषहों को बेबस होकर सहन करता है। वे तो स्वयं ही उपस्थित होते हैं; किन्तु दृढ़ मनोबली साधक इनसे संत्रस्त और पराजित नहीं होता, आर्त्तध्यान नहीं करता, संक्लेश नहीं करता; अपितु इन्हें समभाव से सहन करता है।

परीषह अनुकूल भी होते हैं और प्रतिकूल भी; जिन्हें शीत और उष्ण परीषह भी कहा गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में २२ परीषहों का वर्णन है, जिनमें स्त्री और सत्कार–ये दो परीषह अनुकूल अथवा शीत परीषह हैं और शेष २० प्रतिकूल अथवा उष्ण परीषह हैं।

इन अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों को समभाव पूर्वक सहना साधक जीवन की कसौटी है कि इसकी साधना की जड़ें कितनी गहरी हैं और मोक्षमार्ग पर चलने की दृढ़ता कितनी मजबूत है।

इन २२ परीषहों में प्रज्ञा और अज्ञान का कारण ज्ञानावरणीय कर्म; अलाभ का कारण अन्तराय कर्म; अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार का कारण चारित्रमोहनीय कर्म, दर्शन परीषह का कारण दर्शनमोहनीय कर्म तथा शेष परीषहों का कारण वेदनीय कर्म है।

आगम विज्ञों का मत है कि प्रस्तुत अध्ययन कर्मप्रवाद पूर्व के १७वें प्राभृत से उद्‌धृत है।

प्रस्तुत अध्ययन में परीषहों के सन्दर्भ में संयमी साधक की जीवन चर्या का सर्वांगपूर्ण विवेचन है।

इस अध्ययन में ३ सूत्र और ४६ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 2
DIVISIONAL TYPES OF TROUBLES

Foreview

The title of this chapter is Types of Troubles (परीषह प्रविभक्ति) or the different divisions of Troubles. In present reference the word *Trouble* (परीषह) denotes–to endure the difficulties with equanimity (समभाव) and remaining resolute on the accepted path of salvation.

The previous chapter dealt with the inspirement of discipline, good conduct to the disciple. The well–versed adept (साधक) being disciplined also develops other attributes like soberness, courage etc.He becomes fearless, undoubted and tolerant.

By the dint of these attributes he overcomes the troubles or in other words–becomes the victor of troubles.

The troubles are the difficulties which arouse due to surroundings, environment, seasonal periods, and perversity of gods, men, beasts and birds etc. Though the root or internal cause of all the troubles are adept's own deeds (कर्म) done in previous life or lives but the external causes are circumstances etc.

The devotee neither invites the troubles, nor hurts his own body and senses, nor he endures them helplessly. The troubles occur automatically but firm determined and having strong will–power adept neither becomes afraid of nor subjugated by them, he does not indulge in inauspicious thoughts nor distress himself but bears them equanimously–devoid of attachment and aversion.

Troubles are of both types–(1) favourable and (2) disfavourable. These are called cool and warm respectively.

There is the description of 22 troubles in this chapter. Among these woman and honour (सत्कार) troubles are favourable–soothing and the remaining 20 troubles are disfavourable, warm or painful to the adept.

To bear these favourable and unfavourable troubles with even mind is the test of adept–life that how much deep is his adeptation and how much firmly he is stepping forward on the path of salvation.

Among the 22 troubles the cause of understanding (प्रज्ञा) and ignorance (अज्ञान) trouble is the knowledge obscuring karma (ज्ञानावरणीय कर्म), of refusal (अलाभ) is power hindrance karma (अन्तराय कर्म) of nakedness (अचेल), women (स्त्री), spot for sutdy and meditation (निषद्या), ask for something (याचना), abuses (अक्कोस-आक्रोश), kind and respectful treatment (सत्कर-पुरस्कार) is conduct illusory karma (चारित्रमोहनीय कर्म) and of faith (disfaith) (दर्शन) trouble is faith illusory karma (दर्शनमोहनीय कर्म) and the cause of rest troubles is emotion provoking karma (वेदनीय कर्म).

Learned persons of scriptures opine-this chapter has been taken or quoted from the seventeenth *prābhṛta* of *karmapravāda pūrva.*

This chapter presents thorough description of the life order of a restrained ascetic.

This chapter consists three maxims and 46 couplets–stanzas (गाथा)।

बीयं अज्झयणं : परीसह-पविभत्ती
द्वितीय अध्ययन : परीषह-प्रविभक्ति

सूत्र १–सुयं मे, आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–
इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा ।

सूत्र १–(श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं) हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, कि भगवान महावीर ने ऐसा कहा है–

काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने (साधु जीवन में आने वाले) २२ परीषहों का वर्णन किया है। इन्हें सुनकर, जानकर, जीतकर, बार-बार के अभ्यास द्वारा परिचित कर, उनकी प्रबलता को परास्त कर भिक्षाचर्या के लिए घूमता हुआ साधु (भिक्षु) इन परीषहों के आने (स्पृष्ट होने) पर भी अपनी संयम यात्रा से विचलित नहीं होता।

Maxim 1–(*Sudharmā gaṇadhara–Swāmī* says to his able disciple *Jambū swāmī*) O long lived *Jambū* ! I myself have listened that *Śramaṇa Bhagavāna Mahāvīra* of *Kāśyapa gotra* (lineage) has prescribed these 22 troubles (परीषह), which occurs in the life of a mendicant. On hearing about them, knowing them, fully understanding them by experiencing again and again, bearing them, conquering them and subduing their strength–while wandering for getting food the mendicant if touched afflicted by them, does not slip from his restrain order.

सूत्र २–कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा ।

सूत्र २–(जम्बू स्वामी की जिज्ञासा) (भगवन् !) काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर द्वारा कहे हुए वे २२ परीषह कौन से हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर, अभ्यास द्वारा परिचित कर, जीतकर, उनकी प्रबलता को कम करके भिक्षाचर्या हेतु घूमता हुआ भिक्षु उनसे आक्रान्त होने पर भी अपनी संयम यात्रा से विचलित नहीं होता।

Maxim 2–(Inquisitiveness of *Jambū swāmī*) Oh reverend preceptor ! *Kāśyapa Gotrīya Śramaṇa Bhagavāna Mahāvūra* has prescribed 22 troubles. What are these ? By hearing about them, knowing them, fully understanding them by experiencing again and again, bearing them, conquering them and subduing their strength–while wandering for getting food the mendicant if touched–came across them does not slip from his restrain order?

सूत्र ३–इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा, तं जहा–

सूत्र ३–(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर द्वारा कहे हुए २२ परीषह–जिन्हें सुनकर, जानकर, अभ्यास द्वारा परिचित कर, जीतकर, उनकी प्रबलता को सहनीय बनाकर भिक्षा हेतु पर्यटन करता हुआ भिक्षु इनसे आक्रान्त होने पर भी अपने संयम मार्ग से विचलित नहीं होता; वे २२ परीषह इस प्रकार हैं–

Maxim 3–(*Sudharmā swāmī* says) The 22 troubles expressed by *Kāśyapa Gotrīya Śramaṇa Bhagavāna Mahāvīra* by hearing about them, knowing them, fully understanding them, by experiencing them again and again, bearing them, conquering them and subduing their prevalancy–a mendicant wandering for getting food if touched–came across them, does not slip from his life order. These 22 troubles are as–

१ दिगिंच्छा-परीसहे	२ पिवासा-परीसहे	३ सीय-परीसहे
४ उसिण-परीसहे	५ दंस-मसय-परीसहे	६ अचेल-परीसहे
७ अरइ-परीसहे	८ इत्थी-परीसहे	९ चरिया-परीसहे
१० निसीहिया-परीसहे	११ सेज्जा-परीसहे	१२ अक्कोस-परीसहे
१३ वह-परीसहे	१४ जायणा-परीसहे	१५ अलाभ-परीसहे
१६ रोग-परीसहे	१७ तण-फास-परीसहे	१८ जल्ल-परीसहे
१९ सक्कार-पुरक्कार-परीसहे	२० पन्ना-परीसहे	२१ अन्नाण-परीसहे
२२ दंसण-परीसहे।		

(१) क्षुधा परीषह	(२) पिपासा परीषह	(३) शीत परीषह
(४) उष्ण परीषह	(५) दंश मशक परीषह	(६) अचेल परीषह
(७) अरति परीषह	(८) स्त्री परीषह	(९) चर्या परीषह
(१०) निषद्या परीषह	(११) शैया परीषह	(१२) आक्रोश परीषह
(१३) वध परीषह	(१४) याचना परीषह	(१५) अलाभ परीषह
(१६) रोग परीषह	(१७) तृण-स्पर्श परीषह	(१८) जल्ल परीषह
(१९) सत्कार-पुरस्कार परीषह	(२०) प्रज्ञा परीषह	(२१) अज्ञान परीषह
(२१) दर्शन परीषह।		

(1) Hunger (क्षुधा) (2) thirst (पिपासा) (3) cold (शीत) (4) heat (उष्ण) (5) drones and biting insects (दंश-मशक) (6) nakedness (अचेल) (7) discontent (अरति) (8) women (स्त्री) (9) wandering (चर्या) (10) Spot for sitting, study and meditation (निषद्या) (11) bed or lodge (शैया) (12) Abuse (आक्रोश) (13) Punishment (वध) (14) Asking for anything (याचना) (15) Refusal (अलाभ) (16) Illness (रोग) (17) Pricks (तृणस्पर्श) (18) Dirt (जल्ल) (19) Good and Respectful treatment (सत्कार-पुरस्कार) (20) Knowledge-Intelligence (प्रज्ञा) (21) Ignorance (अज्ञान) (22) Faith (दर्शन)।

परीसहाणं पविभत्ती, कासवेणं पवेइया ।
तं मे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने परीषहों के जो विभागशः भेद बताए हैं, वे मैं तुम्हें कहता हूँ। तुम क्रमशः मुझसे सुनो॥१॥

Kāśyapa Gotrīya Śramaṇa Bhagavāna Mahāvīra has expressed the types of troubles divisionally. I tell you them in proper order. Listen to me attentively (1)

१–क्षुधा-परीषह

दिगिंछा-परिगए देहे, तवस्सी भिक्खु थामवं ।
न छिन्दे, न छिन्दावए, न पए न पयावए ॥२॥
काली-पव्वंग-संकासे, किसे धमणि-संतए ।
मायन्ने असण-पाणस्स, अदीण-मणसो चरे ॥३॥

अत्यधिक क्षुधा की वेदना होने पर भी दृढ़ मनोबली तपस्वी न स्वयं फलों का छेदन (वृक्ष से फल तोड़ना) करे, न किसी अन्य से छेदन करावे और न स्वयं पकाये, न किसी अन्य से पकवाये ॥२॥

दीर्घकाल की क्षुधा के कारण कौए की जांघ के समान शरीर अत्यन्त दुर्बल (दुबला) और कृश हो जाए, धमनियाँ (शरीर का नसा-जाल) साफ दिखाई देने लगें। फिर भी अशन-पान (आहार-पानी) की मर्यादा को जानने वाला साधु दीनभाव से रहित होकर संयम यात्रा में विचरण करे ॥३॥

(1) Hunger Trouble

Due to the extremity of hunger-agony, may the body be weakened but the ascetic who is firm in self control and does penance, should not pluck the fruits etc., from the trees nor should cause other to pluck, neither cook food himself nor cause others to cook, for eating. (2)

Due to the long-time hunger, emanciated like the leg of crow or a kind of grass (काली पव्वंग संकासे), lean with veins visible through skin, knowing the permitted measure of food and water, he should wander with non-downcast mind. (3)

२–पिपासा (तृषा) परीषह

तओ पुट्ठो पिवासाए, दोगुंछी लज्ज-संजए ।
सीओदगं न सेविज्जा, वियडस्सेसणं चरे ॥४॥
छिन्नावाएसु पन्थेसु, आउरे सुपिवासिए ।
परिसुक्क-मुहेऽदीणे, तं तितिक्खे परीसहं ॥५॥

असंयम से दूर रहने वाला लज्जालु संयमी भिक्षु प्यास से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ भी शीतल जल (सचित्त जल) का सेवन न करे; अपितु अचित्त-प्रासुक जल की गवेषणा करे ॥४॥

निर्जन एकान्त पथों में भी तीव्र तृषा से व्याकुल होने पर, यहाँ तक कि मुँह (कण्ठ) सूख जाने पर भी साधु दीन भाव से रहित होकर तृषा की पीड़ा को सहन करे ॥५॥

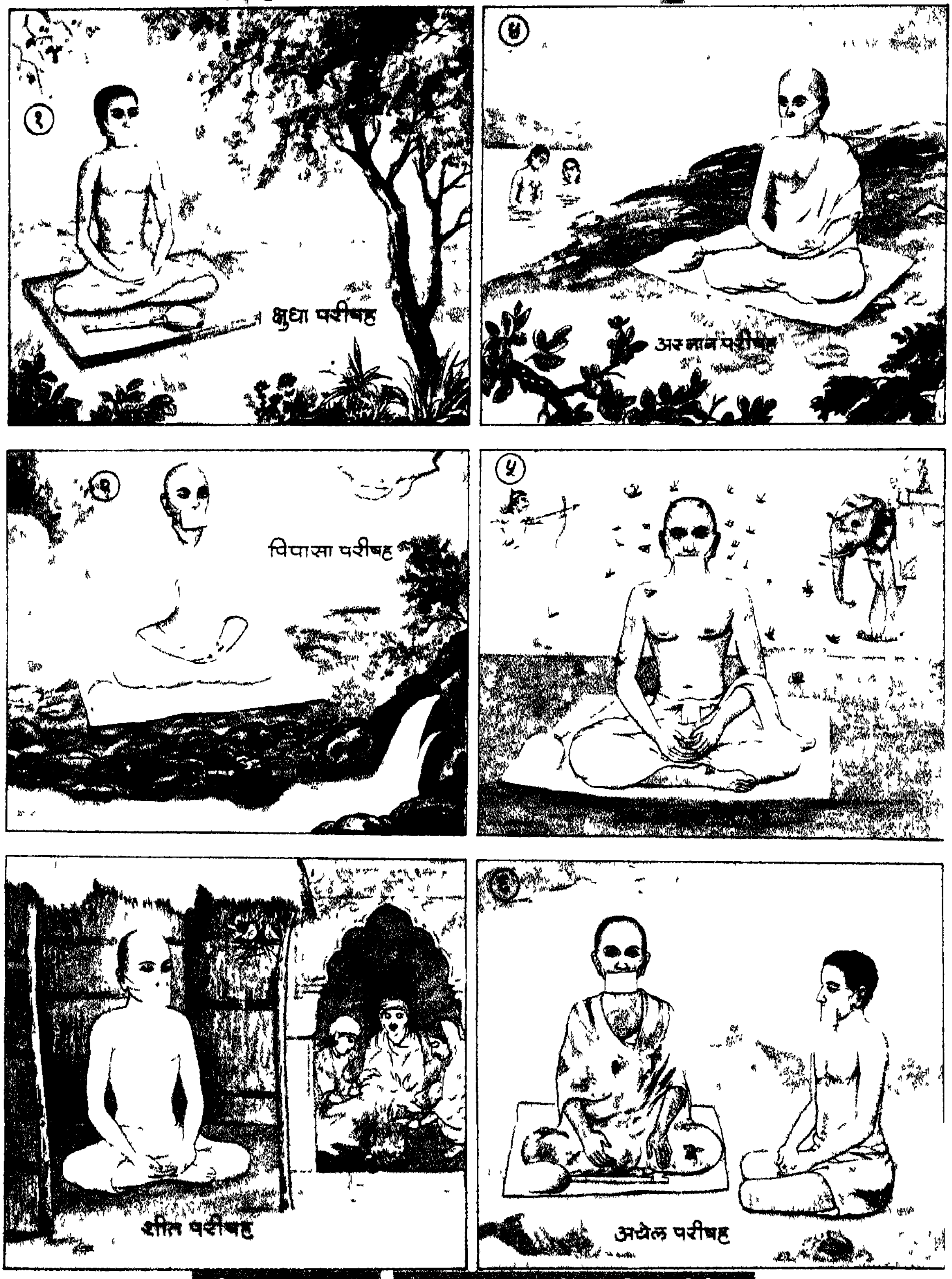
2. Thirst trouble

The mendicant–afraid of lapse and restrained by shame–oppressed by thirst, should not drink cool (unboiled–सचित्त-शीतल) water. He should search for boiled (उबला हुआ अचित्त) water. (4)

Wandering at lonely path, without water with him, yet oppressed by extreme agony of thirst with dry throat. Still he should not humble himself and bear the thirst trouble. (5)

ILLUSTRATION NO. 5 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20

परीषहों का सचित्र वर्णन : अध्ययन २ गाथा २ से १ तक



चित्र क्रमांक ५ पृष्ठ २१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 6 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20

परीषहों का सचित्र वर्णन : अध्ययन २ गाथा १ से २८ तक



चित्र क्रमांक ६ पृष्ठ २१ पर चित्र परिचय देखें

३–शीत-परीषह

चरन्तं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया।
नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चाणं जिणसासणं ॥६॥
'न मे निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जई।
अहं तु अग्गिं सेवामि'–इइ भिक्खू न चिन्तए ॥७॥

पापों से विरक्त और (स्निग्ध भोजन न करने के कारण) रूक्ष शरीर वाला साधु विचरण करते हुए कभी शीत (ठंड) से पीड़ित हो जाये तो भी जिन शासन (वीतराग के उपदेशों) को सुन-समझकर स्वाध्याय आदि साधुचर्या के काल का उल्लंघन न करे–यथाकाल साधु-नियमों का पालन करे ॥६॥

शीत की अधिकता से पीड़ित मुनि ऐसा न सोचे कि–'मेरे पास शीत की बाधा का निवारण करने के लिए न तो अच्छा मकान है और न कंबल आदि ही है; तब क्यों न अग्नि का सेवन करके शीत की बाधा को शांत कर लूँ ॥७॥

3. Cold Trouble

Avoiding the sins and taking unlubricated food, having dry skin (body) such an ascetic, may be afflicted to cold, when wandering alone, still then, hearing and understanding the preachings of free from attachment and aversion (वीतराग) the order of Jinas (जिनशासन) should not neglect the time period of scriptural study and ascetic-order, he should perform thc rules of ascetic at the time specified for. (6)

Oppressed by extremity of cold the ascetic should not think that 'I have no shelter, nor blanket to protect myself, so lit fire to warm up my body.'(7)

४–उष्ण-परीषह

उसिण-परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए।
घिंसु वा परियावेणं, सायं नो परिदेवए ॥८॥
उण्हाहितत्ते मेहावी, सिणाणं नो वि पत्थए।
गायं नो परिसिंचेज्जा, न वीएज्जा य अप्पयं ॥९॥

तपी हुई गर्म भूमि, शिला, लू (गर्म वायु) के परिताप से, शरीर या तृषा के दाह से, ग्रीष्मकालीन सूर्य के प्रचण्ड ताप से पीड़ित होता हुआ श्रमण सात (शीत स्पर्श से प्राप्त सुख) के लिए आकुल-व्याकुल न बने ॥८॥

मेधावी श्रमण अत्यधिक गर्मी के ताप से तप्त होने पर भी न तो स्नान की इच्छा करे और न ही शरीर को जल से सींचे–गीला करे और न पंखे आदि से हवा ही करे ॥९॥

4. Heat Trouble

. Oppressed by too much warm ground, rock, warm wind, distressed by warmness of body and thirst, by the blazing summer sun, sage should not seek for cool–touch and cold place. (8)

The wise sage, though roasted by unenduring heat should not desire for bath, nor he should wet his body by water; even not fan himself. (9)

५–दंश-मशक-परीषह

पुट्ठो य दंस-मसएहिं, समरेव महामुणी ।
नागो संगाम-सीसे वा, सूरो अभिहणे परं ॥१०॥
न संतसे न वारेज्जा, मणं पि न पओसए ।
उवेहे न हणे पाणे, भुंजन्ते मंस-सोणियं ॥११॥

डांस-मच्छरों (चींटी आदि क्षुद्र तथा सूक्ष्म जंतुओं) का उपद्रव होने पर भी महामुनि अपने समभाव में स्थिर रहे। जिस प्रकार रणक्षेत्र में गजराज बाणों की परवाह नहीं करता हुआ शत्रुओं का विध्वंस करता है, उसी प्रकार महामुनि परीषहों पर विजय प्राप्त करके राग-द्वेष, कषाय, कर्म आदि आन्तरिक शत्रुओं का हनन करे ॥१०॥

डांस-मच्छरों के परीषह पर विजय प्राप्त करने वाला मुनि उनके द्वारा दी जाने वाली पीड़ा से उद्विग्न न हो। न उन्हें हटाए, न उनके प्रति मन में द्वेष ही करे। यहाँ तक कि यदि वे उसका मांस काटें, रक्त पीवें तो भी उन्हें मारे नहीं, उनके प्रति उपेक्षाभाव रखे ॥११॥

(5) Drones' Trouble

Oppressed by the painful stings and biting of drones and insects the great monk remains equanimous. In the battle-field as the strong elephant, without caring about the fiercing arrows destroys the enemies; so the great monk conquering the troubles destroy the attachment, aversion, passions, karma etc., the inherent enemies, (10)

The victor of drones' trouble monk remains undisturbed by the agony of their stings. Neither scare nor drive them off, nor defile his mind. Even if they bite his flesh and suck his blood, he should not kill them, only become indifferent toward them. (11)

६–अचेल परीषह

'परिजुण्णेहि वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए' ।
अदुवा 'सचेलए होक्खं', इइ भिक्खू न चिन्तए ॥१२॥
'एगयाऽचेलए होइ, सचेले यावि एगया' ।
एयं धम्महियं नच्चा, नाणी नो परिदेवए ॥१३॥

वस्त्रों के अधिक जीर्ण हो जाने–फट जाने से मैं अचेलक हो जाऊँगा अथवा नये वस्त्र मिल जाने से सचेलक (नये वस्त्रधारी) बन जाऊँगा–श्रमण इस प्रकार का विचार न करे ॥१२॥

परिस्थितियों के कारण 'साधु कभी अचेलक भी होता है और कभी सचेलक भी होता है।' दोनों ही स्थितियों को धर्म के लिए हितकारी मानकर ज्ञानी श्रमण कभी आकुल-व्याकुल न हो, दुःख न करे ॥१३॥

6. Nakedness Trouble

The sage should not entertain such thoughts 'My clothes being torn, I shall be soon naked' or 'by getting new cloths I will be the bearer of new clothes' (12)

Due to the circumstances, sometimes he is totally unclad and sometimes has a robe. Considering both the positions beneficial for religion (religious rituals) sage shold never feel sorrow. (13)

७–अरति-परीषह

गामाणुगामं रीयन्तं, अणगारं अकिंचणं ।
अरई अणुप्पविसे, तं तितिक्खे परीसहं ॥१४॥
अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आय-रक्खिए ।
धम्मारामे निरारम्भे, उवसन्ते मुणी चरे ॥१५॥

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अनिकेत अकिंचन श्रमण के मन-मस्तिष्क में कभी संयम के प्रति अरति (अरुचि) उत्पन्न हो जाय तो उस परीषह को समभाव से सहे ॥१४॥

विषयों से विरक्त, आरम्भत्यागी, आत्मरक्षक मुनि अरति भाव को दूर कर धर्मरूपी उद्यान में स्थिर होकर उपशम भावों में रमण करे ॥१५॥

7. Discontent trouble

Wandering from village to village, without money and shelter, the disgust for restrain may disturb his heart and head, but he should bear this trouble with the peace of mind. (14)

Disinclined to sensual pleasures, renouncer of sins, self protecting monk, getting rid of discontent feelings, remains in the garden of religion should indulge himself into tranquil-thoughts (15)

८–स्त्री-परीषह

'संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगंमि इत्थिओ ।'
जस्स एया परिन्नाया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥१६॥
एवमादाय मेहावी, 'पंकभूया उ इत्थिओ' ।
नो ताहिं विणिहन्नेज्जा, चरेज्जऽत्तगवेसए ॥१७॥

जो साधु ऐसा जानता है कि संसार में पुरुष के लिए स्त्रियां बंधन का बहुत ही प्रबल कारण हैं (उनके प्रति विरक्त-बुद्धि से) उस साधु का श्रमणत्व सफल हो जाता है ॥१६॥

'स्त्रियाँ ब्रह्मचारी के लिए दल-दल के समान हैं' इस तथ्य को भली-भाँति जानकर मेधावी साधु उन (स्त्रियों) के द्वारा अपने संयम का घात न होने दे और सदा आत्मस्वरूप की गवेषणा करे ॥१७॥

8. Women Trouble

The ascetic who is well aware of the fact the women are the strongest cause to bind a man; (with the disinclined mood about them-the women) his sageness becomes successful. (16)

'Women are like a swamp for a celibate' knowing this fact fully the wise ascetic should not allow them (the women) to distort his restrain and always he eager to indulge in the inherent qualities of his self. (17)

९–चर्या-परीषह

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे ।
गामे वा नगरे वावि, निगमे वा रायहाणिए ॥१८॥

असमाणो चरे भिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गहं ।
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिव्वए ॥१९॥

निर्दोष चर्या से विभूषित-प्रशंसित (लाढ) साधु परीषहों पर विजय प्राप्त करके ग्राम में, नगर में, व्यापारिक मंडी में, राजधानी आदि में अकेला ही विचरण करे ॥१८॥

भिक्षु असाधारण (आम आदमी से अलग) होकर विचरण करे। परिग्रह नहीं करे, गृहस्थों के प्रति ममत्व भाव न रखे, उनसे अलिप्त रहे तथा अनिकेत गृह बन्धनों से मुक्त होकर परिभ्रमण करे ॥१९॥

(9) Wandering Trouble

The ascetic should wander about, being victor of all-troubles, in a village, town, market place, a capital etc. (18)

Different from common man, a mendicant should wander about, without any possession, not being attached to house-holders and live without a fixed residence. (19)

१0–निषद्या-परीषह

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्ख-मूले व एगओ ।
अकुक्कुओ निसीएज्जा, न य वित्तासए परं ॥२0॥
तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ।
संका-भीओ न गच्छेज्जा, उट्ठित्ता अन्नमासणं ॥२१॥

श्मशान, सूने घर, तरुमूल में अकेला ही साधु अचपल होकर बैठे, किन्तु किसी अन्य प्राणी को किंचित् भी भयभीत न करे ॥२0॥

यदि उन स्थानों पर (ध्यानस्थ) बैठे साधु को किसी प्रकार का उपसर्ग (मनुष्य-देव-तिर्यंच सम्बन्धी) आ जाये तो उसे समभाव से धारण करे, सहे; अनिष्ट की शंका से भयभीत होकर उस स्थान से उठकर अन्यत्र न जाये ॥२१॥

10. Spot for Sitting, study and meditation

The ascetic should sit down immobile in a funeral place, or a deserted house or beneath a tree, but he should not drive away any one, even a small creature. (20)

If there occurs any difficult position caused by god, men or beast against the ascetic in meditation; he should bear it calmly; but not go to any other safer place. (21)

११–शय्या-परीषह

उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं ।
नाइवेलं विहन्नेजा, पावदिट्ठी विहन्नई ॥२२॥
पइरिक्कुवस्सयं लद्धुं, कल्लाणं अदु पावगं ।
'किमेगरायं करिस्सइ', एवं तत्थऽहियासए ॥२३॥

ऊँची-नीची, अच्छी-बुरी शय्या (वसति-उपाश्रय-आश्रय स्थान) पाकर, सर्दी-गर्मी सहन करने में समर्थ तपस्वी भिक्षु हर्ष-खेद करके अपनी संयम मर्यादा का अतिक्रमण न करे। क्योंकि पापदृष्टि (अस्थिरचित्त) साधु ही (हर्ष विषाद करके) मर्यादा का भंग करता है ॥२२॥ (अस्थिर चित्र)

मुनि को स्त्री-पशु-नपुंसक की बाधा रहित अच्छा या बुरा–अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी स्थान मिल जाय, उसमें यह सोचकर रह ले कि एक रात में मेरा क्या बिगड़ जायेगा ॥२३॥

11. Bed or Lodge Trouble

A mendicant who does penance and firm in self control will not be effected beyond measure by good or bad, high or low bed (shelter, place etc;) because he is strong enough to bear cold and warm, and having religious outlook, so he never infringes the code of a mendicant. But the ascetic having sinful attitude infringes the code specified for an ascetic. (22)

Getting shelter in vacant (without women, animal and eunuch) house, may it be favourable-disfavourable, good or bad. He may live there thinking–'I have to stay here for a night only, so it matters not. (23)

१२–आक्रोश-परीषह

अक्कोसेज्ज परो भिक्खुं न तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले ॥२४॥
सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम-कण्टगा ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसीकरे ॥२५॥

यदि कोई भिक्षु को दुर्वचन कहे तो भी भिक्षु उस पर आक्रोश न करे। क्रोधी तो मूर्ख अज्ञानियों के समान होता है–यह सोचकर कभी क्रोध न करे ॥२४॥

शूल के समान कर्णकटु असत्य, कठोर और कानों में कांटे की तरह चुभने वाला अप्रिय शब्द सुनकर मुनि मौन रहकर उनकी उपेक्षा कर दे। उनके प्रति मन में भी क्रोध न करे ॥२५॥

12. Abuse Trouble

If some one hurls abuse at a mendicant, still the mendicant should not be angry towards him. He (Mendicant) must think that an angry man is like a foolish. So he must not allow anger in his heart. (24)

Hearing the thorn-like harsh, cruel, untruthful and piercing the ears words, monk should give no heed to them, become silent and should not allow the anger even in his mind. (25)

१३–वध-परीषह

हओ न संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए ।
तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खु-धम्मं विचिंतए ॥२६॥
समणं संजयं दन्तं हणेज्जा कोई कत्थई ।
'नत्थि जीवस्स नासु' त्ति, एवं पेहेज्ज संजए ॥२७॥

लाठी आदि से मारे-पीटे जाने पर भी भिक्षु क्रोध में संतप्त न हो, अपने मन को भी दूषित न करे, क्षमा को साधना का श्रेष्ठ अंग जानकर मुनि-धर्म का चिन्तन करे ॥२६॥

संयमी और इन्द्रियविजयी साधु को यदि कोई व्यक्ति कहीं मारे-पीटे, प्रहार करे, घात करे तो भिक्षु यह विचार करे कि आत्मा का नाश तो होता ही नहीं ॥२७॥

13. Punishment Troble

Beaten by sticks, the mendicant should not bum in anger, nor bear malice in his mind , knowing forgiveness the best part of adeptation, he should deeply think over the monkhood. (26)

If any person hurts to kill a restrained and sense victor ascetic then mendicant thinks–soul does not die, it is beyond death (27)

१४–याचना-परीषह

दुक्करं खलु भो निच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वं से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं ॥२८॥
गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी नो सुप्पसारए ।
'सेओ अगार-वासु' त्ति, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥२९॥

अनगार भिक्षु की यह चर्या सदा से ही कठिन रही है कि उसके पास सभी कुछ याचित होता है, कुछ भी अयाचित नहीं होता ॥२८॥

भिक्षाचर्या के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु के लिए उसके समक्ष हाथ फैलाना सरल कार्य नहीं है। अतः भिक्षु यह न सोचे कि 'इससे तो गृहवास (घर में रहना) ही अच्छा है' ॥२९॥

14. Asking Trouble

This is most difficult problem of a homeless mendicant that he has to ask for even the meagre things, he has nothing unasked. (28)

It is very difficult for an ascetic, who has entered a house holder's home for alms, to stretch his hand before him. Hence mendicant should never bring in his mind that household is better than his (mendicant's) life. (29)

१५–अलाभ-परीषह

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठिए ।
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, नाणुतप्पेज्ज संजए ॥३०॥
'अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया' ।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥३१॥

जब गृहस्थों के घरों में भोजन तैयार हो जाये तब भिक्षु गोचरी हेतु जाय। गृहस्थों से थोड़ा आहार मिले अथवा न भी मिले तो भी भिक्षु खेद न करे ॥३०॥

आज मुझे आहार नहीं मिला तो संभव है कल मिल जाय। इस प्रकार से विचार करने वाले भिक्षु को अलाभ परीषह पीड़ित नहीं करता, वह अलाभ परीषह को विजित कर लेता है ॥३१॥

15. Refusal Trouble

A mendicant should go for seeking a morsel of food when the food has been prepared in a house-holder's home. Whether he gets some quantity of food–not sufficient for his appetite, or he gets no food. In both the positions mendicant should not mind it in any way. (30)

'To-day I could not get food, perhaps tomorrow I can get' Thinking of this pattern, the refusal or non-getting trouble does not overcome the mendicant, he become the victor of this trouble. (31)

१६–रोग-परीषह

नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए ।
अदीणो थावए पन्नं, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥३२॥
तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा, संचिक्खऽत्तगवेसए ।
एवं खु तस्स सामण्णं, जं न कुज्जा न कारवे ॥३३॥

अपने कृत-कर्मों के कारण ही रोग उत्पन्न होता है–यह मानकर उस वेदना से मन को व्यथित न होने दे। अपनी बुद्धि को स्थिर-संतुलित रखता हुआ मुनि प्राप्त पीड़ा को समभाव पूर्वक सहन करे ॥३२॥

आत्मा की गवेषणा करने वाला साधु रोग हो जाने पर उसकी (सावद्य) चिकित्सा न करे, न कराये और न अनुमोदन करे, समाधिपूर्वक रहे। यही उसका श्रमणत्व है ॥३३॥

16. Illness Trouble

Definitely consider that ill-ness or disease are the results of my own karmas, which I have accumulated previously or in preceding life or lives–a monk should not let his mind sorrowful due to the agony of disease. With steady mind he should cheerfully bear the affliction of disease. (32)

The self-searching ascetic does not approve the (sinful) treatment of the disease, neither inspires other nor gives accent to those who tries the treatment like this. He remains in peace and meditation. Really it is the code of the sage. (33)

१७–तृण-स्पर्श-परीषह

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो ।
तणेसु सयमाणस्स हुज्जा गाय-विराहणा ॥३४॥
आयवस्स निवाएणं, अउला हवइ वेयणा ।
एवं नच्चा न सेवन्ति, तन्तुजं तण-तज्जिया ॥३५॥

अचेलक (वस्त्र रहित) और रूखे शरीर वाले तपस्वी श्रमण को (शीतकाल में) तृण (घास-पुआल) की शैया पर सोने से, उसके शरीर को उन तृणों की चुभन से पीड़ा होती रहती है ॥३४॥

(ग्रीष्म काल में) सूर्य की प्रचण्ड रश्मियों के कारण भी तपस्वी श्रमण को असह्य वेदना होती है। ऐसा जानकर भी तृणों से पीड़ित मुनि वस्त्र की इच्छा नहीं करते हैं ॥३५॥

17. Pricks Trouble

The rough-bodied and without cloth the penance observer sage when sleeps on the bed of straw–grass in the winter period the tang of the straw pierce his body and cause pain. (34)

In the summer season due to the blazing summer sun the sage–observer of penance also feel the untolerable pain. Knowing such the monk, oppressed by straw-points does not desire the clothes. (35)

१८–जल्ल (मल)-परीषह

किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण व रएण वा ।
घिंसु वा परितावेण, सायं नो परिदेवए ॥३६॥
वेएज्ज निज्जरा-पेही, आरियं धम्मऽणुत्तरं ।
जाव सरीरभेउ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥३७॥

ग्रीष्म ऋतु में पसीने से गीले शरीर पर धूलि कण तथा मैल जम जाते हैं ऐसी स्थिति में भी मेधावी श्रमण साता-सुख के लिए विलाप न करे, व्याकुल न हो ॥३६॥

कर्म क्षय का इच्छुक मुनि मल जनित परीषह को सहन करे। इस श्रेष्ठ अनुत्तर धर्म को पाकर तत्त्वज्ञ मुनि जब तक शरीर न छूटे तब तक इस मैल को धारण करे। उसके प्रति जुगुप्सा न लाये, समभाव से सहन करे ॥३७॥

18. Dirt Trouble

In summer season his body become wet due to sweat and wet body is covered with dirt and dust; but the wise sage does not lament for his loss of comfort and relief. (36)

Having the aim of karma-destruction, the monk should bear this dirt trouble. Obtaining this excellent religion (law) he should carry the fifth on his body till death. He should not hate it (the fifth) and bear with undisturbed mind. (37)

१९–सत्कार-पुरस्कार-परीषह

अभिवायणमब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमन्तणं ।
जे ताइं पडिसेवन्ति, न तेसिं पीहए मुणी ॥३८॥
अणुक्कसाई अप्पिच्छे, अन्नाएसी अलोलुए ।
रसेसु नाणुगिज्झेज्जा, नाणुतप्पेज्ज पन्नवं ॥३९॥

राजा, शासक, नेता आदि जो अभिवादन, निमंत्रण, सम्मान आदि करते हैं तथा अन्य तीर्थिक साधु उन्हें स्वीकार करते हैं। लेकिन आत्मार्थी श्रमण ऐसे सत्कार की मन से भी इच्छा न करे ॥३८॥

मंदकषायी, अल्प इच्छा वाला और अज्ञात कुलों से भिक्षा ग्रहण करने वाला, रसादि में लोलुपता न रखने वाला बुद्धिमान श्रमण स्वादु रसों में आसक्ति न करे और (अन्यतीर्थिकों को सत्कार पाते देखकर) मन में किंचित् भी अनुताप न करे ॥३९॥

19. Good and Respectful Treatment Trouble

The kings, rulers, leaders, powerful men salute, invite and honour the hermitages–the followers of other creeds and they accept with cordial delight. But the self-indulgent sage should not have a desire of such salutation or honour, even by the mind. (38)

The sage, with few needs, less passions, getting alms from unknown houses, having no dainties, should not inflict to taste. He should not regret when he visualise that the hermitages–the followers of other creeds are receiving such respects. (39)

२०–प्रज्ञा-परीषह

'से नूणं मए पुव्वं, कम्माणाणफला कडा।
जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४०॥'
'अह पच्छा उइज्जन्ति, कम्माणाणफला कडा।'
एवमस्सासि अप्पाणं, नच्चा कम्मविवागयं ॥४१॥

मैंने निश्चय ही पूर्वजन्म में ज्ञानावरणीय (अज्ञान रूप फल देने वाले) कर्म किये हैं, ऐसे कर्मों का बन्ध किया है। तभी तो किसी के द्वारा (जीवादि तत्वों के विषय में) कुछ भी पूछे जाने पर मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाता ॥४०॥

पूर्वकृत अज्ञान रूप फल देने वाले कर्मों (ज्ञानावरणीय–ज्ञान प्रतिबन्धक कर्म) का विपाक होता ही है–ऐसा जान कर अपनी आत्मा को आश्वासित करे ॥४१॥

20. Knowledge (Intelligence) Trouble

In the previous life or lives really I have accumulated knowledge-obscuring karmas. So I can not reply the question (relating soul, non-soul elements) put up before me by anybody. (40)

The fruition is but natural, of preceding knowledge obscuring karmas–believing this maxim, the monk should assure his own self (soul). (41)

२१–अज्ञान-परीषह

'निरट्ठगम्मि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो।
जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावगं ॥४२॥'
'तवोवहाणमादाय, पडिमं पडिवज्जओ।
एवं पि विहरओ मे, छउमं न नियट्टई ॥४३॥'

मुनि ऐसा चिन्तन न करे कि 'मैंने व्यर्थ ही मैथुन आदि इन्द्रिय विषयों और सांसारिक भोगों का त्याग किया; क्योंकि मैं (अभी तक) यह नहीं जान पाता कि धर्म कल्याणकारी (श्रेय) है या पापकारी है ॥४२॥

मैं तप-उपधान आदि का पालन करता हूँ, विशिष्ट प्रतिमाओं को धारण करके भी विचरण करता हूँ; फिर भी मेरे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षय नहीं हुआ–साधक ऐसा भी निराशापूर्ण चिन्तन न करे ॥४३॥

21. Ignorance Trouble

The monk should not think like this–'it is useless that I have desisted from lust–the sensual pleasures, because until this day I could not know whether the religion (the religious rituals I adopted) is auspicious or vicious. (42)

The adept should not give place in his mind such desperate thoughts–though I observe austerities and meditation, practise chain-fast etc., still my knowledge obscuring karmas are not destructed (43)

२२–दर्शन-परीषह

'नत्थि नूणं परे लोए, इड्ढी वि तवस्सिणो।
अदुवा वंचिओ मि' त्ति, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥४४॥

'अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सई ।
मुसं ते एवमाहंसु' इइ भिक्खू न चिन्तए ॥४५॥

निश्चित रूप से परलोक नहीं है और तपस्वियों को ऋद्धि भी प्राप्त नहीं होती है अथवा मैं तो धर्म के नाम पर ठगा गया हूँ–साधु ऐसा चिन्तन न करे ॥४४॥

वर्तमान काल में जिन (अरिहंत देव) हैं, भूतकाल में जिन हुए थे अथवा आगामी काल में जिन होंगे–ऐसा जो कहते हैं, वे मिथ्यावादी हैं; साधु ऐसा विचार न करे ॥४५॥

22. Faith Trouble

Indeed, there is no life to come, nor an exalted state (ऋद्धि) which can be acquired by penances; or I have been deceived by the name of religion–the ascetic should have no thoughts like this. (44)

'Jinas were, are, would be in future, all this is humbug, utter lie.' Mendicant should not think like this. (45)

एए परीसहा सव्वे, कासवेण पवेइया ।
जे भिक्खू न विहन्नेज्जा, पुट्ठो केणइ कण्हुई ॥४६॥

–त्ति बेमि

ये सभी परीषह काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने बताए हैं। इन्हें जानकर, कहीं भी, किसी भी परीषह के उपस्थित होने पर भिक्षु इनसे पराजित न हो, इन सभी परीषहों पर विजय प्राप्त करे ॥४६॥

–ऐसा मैं कहता हूँ ।

All these troubles have been prescribed by *Kāśyapa Gotrīya Śramaṇa Bhagavāna Mahāvīra*. Knowing all these, the mendicant being afflicted by any or many of these troubles at a time, should not be overwhelmed by them but overcome them. (46) **–Such I speak**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३–"कालीपव्वंगसंकासे" में "कालीपव्व" का अर्थ–काकजंघा नामक तृणविशेष है (चूर्णि)। डॉ. हर्मन जेकोबी तथा डॉ. सांडेसरा आदि आधुनिक विद्वान इसका अर्थ "कौए की जांघ" करते हैं जो शरीर की अत्यन्त कृशता का सूचक है।

गाथा १३–चूर्णि के अनुसार मुनि जिनकल्प अवस्था में अचेलक रहता है। वृ. वृ. के मतानुसार जिनकल्पी मुनि अचेलक रहते हैं। स्थविरकल्पी भी वस्त्र प्राप्ति के अभाव में अचेलक रह सकता है।

गाथा २५–ग्राम कण्टक–कानों में कांटों के समान चुभने वाले कठोर शब्द (चूर्णि)।

गाथा ३९–चूर्णि के अनुसार "अणुक्कसाई" के दो रूप होते हैं–अणुकषायी–अल्पकषाय वाला और अनुत्कशायी–सत्कार-सम्मान आदि के लिये उत्कंठा न रखने वाला।

गाथा ४३–उपधान–आगमों का विधिवत् अध्ययन करते समय परम्परागत निश्चित विधि के अनुसार जो आयंबिल आदि तप किया जाता है, वह उपधान है. (वृ. वृ.)

Salient Elucidations

Gāthā 3–In the phrase *kālipavvaṅgasaṅkāse* the word *Kālipavva* according to *Curṇi* stands for a particular grass or straw named as *Kākajaṅghā*. But the modern scholars like Dr. Jacobi and Dr. *Sāṇḍesarā* accept it as the leg or thigh of crow. It shows the leanness of body.

Gāthā 13–Monk remains without cloths in *Jinakalpa* tradition (*Cūrṇi*). *Jinakalpī* monks remain without cloths. But *sthavira kalpī* ascetic also may remain clothless, if he does not get robe from house holders.

Gāthā 25–Grāma Kaṇṭaka–Harsh words piercing ears like thorns (*Curṇi*).

Gāthā 39–According to *Cūrṇi* the word *aṇukkasāī* has two forms –(1) *Aṇukaṣāyī*–having a few passions and (2) *Anutkaśāyī*–non-eager for welcome, honour etc.

Gāthā 43–While studying canonical scriptures, according the prescribed method at that time traditionally definite *āyaṁbila* penances are observed, that is *upadhāna*.

卐

तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन में मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक चार अंगों का विवेचन है; वे अंग हैं-(१) मनुष्यत्व, (२) श्रुति अर्थात्-सद्धर्म का श्रवण (३) श्रद्धा-सुने हुए सद्धर्म पर श्रद्धा (विश्वास) रखना और (४) संयम में वीर्य प्रकट करना, पुरुषार्थ एवं पराक्रम करना।

पिछले द्वितीय अध्ययन परीषह-प्रविभक्ति में साधु-जीवन में आने वाली कठिनाइयों (troubles) का वर्णन किया गया था। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन का विषय पूर्व अध्ययन की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। पूर्व अध्ययन में सिर्फ साधु चर्या का वर्णन था, और इसमें साधक के सम्पूर्ण जीवन का।

यदि मानव अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों, बाधाओं, विघ्नों, आपत्ति-विपत्तियों से घबराकर पलायनवृत्ति स्वीकार कर ले तो उसका पतन हो जाता है, उसे निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करने को विवश होना पड़ता है।

यहाँ मोक्ष-प्राप्ति के लिए आवश्यक चार अंगों (Four essentials for obtaining salvation) का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रथम है मनुष्यत्व।

नारक जीव सतत वेदनाओं से पीड़ित रहते हैं और देवता भोग-विलास में मग्न; अतः अति पीड़ा और अति भोग के कारण दोनों को ही धर्म के विषय में सोचने तक का अवकाश ही नहीं मिलता। पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यंच जीव को शुभकर्मोदयवश योग्य निमित्त मिल जाए तो वह अपनी आत्मा का उत्थान तो कर सकता है परन्तु मुक्ति प्राप्ति योग्य पुरुषार्थ नहीं कर सकता।

केवल मनुष्य ही इस योग्य होता है। मानव योनि प्राप्त होना ही सब कुछ नहीं है। कुछ मानव इन्द्रियहीन, अल्पायु, क्रूरकर्मा, असत्यदृष्टि वाले भी होते हैं। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रथम आवश्यक अंग-मानवता अथवा मनुष्यत्व है।

मानवता से युक्त बहुतों को सद्धर्म श्रवण में रुचि नहीं होती। कुछ लोग धर्म को सुन भी लेते हैं तो उस पर श्रद्धा-अटूट और अडिग विश्वास नहीं कर पाते। अनेक मत-पंथों और विचारकों के मन्तव्यों को पढ़-सुनकर उनकी सद्धर्म के प्रति श्रद्धा डगमगा जाती है। इसीलिए कहा है-श्रद्धा परम दुर्लभ है।

यदि श्रद्धा भी हो जाय तो सद्धर्म में पराक्रम-श्रमणधर्म का पालन और भी दुष्कर है। सांसारिक प्रपंचों तथा अन्य अनेक कारणों से व्यक्ति सद्धर्माचरण नहीं कर पाता।

प्रस्तुत अध्ययन में सार रूप में बताया गया है कि इन चारों अंगों की प्राप्ति और सम्यग् परिपालन से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस अध्ययन में २० गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 3
FOUR ESSENTIALS

Foreview

This chapter deals with the four essentials (अंग) for obtaining salvation. These are–

(1) Manhood (मनुष्यत्व) (2) Listening to de facto religion (सद्धर्म श्रवण–श्रुति) (3) Faith–(श्रद्धा)–firm belief on listened true religion and (4) Endeavour to restrainment (संयम में वीर्य प्रकट करना) to apply full energy and strength.

The preceding chapter 2 described the troubles may occur in ascetic life; while the subject–matter of this chapter has wide span compared to the preceding chapter. Preceding chapter dealt only the ascetic-life-order; while this chapter describes the life-order of all adepts.

If a man being perplexed due to the difficulties, hindrances, calamities of life, accepts the escape tendency, his down-fall is bound to occur. Being helpless he takes birth in lower class creatures.

Among the four essentials for obtaining salvation, the first one is manhood.

Hellish beings remain regularly oppressed by different types of hazardous agonies and the gods indulged in sensual pleasures. Hence due to extreme agony and extremity of sensual pleasures both of these have no time even to think about religion and religious rituals.

The five-sensed (पंचेन्द्रिय) animals and birds having the power of thinking, considering, deciding (संज्ञी) if they can get good efficient cause (निमित्त) due to their auspicious deeds, then they can practise religious rituals but not to that extent that they may be liberated ones.

Only man is capable to attain liberation. It is not sufficient to take birth in mankind. Some men are lack-sensed, short-live, cruel and of wrong outlook. Therefore manhood or humanity is the first and foremost essential for liberation.

The second is listening the true religion. Many men are full of human qualities; still they take no interest in listening the true religion.

Some human being are also of the type that they do listen the true religion but cannot deposit their faith, firm trust and strong belief in the doctrines of true religion. By listening and studying different creeds, sects and the thoughts of thinkers their faith about true religion wavers.

That is why said–Faith is very difficult to attain.

If any how faith is attained then the observation of sageness is more difficult due to worldly affairs and many other reasons man could not practise the true religion.

It is ascertained in this chapter that obtainment and truely practising of these four essentials result in the liberation.

There are 20 couplets (गाथा) in this chapter.

तइयं अज्झयणं : चाउरंगिज्जं
तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमंमि य वीरियं ॥१॥

इस लोक (संसार) में प्राणियों के लिए (मोक्ष प्राप्ति के साधन) चार अंगों की प्राप्ति होना दुर्लभ है- मनुष्यत्व (मानव गति की प्राप्ति) (२) मोक्षप्रदायक सद्धर्म को सुनना (३) उस पर श्रद्धा और (४) संय पराक्रम ॥१॥

Four essentials of supreme importance are very difficult to attain in this world by li beings : (1) human birth–humanity (2) listening to the true religion, which is helpfu attaining liberation (3) Faith in it and (4) Endeavour in self control–restrain (1)

समावन्नाण संसारे, नाणा-गोत्तासु जाइसु ।
कम्मा नाणा-विहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥२॥

यह संसारी जीव अनेक प्रकार के कर्म करके तथा उन कृत कर्मों के कारण विभिन्न प्रकार की ज और गोत्रों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह लोक के प्रत्येक प्रदेश का स्पर्श कर लेता है ॥२॥

This mundane soul doing various deeds, and due to those done deeds, takes birt different kinds of classes (जाति) and lineages (गोत्र). In this way it touches (borns and d every space-point of three worlds. (2)

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं, आहाकम्मेहिं गच्छई ॥३॥
एगया खत्तिओ होई, तओ चण्डाल-वोक्कसो ।
तओ कीड-पयंगो य, तओ कुन्थु-पिवीलिया ॥४॥

अपने किये हुए कर्मों के अनुसार कभी यह जीव देवलोक में देव बनता है, कभी नरक में नारक रू उत्पन्न होता है और कभी असुर बन जाता है ॥३॥

कभी यह जीव क्षत्रिय कुल में जन्म लेता है तो कभी चाण्डाल और वर्णसंकर के रूप में उत्पन्न होता है यही जीव कभी कीट-पतंग तो कभी कुंथु और कभी चींटी आदि क्षुद्र योनियों में जन्म धारण करता है ॥४॥

According its own activities this mundane soul sometimes takes birth as a god in heav sometimes becomes hellish being in hell and sometimes takes the birth as demi gods (असुर). (3)

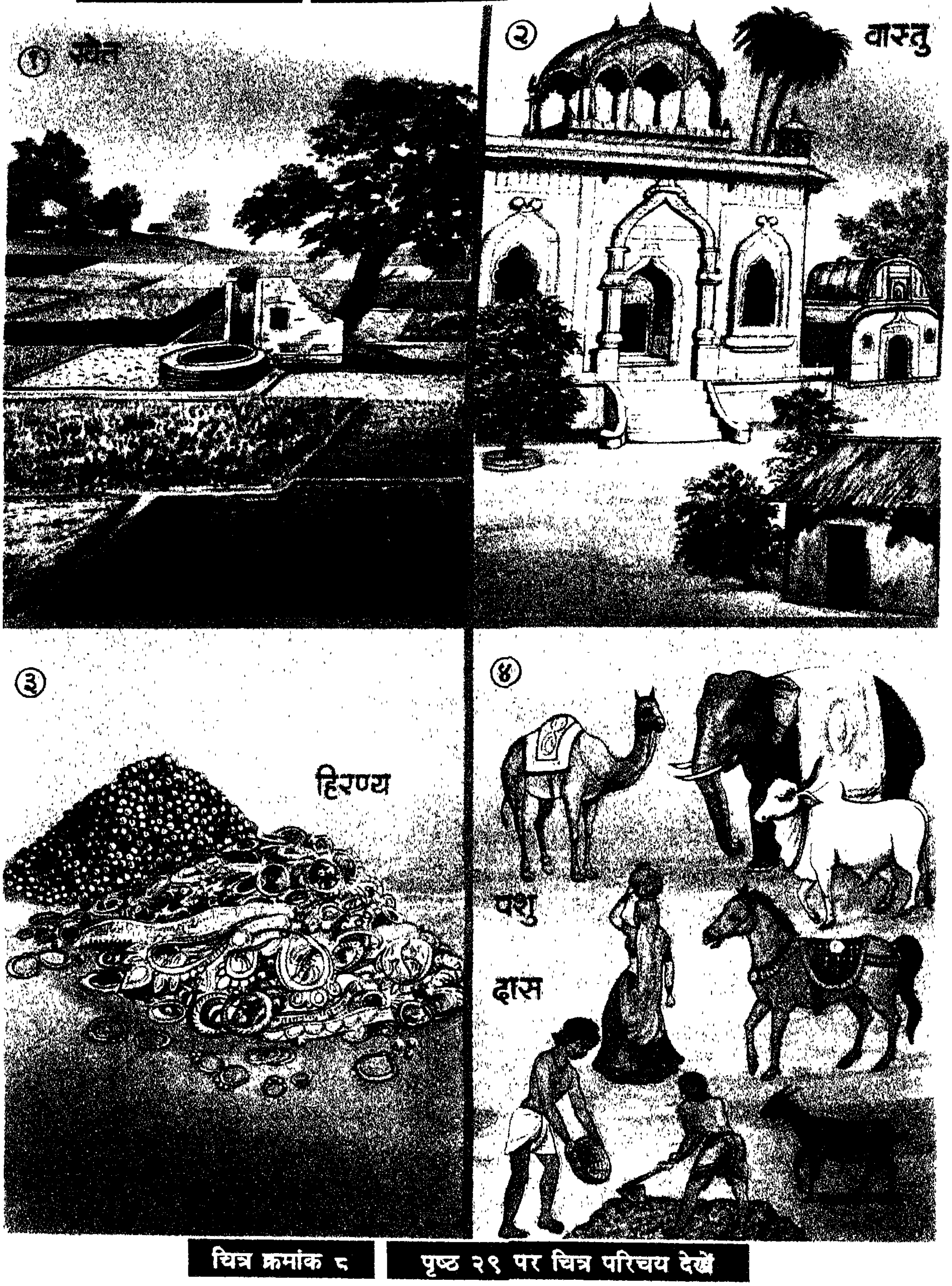
Sometimes they are born in warrior race, sometimes as hybrid (वोक्कस, वर्णसंकर) anc other time sinful person (चाण्डाल), sometimes as moths and insects and sometimes very min insects (कुंथु) (invisible with bare eyes) ants and other petty species (क्षुद्रयोनि). (4)

ILLUSTRATION NO. 7 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20



चित्र क्रमांक ७ पृष्ठ २९ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 8 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 20



चित्र क्रमांक ८ पृष्ठ २९ पर चित्र परिचय देखें

एवमावट्ट-जोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा ।
न निविज्जन्ति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥५॥

अनेक योनियों में परिभ्रमण करते हुए, कर्मों से मलिन जीव उसी प्रकार संसार से निवृत्त होने की इच्छा नहीं करते जिस प्रकार क्षत्रिय (ऐश्वर्यशाली, धनाढ्य, सत्तासम्पन्न व्यक्ति) विषय सुख साधनों से निवृत्त होना नहीं चाहते ॥५॥

Thus living beings with dirt of karmas, rotate again and again in numberless classes by birth and death; but they do not even wish to renounce this mortal world as the warriors (rich and powerful men) do not wish to leave of their comforts, luxuries and sensual pleasures. (5)

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥६॥

कर्मों के संयोग से मूढ़ बने हुए जीव मानवेतर (पशु, नरक आदि) योनियों में उत्पन्न होकर अत्यधिक त्रास और पीड़ा भोगते हैं ॥६॥

Living beings bewildered through the influence of their karmas taking birth in the classes other than man *i. e.*, (beast and hells) distressed, suffers much pain in those births. (6)

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययन्ति मणुस्सयं ॥७॥

(अति दीर्घकाल के पश्चात्) कदाचित् काल क्रम से कुछ आत्मविशुद्धि (मनुष्य भव प्रतिबन्धक कर्मों का क्षय) होने पर वह जीव पुनः मानव-भव को प्राप्त होता है ॥७॥

After a long time, any how according to time order he begets some what purification. Annihilating of human birth obstacling karmas he takes birth as a man. (7)

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्तिमहिंसयं ॥८॥
आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई ॥९॥
सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, नो एणं पडिवज्जए ॥१०॥

मानव (मनुष्य) योनि प्राप्त होने पर भी सद्धर्म का श्रवण कठिन है; जिसे सुनकर क्षमा, तप और अहिंसा को स्वीकार किया जा सकता है ॥८॥

सद्धर्म श्रवण का सुयोग मिल जाने पर भी उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है। सच्चा मोक्षमार्ग सुनकर भी अनेक व्यक्ति पथभ्रष्ट हो जाते हैं ॥९॥

बहुत से व्यक्ति सद्धर्म सुनकर उस पर श्रद्धा भी कर लेते हैं, वे संयम ग्रहण करने में रुचि भी रखते हैं, किन्तु संयम ले नहीं पाते। अतः संयम में पुरुषार्थ और भी दुष्कर है ॥१०॥

Taking birth in mankind, as a man, it is very difficult to hear the true religion; by hearing which forgiveness, penance and non-violence can be accepted (8)

Getting the favourable occasion to hear the true religion, it is more difficult to have firm faith in it. Hearing true liberation path, many person deprave from the true custom. (9)

Many men put their faith after hearing the true religion. They also become interested to restrainment; but due to adverse circumstances and unaviodable causes cannot accept restrainment. So it is much more difficult to invest energy in restrain. (10)

माणुसत्तंमि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं, संवुडे निद्धुणे रयं ॥११॥

जो व्यक्ति मनुष्य जन्म पाकर सद्धर्म-श्रवण करता है, उस पर श्रद्धा रखता है और तप (संयम) में पुरुषार्थ-पराक्रम करके, आस्रवों का निरोध करता है और कर्मरूपी धूलि को धुन देता है, दूर कर देता है ॥११॥

The soul taking birth as man, hears the true religion, puts firm faith in it and by endeavour in penance and restrain obstructs the inflow of karmas, he cudgels the dust of karmas, and throw away. (11)

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाणं परमं जाइ, घय-सित्त व्व पावए ॥१२॥

सरल व्यक्ति को शुद्धि प्राप्त होती है, शुद्ध आत्मा-हृदय में ही धर्म की अवस्थिति होती है, धर्मयुक्त व्यक्ति ही घृत सिंचित अग्नि के समान अपने आत्मतेज को प्रगट करके परम निर्वाण को प्राप्त करता है ॥१२॥

Simple and candid person begets purification and the religion stays in pure heart–soul. The person having the religion firmly indue to the core of heart, manifests the brilliance of his soul like the fire fed with ghee (purified butter) and attains the liberation. (12)

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खन्तिए ।
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥१३॥

कर्म (बंधन) के कारणों को क्षय (दूर) करके तथा क्षमा द्वारा यश का अर्जन करके इस भौतिक शरीर को छोड़कर जीव ऊर्ध्व दिशा (स्वर्ग अथवा मोक्ष) की ओर गमन करता है ॥१३॥

Destroying the causes of karma-bondage and acquiring fame by forgiveness, relinquishing this physical body the soul rises to upper regions *i. e.*, either to heaven or to liberation abode. (13)

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पन्ता, मन्नन्ता अपुणच्चवं ॥१४॥

विसदृश (अनेक प्रकार के) शील व्रतों का पालन करके जीव यक्ष (देव) बनते हैं; वे (देव) उत्तरोत्तर समृद्धि से महाशुक्ल (तेजस्वी) होकर दीप्तिमान होते हैं और तब वे ऐसा मानने लगते हैं कि स्वर्ग से च्यवन नहीं होता, अर्थात् देव अमर होते हैं ॥१४॥

Being endowed with many kinds of virtues (in this human life) takes birth as gods (*Yakṣa*), in the heavenly abodes situated one above the other. These gods shine forth like the great luminaries and apprehend never to descend thence, meaning gods are immortal. (14)

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव-विउव्विणो ।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठन्ति, पुव्वा वाससया बहू ॥१५॥

दिव्य काम-भोगों में लीन, इच्छानुसार रूप निर्मित करने में समर्थ वे देव असंख्य काल तक ऊर्ध्व कल्पों (देव-विमानों) में रहते हैं ॥१५॥

Those gods adhered to divine sensual pleasures, capable to change their forms according to their will, lives in upper heavenly zones upto innumerable years (15)

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ।
उवेन्ति माणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायई ॥१६॥

वे देवलोक में यथास्थान अपनी आयु सीमा तक रहते हैं; आयु समाप्त होने पर वे देवलोक से च्यवकर मनुष्य जन्म पाते हैं, वहाँ उन्हें दशांग (दश प्रकार की) भोग सामग्री प्राप्त होती है ॥१६॥

Those gods live in those heavenly zones upto their age-limit. On completion of age-limit they come down and take birth in human form, there they get ten types of pleasure-objects. (16)

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं ।
चत्तारि काम-खन्धाणि, तत्थ से उववज्जई ॥१७॥

जहाँ वे उत्पन्न होते हैं, वहाँ उन्हें इन चार कामस्कन्धों की उपलब्धि होती है-(१) खेत्त-क्षेत्र (खुली जमीन-Open land) (२) वत्थु-गृह (Covered area) (३) पशु और (४) दास पौरुषेय ॥१७॥

They take birth in those families, where they get these four objects of pleasure by birth. These four pleasure objects are-(1) Open Land (खेत्त) (2) Covered area (वत्थु) (3) Cattle (पशु) and (4) slaves and valets. (17)

मित्तवं नायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं ।
अप्पायंके महापन्ने, अभिजाए जसोबले ॥१८॥

वह सन्मित्रों से युक्त, ज्ञातिमान, उच्च गोत्रीय, सुन्दर वर्ण वाले, नीरोग, महाप्रज्ञ, अभिजात, यशस्वी और सामर्थ्यवान् होते हैं ॥१८॥

They have indeed-friends, relations, and be of high family (उच्च गोत्र), fine complexion, healthy, wise, noble, famous and strengthful. (18)

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥१९॥

मानव-सम्बन्धी अनुपम भोगों को आयु पर्यन्त भोग कर भी विशुद्ध धर्म की आराधना के प्रभाव से वे निर्मल बोधि (ज्ञान) से बोधित होते हैं ॥१९॥

Even enjoying these unrivalled human pleasures and comforts till life they attain supreme knowledge, due to practising the pure and meritorious religious order and laws in previous life. (19)

चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए ॥२०॥

–त्ति बेमि ।

इन चार अंगों को दुर्लभ जानकर तथा सर्वसावद्यविरत चारित्र रूप संयम को स्वीकार करके तपस्या द्वारा सर्व कर्मांशों की निर्जरा करके साधक शाश्वत सिद्ध हो जाता है ॥२०॥

–ऐसा मैं कहता हूँ ।

Believing these four essentials difficult to attain, accepting the restrain, devoid of all sinful activities, and shaken off the remnants of karmas he becomes a perfect–liberated soul. (20)

–Such I Speak

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५–"पूर्व" शब्द जैन-परम्परा में एक संख्या विशेष का वाचक है। ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने पर जो संख्या होती है, वह पूर्व है। अर्थात् ७० लाख छप्पन हजार करोड़ (७०,५६000,000,0000) वर्षों को पूर्व कहते हैं।

गाथा १७–"कामस्कन्ध" का अर्थ है–काम अर्थात् मनोज्ञ शब्द-रूपादि के हेतुभूत पुद्गलों का स्कन्ध-समूह। भोग-विलास के मनोज्ञ साधन। (सुखबोधा)

"दास पौरुष" में आये दास का अर्थ है–"वह गुलाम, जो खरीदा हुआ है, जो क्रेता स्वामी की संपत्ति समझा जाता है।" दास और कर्मकर अर्थात् नौकर में यही अन्तर है कि दास खरीदा हुआ होने से स्वामी की सम्पत्ति है और कर्मकर वेतन लेकर अमुक समय तक काम करता है, फिर छुट्टी।

Salient Elucidations

Gāthā 15–The world *pūrva* used in *Jaīn* tradition denotes a special numerical. The number got by multiply 84 lakh by 84 lakh is a *pūrva. i. e.,* 70 lakh 56 thousand crore (70,56,000,00,00,000) years makes a pūrva.

Gāthā 17–*Kāma-skandha* mean–*Kāma*–heart pleasing words, colours, forms etc., that are caused by the accumulation of material macro particles the pleasing or favourable means of physical and sensual desires. (*Sukhabodhā*)

'*Slave*' (दास) is the person who is purchased by paying his cost. His purchaser becomes his owner. Slave has no freedom.

The difference between servant (कर्मकर) and slave lies in the point that being purchased slave is the wealth of his owner, while servant gets the salary of his working time, and after that he is free.

चतुर्थ अध्ययन : असंखयं

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का असंखयं (संस्कृत रूपान्तर–असंस्कृत) नाम प्रथम गाथा के प्रथम शब्द पर आधारित है। यह नाम समवायांग में दिया गया है। इसका अर्थ है–जिसे सांधा न जा सके, टूटने के बाद जोड़ा न जा सके, जो मरम्मत के योग्य न (irreparable) हो।

निर्युक्ति में इस अध्ययन का गुणपरक नाम प्रमादाप्रमाद (Carefulness v/s Carelessness) है। इस नाम को अंग्रेजी अनुवाद में प्रो. हरमन जेकोबी ने भी स्वीकार किया है।

इससे पहले तीसरे अध्ययन में मोक्ष-प्राप्ति के चार अंगों का वर्णन किया गया था, जिनमें प्रथम अंग मनुष्यत्व है।

लेकिन मानव जीवन बहुत दीर्घ नहीं है, क्षण-विनाशी है, काल के किस क्षण में आयुष्य की कच्ची डोरी टूट जाय, कुछ निश्चित नहीं है। वस्तुतः मानव का जीवन ऐसी कच्ची डोर के समान है, जिसे एक बार टूटने पर पुनः सांधा नहीं जा सकता।

अतः प्रस्तुत अध्ययन में मानव को यही प्रेरणा दी गई है कि इस असंस्कृत मानव जीवन को पाकर प्रमाद का त्याग कर दे, प्रमादी बनकर जीवन को व्यर्थ न खोए, एक-एक क्षण का सदुपयोग करे।

यह संपूर्ण अध्ययन प्रमाद-अप्रमाद का विवेचन करता है।

इसमें बताया गया है कि भाई, बन्धु, स्त्री-पुत्र आदि परिवारी और मित्रजन, जिनके लिए व्यक्ति पाप कर्म करता है, फल भोगने में वे उसके भागीदार नहीं होते। कृत कर्मों का फल उस अकेले व्यक्ति को ही भोगना पड़ेगा; क्योंकि कर्म सत्य हैं और उन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं मिल सकता।

मरण के समय धन आदि सांसारिक वैभव प्राणी की रक्षा नहीं कर सकते। धन आदि को यहीं छोड़कर जाना पड़ता है।

साथ ही इस अध्ययन द्वारा, उस युग में प्रचलित मिथ्या मान्यताओं और धारणाओं की निस्सारता को भी उजागर किया गया है।

प्रमाद और अप्रमाद का विवेक करके प्रस्तुत अध्ययन में अप्रमाद के मूल सूत्रों को बहुत ही प्रेरणात्मक शैली में समझाया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में मात्र १३ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 4
IRREPARABILITY

Foreview

The title of this chapter *Asaṅkhayaṁ* (*Saṅskṛt* version *Asaṅskṛt*) is based on the first word of first couplet. This name is found in *Samavāyāṅga*. It means that after breaking that cannot be joined, which is irreparable.

Niryukti gives its name based on the subject matter–*Pramādā-pramāda*–Carelessness v/s Carefulness. This name is also accepted by German scholar Dr. Jacobi.

The preceding third chapter dealt with the four essentials for attaining emancipation. First of them was manhood.

But the life of a man is not long, it is of short-period, the untwisted thread of age may be broken at any point of time, nothing can be said definitely. Really life of a man is like such a untwisted thread that cannot be joined, if it once broken.

Hence, the main inspiration is given to man that getting this irreparable man-life, he should be non-negligent, should not lose his life in negligence, make every second beneficial

The full chapter thoroughly deals with negligence and non-negligence.

It is clarified with certainty that the person, who indulges himself in faulty and sinful deeds for the comfort and luxury of his family members, brethren, wife, son, friends etc., these do not participate the miseries and calamities caused by those sinful deeds. The man would have to bear those miseries alone. Because karmas are true and no one can get rid without bearing the ill-effects of them.

At the time of death wealth, money etc., cannot save the man. He is bound to go leaving all assets here.

As well as by this chapter the bogusness of the ill-traditions and false-mentalities have also been disposed.

By differentiating negligence and non-negligence, the fundamental maxims of non-negligence are vocated and advocated in very inspiring style in this chapter.

There are only 13 couplets (गाथा) in this chapter.

卐

चउत्थं अज्झयणं : असंखयं
चतुर्थ अध्ययन : असंस्कृत

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहिन्ति ॥१॥

जीवन असंस्कृत है, टूटने पर जोड़ा (सांधा) नहीं जा सकता। अतः प्रमाद (आलस्य), आत्म-विस्मरण मत करो। वृद्धावस्था में कोई शरण नहीं होता। ऐसा जानो (विचार करो) कि प्रमादी, हिंसक, असंयमी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य किसकी शरण ग्रहण करेंगे ॥१॥

Life is irreparable, if broken joint is impossible. Hence do not be negligent. Never forget your soul. Old age has no protection. Consider, careless, violent, non-restrained and overcome by senses–what refuge will take such persons. (1)

जे पावकम्मेहि धणं मणुस्सा, समाययन्ती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे, वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति ॥२॥

जो मानव अज्ञान एवं दुर्बुद्धिवश पाप कर्मों से धन का उपार्जन एवं संचय करते हैं वे पाप बंधन में पड़े हुए मनुष्य धन को यहीं छोड़कर तथा वैर (शत्रुता) का अनुबंध करके नरक में उत्पन्न होते हैं ॥२॥

The persons overwhelmed by ignorance and evilmindedness earn and accumulate wealth by sinful deeds, those people falling in the snare of sins, go to the hell bearing enmity and leaving the wealth here. (2)

तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ॥३॥

जिस प्रकार सेंध लगाता हुआ संधिमुख (मौके पर) पकड़ा गया चोर अपने ही पाप कर्मों से मृत्यु (त्रास, पीड़ा, छेदन-भेदन) पाता है इसी प्रकार जीव अपने ही किये हुए कर्मों के कारण इस लोक तथा परलोक में छेदन-भेदन आदि पाता है। क्योंकि किये किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना कभी छुटकारा नहीं होता ॥३॥

Like the wall-breaker caught red handed, is tortured due to his own sinful deeds, in the same way the soul is tortured in this and next life. Because none can get rid of the karma (actions) done by himself. (3)

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय-काले, न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति ॥४॥

संसारी जीव अपने व दूसरों (स्त्री-पुत्रादि) के लिए साधारण (सम्मिलित लाभ की इच्छा से) कर्म करता है। किन्तु उस कर्म के फलभोग के समय बन्धुजन सहायक नहीं होते ॥४॥

The empirical man (soul) acts generally for his own and others (wife, son, brother etc). But at the time of bearing the fruits (torments) of those deeds, no relative co-shares. (4)

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमंमि लोए अदुवा परत्था ।
दीव-प्पणट्ठे व अणन्त-मोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥५॥

प्रमादी पुरुष के लिए धन, इस लोक अथवा परलोक में त्राण (शरण) दाता, रक्षक नहीं होता। अंधेरी गुफा में जिसका दीपक बुझ गया हो, ऐसा अनन्त मोही जीव सुपथ मोक्ष मार्ग को देखकर भी नहीं देख पाता ॥५॥

The wealth cannot protect the careless man in this world and the next. As whose lamp has blown out in a dense cave could not see even the known way,. So the extremely illusioned man could not see the path of salvation. (5)

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी, न वीससे पण्डिए आसु-पन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारण्ड पक्खी व चरेऽप्पमत्तो ॥६॥

उचित कार्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाली बुद्धि का स्वामी (आशु प्रज्ञ) ज्ञानी साधक मोहनिद्रा में सोए हुए लोगों के बीच में रहकर भी जागृत रहे। क्षणभर का भी विश्वास न करे। काल (क्षण) भयानक है, शरीर दुर्बल है अतः भारण्ड पक्षी के समान सदा अप्रमत्त होकर विचरण करना चाहिए ॥६॥

The wise and prudent should remain always alert, though living amidst the souls slept in illusion, should not believe a moment, times are hard, the body-frame is feeble So be always careful like the bird *Bhāranda*. (6)

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो ।
लाभन्तरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा परिन्नाय मलावधंसी ॥७॥

साधक पग-पग पर दोषों की संभावना से सावधानी पूर्वक विचरण करे। छोटे-छोटे दोषों को भी पाश (जाल) माने। जब तक गुणों का लाभ हो तब तक शरीर को धारण करे और जब लाभ न होता दीखे तो धर्म-साधना पूर्वक शरीर को त्याग दे ॥७॥

Adept (साधक) at every step should remain alert from the probabilities of faults. Consider as a snare even the meagre faults. Support the body till it is helpful for getting the stake; and if it is not helping then bereave it. (7)

छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी ।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥८॥

जिस प्रकार कवच युक्त शिक्षित अश्व स्वच्छन्दता के निरोध से युद्ध में विजयी होता है, उसी प्रकार स्वेच्छाचार-त्यागी मुनि शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। इसीलिए मुनि पूर्व वर्षों में (साधना के प्रारम्भिक वर्षों से ही) अप्रमत्त होकर विचरण करे ॥८॥

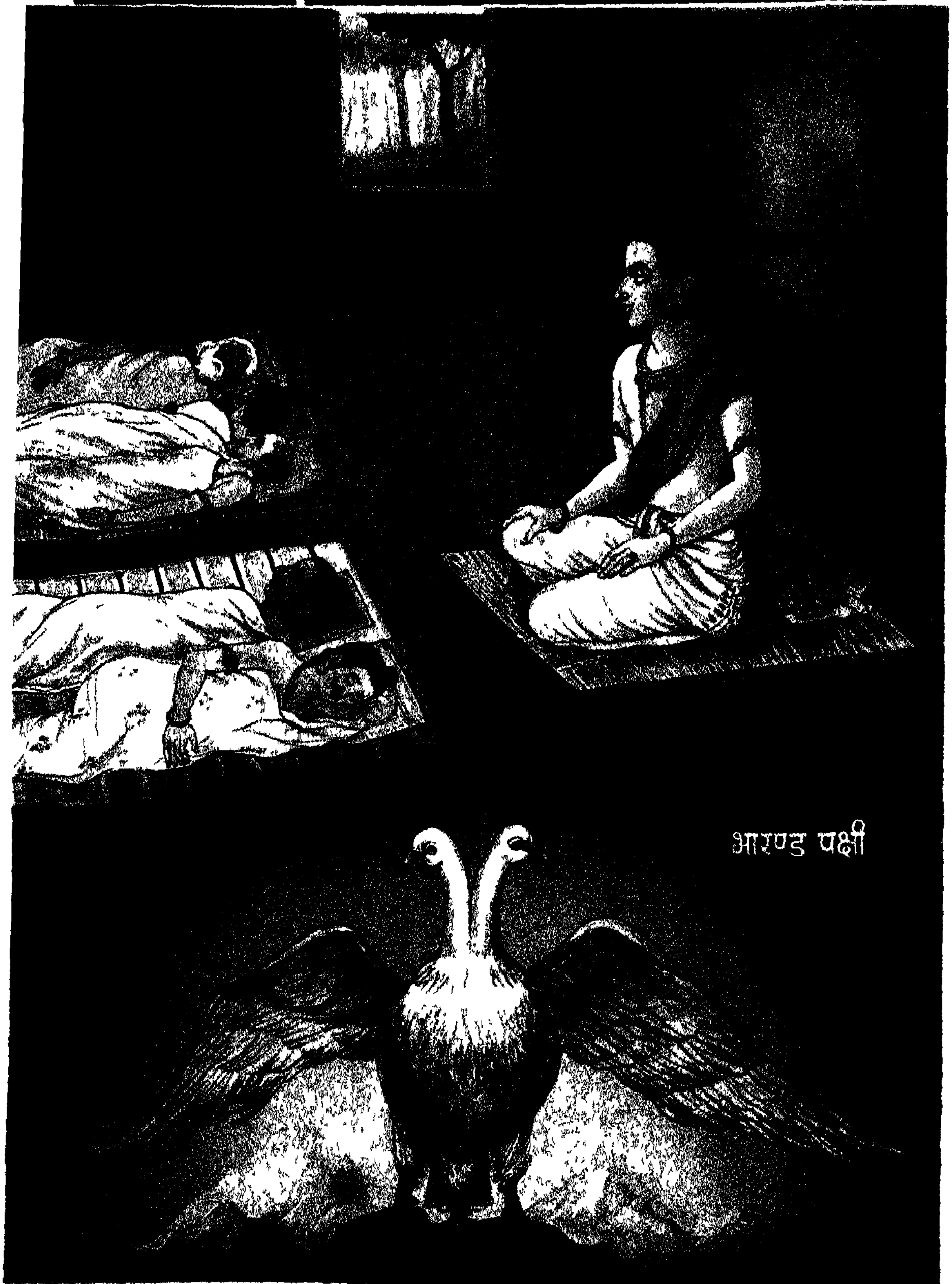
As the armoured and trained horse wins by obstructing despocity, so the monk renouncing the waywardness attains liberation quickly. That is for, the monk should be full of care from the beginning year of his practice. (8)

ILLUSTRATION NO. 9 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक ९ पृष्ठ २९ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 10 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १० पृष्ठ २९ पर चित्र परिचय देखें

स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासय-वाइयाणं ।
विसीयई सिढिले आउयंमि, कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥९॥

जो साधक साधना के प्रारम्भिक वर्षों में अप्रमत्त–जागृत नहीं रहता, वह बाद में भी अप्रमत्त नहीं हो सकता–यह धारणा ज्ञानीजनों की है। शाश्वतवादियों की धारणा इसके विपरीत है कि आयु के अन्तिम समय में अप्रमत्त हो जायेंगे। आयु के शिथिल होने पर तथा मृत्यु के प्रभाव से शरीर छूटने के समय वह (शाश्वतवादी) खेदित होता है ॥९॥

The practiser who does not remain alert–non-negligent in the elementary years of practice, he cannot be non–negligent in the later years–this is the firm determination of wise; while the perpetual's thinking is contrary to it, he asserts that the negligence would be attained in the ending period of life; but he (eternalist) laments, when grip of life loosens, death is near and the body is about to fall. (9)

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठाय पहाय कामे ।
समिच्च लोयं समया महेसी, अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो ॥१०॥

कोई व्यक्ति तत्काल ही विवेक (त्याग) करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए अभी से काम-भोगों को त्यागकर, मोक्षमार्ग में उद्यत होकर, प्राणिजगत का समभाव से अवलोकन करे। आत्मा की रक्षा करने वाला महर्षि अप्रमत्त होकर विचरण करे ॥१०॥

None can quickly be capable to attain discernment, therefore he should abstain his soul from sensual pleasures, understand the world, be impartial, and endeavour in the salvation-path. Guarding his own self the monk should never be careless. (10)

मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयन्तं, अणेग-रूवा समणं चरन्तं ।
फासा फुसन्ती असमंजसं च, न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ॥११॥

बार-बार मोहगुणों, शब्द आदि विषयों पर विजय प्राप्त करते हुए तथा संयम-मार्ग में विचरण करते हुए श्रमण को अनेक कटु कठोर स्पर्श स्पृष्ट करते हैं, किन्तु वह उन पर मन से भी द्वेष न करे ॥११॥

Again and again overcoming the sensual desires and controlling himself, various types of harsh touches afflict the sage but he should not hate them even in the mind. (11)

मन्दा य फासा बहु-लोहणिज्जा, तह-प्पगारेसु मणं न कुज्जा ।
रक्खेज्ज कोहं, विणएज्ज माणं, मायं न सेवे, पयहेज्ज लोहं ॥१२॥

हिताहित विवेक को मंद करने वाले अनुकूल स्पर्श बहुत लुभावने होते हैं। किन्तु साधक उनमें अपने मन को न लगाए। क्रोध से अपने को बचाये, अभिमान को दूर करे, माया-छल-कपट का सेवन न करे और लोभ को त्याग दे ॥१२॥

Such touches which make the discretion power of good and evil feeble are very attractive; but the adept (practitioner) should not take them to his mind. He should save himself from anger, make away the pride, be not hippocrite and abandon the greed. (12)

जेऽसंखया तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा ।
एए 'अहम्मे' त्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर-भेओ ॥१३॥

–त्ति बेमि ।

जो लोग कृत्रिम रूप से संस्कारी हैं, वे जीवन को सांधने योग्य मानते हैं। ऐसे लोग तुच्छ हैं, पर-प्रवादी हैं (दूसरों के निन्दक हैं), रागद्वेष से ग्रस्त हैं, परवश (वासनाओं के वशीभूत) हैं। इन्हें अधर्मी जानकर साधक इनसे दूर रहे और देह-त्याग (आयु के अन्तिम क्षणों) तक सद्‌गुणों (अप्रमत्तता) की कांक्षा–आराधना करता रहे ॥१३॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

Those, who are ostantate purified, consider the life reparable. Such persons are mean, false, accusers of others, victims of passions; knowing those irreligious and impious, the ascetic should remain far from them and till the end of life regularly practise the carefulness and virtues. (13) **–Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

भारण्ड पक्षी पौराणिक युग का एक विराटकाय पक्षी माना गया है। पंचतंत्र आदि में उसके दो ग्रीवा और एक पेट बताया गया है–"एकोदराः पृथग् ग्रीवा"। कल्पसूत्र की किरणावली टीका में भी उसके दो मुख और दो जिह्वा का उल्लेख है। इसका अर्थ है कि दो ग्रीवा एवं दो मुख होने से उसके आँख, कान आदि सब दो-दो हैं। जब वह एक ग्रीवा से भोजन करता है, तो दूसरी ग्रीवा को ऊपर किये हुये आँखों से देखता रहता है कि कोई मुझ पर आक्रमण तो नहीं करता है। इस दृष्टि से साधक को अप्रमत्तता के लिये भारण्ड पक्षी की उपमा दी जाती है। कल्पसूत्र में भगवान महावीर को भी अप्रमत्तता एवं सतत जागरूकता के लिये भारंड पक्षी की उपमा दी है। उक्त पक्षी का वर्णन वसुदेवहिण्डी आदि अनेक प्राचीन जैन-कथा-ग्रन्थों में भी आता है।

Salient Elucidations

Bhāraṇḍa is supposed to be a huge bird of bygone (पौराणिक) ages. *Pañcatatntra* says that it has two necks and one stomach and *Kiraṇāvalī* commentary of *Kalpasūtra* also mentions about its two mouths and two tongues.

It means that being two necks and two mouths on opposite sides; it had ear, nose, eyes etc., on both the opposite sides.

When he eats with one mouth (neck) then uprises the other neck and watches with the eyes lest no one attacks me.

By this point of view, the practitioner is resembled with *Bhāraṇḍa* for carefulness. In *Kalpasūtra*, for carefulness and utter alertness the resemblance of *Bhāraṇḍa* bird given even to *Bhagawāna Mahāvīra*.

The description of this bird we also get in ancient epical works like *Vasudevahiṇḍī* etc.

पंचम अध्ययन : अकाम-मरणीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम अकाम मरणीय है और निर्युक्ति में इसका दूसरा नाम मरणविभक्ति भी दिया गया है।

इससे पूर्व चतुर्थ अध्ययन में जीवन को असंस्कृत (irreparable) बताया था और प्रस्तुत अध्ययन में मरण का वर्णन हुआ है।

यह सत्य है कि प्राणी मात्र का मरण अवश्यम्भावी है। प्रत्येक प्राणी को मृत्यु का ग्रास अवश्य बनना है।

संसार का आदि प्रश्न है-मृत्यु क्या है?

क्या आत्मा मरती है? नहीं, वह तो अजर-अमर अविनाशी है, उसके मरण का तो प्रश्न ही नहीं है।

तब क्या शरीर मरता है? नहीं, वह भी मूल पुद्गल रूप से तो ज्यों का त्यों रहता है।

प्रश्न फिर भी ज्यों का त्यों है, मृत्यु क्या है?

समाधान है-आयुकर्म के समाप्त हो जाने पर आत्मा का शरीर से निकल जाना, आत्मा और देह का बिछोह ही मृत्यु है।

यदि ऐसा है तो क्या अन्तर पड़ा? प्रत्येक प्राणी मृत्यु से भयभीत क्यों रहता है?

भय अनजानी वस्तु से होता है। सामान्य मानव मृत्यु को नहीं जानता, इसीलिए भयभीत रहता है; किन्तु जो मृत्यु को जानता है, वह भयभीत नहीं होता, स्वेच्छामरण स्वीकार करता है।

इस तथ्य को प्रस्तुत अध्ययन में मरण के दो विभाग अकाममरण और सकाममरण (Non-Voluntary and Voluntary death) करके समझाया गया है।

सकाममरण में साधक मृत्यु का वीर योद्धा के समान साहसपूर्वक सामना करता है, अतिथि के समान स्वागत करता है और मृत्यु को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करता है, मृत्यु के समय वह शांत और प्रसन्नचित्त रहता है। उसका मरण सकाममरण अथवा पण्डितमरण कहा गया है।

इसके विपरीत अकाममरण जिसे बालमरण कहा गया है, प्रत्येक प्राणी का अनादि काल से होता रहा है और होता रहेगा।

अकाममरण अथवा बालमरण १२ प्रकार का है। इसमें क्रोध आदि कषायों तथा भय की प्रमुखता रहती है। जो प्राणी-विशेष रूप से मनुष्य सद्धर्माचरण नहीं करते हैं, गतानुगतिक लोक का अनुसरण करते हैं, वे मृत्यु के समय भयाक्रान्त होते हैं, दुर्गति में गिरते हैं, संसार बढ़ाते हैं। इसके विपरीत सकाममरण से मरने वाले संसार घटाते हैं।

इस तथ्य को दृष्टान्तों और रूपकों द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में पुष्ट किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३२ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 5
UNWILLING DEATH

Foreview

The title of this chapter is Unwilling Death and Niryukti mentions the other name–The type or Types of Death.

In the preceding fourth chapter the life was ascribed as irreparable; and in this chapter there is a description of death.

It is certain that the death of every living being is inevitable. Each and every being is bound to die.

The first and foremost question of the worldly being is–What is Death?

The soul dies ? No, it is immortal, imperishable and eternal. There is no question of its death.

Then the body dies ? No, it remains, as it is in the form of matter.

Still the question is standing, as it is–What is the death ?

The question can be pacified like this–On the destruction or completion of the age-determining karma, the soul exits from the body, thus the separation of soul and the body is the death.

If it is so, what difference does it make ? Why every living being fears the death ?

Unknown thing begets fear. Average man does not know about death, so he remains frightened; but who knows all about death, he never frightens, he accepts voluntary death.

This fact is vividly described in this chapter by dividing death into two types (1) Non–voluntary death (अकाममरण) and (2) Voluntary death (सकाममरण).

In voluntary death the wise person faces the death as a brave hero, welcomes like a guest and wilfully accepts, at the last moments he remains calm and pleasing-mind. His death is called as voluntary and *pundit* (पण्डित) wise man's death, the death of religious man.

Contrary to this, the non-voluntary or unwilling death, which is termed as *Bala-marana* (बालमरण–the death of irreligious persons and beings) is continually flowing since beginningless times, and it will occur in future as well.

Non-voluntary death is of 12 types. The passions like anger etc., play important role in it. The living beings–specially human beings, who do not observe the true religious norms and follow worldly traditions; they become frightened at the time of death, befall in nether births and enhances the cycle of births and deaths.

Contrary to this, who accepts the voluntary death, they limit their transmigration.

This fact is invigorated by examples and allegories in this chapter.

There are 32 couplets in this chapter.

पंचमं अज्झयणं : अकाम-मरणिज्जं
पंचम अध्ययन : अकाम-मरणीय

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे ।
तत्थ एगे महापन्ने, इमं पट्ठमुदाहरे ॥१॥

यह संसार महाप्रवाह युक्त एक सागर है। इसे तैर कर पार करना बहुत ही कठिन कार्य है। फिर भी कुछ लोग इसे पार कर गये हैं। उनमें से एक महाप्रज्ञ श्रमण भगवान महावीर भी हैं। उन्होंने ऐसी प्ररूपणा की है-॥१॥

This world is like an ocean having huge flow and mighty waves. It is very difficult to cross it swimming. But some persons crossed. The utmost witty *Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra* also crossed it. He precepted like this-(1)

सन्तिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मारणन्तिया ।
अकाम-मरणं चेव, सकाम-मरणं तहा ॥२॥

मरण के दो स्थान (भेद या रूप) बताये हैं-(१) अकाममरण और (२) सकाममरण ॥२॥

There are two types of death-(1) Non-voluntary death and (2) Voluntary death. (2)

बालाणं अकामं तु, मरणं असइं भवे ।
पण्डियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे ॥३॥

बाल अथवा सदसद्विवेक-विकल अज्ञानी जीवों का अकाम (अनिच्छापूर्वक) मरण बार-बार होता है किन्तु पंडितों (ज्ञानी-चारित्रवानों) का सकाम (इच्छापूर्वक) मरण उत्कृष्ट रूप से एक बार होता है ॥३॥

Ignorants-devoid of the discretion of truth and non-truth, again and again die involuntary death; but the *puṇḍits* having true knowledge and conduct die voluntary death excellently only once. (3)

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।
काम-गिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वई ॥४॥

अकाममरण के विषय में भगवान महावीर ने बताया है कि काम-भोगों में आसक्त अज्ञानी जीव घोर क्रूरकर्म करता है ॥४॥

Bhagavāna Mahāvīra told about non-voluntary death that the true-knowledge-devoid being indulged in passions does more cruel deeds. (4)

जे गिद्धे कामभोगेसु, एगे कूडाय गच्छई ।
'न मे दिट्ठे परे लोए, चक्खु-दिट्ठा इमा रई' ॥५॥

जो व्यक्ति काम-भोगों में गृद्ध होता है, वह अकेला कूट (हिंसा तथा मृषावाद) की ओर जाता है। वह कहता है कि परलोक तो मैंने देखा ही नहीं किन्तु यह सांसारिक सुख तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं ॥५॥

Person addicted to sensual pleasures, he alone runs towards violence and falsehood. He says--I have not seen the next birth but these worldly pleasures I see with my own eyes. (5)

'हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया ।
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो' ॥६॥

ये काम-भोग तो हाथ में आये हुए हैं; लेकिन भविष्यकालीन सुख तो अनिश्चित हैं। कौन जानता है, परलोक है भी अथवा नहीं है ॥६॥

The enjoyments and pleasures of this life are in my hand; but the future ones are uncertain, who knows whether there is next life or not. (6)

'जणेण सद्धिं होक्खामि', इइ बाले पगब्भई ।
काम-भोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जई ॥७॥

'मैं तो जन-साधारण के साथ ही रहूँगा' (इन्हीं के बीच रहना है, जो इनकी दशा होगी, वह मेरी भी हो जाएगी) ऐसी धारणा बनाकर वह ढीठ बन जाता है और कामभोग-गृद्धि के कारण स्वयं ही कष्टित-पीड़ित होता है ॥७॥

The unreasoned (बाल) man decides 'I will live with generality. I have to live amidst them. Whatever would be the condition of all, the same would be of mine.' Thus he becomes impudent. So because of indulgence to pleasures and amusements he absolves in grieves and miseries himself. (7)

तओ से दण्डं समारभई, तसेसु थावरेसु य ।
अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयग्गामं विहिंसई ॥८॥

तब वह त्रस और स्थावर जीवों पर दण्ड-प्रयोग करता है। सप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन ही प्राणी समूह की हिंसा, उनका विनाश करता है ॥८॥

Then he acts cruelly against movable and immovable beings. He kills them with purpose and even without purpose. (8)

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मन्नई ॥९॥

वह हिंसक, अज्ञानी-बाल, मृषावादी, कपटी, चुगलखोर, शठ, धूर्त होता है तथा मद्य-मांस का सेवन करता हुआ मानता है कि यही श्रेयस्कर है ॥९॥

That man devoid of reason kills the living beings, tells lies, deceives, calumniates, dissembles, and drinking liquor and eating meats--supposes that these are the right things, I am doing. (9)

कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागु व्व मट्टियं ॥१०॥

वह तन और वचन से सदा उन्मत्त बना रहता है, धन और स्त्रियों में आसक्त रहता है तथा राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियों से उसी प्रकार कर्म-मल का संचय करता है जिस प्रकार अलसिया--कैंचुआ शरीर और मुख दोनों ओर से मिट्टी का संचय करता रहता है ॥१०॥

ILLUSTRATION NO. 11 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक ११ | पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 12

SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १२

पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

Overbearing in acts and words, keenly desirous of wealth and women, he accumulates sins by both the activities of attachment and aversion; just like earthworm (अलसिया) gathers dust by its mouth (swallowing) and by body (lithering in the mud). (10)

तओ पुट्ठो आयंकेणं, गिलाणो परितप्पई ।
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेहि अप्पणो ॥११॥

तब वह अज्ञानी प्राणघातक रोग से ग्रसित होकर खिन्न और परितप्त होता है तथा अपने किये हुए दुष्कर्मों का अनुप्रेक्षण-स्मरण कर परलोक से भयभीत होने लगता है ॥११॥

Then he (the unreasoning man) afflicted by life-scorching diseases laments; taking stock of his own evil deeds he dreads remembering the life to come. (11)

सुया मे नरए ठाणा, असीलाणं च जा गई ।
बालाणं कूर-कम्माणं, पगाढा जत्थ वेयणा ॥१२॥

तब (वह सोचता है) मैंने नरक-स्थानों के विषय में सुना है–जो अज्ञानी, क्रूरकर्मी और दुःशील जीवों की गति है और वहाँ अत्यधिक तीव्र कष्टकारी वेदना होती है ॥१२॥

He thinks–I have heard about the hells, which are the places of births for cruels and sinners, and there are enormous torments. (12)

तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मेयमणुस्सुयं ।
आहाकम्मेहिं गच्छन्तो, सो पच्छा परितप्पई ॥१३॥

मैंने परम्परा से सुना है कि उन नरकों में उत्पत्ति-स्थान (कुम्भियाँ हैं, जिनमें जन्म लेते ही प्राणी युवा हो जाता है) हैं। मनुष्य-आयु क्षय होते ही जीव अपने कर्मों के अनुसार वहाँ (नरकों में) जाता हुआ बहुत दुःखी होता है ॥१३॥

By tradition, I have heard that there are birth places in hells. Those birth places are of pitcher shape, where the being becomes young as it takes birth. After completion of human–existence the soul goes there according to his evil deeds, then he remorse. (13).

जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गंमि सोयई ॥१४॥

जिस प्रकार कोई गाड़ीवान समतल महापथ को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ विषम मार्ग पर चल पड़ता है और फिर गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है ॥१४॥

As a cart-man, who against his better judgement leaves the highway which is smooth, takes the rough and rugged path and laments when the axle breaks–(14)

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चु-मुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयई ॥१५॥

इसी प्रकार धर्म-पथ का व्युत्क्रम करके अधर्म पर चलने वाला, मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ अज्ञानी जीव भी गाड़ी की धुरी टूटे गाड़ीवान के समान चिन्ता–शोक करता है ॥१५॥

In the same way, the person imbibed in empirical pleasures, who transgresses the religious laws and gives up righteousness, repents, when he is in the jaws of death like a broken axle cartman (15)

तओ से मरणन्तमि, बाले सन्तस्सई भया।
अकाम-मरणं मरई, धुत्ते व कलिना जिए ॥१६॥

एक ही दाँव में सब कुछ हारे हुए जुआरी के समान वह अज्ञानी जीव मृत्यु के समय परलोक के भय से संत्रस्त होकर अकाममरण से मरता है ॥१६॥

Like a gambler, who has lost all in a single chance, that self-foolishman, being dreadful by the torments of next life, dies by in-voluntary–unwilling death. (16)

एयं अकाम-मरणं, बालाणं तु पवेइयं।
एत्तो सकाम-मरणं, पण्डियाणं सुणेह मे ॥१७॥

यहाँ तक तो अज्ञानी जीवों के अकाम मरण का वर्णन किया गया है। अब यहाँ से आगे पंडितों (ज्ञानी जीवों) के सकाम मरण का वर्णन मुझसे सुनो ॥१७॥

Thus has been described the death of fools which is un-willing death, Now I tell about wisemen's death, hear that from me. (17)

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेयमणुस्सुयं।
विप्पसण्णमणाघायं, संजयाणं वुसीमओ ॥१८॥

जैसा कि मैंने परम्परा से सुना है–संयत, जितेन्द्रिय तथा पुण्यशालियों का मरण अति प्रसन्न और आघात रहित होता है ॥१८॥

As I have heard traditionally by the enlightened preceptors–the expiration of pious, meritorious, restrained persons becomes free of injuries and full of peace. (18)

न इमं सव्वेसु भिक्खूसु, न इमं सव्वेसुऽगारिसु।
नाणा-सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो ॥१९॥

इस सकाममरण से न सभी साधु ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं और न सभी गृहस्थ ही; क्योंकि गृहस्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार के शील वाले होते हैं और बहुत से भिक्षु (साधु) भी विषम (विभिन्न) शील वाले होते हैं ॥१९॥

Such a wilful, non-injurious and peaceful death does not fall to all mendicants, nor to every householder; for the morality of householders is of various types and the mendicants are not always good-charactered throughout. (19)

सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥२०॥

कुछ भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थ संयम में बढ़कर होते हैं किन्तु शुद्ध आचारवान् साधु सभी गृहस्थों से संयम में श्रेष्ठ होते हैं ॥२०॥

Some householders are superior to some mendicants in restrain; but the ascetics observing pure conduct are superior to all house-holders. (20)

चीराजिणं नगिणिणं, जडी-संघाडि-मुण्डिणं ।
एयाणि वि न तायन्ति, दुस्सीलं परियागयं ॥२१॥

चीवर-वस्त्र, अजिन-मृगचर्म, नग्नता, जटाधारण, चिथड़ों की कंथाधारण, शिरोमुण्डन-ये बाह्य वेश भी दीक्षा धारण किये हुए दुःशील-दुराचारी साधु की दुर्गति में जाने से रक्षा नहीं कर सकते ॥२१॥

Cloths, bark, deer-skin, nudity, mat, tonsure of hairs, rags-these outward tokens cannot save a sinful ascetic from the lower births. (21)

पिण्डोलए व दुस्सीले, नरगाओ न मुच्चई ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ॥२२॥

भिक्षा द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने वाला भिक्षु भी यदि दुःशील-दुराचारी है तो उसे नरक में जाना ही पड़ता है और सुव्रती भिक्षु हो अथवा गृहस्थ वह स्वर्ग ही प्राप्त करता है ॥२२॥

Getting his livelihood by alms if such a mendicant is sinful in deeds and thoughts, he is bound to go to hell; while pious mendicant and householder goes to heaven. (22)

अगारि-सामाइयंगाइं, सड्ढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं न हावए ॥२३॥

श्रद्धालु गृहस्थ साधक सामायिक साधना के सभी अंगों की काया से (मन-वचन से भी) साधना करे तथा शुक्ल और कृष्णपक्ष दोनों में (पर्व तिथियों को) पौषध करे, एक भी पर्व रात्रि को पौषध न छोड़े ॥२३॥

A faithful householder should practise equanimity performance (सामायिक साधना) along with all its essentials everyday with devoted mental, vocal and corporeal activities. He should also observe *poṣadha* (a fortnightly religious rite) on ceremonial both days of black and white fortnight of every lunar month; missing not a single ceremonial day (23)

एवं सिक्खा-समावन्ने, गिह-वासे वि सुव्वए ।
मुच्चई छवि-पव्वाओ, गच्छे जक्ख-सलोगयं ॥२४॥

इस प्रकार धर्म शिक्षा से सम्पन्न गृहवासी-गृहस्थ में रहता हुआ सुव्रती भी औदारिक शरीर को छोड़कर देवलोक-देवनिकाय में उत्पन्न होता है ॥२४॥

Planted in this discipline, a householder firm in his vows, after quitting his mortal body of flesh and bones takes birth in heavenly abode as a god. (24)

अह जे संवुडे भिक्खू, दोण्हं अन्नयरे सिया ।
सव्व-दुक्ख-प्पहीणे वा, देवे वावि महड्ढिए ॥२५॥

संवृत (पांच आस्रवों का निरोध करने वाला) भिक्षु की दो ही गति संभव हैं; या तो वह सभी दुःखों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है अथवा महर्द्धिक देव बनता है ॥२५॥

By checking influx a mendicant can attain one of the two states-either he gets liberation from all miseries or be a god with great fortune. (25)

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमन्ताणुपुव्वसो ।
समाइण्णाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो ॥२६॥

देवों के आवास क्रमशः ऊपर-ऊपर उत्तरोत्तर उत्तम, द्युतिमान् तथा यशस्वी देवों से आकीर्ण होते हैं ॥२६॥

The abodes of gods, layer on layer, one than the other are lustrous and shining. Most illustrious gods reside there. (26)

दीहाउया इड्ढिमन्ता, समिद्धा काम-रूविणो ।
अहुणोववन्न-संकासा, भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा ॥२७॥

उनमें निवास करने वाले देव यशस्वी, दीर्घायु, दीप्ति–कान्ति वाले, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होते हैं; अभी-अभी उत्पन्न हुए हों ऐसी कान्ति वाले तथा सूर्य-प्रभा के समान तेजस्वी होते हैं ॥२७॥

Those gods have long life, great fortune, fame, affluent and can transform their shape at will, remain life-long as fresh as just born, having a brilliance of many sun. (27)

ताणि ठाणाणि गच्छन्ति, सिक्खित्ता संजमं तवं ।
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे सन्ति परिनिव्वुडा ॥२८॥

इन रमणीय देव-स्थानों में उपशान्त हृदय वाले भिक्षु (श्रमण) अथवा सद्गृहस्थ हिंसा से निवृत्त और तप-संयम की साधना करके जाते हैं–उत्पन्न होते हैं ॥२८॥

The calm-hearted, passionless mendicants and fully devoted good-conducted householders go to those god abodes by observing penance and restrain and devoid of violence in full. (28)

तेसिं सोच्चा सपुज्जाणं, संजयाण वुसीमओ ।
न संतसन्ति मरणन्ते, सीलवन्ता बहुस्सुया ॥२९॥

उन संत जनों द्वारा पूज्य-वन्दनीय संयत और इन्द्रिय विजयी आत्माओं का यह वर्णन सुनकर शीलवान् और बहुश्रुत साधक (मुनि अथवा गृहस्थ) मृत्यु के समय भी संत्रस्त–भयभीत नहीं होते ॥२९॥

Having heard this description of venerables, restrained, sense-overcomers–by the saints, the good conducted and well-versed adept, may he be a mendicant or a householder, does not tremble and remorse at the hour of death. (29)

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खन्तिए ।
विप्पसीएज्ज मेहावी, तहा-भूएण अप्पणा ॥३०॥

मेधावी साधक सकाममरण और अकाममरण की आपस में तुलना करके विशिष्ट (सकाममरण) को स्वीकार करे तथा दयाधर्म और क्षमा से अपनी आत्मा को भावित कर प्रसन्न रहे ॥३०॥

The intelligent person, after comparing both types of death–voluntary and involuntary, one with another, accepts the better one and remains happy by absolving with kindness and forgiveness. (30)

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमन्तिए।
विणएज्ज लोम-हरिसं, भेयं देहस्स कंखए ॥३१॥

मरणकाल निकट आने पर जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या ग्रहण की थी उसी श्रद्धा से गुरु के निकट रहकर पीड़ाजन्य लोमहर्ष को दूर करके शांति के साथ शरीर छूटने की प्रतीक्षा करे ॥३१॥

By which firm faith had accepted the ascetic life with the same firm faith, at the time of death, he should, remaining in the presence of preacher, subdue all emotions of fear and joy and wait for the dissolution of the body. (31)

अह कालंमि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं।
सकाम-मरणं मरई, तिण्हमन्नयरं मुणी ॥३२॥

–त्ति बेमि।

मृत्युकाल प्राप्त होने पर मुनि भक्तपरिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन (पादपोपगमन)–इन तीन प्रकार के सकाममरण में से किसी एक प्रकार का मरण स्वीकार करके सकाममरण से शरीर का त्याग करता है ॥३२॥

–ऐसा मैं कहता हूँ।

At the arrival of appropriate time of quitting the body, the monk dies with his will according to one of three methods, viz., (1) Giving up food and water till life (भक्त परिज्ञा) (2) pinning to a spot till death (इंगिनी मरण) (3) lying on one side like a fallen branch of a tree. (प्रायोपगमन). (32)

Such I speak

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २–"मरण" के दो प्रकार हैं–अकाम और सकाम। अकाम-मरण वह है, जो व्यक्ति विषयों व भोगों की लालसा के साथ जीना ही चाहता है, मरना नहीं। फिर भी आयुक्षय होने पर उसे लाचारी में अनचाहे ही मरना होता है। सकाम-मरण कामनासहित मरण है। इसका केवल इतना ही अर्थ अभिप्रेत है कि जो साधक विषयों के प्रति अनासक्त रहता है, जीवन और मरण दोनों ही स्थितियों में सम होता है, वह मरणकाल के समय भयभीत एवं संत्रस्त नहीं होता, अपितु अपनी पूर्ण आध्यात्मिक तैयारी के साथ अभय भाव से मृत्यु का स्वागत करता है। अकाम बालमरण है, और सकाम पण्डित मरण।

गाथा १०–"सिसुनागुव्व मट्टियं" में कहा है कि जैसे शिशुनाग दोनों ओर से मिट्टी का संचय करता है, वैसे ही बाल-जीव भी दोनों ओर (राग-द्वेष) से कर्ममल का संचय करता है। मन और वाणी, राग और द्वेष, पुण्य और पाप आदि अनेक विकल्प किये हैं। (चूर्णि)

शिशुनाग गंडूपद अर्थात् अलसिया को कहते हैं। वह मिट्टी खाकर अन्दर में मल का संचय करता है, और शरीर की स्निग्धता के कारण बाहर में भी इधर-उधर रेंगते हुए अपने शरीर पर मिट्टी चिपका लेता है।

Salient Elucidations

Gāthā 2–There are two types of death–one unwilling and the other wilful Unwilling death is that, when a man wants to live for the coveteouness of sensual and worldly pleasures and enjoyments but bound to die due to the end of age. *(Vṛhad Vṛtti)*

Wilful death is a voluntary death. It means that the mendicant who remains non-aligned in empirical joys and miseries, equanimous in life and death, he does not remorse at the time of expiration; but fearlessly welcomes death with his spiritual pre-preparations.

Non-voluntary death is the death of the non-discretionary beings while voluntary death is wise man's quitting the body.

Gāthā 10–As earthworm (Jacobi says it a small snake)–it is identified with *gaṇḍūpada* or *alasiā*–accumulates mud (clay) from both the sides, by mouth and by body. In the same way, the soul devoid of the sense of its own welfare, accumulates the kārmic dust, by attachment and detachment both. Many divisions are narrated there, like–mind and speech, attachment and detachment merit and demerit etc., etc. *(Cūrṇi)*

Śiśunāga Gaṇḍūpada is *alasiā*. It accumulates mud internally in his body by eating clay and due to the greasiness of his body, creeping hither and thither it sticks the dust to his body outwardly.

षष्टम अध्ययन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय है। यहाँ क्षुल्लक का अभिप्राय नवदीक्षित अथवा लघुमुनि व शिष्य है और निर्ग्रन्थ शब्द श्रमण-साधु का वाचक है।

निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग जैन धर्म के लिए अति प्राचीन काल से होता रहा है। भगवान महावीर को निग्गंठ नायपुत्ते कहा गया तथा उनके श्रमणों को भी निग्गंठ अथवा नियंठ-निर्ग्रन्थ कहा गया है।

निर्ग्रन्थ का अर्थ है-ग्रंथ रहित होना। ग्रन्थ सूक्ष्म और स्थूल रूप से दो प्रकार का है। सूक्ष्म ग्रन्थ आन्तरिक परिग्रह-मिथ्यात्व, क्रोध-मान-माया, लोभ-आदि १४ प्रकार का है।

इसी आन्तरिक ग्रन्थ के प्रभाव से बाह्य ग्रन्थ-धन-धान्य आदि १० प्रकार के परिग्रह का संचय किया जाता है अथवा इनके प्रति आसक्ति रखी जाती है।

पिछले पांचवें अध्ययन में साधक के लिए सकाम-मरण को श्रेयस्कर बताया था किन्तु स्मरणीय तथ्य यह है कि सकाम अथवा पंडितमरण निरासक्त निर्ग्रन्थ श्रमण को ही होता है। पंडितमरण का मूल वीतराग भाव में निहित है।

प्रस्तुत अध्ययन में लघुमुनि को ग्रन्थरहित होने की प्रेरणा देकर वीतराग भाव का संस्पर्श करने के लिए सावधान किया गया है।

जैनधर्म और आगमों में बहु प्रचलित शब्द मिथ्यात्व के लिए प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम गाथा में अविद्या शब्द रखा गया है और बताया गया है कि जितने भी अविद्यावान पुरुष हैं, वे सभी दु:खी होते हैं। इन शब्दों से क्षुल्लक मुनि को मिथ्यात्व से विरत होने की प्रेरणा दी गई है।

सम्पूर्ण अध्ययन में अनासक्ति का स्वर गूँज रहा है। लघु मुनि को प्रेरणा दी गई है कि धन, परिजन आदि रक्षक नहीं हो सकते। इसलिए कहा गया है कि आसक्ति और स्नेह को तोड़ दो। यहाँ तक कि अपने शरीर के प्रति जो मोह है, उसका भी त्याग कर देना चाहिए।

सभी प्रकार के राग-द्वेष से मुक्त होना श्रमण का लक्ष्य है, इसी लक्ष्य की ओर लघु श्रमण को प्रेरित किया गया है।

एकान्तवादियों के चक्रव्यूह में न फँसकर शुद्ध श्रमणाचार का पालन करते हुए अप्रमत्त भाव से विचरण करने की प्रेरणा दी गई है। मुमुक्षु, आत्म-गवेषी साधु के लिए प्रस्तुत अध्ययन में निर्ग्रन्थता का बहुत ही प्रेरक विवेचन हुआ है।

इस अध्ययन में १८ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 6
NEWLY CONSECRATED SAGE (YOUNG MONK)

Foreview

The chapter is entitled as *'On Young Monk'* (क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय) Here *Kṣullaka* word denotes newly consecrated (नवदीक्षित) or young monk (लघुमुनि) and disciple; and the word Knotless (निर्ग्रन्थ) is used for the sage–a Jain ascetic.

The word knotless (निर्ग्रन्थ) has been vividly used for Jain religion since the time immemorial. *Bhagavāna Mahāvīra* also called as *Niggṇṭha Nāyaputte* (निग्गंठ नायपुत्ते) and his follower sages are also designated as *Nigganṭha or Niyanṭha–Nirgrantha* (नियंठ-निर्ग्रन्थ).

The word *Nirgrantha* means to be devoid of knot or to be knotless. Knots are of two types–one subtle (सूक्ष्म) and the other gross (स्थूल). Subtle knots are of 14 types, like–wrong faith, anger, pride, deceipt, greed etc.

Due to the effect of these internal or subtle knots the external knots–wealth, grains etc., 10 types of possessions (परिग्रह) are accumulated and indulgement to all these.

In the fifth preceding chapter it was narrated in detail that the practiser should prefer volunary death. It is better for him.

But the rememberable fact is, that only the non-attached sages can attain this type of death; as the root of wilful death lies in non-attaching reflections.

In this chapter the young monk is inspired to be knotless; and made to be ever careful to attain the reflection of freedom of attachment towards the empirical affairs, may these be external or internal.

In the first couplet of this chapter the word *avidyā* is put for vividly described and known false belief (मिथ्यात्व) which is popularly used in Jain canons and literature.

It is forcefully told that all the persons having wrong faith, lament and fall in miseries. By these words the young monk is inspired to get rid of false belief.

The chapter is full of the inspiration of non-attachment. Young monk is told that wealth, family members etc., can not protect; so have no love or attachments towards them.

The aim of sage is to be free from attachment and detachment and this is the final object of young monk also.

Keeping away from the snare of one-endedists, he should observe pure Jain order. In this chapter knotlessness has been convincingly described for self-seeking and salvation-wishing sages.

There are only 18 couplets in this chapter.

卐

छट्ठमज्झयणं : खुड्डागनियंठिज्जं
षष्टम अध्ययन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

जावन्तऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारंमि अणन्तए ॥१॥

जितने भी अविद्यावान् पुरुष (अज्ञानी-मिथ्यात्वी पुरुष) हैं, वे सभी दुःख को उत्पन्न करते हैं। वे मूढ़ अनंत संसार में बार-बार लुप्त होते हैं, डूब जाते हैं ॥१॥

All the persons steeped in wrong faith and ignorant of truth, cause pains and troubles for themselves. Those foolishes transmigrate in the world which has no end. (1)

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाईपहे बहू ।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ॥२॥

इसलिए पण्डित–ज्ञानी पुरुष जीवयोनियों में उत्पन्न होने के मार्गों (स्त्री-पुत्र-धन आदि के प्रति मोह) को पाश–प्रबल बंधन जाने, सत्य का स्वयं अन्वेषण करे और सभी जीवों के प्रति मित्रता का आचरण करे, मैत्रीभाव रखे ॥२॥

Hence the wise person having right faith, should consider well the ways of births *i.e.*, woman (wife), son, wealth etc., take these as fast snare of bondage, he should search himself the truth, be compassionate to all beings and have the feeling of friendliness towards them. (2)

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥३॥

माता-पिता, पुत्रवधू, भाई, पत्नी और अपने आत्मजात (औरस) पुत्र भी, स्वयंकृत कर्मों के भार से लुप्त होते (संसार समुद्र में डूबते) और सभी प्रकार के कष्टों से त्राण दिलाने–रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं ॥३॥

Parents, daughter-in-law, brother, wife and own son–all these are not capable to protect the soul from its own deeds and the calamities of all kinds. (3)

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे ।
छिन्द गेहिं सिणेहं च, न कंखे पुव्वसंथवं ॥४॥

इस अर्थ (सत्य) की समीक्षा करके सम्यग्दृष्टि पुरुष मन में यह धारणा निश्चित करले तथा आसक्ति और स्नेह के बंधन को तोड़कर पूर्व परिचितों से संसर्ग की इच्छा भी न करे ॥४॥

The pure faith-man should take this truth to heart; he should therefore cut off love and attachment and not hanker after his former acquaintances. (4)

गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं ।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि ॥५॥

गाय-बैल-अश्व आदि पशु, मणि कुण्डल, दास तथा अन्य पुरुष-सेवक-इन सभी को अपनी इच्छा से छोड़ देने वाला व्यक्ति (परलोक में) कामरूपी-इच्छानुसार रूप बनाने वाला देव होगा ॥५॥

Cows, oxen, horses, jewels and ear-rings, cattle, slaves and servants–one who gives up all these possessions at his own will becomes the god in next birth, possessing the power of changing his form at will. (5)

थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं ।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयणे ॥६॥

स्थावर-जंगम–चल-अचल संपत्ति, धन-धान्य, उपस्कर (घर का सामान–गृहोपकरण) भी कर्मों से दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त कराने में समर्थ नहीं है ॥६॥

The immovable-movable possessions, wealth, furniture, store of grains, furniture and other articles of home–all are not strong enough to relieve from the miseries caused by the deeds of a being. (6)

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए ।
न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए ॥७॥

सभी प्राणियों को, सभी ओर से प्राप्त होने वाला, सभी प्रकार से अपनी आत्मा का सुख प्रिय है तथा उन्हें अपना आयुष्य प्रिय है। यह देख-सोचकर भय और वैर से विरत साधक किसी के भी प्राणों का हनन न करे ॥७॥

Everything that happens to some body, affects him personally, every being loves the joy of his own self and they love their lives. Knowing this fact, do not deprive them from their lives. (7)

आयाणं नरयं दिस्स नायएज्ज तणामवि ।
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं ॥८॥

बिना दी हुई वस्तु लेना नरक-गमन का कारण है, यह जानकर साधक बिना दिया हुआ एक तिनका भी न ले। असंयम (या पाप) के प्रति अरुचि रखने वाला भिक्षु अपने पात्र में ही गृहस्थ द्वारा दिये गये आहार का भोजन करे ॥८॥

To take anything ungiven by its owner is the way going to hell; knowing this the adept should not take a blade of grass ungiven. The mendicant having aversion to un-restrain should eat the food given by a house-holder, that is put in his own alm-bowl. (8)

इहमेगे उ मन्नन्ति, अप्पच्चक्खाय पावगं ।
आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चई ॥९॥

कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही केवल आर्य तत्त्वों के जान लेने मात्र से सभी दुःखों से विमुक्त हुआ जा सकता है ॥९॥

Many are of the opinion that it is possible to relieve from all miseries by the knowledge of right elements. There is no need of abstaining from sins. (9)

भणन्ता अकरेन्ता य, बन्ध - मोक्खपइण्णिणो ।
वाया - विरियमेत्तेण, समासासेन्ति अप्पयं ॥१०॥

जो बंध-मोक्ष के सिद्धान्तों की प्रतिज्ञा (स्थापना) तो करते हैं लेकिन मोक्ष–प्राप्ति के लिए कुछ भी क्रिया नहीं करते, वे वाणी की वीरता से अपने आप को आश्वासन देते रहते हैं ॥१०॥

Talking and acknowledging the maxims of bondage and liberation but not acting in accordance of these tenets; such persons seek comforts for their soul in mighty words. (10)

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं ?
विसन्ना पाव-कम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥११॥

विभिन्न प्रकार की भाषाएँ और अनेक प्रकार की विद्याओं का शिक्षण भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। स्वयं को पण्डित ज्ञानी मानने वाले मूढ़ अज्ञानी पापकर्मों में डूबे रहते हैं ॥११॥

Various types of languages or clever talking and study of science, literature etc, are not capable of protection nor helpful for attaining liberation. The fools, ignorants of truth, sinking lower and lower through their sins, believes themselves to be the wise, truth knowing men. (11)

जे केई सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो ।
मणसा कायवक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥१२॥

जो शरीर में, शरीर के वर्ण और रूप में मन-वचन-काया से सर्वथा आसक्त हैं, वे सभी अपने लिए दुःख का ही उपार्जन करते हैं ॥१२॥

Those who have attachment for shape, colour, form of body with mind, speech and activities, they only create misery for themselves. (12)

आवन्ना दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए ।
तम्हा सव्वदिसं पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए ॥१३॥

ऐसे लोगों ने इस अनन्त संसार में लम्बे मार्ग को ग्रहण किया है। इसलिए साधक को सभी दिशाओं (जीवों के उत्पत्ति स्थानों) को देखकर अप्रमत्त भाव से विचरण करना चाहिए ॥१३॥

Those persons have adopted a long route of this un-ending world. Hence adept, knowing all the birth places of the beings, should always be careful. (13)

बहिया उड्ढमादाय, नावकंखे कयाइ वि ।
पुव्वकम्म - खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ॥१४॥

ऊर्ध्व (मोक्ष का) लक्ष्य अपनाकर साधक कभी बाह्य विषयों की आकांक्षा न करे। इस शरीर को केवल पूर्वबद्ध कर्मों को क्षय करने के लिए धारण करे ॥१४॥

Determining the aim of liberation, adept should never desire worldly objects, but sustain his body only to annihilate previously bound karmas. (14)

विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए ।
मायं पिंडस्स पाणस्स, कडे लद्धूण भक्खए ॥१५॥

समय (अवसर) को जानने वाला साधक कर्म (बंध) के कारणों को जानकर उन्हें दूर करके विचरण करे तथा गृहस्थ द्वारा उसके अपने लिए बनाए गये भोजन-पानी में से अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण करके उस भोजन को खाए ॥१५॥

Realiser of the importance of time, an adept recognising the causes of kārmic bondage should make away them and live patiently. He should take permitted quantity of food and water, prepared by householders for their own consumption. (15)

सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ॥१६॥

संयमी लेपमात्र (लेशमात्र) भी संचय न करे। वह पक्षी के समान निरपेक्ष होकर तथा पात्र हाथ में लेकर भोजन की गवेषणा करे ॥१६॥

Restrained should not accumulate the eatables even so little sticking his alms-bowl; but like a bird he should seek for food with alms-bowl in his hand. (16)

एसणासमिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए ॥१७॥

भिक्षु एषणा समिति और लज्जा से युक्त होकर ग्राम नगर आदि में प्रतिबन्ध रहित होकर विचरण करे तथा अप्रमत्त साधु गृहस्थों के घरों में आहार-पानी की गवेषणा करे ॥१७॥

Mendicant should wander in villages, cities with seeking-restraint; being himself non-negligent should take food from negligents (प्रमत्त) householders. (17)

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ।
अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए ॥१८॥

–त्ति बेमि ।

उन अनुत्तरज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तरज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हन्, ज्ञातपुत्र, वैशालिक भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है ॥१८॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

Thus has been spoken by the *Arhan*, *Jñātputra*, venerable, native of *Vaiśālī*, who possesses supreme knowledge and perception, *Bhagavāna Mahāvīra* having utmost knowledge and perception simultaneously. **–Such I speak**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ८–"दोगुंछी" का अर्थ है "जुगुप्सी" जुगुप्सा करने वाला (चूर्णि)। जुगुप्सा का अर्थ है–संयम। असंयम से जुगुप्सा अर्थात् विरक्ति ही संयम है–"दुगुंछा–संजमो। किं दुगुं छति ? असंजमं।"

Salient Elucidations

Gāthā 8–Dogunchī means a decrier (*Cūrṇi*). Decry here means *jugupsā*–restrain. *Jugupsā* from unrestrain, in other words aversion is restrain. *Duguṅchā–Saṅjamo. Kiṁ duguṁ chati ? Asaṅjamaṁ.*

सप्तम अध्ययन : उरभ्रीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम उरभ्रीय है। यह नामकरण उरभ्र के दृष्टान्त के आधार पर हुआ है। समवायांग तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति में इसका नाम 'उरब्भिज्जं' है किन्तु अनुयोगद्वार में इसे 'एलइज्जं' कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम गाथा में भी 'एलयं' शब्द का प्रयोग हुआ है। उरभ्र और एलक–दोनों ही शब्द पर्यायवाची हैं। इनका अर्थ है–भेड का बच्चा–मेमना ! अतः दोनों ही नाम एक ही भाव को स्पष्ट करते हैं।

श्रमण संस्कृति का मूल स्वर त्याग और विरक्ति है। विरक्ति कामभोगों से, इन्द्रिय-विषयों से। इन्द्रिय और इनसे प्राप्त होने वाला सुख स्थायी नहीं है, क्षणिक है। इस क्षणिकता को जानते हुए भी साधारण मानव अल्पकालिक सुख-भोग के लोभ को त्याग नहीं पाता।

लेकिन इस अध्ययन द्वारा साधक को सावधान किया गया है कि तुच्छ एवं क्षणिक सुखों के प्रलोभन में वह अपनी बड़ी हानि न कर ले। इन्द्रियासक्ति के दुष्परिणामों तथा कटुफलों को बताने के लिए इस अध्ययन में ५ व्यावहारिक दृष्टान्त दिये गये हैं। दृष्टान्तों की मुख्यता के कारण यह अध्ययन दृष्टान्त प्रधान हो गया है।

१. प्रथम दृष्टान्त–काम-भोग का कटुफल

किसी धनी पुरुष के पास एक गाय और उसका बछड़ा था तथा उसने एक मेमना (भेड़ का बच्चा) भी पाल रखा था। वह गाय-बछड़े को सूखी घास देता और मेमने को खूब अच्छा पौष्टिक-स्वादिष्ट भोजन देता, स्नान कराता, शरीर पर प्यार से हाथ फिराता। कुछ ही दिनों में मेमना मोटा-ताजा हो गया। उसके शरीर पर मांस चढ़ गया, वह तुन्दिल हो गया।

बछड़ा मालिक के इस भेदपूर्ण व्यवहार को देखता। एक दिन उसने माँ (गाय) से उदास-निराश स्वर में शिकायत की–

"माँ ! देखो, मालिक मेमने को कितना प्यार करता है? कैसा पौष्टिक भोजन देता है? कुछ ही दिनों में वह कैसा मोटा-ताजा हो गया है? और हमें सूखी घास देता है; जबकि तुम तो मालिक को दूध भी देती हो। फिर भी वह हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करता है?"

अनुभवी गाय ने प्यार से बछड़े को दुलराते हुए कहा–

"वत्स ! यह मेमना आतुर-लक्षण है। इसकी मृत्यु निकट है। यह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। इसे जो प्यार और अच्छा भोजन मिल रहा है, उसके पीछे मालिक का क्षुद्र स्वार्थ है। कुछ ही दिनों में इसका परिणाम तुम खुद ही देख लोगे।"

कुछ दिन बीते। मालिक के घर पर मेहमान आ गये। बस, वही उस मेमने का अन्तिम दिन सिद्ध हुआ। स्वामी ने मेहमान की खातिरदारी के लिए उसे काटा और उसके मांस से अतिथि का सत्कार किया, उसे खिलाया और मालिक के परिवार ने भी खाया।

निर्दयतापूर्वक मेमने के वध को देखकर बछड़ा घबड़ा गया। उसका रोम-रोम कांपने लगा। माँ के आंचल में अपना मुँह छिपाते हुए उसने कहा–

"माँ ! आज मालिक ने अपने लाड़ले मेमने को मार दिया। क्या मैं भी किसी दिन इसी तरह मार दिय जाऊँगा?"

गाय ने अपने वत्स (बछड़े) को दुलराते-पुचकारते हुए कहा-

"नहीं बेटा ! तू क्यों काटा जायगा? तू तो सूखी घास खाता है। जो रूखा-सूखा खाते हैं; उन्हें ऐसा भयंकर फल नहीं भोगना पड़ता। जो मनचाहे सुस्वादु भोजन खाते हैं, ऐश करते हैं, इन्द्रिय-विषयों में लम्पट बने रहते हैं, उन्हीं को ऐसे भयंकर परिणाम भोगने पड़ते हैं, छुरी उन्हीं के गले पर चलती है, जो आसक्त होते हैं।"

माँ (गाय) का आश्वासन पाकर बछड़ा शांत हो गया।

इस दृष्टान्त का आशय साधक को इन्द्रिय-विषयों और काम-भोगों के कटुफल दिखाकर उनसे विरक्त करना है। क्योंकि भोगों की ओर रुचि भी साधक-जीवन को नष्ट कर देती है।

२. दूसरा दृष्टान्त—अल्प के लिए अधिक को गँवाना

एक भिखारी था। उसने परदेश जाकर बड़ी कठिनाई से एक हजार कार्षापण इकट्ठे किये। उन कार्षापणों की थैली लेकर वह अपने गाँव लौट रहा था। मार्ग व्यय के लिए उसने कुछ काकिणियाँ (एक कार्षापण की ८० काकिणी) अलग रख ली थीं। एक बार वह कहीं एक काकिणी भूल गया और आगे चल दिया। रास्ते में काफी दूर आगे जाने पर उसे काकिणी की याद आई। वह एक काकिणी को कैसे छोड़ सकता था? रास्ता जंगल का था। उसने हजार कार्षापणों की थैली गड्ढा खोद कर एक वृक्ष के नीचे गाड़ दी और काकिणी लेने वापिस चल दिया।

उसे थैली गाड़ते एक तस्कर ने छिपकर देख लिया। वह थैली लेकर चम्पत हो गया।

दमक (भिखारी) उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ काकिणी भूल आया था लेकिन उसे वहाँ काकिणी नहीं मिली, वापस लौटा तो हजार कार्षापणों की थैली भी गायब थी।

उसने एक काकिणी के लिए हजार कार्षापण गँवा दिये। अब वह माथा पीटकर पश्चाताप करने लगा।

इस दृष्टान्त में अत्यधिक लोभ का दुष्परिणाम दिखाया है। लोभासक्त व्यक्ति इसी तरह धोखा खाते हैं। अल्प सुख के लिए अधिक (दिव्य) सुखों को खो देने वाले भी इसी तरह दुःखी होते हैं।

३. तीसरा दृष्टान्त—स्वाद के लिए जीवन-नाश

एक राजा था। उसे आम बहुत प्रिय थे। नित्य और अधिक आम खाने के कारण, वह रोगी हो गया। एक अनुभवी वैद्य ने इलाज करके उसे स्वस्थ कर दिया और साथ ही कह दिया कि राजन् ! आम तुम्हारे लिए अपथ्य है। यदि आम का एक टुकड़ा भी तुमने खा लिया तो बच नहीं सकोगे।

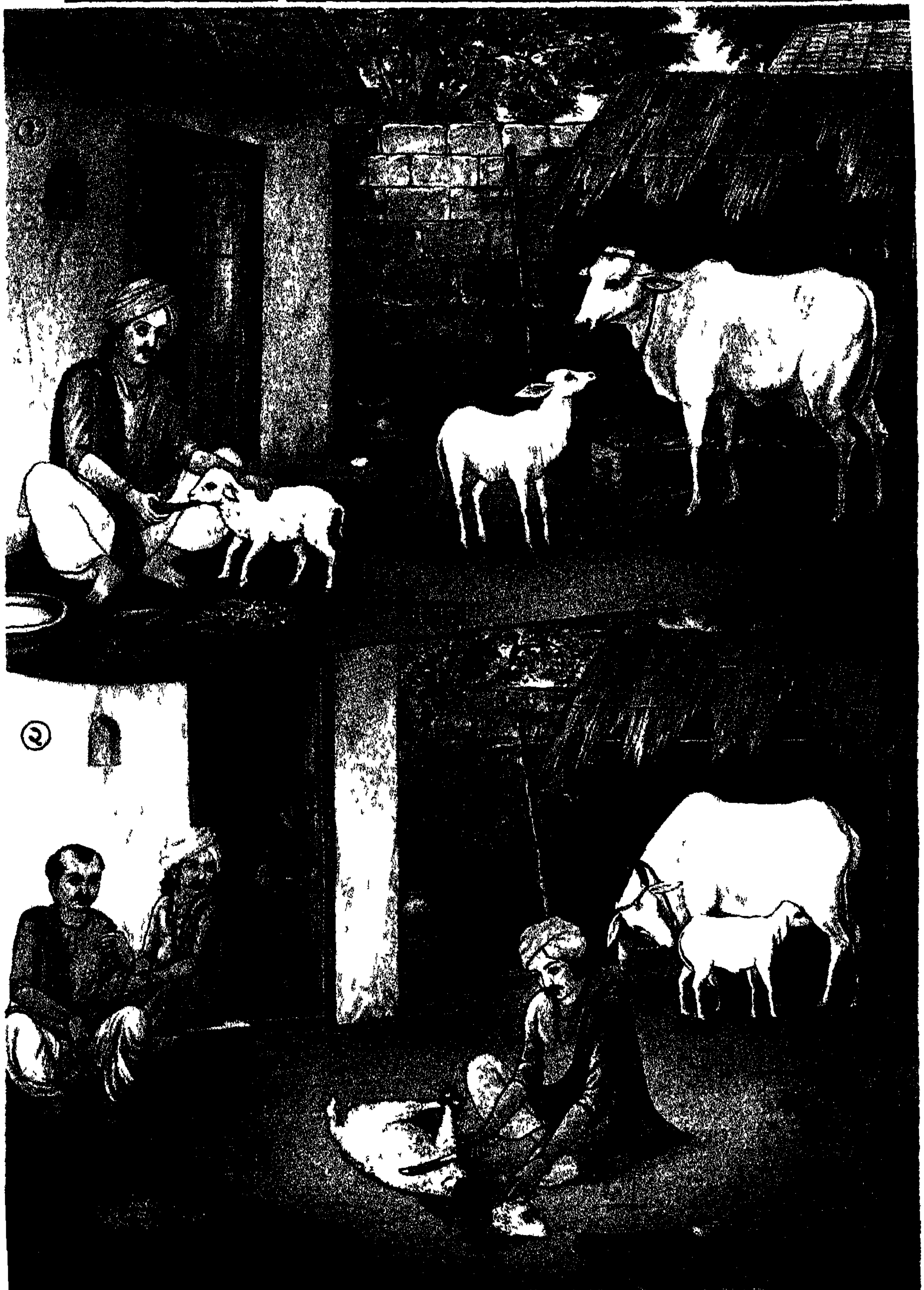
एक बार राजा मंत्री के साथ वन भ्रमण को गया। वन में आम्रवृक्ष पर पके आमों को देखकर उसका मन ललचा गया। मंत्री के मना करते-करते भी उसने एक आम खा लिया। रोग तीव्र वेग से उभरा और राजा का प्राणान्त हो गया।

क्षणिक इन्द्रिय सुखों में आसक्त मानव इसी तरह अपने अनमोल जीवन को गँवा देते हैं।

४. चौथा दृष्टान्त—तीन वणिक्-पुत्र

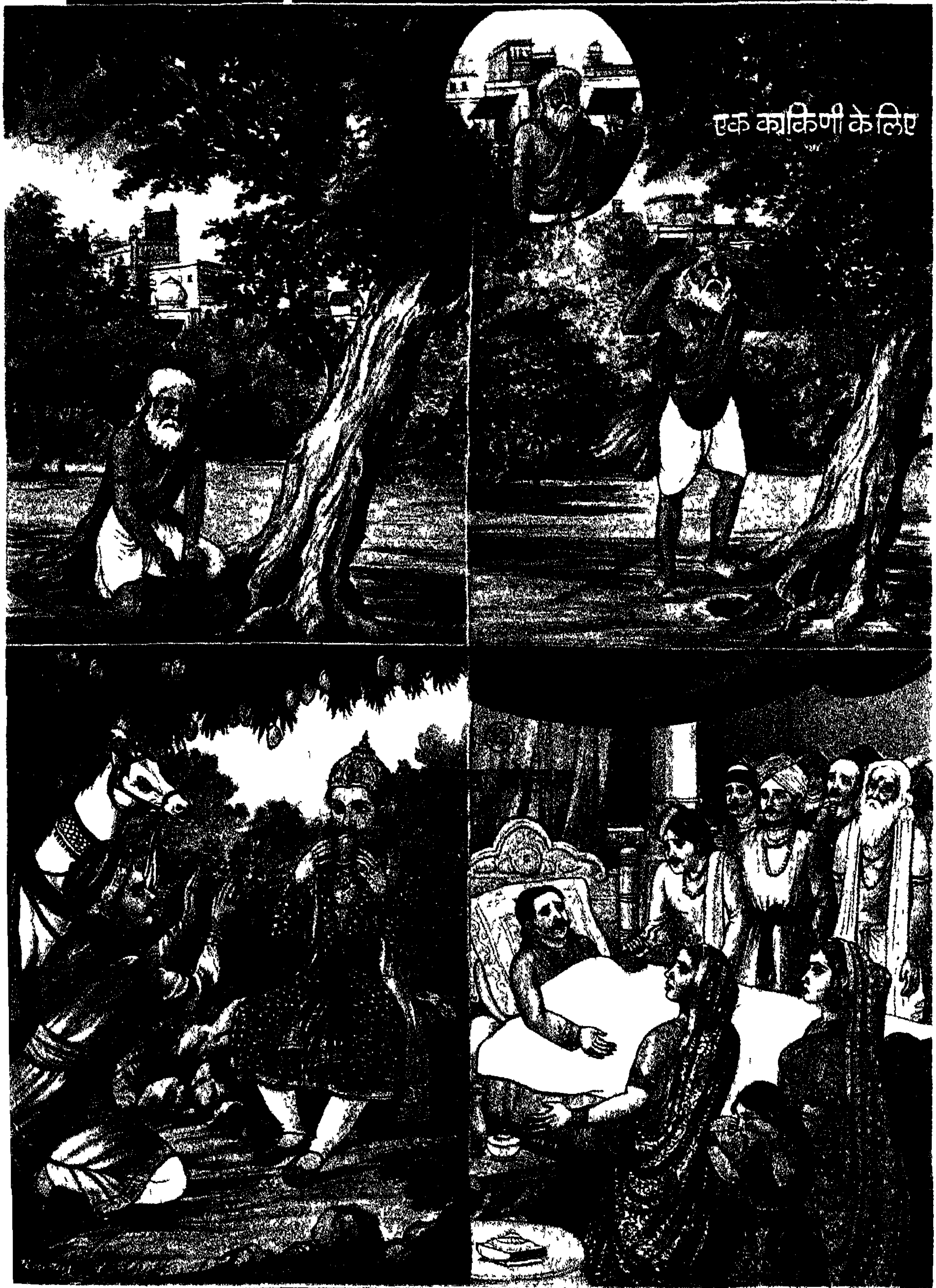
एक वणिक् ने अपने तीन पुत्रों को द्रव्योपार्जन हेतु विदेश भेजा।

ILLUSTRATION NO. 13 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १३ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 14 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १४ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

प्रत्येक को एक-एक हजार कार्षापण दिये और कहा कि एक वर्ष बाद आकर मुझे बताना कि किसने कितना धन कमाया।

तीनों भाई धन लेकर विदेश चले गये।

प्रथम पुत्र ने सोचा–पास में धन है तो जिन्दगी का कुछ मजा ले लूँ, बाद में धन कमा लूँगा। वह आमोद-प्रमोद, मौज-शौक में पड़ गया। उसकी सारी पूँजी खत्म हो गई।

दूसरे ने पूँजी ब्याज पर लगा दी और ब्याज से अपना खर्च चलाता रहा। उसकी मूल पूँजी सुरक्षित रही।

तीसरे ने उस पूँजी से व्यापार किया। व्यापारे वसति लक्ष्मीः के अनुसार उसने खूब लाभ कमाया। अपनी पूँजी कई गुनी कर ली।

एक वर्ष बाद जब तीनों पुत्र पिता के पास पहुँचे तो पहला फटे हाल था, उसने मूल पूँजी भी गँवा दी; दूसरे ने मूल पूँजी सुरक्षित रखी और तीसरे ने कई गुनी पूँजी पिता के समक्ष रख दी।

शास्त्रकार कहते हैं, यह व्यवहार की उपमा है। धार्मिक क्षेत्र में–

मनुष्य जन्म मूल पूँजी है।

देव गति इससे लाभ का उपार्जन है।

पूँजी की हानि नरक तिर्यंच गति की प्राप्ति है।

यह दृष्टान्त मनुष्य-जन्म पाकर शुभ और शुद्ध आचरण–पुण्योपार्जन तथा कर्मक्षय की प्रेरणा देता है।

५. पाँचवाँ दृष्टान्त–दिव्य और मानव सुखों की तुलना

इस दृष्टान्त में मानव और देवों के सुखों की तुलना की गई है। देवों के सुखों को सागर के समान और मानवीय सुखों को कुश के अग्रभाग पर लटकी हुई ओस की बूँद के समान बताया गया है।

इन दृष्टान्तों में बहुत ही गहन रहस्य भर दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३० गाथाएँ हैं।

पांचों दृष्टान्त चित्रों में स्पष्ट दर्शाये गये हैं।

卐

CHAPTER 7
PARABLES OF THE LAMB etc.

Foreview

The title of this chapter is *Urabhrīya* (उरभ्रीय)–pertaining to Lamb–the offspring of a sheep. This title is given due to the first episode or parable of Lamb.

Samavāyāṅga and *Uttarādhyayana–Niryukti* bears the name *Urabbhijjaṁ* (*urabhrīya*); while in *Anuyogadvāra* its name is *Elaïjjaṁ (Elayaṁ)*.

The word *Elayaṁ* is found in the first couplet of this chapter.

The words *urabhra* and *elaya* are synonyms, bearing the same meaning–child of a sheep (मेमना).

The basic maxim and root of Śramaṇa culture is renouncement and disinclination. Disinclination towards mundane pleasures and sensual enjoyments. The senses and the sensory amusements are not everlasting, they are momentary. Being aware of this fact, even it is very difficult for average man to renounce them.

It is being given to understand that adept may not harm great interests by indulging himself in these meagre and momentary rejoicings.

To express the ill and agonising results of sensual indulgence, the 5 practical instances are mentioned here. Due to the primariness of parables this chapter took the shape as paradigmatic chapter.

1. First Parable–The Pungent Consequences of Desires and Victuals

A rich man possessed a cow and its calf and also tammed a lamb. He gives mere grass to cow and calf for eating; while to lamb gives nourishing food, bathes and loves it by moving his open palm on its body. Within a short period the lamb grown up, big fat and of large belly, fattened and of a plump body.

The calf watching this different behaviour of the owner, being disappointed complains to its mother cow–

"Mother ! see, the owner how much loves this lamb ? How much nourishing diet he gives it to eat ? within a few days how fattened became this lamb. And gives mere grass to us. You also give milk to him, still, why the owner does disfavourable behaviour with us."

The experienced mother, the cow fondling its son, the calf, said–

"Dear son ! The death of this lamb is very near. It is waiting for its last day. The love and nourishing diet it is getting; behind it lies the mean pleonasm of the owner. You will yourself see the consequences within few days by your own eyes."

Few days passed. Some guests came to the owner's house. The same day proved fatal for the lamb. The owner cruelly slaughtered his favourite lamb. The guests, owner and his family members ate the meat of lamb rejoicingly.

The calf perplexed, seeing the cruel saughter of the lamb. Shivering with fear, it said to its mother cow–

"Mother ! Today the owner has slaughtered his beloved lamb. Would I have to face the like fate anyday."

The cow comforted the calf–

"Dear son ! why you will be cut to pieces? You eat the dry grass. Those who takes ordinary diet, they never experience such ferocious results. Those who enjoy delicious dishes, indulge themselves in sensual pleasures, they are bound to experience such ferocious consequences. Inclineds are daggered."

Comforted by cow, the mother, calf got mental peace.

The purpose of this parable, is to disincline the adept from sensual pleasures and luxuries by showing bitter consequences of these tendencies, Because mere interest towards the empirical pleasures routed up the root of adept-life.

2. Second Example–To lose Mass for Meagre

There was a beggar. He went to any other city far off from his village.

Facing too much difficulties he any how accumulated one thousand *Kārṣāpaṇas* (a standard silver coin of olden times may be taken as a rupee of modern age). Taking the small bag of those one thousand *Kārṣāpaṇas* he took the way of his village. For necessary expenses during travel he kept some *Kākiṇīs* (one-eightieth part of a *Kārṣāpaṇa)* in hand.

Once he forgot one *Kākiṇī* at any place and moved forward. Going afar, he remembered his forgotten *Kākiṇi*. How can he leave that. The path was going through a dense forest. He dug out a pitch in the ground and buried his small bag of thousand *Kārṣāpaṇas* in it. He evened the earth and returned to take his forgotten *Kākiṇī*.

One burgler has seen him burying the bag. He dug out and taking the bag full of *Kārṣāpaṇas*, went away.

The beggar approached the place where he has forgotten his one *Kākiṇī*, but he could not found it there; on returning back he came to a jolt the bag of *Kārṣāpaṇas* was also vanished.

He lost one thousand *Kārṣāpaṇas* for a meagre coin Kākiṇī. Now he lamented extensively.

For such people English proverb befits–Pennywise, pound foolish.

Through this example the worst consequence of extensive greed is shown. Greedies are deceived like this. One who loses much more pleasures (divine pleasures) for few pleasures (manly pleasures) also repent and fall in miseries like this.

3. Third Example–Loss of Life for Taste

A king was very fond of eating mangoes. Over-eating of mangoes caused panic in his body. An experienced and expert physician cured him but warned–mango is very much

harmful to you, like poison. If you had eaten even a bit of mango, then none could save your life. Death will be inevitable to you.

Once king went to enjoy the fresh air of forest with his minister. There he saw the mango trees full of ripe-fruits. He could not check himself. Minister denied much but due to the lust of taste king ate the mango. The disease agitated so fiercely that the king died at the spot.

For transient sensual pleasures men lose their valuable lives.

4. Fourth Example–Three Merchant-sons

One merchant send his three sons to other country for earning money. He gave one thousand Kārṣāpaṇas to each of his son as capital amount and told–You all the three return after one year and show me your earnings.

All the three merchant-sons went away taking the capital amount given by their father.

The first-eldest thought–I have money, so I enjoy pleasures now; afterwards I shall earn money. In rejoicings and amusements he lost whole the capital he had.

The second, invested his capital for interest. He met up his expenses by the interest he earned. His capital remained safe–as it was.

The third was brilliant, talented and brave. He was business-minded. Investing his capital in various profitable trades, he earned a lot. Only in one year his captal increased many times.

After a year, when all the three approached to their father, the first was tomed having nothing, he had lost the capital even; the second preserved the capital and the third presented many times of the capital before his father.

Here the scripture writer asserts that it is the behavioural example. In the religious sphere–

Human life is capital.

To be god is to earn profit through human life.

Loss of capital means to take birth in animals and hells.

This example is an inspiration for good and pure conduct, doing meritorious deeds and destruction of karmas by utilising manhood.

5. Fifth Example–Comparison of Divine and Humane Pleasures

By this example humane and divine pleasures are compared to each other. The divine pleasures are narrated like an ocean while the humane pleasures are like a drop of dew at the point of grass.

These examples carry much importance. They illustrate the doctrines, give the instructions useful in every sphere of life. They bears the deep secret and make the duty clear to much extent.

These parables efficiently show the path of success in life. These are useful in behavioural, practical and religious sphere alike. These are too instructive.

All these examples have been illustrated revealing their dimensions.

This chapter has 30 couplets.

सत्तमं अज्झयणं : उरब्भिज्जं
सप्तम अध्ययन : उरभ्रीय

जहाएसं समुद्दिस्स, कोइ पोसेज्ज एलयं ।
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥१॥

जिस प्रकार कोई पुरुष संभावित अतिथि का लक्ष्य रखकर मेमने (भेड़ का बच्चा) का पोषण करता है। चावल, जौ, हरी घास आदि देता-खिलाता है और अपने आंगन में ही रखकर उसका पोषण करता है ॥१॥

For the provision of a future guest some one brings up a young lamb, feeds it rice gram and soft grass and keeps it in his yard with due care–(1)

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोदरे ।
पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥२॥

तब वह मेमना (अच्छा खाने-पीने से) पुष्ट, बलशाली और स्थूल उदर वाला हो जाता है। अब वह मांसल शरीर वाला तथा तृप्त मेमना अतिथि के आगमन की प्रतीक्षा कररता है ॥२॥

Then, it grows fleshy, with fattened belly, strong by feeding well; the lamb awaits the coming guest. (2)

जाव न एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही ।
अह पत्तंमि आएसे, सीसं छेत्तूण भुज्जई ॥३॥

जब तक अतिथि (मेहमान) का आगमन नहीं होता तब तक वह मेमना जीवित रहता है और अतिथि के आने पर उसका सिर काटकर उसे भक्षण कर लिया जाता है ॥३॥

Till the arrival of guest the lamb lives on and as soon as the guest arrives it is eaten up chopping off its head. (3)

जहा खलु से उरब्भे, आएसाए समीहिए ।
एवं बाले अहम्मिट्ठे, ईहई नरयाउयं ॥४॥

अतिथि के हेतु कल्पित किया गया वह मेमना, जिस प्रकार उस अतिथि की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार अज्ञानी-अधर्म में लीन जीव भी नरक आयु की (अनजाने ही) आकांक्षा-प्रतीक्षा करता है ॥४॥

As the well-reared lamb for the sake of guest, awaits the guest so is the case with the person ignorant of truth and indulged in sinful activities, he also longs for hellish life unawarely. (4)

हिंसे बाले मुसावाई, अद्धाणंमि विलोवए ।
अन्नदत्तहरे तेणे, माई कण्हुहरे सढे ॥५॥

हिंसक, अज्ञानी, असत्यवादी, बटमार, दूसरों द्वारा दी गई वस्तु को बीच में ही हरण करने वाला, चोर, मायावी, मैं किसका हरण करूँ–इन्हीं विचारों में लगा रहने वाला, धूर्त–॥५॥

The killers, non-discretioners of good and bad, liars, robbers, dacoits on highways, thieves, pick-pockets, thinking always of plundering anyone, deceitful–(5)

इत्थीविसय गिद्धे य, महारंभ–परिग्गहे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥६॥

स्त्री तथा अन्य विषयों में गृद्ध, महारम्भी, महापरिग्रही, मद्य-मांस का सेवन करने वाला, बलशाली, दूसरों को त्रस्त करने वाला–॥६॥

Infatuated to opposite sex (women), great sinners and possessors of huge properties, accumulaters of heap of wealth, with strong desire of being billionaire, addicted to liquor and flesh, with stout frame and tormentors–(6)

अयकक्कर–भोई य, तुंदिल्ले चियलोहिए ।
आउयं नरए कंखे, जहाएसं व एलए ॥७॥

कर-कर शब्द करता हुआ अभक्ष्यभोजी, बड़ी तोंद वाला, तथा अधिक रक्तवाला उसी प्रकार नरकायु की आकांक्षा करता है, जिस प्रकार मेमना अतिथि की प्रतीक्षा करता है ॥७॥

Eaters of crisp roasted meat with crack-rejoicing, round belleyed and shooting the blood in their veins–such sinners awaits the hell-birth like the lamb who awaits a guest. (7)

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया ।
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥८॥

आसन, शैया, वाहन, धन तथा अन्य कामभोगों का उपभोग कर, घोर परिश्रम तथा दूसरों को दुःखी करके संचित किये हुए धन को छोड़कर अत्यधिक कर्म-रज को संचित कर–॥८॥

Taking pleasures of luxurious seats, beds, cushions, vehicles and great riches; for accumulating all these they have toiled much and tormented others, leaving all these and becoming heavy by amassed karma-dirt–(8)

तओ कम्मगुरु जन्तू, पच्चुप्पन्नपरायणे ।
अय व्व आगयाएसे, मरणन्तंमि सोयई ॥९॥

कर्मों से भारी हुआ, केवल वर्तमानपरायण जीव मरण के समय उसी प्रकार शोक करता है, जिस प्रकार अतिथि के आने पर मेमना करता है ॥९॥

Under the huge burden of sinful karmas, believer of the visible world, indulged in present times only, having no far-sight of past and future, such soul grieves at the hour of death as the lamb laments at the arrival of a guest. (9)

तओ आउपरिक्खीणे, चुया देहा विहिंसगा ।
आसुरियं दिसं बाला, गच्छन्ति अवसा तमं ॥१०॥

विविध प्रकार से हिंसा करने वाले प्राणी, आयु समाप्त होने पर जब शरीर छोड़ते हैं तो वे अपने कृतकर्मों से विवश होकर अन्धकार से भरे नरक की ओर जाते हैं ॥१०॥

The sinners, who have been killing the living beings through various devices, when at last their life ends and dislodged from the present frame; by the rigid bondage of karmas they have to go to the hells filled with dense darkness. (10)

जहा कागिणिए हेउं, सहस्सं हारए नरो ।
अपत्थं अम्बगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ॥११॥

जिस प्रकार एक काकिणी के लिए मूर्ख पुरुष हजार कार्षापणों को गँवा देता है तथा एक अपथ्य आम्रफल खाकर राजा अपने राज्य को खो देता है ॥११॥

As a lumpish loses a thousand *Kārṣāpaṇas* (silver coins) for the sake of a *Kākiṇī* (the smallest coin of meagre value) and as a king loses his kingdom (even his life) by eating a mango fruit–(11)

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए ।
सहस्सगुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया ॥१२॥

इसी प्रकार देवों के विषय-सुखों की अपेक्षा मानव-सम्बन्धी कामभोग नगण्य हैं; क्योंकि देवों की आयु और उनके काम-भोग मनुष्यों की अपेक्षा हजार गुने अधिक हैं ॥१२॥

Even so the human pleasures are paltry compared to the pleasures of gods (divine pleasures). The life-time and pleasures of gods are thousand times more than the age-limit and pleasures of the human beings. (12)

अणेगवासानउया, जा सा पन्नवओ ठिई ।
जाणि जीयन्ति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए ॥१३॥

देवलोक में प्रज्ञावान साधक की आयु (स्थिति) अनेक नयुतवर्ष (असंख्यात वर्ष) की होती है–यह जानते हुए भी दुर्बुद्धि मानव सौ वर्ष से भी कम मानव आयु में उन दिव्य सुखों को हार जाते हैं–गँवा देते हैं ॥१३॥

The wise (religious practiser) enjoys the (duration) span of life of nayut-years (innumerable years) in heavens, knowing this the evil-mind idiot men lose those divine pleasures in a human life of less than a hundred years. (13)

जहा य तिन्नि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहई लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥१४॥

जिस प्रकार तीन वणिक् मूलधन लेकर व्यापार हेतु गये। उनमें से एक ने लाभ का उपार्जन किया तथा दूसरा मूलधन लेकर ही वापिस लौट आया ॥१४॥

Three merchants went out on their travels each with his capital for earning by trade. One of them returned with gain and the second with capital intact. (14)

एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥१५॥

तीसरा मूलधन भी गँवाकर लौटा। यह व्यवहार की उपमा है। धर्म के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए ॥१५॥

The third came back losing all capital. This parable is regarding behavioural life. Know the same--apply it to the religious life also. (15)

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे ।
मूलच्छेएण जीवाणं, नरग-तिरिक्खत्तणं धुवं ॥१६॥

मूलधन मनुष्य-भव है। लाभ देवगति की प्राप्ति है। और मूल के नाश से प्राणियों को निश्चित ही तिर्यंच और नरक गति में जाना पड़ता है ॥१६॥

The capital is human life, the gain is attaining heavenly life and through the loss of that capital man must get birth as a denizen of hell or a brute animal. (16)

दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया ।
देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलयासढे ॥१७॥

बाल (अज्ञानी) प्राणी की आपदामूलक नरक और तिर्यंच-ये दो ही गति होती हैं; क्योंकि वह लोलुपता और धूर्तता करके मनुष्य और देवगति को पहले ही हार चुका है ॥१७॥

The fools can have the two states--animal or the hell, which are full of miseries and sorrows; because they have lost the manhood and godhood before hand by heir lusts and stupid activities. (17)

तओ जिए सइं होइ, दुविहं दोग्गइं गए ।
दुल्लहा तस्स उम्मज्जा, अद्धाए सुचिरादवि ॥१८॥

दो प्रकार की दुर्गति (नरक और तिर्यंच गति) को प्राप्त प्राणी का उन गतियों से उबरना (निकलना) बहुत कठिन है, उसे वहाँ दीर्घकाल तक रहना पड़ता है ॥१८॥

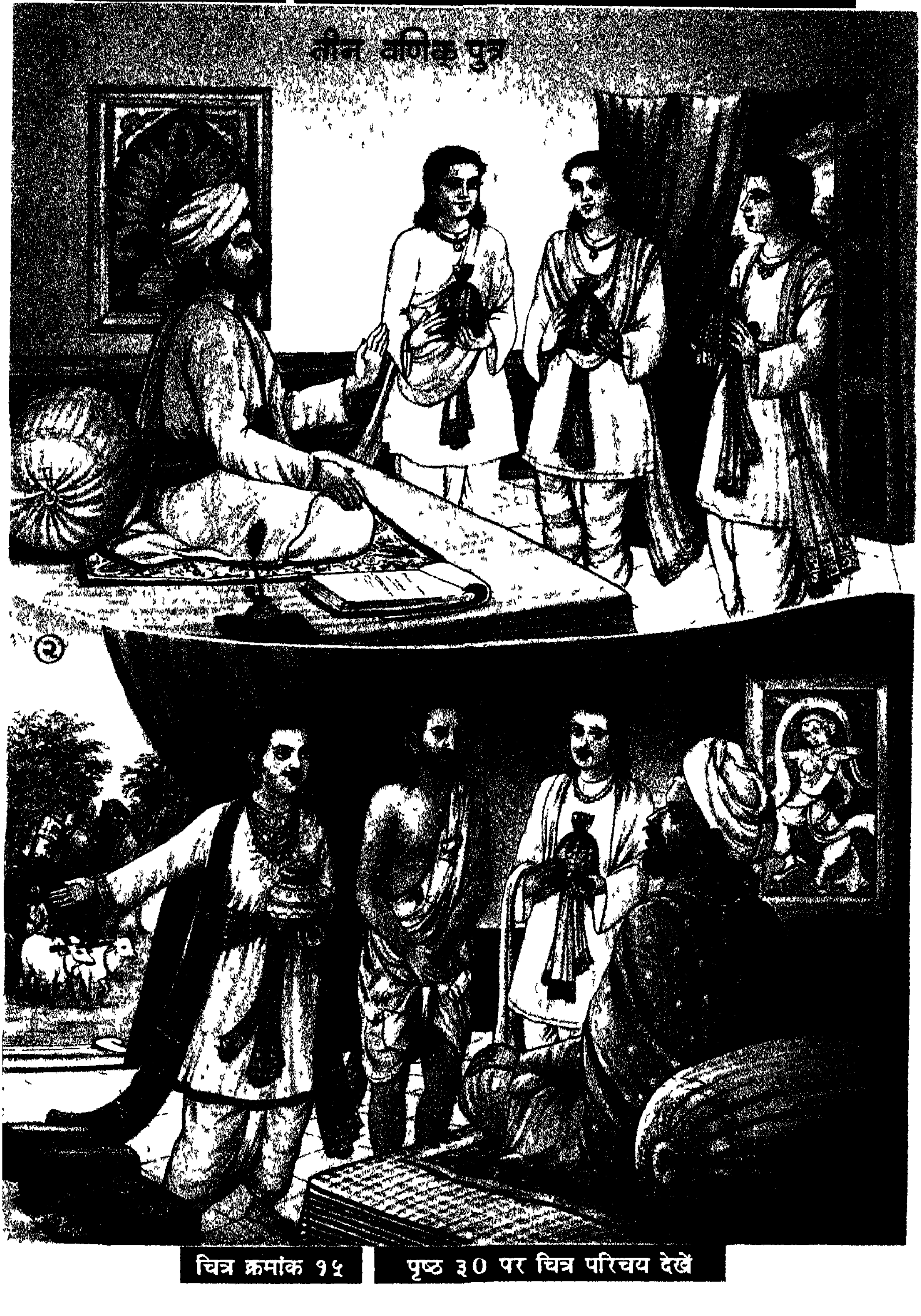
Taking birth in two lower states, viz., hellish and animal life, it becomes very difficult to come out of them, the soul has to remain in these states for a very long time. (18)

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं ।
मूलियं ते पवेसन्ति, माणुसं जोणिमेन्ति जे ॥१९॥

इस तरह सुगतियों को हारे हुए प्राणियों को देखकर तथा ज्ञानी और अज्ञानी की तुलना कर, जो मानव-योनि में आते हैं, वे उस वणिक के समान हैं जो मूलधन लेकर वापस लौट आया ॥१९॥

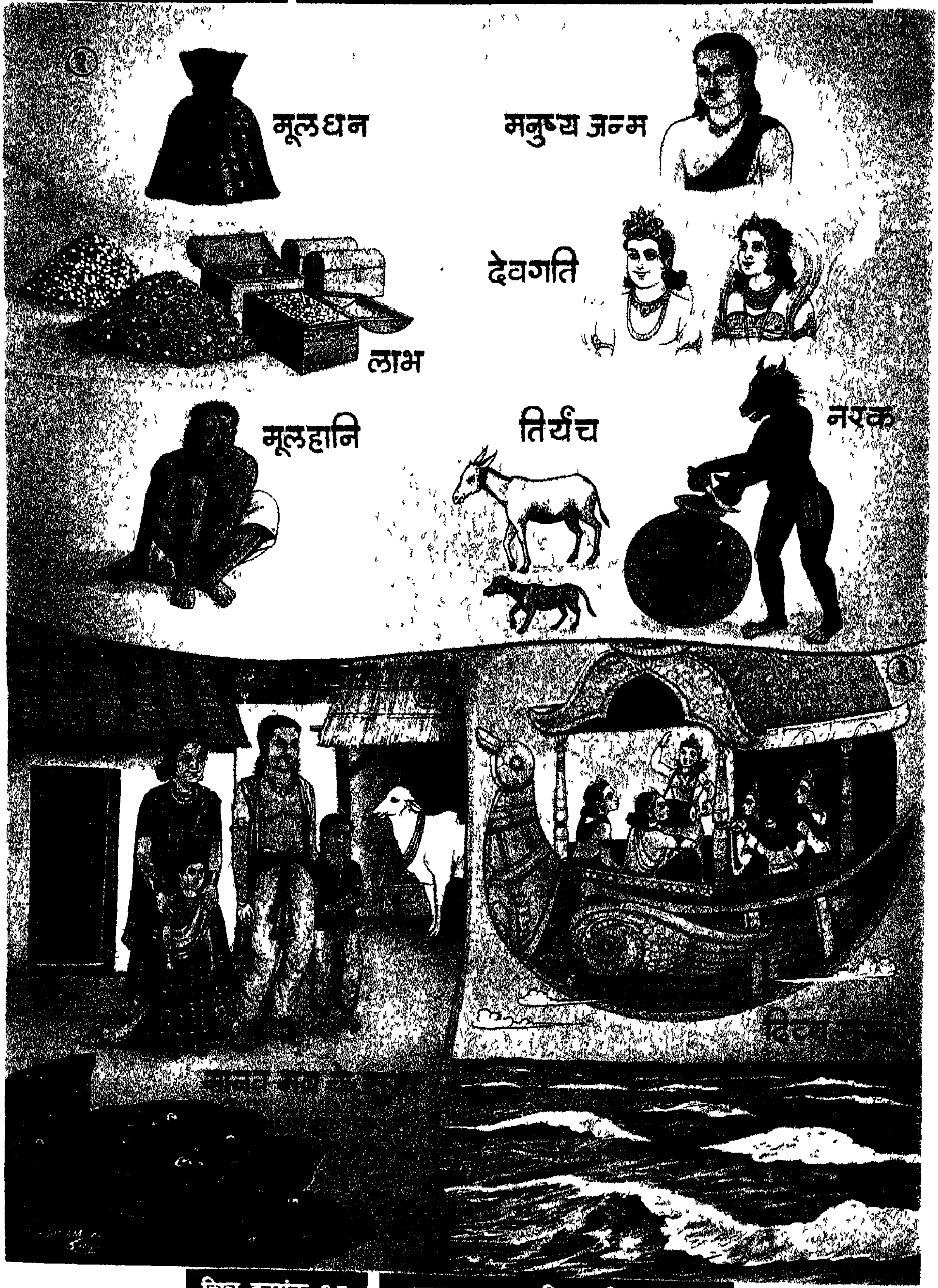
Considering the souls--loser of upper or superior state and comparing the wise and unwise, who take birth as a man, they are like the merchant who returned home with his capital as it was. (19)

ILLUSTRATION NO. 15 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १५ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 16 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 21



चित्र क्रमांक १६ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया ।
उवेन्ति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥२०॥

विविध परिमाण (प्रकार) वाली शिक्षाओं को धारण कर जो मनुष्य घर में रहकर भी सुव्रती हैं, सुव्रतों का पालन करते हैं, वे पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं; क्योंकि सभी प्राणी कर्म-सत्य होते हैं। कृत कर्मों का फल अवश्य पाते हैं ॥२०॥

Those persons, who practise various types of religious instructions (trainings) and exercising various virtues become pious householders, take birth again as man. Because karma is true. All beings must reap the fruits of their actions. (20)

जेसिं तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया ।
सीलवन्ता सवीसेसा, अद्दीणा जन्ति देवयं ॥२१॥

किन्तु जिन मानवों की शिक्षा विविध परिमाण वाली और व्यापक है–विशाल है, तथा वे शीलवान और उत्तरोत्तर गुण-प्राप्ति की विशेषता से युक्त हैं, दीनता रहित हैं, वे मूलधन रूप मनुष्यत्व से आगे बढ़कर देवत्व को प्राप्त करते हैं ॥२१॥

But the persons who practise various types of religious vast instructions eminently with discipline and extra merit and are magnificent they attain godhood going upward from human birth. (21)

एवमद्दीणवं भिक्खुं, अगारिं च वियाणिया ।
कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणे न संविदे ? ॥२२॥

इस प्रकार दीनता रहित भिक्षु और गृहस्थ (महाव्रती तथा अणुव्रती साधक) को लाभ प्राप्त करते देखकर कौन विवेकी व्यक्ति उस लाभ को गँवाएगा और उस लाभ को गँवाता हुआ कौन पश्चात्ताप नहीं करेगा? ॥२२॥

When a man knows thus that magnificent mendicant and virtuous householder (practisers of full and partial vows) attaining such gains, then no person having discretion will lose such gain and losing such extra gain who will not repent? (22)

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देण समं मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए ॥२३॥

देवों के कामभोगों के समक्ष मनुष्य के कामभोग ऐसे ही क्षुद्र हैं, जैसे समुद्र की अपेक्षा कुशाग्र पर टिका हुआ जलबिन्दु क्षुद्र होता है ॥२३॥

As a drop of dew at the top of a blade of *kuśa*–grass dwindles down to naught when compared with the vast and deep ocean filled with enormous quantity of water; so do the pleasures of men compared with the pleasures of gods. (23)

कुसग्गमेत्ता इमे कामा, सन्निरुद्धंमि आउए ।
कस्स हेउं पुराकाउं, जोगक्खेमं न संविदे ? ॥२४॥

मानव की आयु अत्यल्प है, संनिरुद्ध है। इसमें प्राप्त काम-भोग कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान हैं। फिर न जाने किस कारण से प्राणी (अज्ञानी) अपने योग-क्षेम को नहीं समझता ॥२४॥

The duration (age) of man is very short and is obstructible by many obstacles. The pleasures of this life are like a dew-drop at the tip of *kuśa*–grass. Even then, why the ignorant being (man) does not understand his welfare (preservation of attained virtues (merits) and enhance them). (24)

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई ।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सई ॥२५॥

इस मानव-भव में जो काम-भोगों से निवृत्त नहीं होता उसका अपना आत्म-प्रयोजन विनष्ट हो जाता है। क्योंकि न्यायमार्ग को बार-बार सुनकर भी वह उससे भ्रष्ट हो जाता है ॥२५॥

He, who does not renounce the rejoicings and amusements in this human birth, misses the true goal of his soul; because hearing the right path again and again, he slips and goes astray. (25)

इह काम-णियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ।
पूइदेह–निरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥२६॥

किन्तु इस मनुष्य जन्म में काम-भोगों को त्यागने वाले (निवृत्त होने वाले) का आत्मार्थ नष्ट नहीं होता, वह इस मलिन औदारिक शरीर के छूट जाने पर देव बनता है–ऐसा मैंने सुना है ॥२६॥

But the renouncer of merriments of this human life does not lose the aim of his soul. He becomes god bereaving this vile body–I have heard so. (26)

इड्ढी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं ।
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तत्थ से उववज्जई ॥२७॥

(देवलोक से च्यवन करके) वह पुनः मनुष्य जन्म ग्रहण करता है तो ऐसे उत्तम कुल में जन्म लेता है जहाँ उसे श्रेष्ठ ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, आयु और सुख की प्राप्ति होती है ॥२७॥

After completing the god-duration he takes birth as a man, in such a high family where he gets wealth, beauty, glory, fame, long life and happiness. (27)

बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया ।
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, नरए उववज्जई ॥२८॥

(हे साधक !) बाल जीव की अज्ञानता को देख। वह अधर्म को स्वीकार करता है, धर्म का त्याग करता है और अधार्मिक बनकर नरक में उत्पन्न होता है ॥२८॥

Look at the imprudence of the ignorant, who practises unrighteousness, renounces righteousness and becoming irreligious takes birth in hell. (28)

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो ।
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई ॥२९॥

(और) क्षमा आदि सब धर्मों का परिपालन करने वाले बुद्धिमान तथा धैर्यवान् पुरुष को भी देख। वह अधर्म का त्याग करता है, अतिशय धर्मवान् बनता है और देवों में उत्पन्न होता है ॥२९॥

And also put a glance at the wisdom of a wise man, who is constant and having the virtue of forgiveness, he practises all the religious deeds and activities–like forgiving, truth etc. He renounces unrighteousness, practises extra mertiorious religious virtues with firm and strong determination and takes birth among gods. (29)

तुलियाण बालभावं, अबालं चेव पण्डिए।
चइऊण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ॥३०॥

–त्ति बेमि

मेधावी बालभाव और अबाल भाव की तुलना करके बालभाव को छोड़ देता है और पण्डित ज्ञानी मुनि अबालभाव का आचरण करता है। **–ऐसा मैं कहता हूँ।**

Wise and witty person compares the prudence and follishness, and quits the follishness. The learned, erudite monk practises the prudence. **–Such I speak**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १०–टीकाकारों ने आसुरीय दिशा के दो अर्थ किये हैं–एक तो जहाँ सूर्य न हो, वह दिशा। और दूसरा रौद्र कर्म करने वाले असुरों की दिशा। दोनों का ही फलितार्थ नरक है।

गाथा ११–के अनुसार "काकिणी" एक रुप्यक अर्थात् रुपये के अस्सीवें भाग का जितना छोटा सिक्का है (चूर्णि) बीस कौड़ियों की एक काकिणी मानी है। (बृ. वृ. शा.)

कार्षापण प्राचीन युग में एक बहुप्रचलित सिक्का था, जो सोना, चाँदी और ताँबा तीनों धातुओं का होता था। सामान्यतः सोने का कार्षापण १६ माशा, चाँदी का ३२ रत्ती और ताँबे का ८० रत्ती जितना भारवाला होता था।

Salient Elucidations

Gāthā 10–Commentators gave two meanings of the word direction of asuras–non-gods (आसुरी कायं)–

First–the direction, where the sun does not exists–alias non existence of sun.

the second–the direction of the asuras indulged in cruel deeds.

Both the interpretations denote one and the same meaning.

Gāthā 11–Kākiṇī is a small coin equal to eightieth part of a rupee (*chūrṇi*) one *Kākiṇī* is equal to 20 cowries (*v. v. s.*)

According to *Sanskṛt*-English Dictionary p. 267 it is a small coin, or even a small sum as much as, and not bigger than, 20 *kāpardās* or cowries or a quarter of a paṇa.

Kārṣāpaṇa was the popular and prevailing currency in olden times. It was of three metals–gold, silver and copper. Generally Golden *Kārṣāpaṇa* was of 16 *māśā* in weight, of silver weighed 32 rattis and of copper weighted 80 rattis.

Gāthā 13–Nayuā–Nayuta–84,00,000 x 84,00,000 x 84,00,000 x 84,00,000 years make a nayuta.

अष्टम अध्ययन : कापिलीय

पूर्वालोक–कथा सूत्र–

कपिल के पिता काश्यप ब्राह्मण चौदह विद्याओं के ज्ञाता और कौशाम्बीनरेश जितशत्रु की राजसभा के एक रत्न थे। राजा उन्हें बहुत सम्मान देता था। बहुत ही ठाठ-बाट से वे राज-सभा को जाते थे।

अचानक ही काश्यप ब्राह्मण की मृत्यु हो जाने से उसकी पत्नी यशा और अल्पवयस्क पुत्र कपिल अनाथ हो गये। राजा जितशत्रु ने उनके स्थान पर दूसरे विद्वान को नियुक्त कर दिया। अब वह ब्राह्मण ठाठ-बाट से राजसभा में जाने लगा। उस नये राजपण्डित को देखकर यशा की आँखों में आँसू छलक आते।

एक बार कपिल ने माँ से आँसुओं का कारण पूछा तो माँ ने सब कुछ बताकर कहा–पुत्र ! जिस समय तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय तुम अल्पवयस्क थे। यदि विद्या पढ़कर विद्वान बन जाओ तो पिता का पद तुम्हें मिल सकता है।

कपिल ने विद्या पढ़ने की इच्छा प्रगट की तो माँ ने कहा–पुत्र ! यहाँ तो कोई पण्डित तुम्हें पढ़ाएगा नहीं। तुम्हारे पिता की विद्वत्ता से सभी ईर्ष्या करते हैं। तुम श्रावस्ती चले जाओ। वहाँ तुम्हारे पिता के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय हैं। वे तुम्हें विद्याओं में निष्णात बना देंगे।

माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर कपिल श्रावस्ती जा पहुँचा। इन्द्रदत्त उपाध्याय से मिला, अपना परिचय दिया। इन्द्रदत्त ने कपिल को पढ़ाने का आश्वासन दिया और उसके भोजन तथा निवास की व्यवस्था नगर के धनी श्रेष्ठी शालिभद्र के यहाँ कर दी। श्रेष्ठी ने कपिल की सेवा के लिए एक दासी नियुक्त कर दी।

अब कपिल दिनभर इन्द्रदत्त उपाध्याय के यहाँ रहकर अध्ययन करता और सन्ध्या समय श्रेष्ठी शालिभद्र के यहाँ आ जाता, वहीं विश्राम करता।

दासी और कपिल–दोनों युवा थे, सुन्दर थे, हँसमुख थे। परस्पर आकर्षित हो गये। दासी कपिल के प्रति समर्पित हो गई। किन्तु दोनों ही धनहीन थे। दासी तो दासी ही थी, कपिल भी अध्ययन हेतु आया था, दूसरों की दया पर निर्भर था, अतः धन होने का प्रश्न ही नहीं था।

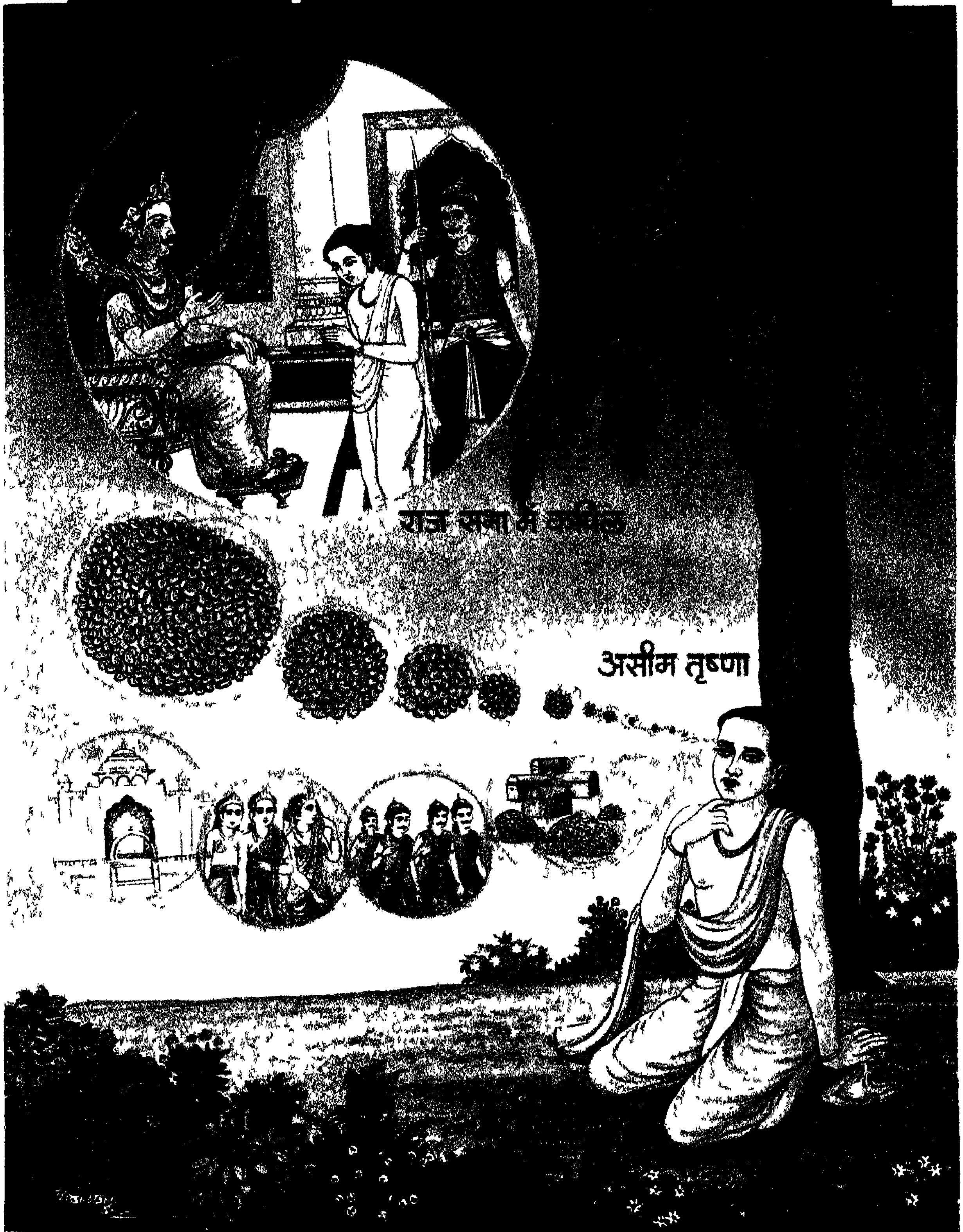
एक बार श्रावस्ती में कोई विशाल जन-महोत्सव होने वाला था। दासी की इच्छा भी उसमें सम्मिलित होने की थी; लेकिन महोत्सव के योग्य उसके पास वस्त्र भी न थे। दासी ने अपनी इच्छा कपिल के समक्ष प्रगट की तो अपनी धनहीनता के कारण वह उदास हो गया।

दासी ने धन प्राप्ति का उपाय बताया–नगर में एक धन कुबेर श्रेष्ठी है। प्रातः जो ब्राह्मण उसे सर्वप्रथम आशीर्वाद देता है उसे वह दो माशा सोना देता है। तुम वहीं पर जाओ।

दूसरा कोई ब्राह्मण आशीर्वाद देने सेठ के पास पहले न पहुँच जाय, इस चिन्ता में कपिल को नींद न आई, वह आधी रात को ही उठकर चल दिया। राज सेवकों से उसे चोर समझकर पकड़ लिया और प्रातः श्रावस्तीनरेश प्रसेनजित के सामने पेश कर दिया।

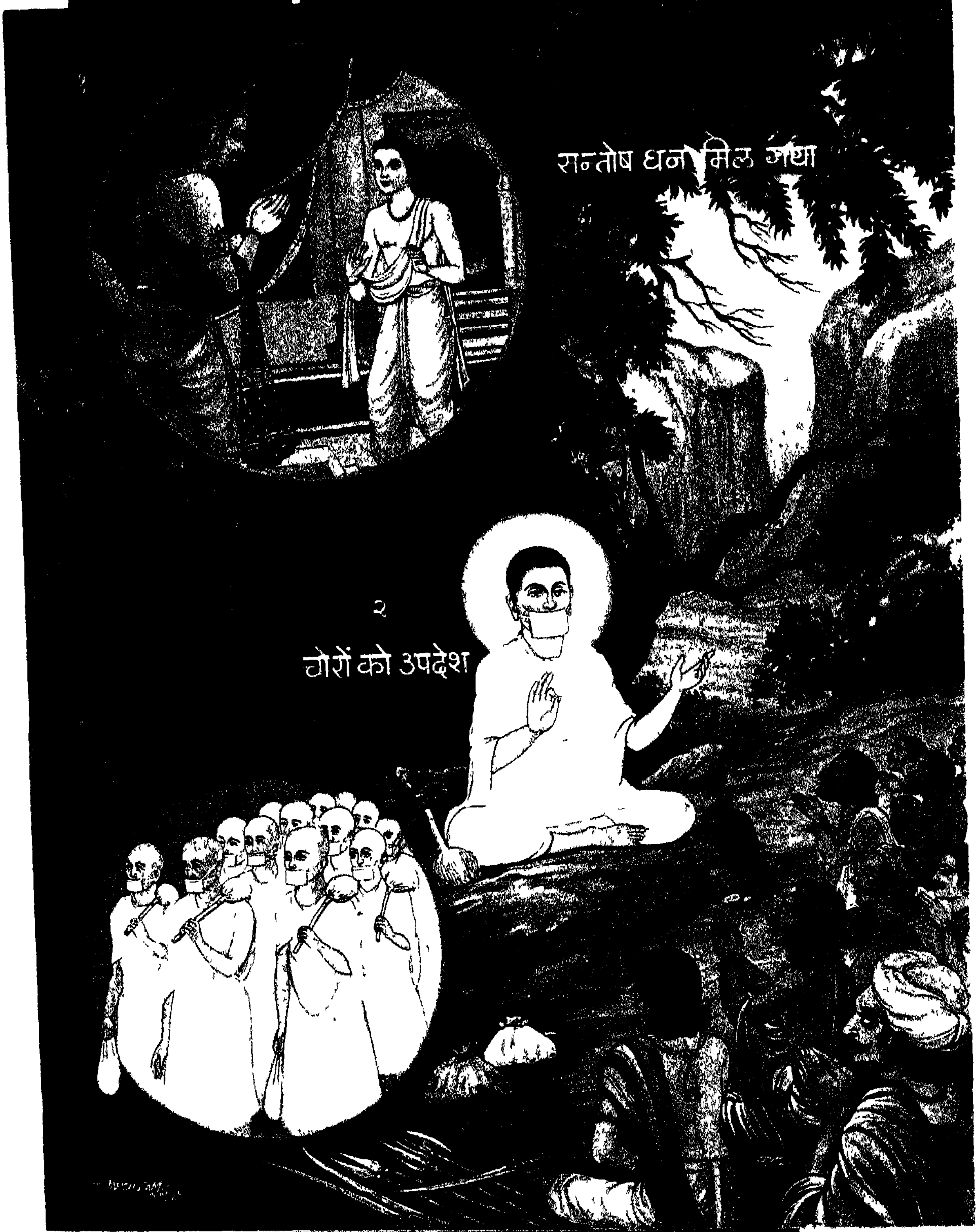
राजा के पूछने पर कपिल ने सब कुछ स्पष्ट बता दिया। उसकी सरलता और सत्यवादिता से प्रभावित होकर राजा ने मन इच्छित धन मांगने का वचन दिया। कुछ समय की मौहलत माँगकर कपिल राजोद्यान में एक स्थान पर बैठकर सोचने लगा–कितना धन माँगूँ–सौ मुद्राएँ, नहीं ! इनसे क्या होगा? तो दो सौ स्वर्ण

ILLUSTRATION NO. 17 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक १७ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 18 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक १८ पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

मुद्राएँ? यह भी कम है ! इस तरह उसकी इच्छा बढ़ती गई। लाख, करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ भी कम मालूम हुईं। भवन, और राज सत्ता तक उसकी तृष्णा दौड़ने लगी।

तभी उसके चिन्तन को गहरा झटका लगा–दो माशा स्वर्ण से पूर्ण होने वाला कार्य करोड़ स्वर्णमुद्राओं से भी नहीं हो रहा है। यह इच्छाओं का गड्ढा कितना दुष्पूर है?

बस कपिल का मन विरक्त हो गया। राजा के पास आया और बोला–हे राजन् ! मुझे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है। जो मुझे पाना था, वह पा चुका।

इतना कहकर कपिल राजसभा से निकल गया और निर्ग्रन्थ श्रमण बन गया। छह माह तक छद्मस्थ रहे और फिर केवली हो गये।

एक बार कपिल केवली श्रावस्ती और राजगृही के बीच फैले हुए १८ योजन के महारण्य में विहार कर रहे थे। ५०० चोरों ने उन्हें घेर लिया। तब कपिल केवली ने चोरों को भावपूर्ण उद्‌बोधन दिया। चोरों को दिया हुआ वह उद्‌बोधन ही इस अध्ययन में संकलित है।

प्रस्तुत अध्ययन के वक्ता कपिल केवली हैं। इन्हीं के नाम पर इसका नामकरण काविलीयं हुआ है।

इससे पूर्व सातवें अध्ययन में साधक को विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा राग-द्वेष, काम-भोग आदि से विरत करने का प्रयास किया गया था। इस अध्ययन में लाभ और लोभ का दुष्पूर चक्र दिखाकर धन के प्रति साधक की आसक्ति को समाप्त करने का प्रयास है।

काम और लोभ संसार से मुक्ति प्राप्त करने में सबसे बड़े बाधक तत्व हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व आसक्ति, ग्रन्थ (बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह) रस लोलुपता, लक्षण आदि शास्त्रों के प्रयोग, स्त्री आसक्ति के त्याग तथा संसार की क्षणिकता का बहुत ही सजीव और प्रेरक विवेचन है। हिंसा आदि पापों का वर्णन है।

दुर्गति से बचने के उपाय भी बताये गये हैं–संयम, विवेक और विरक्ति। यह भी कहा गया है कि भोगों से उपरति और परिग्रह का सर्वथा त्याग ही संसार से मुक्ति-प्राप्ति में सहायक होता है।

इस अध्ययन का सन्देश है–काम-भोगों को देखकर भी साधक उन्हें अनदेखा करता रहे। उपेक्षा करता रहे।

यह अध्ययन गेयछन्द ध्रुवक में लिपिबद्ध है।

प्रस्तुत अध्ययन में २० गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 8
SERMON OF KAPILA KEVALIN

Foreview–Recital Clue–

Kapila was the son of Brāhmaṇa Kāśyapa. His mother's name was Yaśā. They were the inhabitants of the city Kauśāmbī. King Jitaśatru ruled over Kauśāmbī in those times.

Brāhmaṇa Kāśyapa was the master of fourteen branches of learning, so he was priest to king. King granted him stipend, he onjoyed them fully.

Suddenly Brāhmaṇa Kāśyapa died. Kapila and his mother Yaśā become orphans. At that time Kapila was mere an innocent child. So king appointed an other learned Brāhmaṇa as his priest and granted him stipend. Now that Brāhmaṇa began to enjoy the stipend granted by the king. Seeing him enjoying stipend, the eyes of Yaśā began to tear.

Once Kapila asked his mother the cause of her tears, then the mother narrated the whole episode and said–

"Dear son ! When your father expired, you were an innocent child. So the king appointed this learned Brāhmaṇa his priest. If you become learned by mastering the fourteen branches of learning, you can get your father's post and stipend."

Kapila expressed his desire for study then the mother said–

"Dear son ! No teacher of this city shall educate you; because all are envious to the learnedness of your father. You go to Śrāvastī. There lives Indradutta Upādhyāya. He is your father's fast friend, He will make you the master of all branches of learning."

With the blessings of mother Kapila arrived Śrāvastī, met Indradutta Upādhyāya, gave his introduction. Indradutta assured him to educate and made arrangement of Kapila's fooding and lodging at the house of a rich merchant named Śālibhadra. Śālibhadra appointed a young maid-slave for the service of Kapila.

Now Kapila learns his lessons full day in the school of Indradutta and in the evening comes to the house of Śālibhadra for fooding and night rest.

Maid-slave and Kapila–both were young, beautiful and jolly. Both fall into attraction. Maid-slave surrendered to Kapila and Kapila also became very free with her. But both were deprived of money. Maid-slave was only a slave and Kapila had come for his study, he was dependent upon other's mercy. So there was no question of having money.

Once a great public festival to be held in Śrāvastī. The slave-maid was also desirous to enjoy that festival; but she was even deprived of the clothes fit to wear for a festival. She expressed her desire to Kapila but poor Kapila became sad due to his poverty.

Maid-slave expressed a plan for getting money. She told–

"In this city, a much more rich merchant resides. Early in the morning any Brāhmaṇa blesses him first of all, he donates him two māśā gold. You go there."

Due to anxiety of obtaining gold Kapila could not sleep in night. For reaching first to the rich man, he went out in the midnight. The police-men caught him thinking him a thief and

presented him before the king of Śrāvasti–Rāja Prasenajita. Kapila narrated whole episode to the king.

Being influenced by truthfulness and straightforwardness of Kapila, the king gave words–

"Tell, how much money you want? I will give you."

Taking some time to consider, Kapila went to the garden and sitting at a place began to think–

How much money should I ask? Hundred gold-coins? No, these are naught. Then two hundred coins? These are also insufficient.

Thus his desire went on increasing. Even crore gold coins, he thought insufficient His ambitional desire ran up with leaps and bounds upto palaces and kingship.

Just then his mind took a sharp turn–Oh ! the work which may be accomplished by two māśā gold, for the same the crore gold coins are not sufficient ! The ditch of desires is impossible to be fulfilled.

The mind of Kapila aversed. He came to king and spoke firmly–

'O king ! Now I want nothing. Whatever I wish to obtain, I have obtained that."

Saying this Kapila went out the court of king.

He became knotless (निर्ग्रन्थ) sage (श्रमण). Upto six months he practised various penances for destruction of vitiating karmas. After destruction of vitiating karmas he became Kevalin–possessor of extreme knowledge i. e., the supreme and limitless knowledge.

Once Kapila Kevalin was going through the wide-spread forest of 18 yojanas between the cities Śrāvastī to Rājagṛhī. In between that huge and dense forest five hundred thieves encircled him.

Then Kapila Kevalin delivered a sentimental, thought-provoking smattering exhortation to the thieves, that awakened all of them.

The same sermon is compiled in this chapter.

The orator of this chapter is Kapila Kevalin, so the title of this chapter is *Kāvilīyaṁ*.

In the preceding seventh chapter, the effort was made to disincline the adept from attraction, detraction, worldly pleasures and rejoicings by many parables. While in this chapter by showing the cyclic wheel of gain and greed, which is impossible to fulfil, attempt is made to disincline the adept from the lust of riches–money.

Sexuality and greed are the biggest hindrances for attaining liberation.

The present chapter analyses in inspiring words–the former inclination, internal and external possessions–grantha (ग्रन्थ) knots, tastiness, devising astrology and symptomology, disinclination towards women and momentariness of worldly pleasures.

The escaping devices from lower states are also expressed–restrain, discretion and disinclination. It is also narrated that disinclinement of enjoyments, renouncing of possessions are helpful for obtaining liberation.

The message of this chapter is–seeing the worldly rejoicings the adept should treat them as unseen, he should ignore them.

This chapter is composed in singable (metric) stanzas (poems).

There are 20 couplets in this chapter.

अट्ठमं अज्झयणं : काविलीयं
अष्टम अध्ययन : कापिलीय

अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए ।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाऽहं दोग्गई न गच्छेज्जा ॥१॥

यह संसार अध्रुव, नश्वर, अनित्य और प्रचुर दुःख से भरा है। ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति में न जाऊँ ॥१॥

This transient, ineternal world is full of miseries. What deeds I should perform, so that I may not get the lower state (दुर्गति). (1)

विजहित्तु पुव्वसंजोगं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा ।
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोस-पओसेहिं मुच्चए भिक्खू ॥२॥

पूर्व संयोगों का परित्याग करके फिर किसी भी पदार्थ के प्रति स्नेह न करे, प्रेम करने वालों के प्रति भी स्नेह रहित रहने वाला भिक्षु दोष और प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ॥२॥

Quitting the former links, placing affection on nothing, not loving those who love–such mendicant becomes free from faults and petty faults. (2)

तो नाण–दंसणसमग्गो, हियनिस्सेसाए सव्वजीवाणं ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥३॥

तब केवलज्ञान-केवलदर्शन से संपन्न तथा मोह से पूर्णतः मुक्त मुनिवर (कपिल केवली) ने सभी जीवों के कल्याण, हित तथा उनके मोक्ष के लिए उपदेश दिया ॥३॥

Then possessor of limitless knowledge and perception, exempted completely from delusion the best monk (Kapila Kevlin) delivered a sermon for the benefit, eternal welfare and liberation of all beings. (3)

सव्वं गन्थं कलहं च विप्पजहे तहाविहं भिक्खू ।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो न लिप्पई ताई ॥४॥

भिक्षु कर्मबन्धन के कारण सभी प्रकार के परिग्रह का और कलह के कारणों का त्याग करे तथा सभी काम-भोगों के कटु परिणामों को देखकर आत्मरक्षक मुनि उनसे निर्लिप्त रहे ॥४॥

The mendicant should renounce all types of possessions and scrambles, which are the causes of karma-bondage and watching the evil effects of worldly rejoicings he should not involve in them. (4)

भोगामिसदोसविसण्णे, हियनिस्सेयसबुद्धि-वोच्चत्थे ।
बाले य मन्दिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलंमि ॥५॥

आमिषरूप भोगों से विषाद को प्राप्त तथा अपने हित और कल्याण में विपरीत बुद्धि का धारक, मन्द मति, मूर्ख जीव वैसे ही कर्मों से बँध जाता है, जैसे श्लेष्म (कफ) में मक्खी फँस जाती है ॥५॥

Deeply entangled in sorrow due to the blemish rejoicings and never fixes his thoughts on the soul's eternal welfare and benefit; such stupid, dull-minded being (man) ensnared by the bondage of karmas as a fly stuck up in saliva. (5)

दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ।
अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरन्ति अतरं वणिया व ॥६॥

इन काम भोगों का परित्याग करना बहुत कठिन है। अधीर व्यक्ति इनका त्याग नहीं कर पाते। किन्तु जो शांत-सुव्रती साधु होते हैं वह इन काम-भोगों को उसी प्रकार सहजता से त्याग कर देते हैं; जैसे पोतवणिक सागर को पार कर जाते हैं ॥६॥

It is very difficult to renounce the worldly pleasures. Unsteady persons can never cast away them. But the calm, virtuous and pious ascetics easily renounce them as the merchants, who trade by ships, cross the ocean in a easy way. (6)

'समणा सु' एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणन्ता ।
मन्दा नरयं गच्छन्ति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ॥७॥

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि 'हम श्रमण हैं' किन्तु मिथ्यात्वग्रस्त मंद बुद्धि वाले पशु के समान अज्ञानी प्राणि-वध को हिंसा नहीं मानते, अपनी इस पापदृष्टि के कारण वे नरक गति में जाते हैं ॥७॥

Though there are some persons who claim that 'we are sages' (श्रमण). But they are like beasts, superstitious, gripped by dis-faith and dull-minded do not accept that killing of living beings is violence, due to this sinful attitude they go to hell. (7)

'न हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं ।'
एवारिएहिं अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पन्नत्तो ॥८॥

साधु धर्म की प्ररूपणा करने वाले आर्यपुरुषों–तीर्थंकरों ने ऐसा कहा है कि हिंसा (असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह) की अनुमोदना करने वाले कभी भी सभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकते ॥८॥

Tirthaṁkaras, who have prescribed the ascetic code of conduct, said–that the persons (beings), who even consent to killing, untruth, stealing, sexual intercourses and possessions can never be free from all miseries. (8)

पाणे य नाइवाएज्जा, से 'समिए' त्ति वुच्चई ताई ।
तओ से पावयं कम्मं, निज्जाइ उदगं व थलाओ ॥९॥

जो साधक प्राणियों की हिंसा नहीं करता वह अपनी आत्मा और सभी जीवों का रक्षक तथा समितिवान् होता है। उससे पापकर्म उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जिस प्रकार ऊँचे स्थान से जल बहकर दूर चला जाता है ॥९॥

An adept who does not even injure a living being, he becomes the protector of his own and all other souls, he is called as circumspect (समित–समितिवान्). The sinful karmas go away from him like the water rushes away from a high place. (9)

जगनिस्सिएहिं भूएहिं, तसनामेहिं थावरेहिं च ।
नो तेसिमारभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ॥१०॥

संसार में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, (उनके द्वारा सताये जाने पर भी) उनके प्रति मन-वचन-काय से हिंसा रूप दण्ड का समारम्भ न करे ॥१०॥

By mind, speech and body, he should not be injurious towards all the movable and immovable beings of the world; even then they cause sufferings to him. (10)

सुद्धेसणाओ नच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥११॥

शुद्ध एषणाओं को जानकर भिक्षु उनका सावधानी से आचरण करे। भिक्षाजीवी साधु संयम यात्रा के सुचारु निर्वाह के लिए आहार की गवेषणा करे लेकिन रसों में गृद्ध न हो ॥११॥

Being well-known with rules of begging alms, the mendicant should strictly observe them. He should eat only with the aim of sustenance of body, so that he can practise restrain; but he should not indulge in tasty dishes. (11)

पन्ताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिण्डं पुराणकुम्मासं ।
अदु वुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए निसेवए मंथुं ॥१२॥

भिक्षाजीवी साधु संयमी जीवन यापन के लिए बचा खुचा नीरस आहार, शीत पिंड, पुराने कुल्माष-उड़द अथवा सारहीन, रूखा बेर या सत्तू के चूर्ण आदि का सेवन करे ॥१२॥

The ascetic practising mendicant's life order should eat the tasteless, resudary, cold rice, old beans, husk, gram, and grind plums–just to live. (12)

'जे लक्खणं च सुविणं च, अंगविज्जं च जे पउंजन्ति ।
न हु ते समणा वुच्चन्ति', एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥१३॥

आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जो साधु शुभाशुभ लक्षण सूचक, स्वप्न फल और अंगस्फुरण विद्या का प्रयोग करते हैं, वे श्रमण कहे जाने योग्य नहीं हैं ॥१३॥

Preceptors have prescribed–those who interpretate the signs, symbols and marks of body auspicious or inauspicious, the consequences of dreams and foreboding the throbbing of any part and portion of the body (अंगविद्या–अंग स्फुरणविद्या) they cannot be called as sages (श्रमण). (13)

इहजीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं ।
ते कामभोग – रसगिद्धा, उववज्जन्ति आसुरे काए ॥१४॥

जो वर्तमान जीवन में अनियमित रहकर समाधियोग से भ्रष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोग काम-भोग और रसों में लोलुप आसुर काय में उत्पन्न होते हैं ॥१४॥

Those who leads their lives undisciplined in present life, slips from contemplation (समाधि–समाधियोग) and become desirous of worldly pleasures and amusements and indulged in tastes, will be born in Āsura-Kāya. (14)

तत्तो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडन्ति ।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥१५॥

उस आसुरकाय से निकलकर भी वे दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करते हैं, अत्यधिक कर्मों से लिप्त होने के कारण उन्हें सम्यक् बोधि की प्राप्ति अति दुर्लभ होती है ॥१५॥

Coming out of āsura-kāya, they transmigrate till a long time in the world. Their souls sullied by rigid karmas, attainment of true-knowledge becomes very hard to them. (15)

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स ।
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥१६॥

यह आत्मा लोभ से इतनी अभिभूत है–धन-धान्य आदि से परिपूर्ण यह संसार किसी एक व्यक्ति को भी दे दिया जाय तब भी वह संतुष्ट नहीं होता ॥१६॥

The soul is so greedy that if this world full of wealth etc., bestowed lavishly to a single man, even then he can not be contented. (16)

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई ।
दोमास - कयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥१७॥

जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे ही लोभ भी होता है। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। दो माशा सोने से पूरा हो जाने वाला कार्य करोड़ों स्वर्णमुद्राओं से भी पूरा न हो सका ॥१७॥

The more a man gets, he wants still more. As the gain increases, the greed flares up. The gain enhances the greed many times. The work which could be done by two māśā gold, the crore gold coins cannot suffice that. (17)

नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासु ऽणेगचित्तासु ।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लन्ति जहा व दासेहिं ॥१८॥

कपटपूर्ण हृदय वाली तथा जिनके वक्ष पर फोड़े या गांठ के समान स्तन हैं, जिनका हृदय अनेक कामनाओं से चंचल है, जो पुरुष को प्रलोभन में फँसाकर उसे दास के समान नचाने वाली हैं, वासनाओं से भरी राक्षसी के समान स्त्रियों में आसक्ति मत रखो ॥१८॥

Never be desirous of women, who are like female demons, due to the deceitful hearts and minds, their boil-like swollen breasts. They flirt with many, attract men and treats them as their slaves. (18)

नारीसु नोवगिज्झेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे ।
धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ॥१९॥

स्त्रियों (स्त्री संसर्ग) का त्याग करने वाला गृहत्यागी भिक्षु उनमें गृद्ध न हो और साधु-धर्म को ही इस लोक तथा परलोक में कल्याणकारी समझकर उसमें स्वयं अपनी आत्मा को स्थिर करे ॥१९॥

The houseless ascetic, who has renounced the women, should not indulge in them. Believing ascetic's code of conduct beneficial in this life and life to come after, the mendicant should fix himself in his own soul. (19)

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्धपन्नेणं ।
तरिहिन्ति जे उ काहिन्ति, तेहिं आराहिया दुवे लोग ॥२०॥

–त्ति बेमि ।

विशुद्ध प्रज्ञा के धारक कपिल मुनि ने यही धर्म कहा है। इस धर्म का आचरण करने वाले संसार सागर को पार करेंगे, उनके दोनों लोक सफल हो जायेंगे ॥२०॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

This religion–code of ascetic conduct is taught by Kapila whose wisdom was pure. Those who follow it will cross the worldly ocean, and their both abodes will be successful.

–Such I speak

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५–स्थानांग सूत्र में बोधि के तीन प्रकार बताये हैं–

ज्ञानबोधि, दर्शनबोधि और चारित्र बोधि।

Salient Elucidations

Gāthā 15–In *Sthānānga sūtra* three types of enlightenment (बोधि) has been described–(1) Knowledge enlightenment, (2) Faith-enlightenment and (3) Conduct enlightenment.

卐

नवम अध्ययन-नमिप्रव्रज्या

पूर्वालोक

विदेहराज मिथिलानरेश राजा नमि एक बार भयंकर दाह ज्वर से व्यथित हुए। छह माह तक दाह-ज्वर की पीड़ा चलती रही। अनेक उपचार किये गये लेकिन रोग शान्त नहीं हुआ। अन्त में एक वैद्य ने कहा–महाराज के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया जाय तो इन्हें शान्ति मिलेगी।

रानियाँ स्वयं चन्दन घिसने लगीं। उनके हाथों के कंगन परस्पर टकराने से शोर हुआ। दाह-पीड़ित राजा को यह शोर असह्य हो गया। मंत्री के संकेत पर हाथ में सौभाग्यसूचक एक-एक कंगन रखकर रानियाँ चन्दन घिसने लगीं। शोर बन्द हो गया।

राजा ने मंत्री से पूछा–क्या चन्दन घिसना बन्द हो गया?

मंत्री ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा–महाराज ! चन्दन अब भी घिसा जा रहा है। एक कंगन किससे टकरायेगा और कैसे शोर होगा?

राजा गहराई में उतर गया–अशान्ति और शोर वहीं होता है, जहाँ दो या दो से अधिक–अनेक हों। एक होने पर शांति होती है। शरीर, इंद्रिय, मन, परिवार आदि की भीड़ से घिरा आत्मा सदा ही अशान्त रहता है। यदि आत्मा इन सबका त्याग कर दे, अकेला निस्पृह हो जाय तो शांति ही शांति है। सुख और शांति तो आत्म-भावों में लीन रहने में है।

इस प्रकार एकत्व भावना का चिन्तन करते-करते राजा नमि को शान्ति अनुभव हुई। नींद लग गई। भावना का प्रभाव हुआ। राजा का दाह ज्वर भी शान्त हो गया। पुत्र को राज सिंहासन सौंपकर संयम ग्रहण कर लिया।

राजा का वैराग्य क्षणिक आवेश है, अथवा इसमें दृढ़ता है, इस बात की परीक्षा करने के लिए स्वयं शक्रेन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर आया। उसने राजर्षि नमि से कई प्रश्न किये, सांसारिकता की ओर मोड़ने का प्रयास किया लेकिन राजर्षि ने उन सब का युक्ति-युक्त समाधान किया।

इस सबका संकलन इस अध्ययन में हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन का नमि प्रव्रज्या नाम ही अपनी विषय वस्तु का संसूचन कर देता है।

आठवें अध्ययन कापिलीय में लाभ और लोभ के दुष्पूर चक्र से विरति का वर्णन हुआ है। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में अन्य प्रकार की विशेषता है।

यहाँ विशेषता यह है कि शक्रेन्द्र ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करता है, उसके सभी प्रश्न और प्रेरणाएँ वैदिक मान्यताओं से अनुप्राणित हैं।

जबकि राजर्षि नमि श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि हैं। उनके सभी समाधान और उत्तर श्रमण परम्परा के अनुसार हैं।

राजर्षि नमि के उत्तरों में आध्यात्मिकता मुखर हो रही है; जबकि इन्द्र उन्हें सांसारिकता की ओर अग्रसर करने के लिए प्रयत्नशील है।

इस अध्ययन की गाथाओं में बड़े ही वैज्ञानिक और मनोरम दृष्टान्त तथा रूपक हैं। गाथाबद्ध होने पर भी प्रश्नोत्तर बड़े ही चुटीले और सार्थक हैं। उपमा और रूपक अलंकार प्रत्येक गाथा में दृष्टव्य है।

प्रस्तुत अध्ययन में आदि से अन्त तक आध्यात्मिकता व संसार से विरक्ति के स्वर मुखरित हो रहे हैं।

अन्त में जब शक्रेन्द्र राजर्षि नमि को नमन करके उनकी प्रशंसा करता है तब तो आध्यात्मिकता की विजय स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ६२ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 9
CONSECRATION OF ROYAL SAGE NAMI

Foreview

Once Videharāja, king of Mithilā, Nami caught the fever. The ailment prolong upto six months. Many treatments were given, but of no use. In the end an experienced physician prescribed–If the best sandal wood. (गोशीर्ष चन्दन) rubbing in water besmeared on the body of the king, he will feel peace.

Queens, themselves began to rub the sandal wood with water, by their own hands. The knocking of the bracelets, which the queens wearing round their wrists, make noise. The fever-caught king felt it unbearable. At the proposal of minister, the queens began to rub the sandal-wood with water, keeping only one bracelet round their writsts, Noise subdued.

King enquired the minister–Is the rubbing of sandal-wood stopped ?

Minister clarified the position–King ! sandal-wood is being rubbed still. But queens kept only one bracelet round their wrists. One bracelet can knock with what, where there is no other. So the noise subdued.

King felt deeply–Disquietude and noise take place, where there are two or more than two–many. Loneliness creates quietude. The soul always remains disquiet engrossed by the crowd of body, senses, mind, family members etc. If the soul renounces all of them, become lonely and wishless, then there is peace and peace only. Happiness and peace can be obtained fixing oneself in the virtues of soul.

Thus reflecting the feeling of loneliness king Nami felt peace, He slept. Reflection showed its effect, the fever pacified, ailment disappeared. Bestowing the throne to his son, king accepted the monkhood and went out of the palace and the town also.

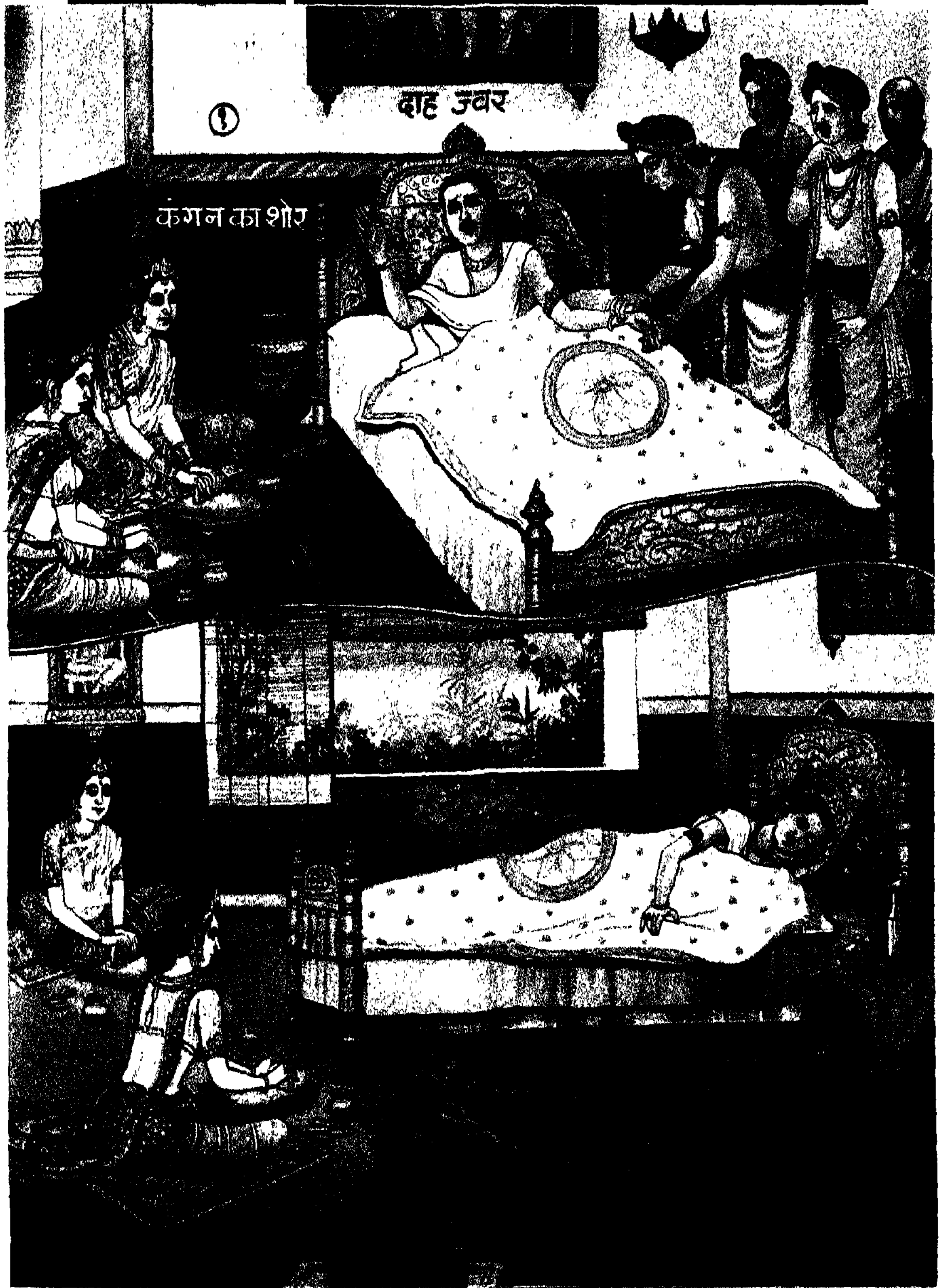
Apathy of king Nami is only a momentary excitement or it is steady–to examine this fact, the king of gods of first heaven (शक्रेन्द्र) came himself in the guise of a brāhamaṇa near the ascetic Nami. He asked many questions to royal sage (राजर्षि) Nami, inspired him to turn to worldliness but royal sage Nami answerred all questions with due reason.

All this have been compiled in this chapter.

The title of the chapter 'Consecration of Nami' itself suggests the subject matter inherent in it.

The previous eighth chapter '*Kāpilīya*' inspires the adept for disinclination by showing the unfulfilled circle of gain and greed; but this chapter consists the speciality of another type.

ILLUSTRATION NO. 19 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक १९ | पृष्ठ ३0 पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 20 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक २० पृष्ठ ३० पर चित्र परिचय देखें

The salient feature is–that the ruler of gods (इन्द्र-शक्रेन्द्र) represents the Brahmanical or Vaidic school of thought, his all questions and inspirations are vitalized by Vaidic rulings.

While Nami represents Sramaṇa school of thought. His all answers are according to Sramaṇa tradition.

There are many allegories and examples, pleasant yet scientific in the couplets of this chapter. Being in the from of couplet the catechism is excellent and meaningful. Similes and metaphors are worth seeing in most of the couplets.

Spiritualism and disinclination towards worldly affairs are evident in whole chapter.

In the end when the ruler of gods bows and appraises royal sage Nami, then the victory of spiritualism becomes quite evident.

There are 62 couplets in this chapter.

卐

नवमं अज्झयणं : नमिपव्वज्जा
नवम अध्ययन : नमि-प्रव्रज्या

चइऊण देवलोगाओ, उववन्नो माणुसंमि लोगंमि ।
उवसन्त-मोहणिज्जो, सरई पोराणियं जाइं ॥१॥

देवलोक का अपना आयुष्य पूर्णकर (नमि राजा) मानव लोक में उत्पन्न हुए। मोह उपशांत होने पर उन्हें पूर्वजन्म की स्मृति-जतिस्मरण ज्ञान हुआ ॥१॥

On completion of god's life, took birth as a man, and as the delusiory karma subdued, he (king Nami) remembered his former birth. (1)

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे ।
पुत्तं ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमई नमी राया ॥२॥

पूर्वजन्म का स्मरण हो जाने पर भगवान नमिराज स्वयं संबुद्ध हुए और अनुत्तर धर्म के परिपालन हेतु तत्पर होकर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाकर अभिनिष्क्रमण किया ॥२॥

By the remembrance of his previous birth, the king (Nami) enlightened himself, placed his son on the throne, Namirāja went out to observe the supreme religious order. (2)

से देवलोग-सरिसे, अन्तेउरवरगओ वरे भोए ।
भुंजित्तु नमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयई ॥३॥

अपने अन्तःपुर में रहकर देवलोक के समान श्रेष्ठ भोगों को भोगकर नमिराज प्रतिबुद्ध हुए और उन्होंने भोगों का परित्याग कर दिया ॥३॥

Having enjoyed the company of beautiful queens of his seraglio, excellent pleasures matching those of heavens, king Nami became enlightened himself and renounced all those pleasures and amusements. (3)

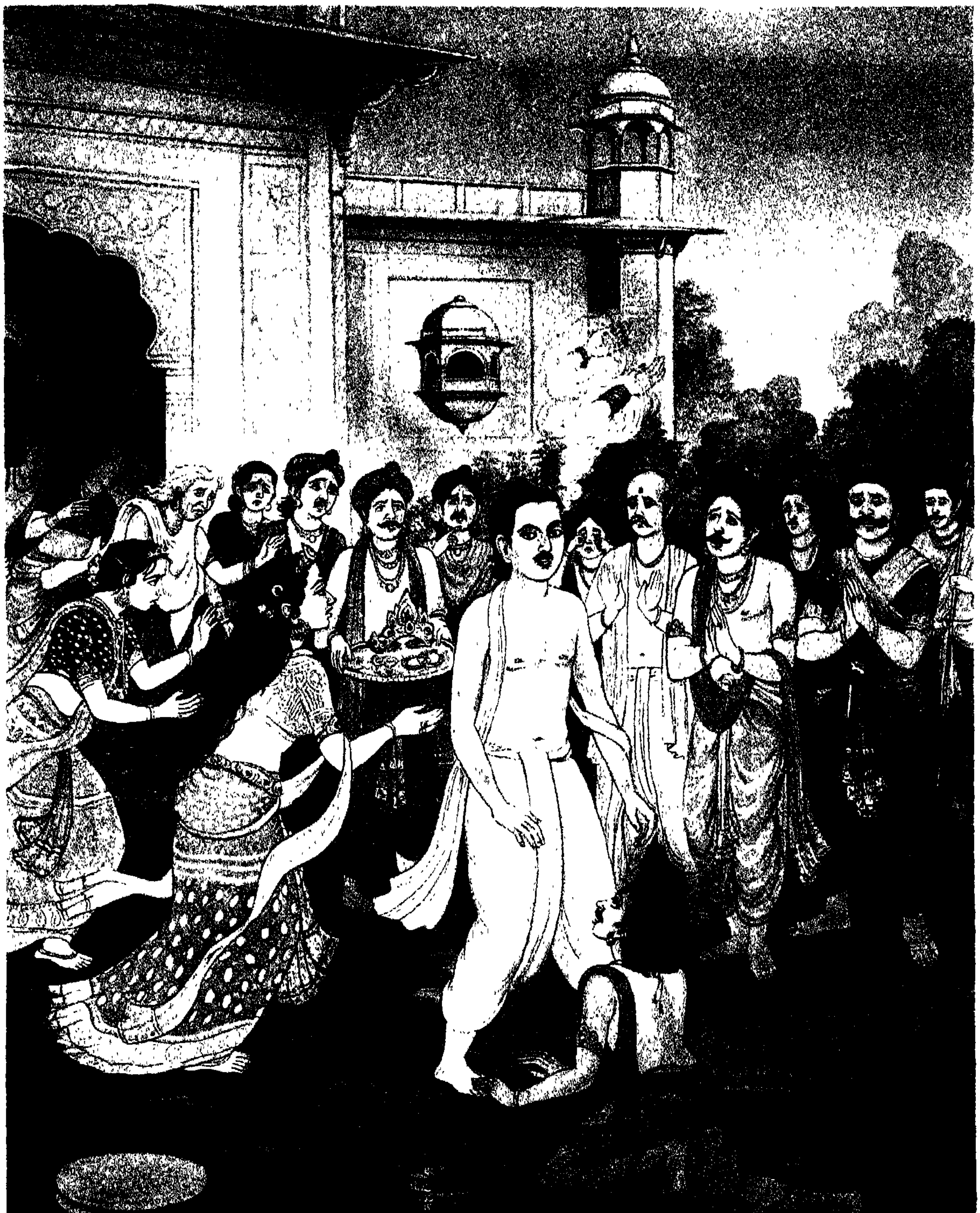
मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं ।
चिच्चा अभिनिक्खन्तो, एगन्तमहिट्ठिओ भयवं ॥४॥

अपने पुर, जनपद, मिथिला नगरी, सेना, अन्तःपुर तथा समस्त परिजनों का परित्याग करके भगवान नमिराज ने अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बने ॥४॥

Renouncing the town, populated place, Mithilā city, country, army, seraglio and all his retinue the venerable Namirāja moved out and resorted at a lonely place. (4)

कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयन्तंमि ।
तइया रायरिसिंमि, नमिंमि अभिणिक्खमन्तंमि ॥५॥

ILLUSTRATION NO. 21 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22


वैराग्य की ओर बढ़ते चरण

चित्र क्रमांक २१ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 22 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक २२ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

जिस समय नमि राजर्षि अभिनिष्क्रमण करके प्रव्रजित हो रहे थे उस समय मिथिला नगरी में सर्वत्र बहुत कोलाहल हो रहा था ॥५॥

When royal sage Nami was moving out to be consecrated, at that occasion arose a tremendous roar in Mithilā city. (5)

अब्भुट्ठियं रायरिसिं, पव्वज्जा-ठाणमुत्तमं ।
सक्को माहणरूवेण, इमं वयणमब्बवी-॥६॥

उत्तम प्रव्रज्या स्थान (साधु पद) के लिए उद्यत नमि राजर्षि के पास शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके आया और उसने नमि राजर्षि से इस प्रकार के वचन कहे-॥६॥

Determined for attaining the best stage of consecration (monkhood) the ruler of gods of first heavenly abode-Śakra (शक्रेन्द्र) in the guise of a brāhmaṇa came and said to him the following words- (6)

'किण्णु भो ! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलग - संकुला ।
सुव्वन्ति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य ?'॥७॥

हे राजर्षि ! आज मिथिला नगरी के महलों में, घरों में, कोलाहलपूर्ण हृदय विदारक शब्द क्यों सुनने में आ रहे हैं ?॥७॥

Royal sage ! Why today Mithilā city is full of uproar. Dreadful bewailments are heard from palaces and houses. (7)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी-॥८॥

देवेन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने इन्द्र से इस प्रकार कहा-॥८॥

Hearing the words spoken by king of gods, the royal sage Nami, inspired by reason and cause spoke thus to him-(8)

'मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे ।
पत्त-पुप्फ-फलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया ॥९॥

मिथिला नगरी में शीतल छाया वाला, मनोरम, पत्र-पुष्प-फलों से युक्त, बहुतों (बहुत पक्षियों) के लिए उपकारक एक चैत्य वृक्ष था-॥९॥

In Mithilā there was a sacred tree (चैत्यवृक्ष) pleasant, full of leaves-flowers-fruits, and had a cool shadow, a shelter and beneficial to many (birds)-(9)

वाएण हीरमाणंमि, चेइयंमि मणोरमे ।
दुहिया असरणा अत्ता, एए कन्दन्ति भो ! खगा' ॥१०॥

प्रचण्ड वायु के वेग से वह मनोरम चैत्य वृक्ष उखड़ गया। हे विप्र ! उस वृक्ष के उखड़ जाने से दुःखी और अशरण ये पक्षी आक्रन्दन कर रहे हैं ॥१०॥

Now that pleasant sacred tree uprooted by gust of furious storm. Brāhamaṇa ! b uprooting that sacred tree these birds became unsheltered and grievious so they are bewailing. (10)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी- ॥११॥

नमि राजर्षि का यह उत्तर सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा- ॥११॥

Hearing the answer of royal sage Nami, the king of gods pursuing his reasons and arguments, spoke thus-(11)

'एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्झइ मन्दिरं ।
भयवं ! अन्तेउरं तेणं, कीस णं नावपेक्खसि ? ॥१२॥

भगवन् ! अग्नि और वायु से आपका महल तथा अंतःपुर जल रहा है। आप इसकी ओर क्यों नहीं देखते ? ॥१२॥

O revered sage ! Due to fire and air your palace and seraglio is burning. Why do not you take care of them. (12)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी- ॥१३॥

विप्र वेशधारी इन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने इन्द्र को इस प्रकार उत्तर दिया- ॥१३॥

Hearing the question of ruler of gods guise as brāhamaṇa and inspired by reason and cause royal sage Nami answered thus-(13)

'सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं ।
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचणं ॥१४॥

जिसके पास अपना कुछ भी नहीं है, ऐसा मैं सुख से जीता हूँ। मिथिला के जलने से मेरा कुछ भी नहीं जलता ॥१४॥

I have nothing my own, so I happily live and dwell. If Mithilā is on fire, nothing burns that may be called mine. (14)

चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो ।
पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ॥१५॥

गृह व्यापार से मुक्त तथा स्त्री-पुत्र के त्यागी श्रमण को न कोई वस्तु प्रिय होती है और न अप्रिय ही होती है ॥१५॥

For the sage, who is free from household affairs and forsaken sons and women, there is nothing which may be dear or undear to him. (14)

बहुं खु मुणिणो भद्दं, अणगारस्स भिक्खुणो ।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगन्तमणुपस्सओ, ॥१६॥

समस्त संयोगों से मुक्त और एकान्तदर्शी–आत्मदर्शी–मैं अकेला ही हूँ, इस प्रकार की भावना वाले अनगार भिक्षु के लिए सुख ही सुख है ॥१६॥

Free from all worldly ties, and who has fixed himself in the virtues of his soul with the feeling that I am alone–such homeless mendicant is the happiest one. (16)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी– ॥१७॥

नमि राजर्षि के इस उत्तर को सुनकर तथा हेतु कारण से प्रेरित होकर इन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा–॥१७॥

Hearing this reply of royal sage Nami, the ruler of gods inspired with his reasons and arguments spoke thus to him–(17)

'पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य ।
उस्सूलग–सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥१८॥'

हे क्षत्रिय ! पहले नगर का परकोटा, द्वार, अट्टालिकाएं, नगर की खाई, तथा शतघ्नी (सौ पुरुषों का एक साथ वध कर सके, ऐसी तोप) का निर्माण कराओ, उसके बाद प्रव्रज्या लेना ॥१८॥

O Kṣatriya (of warrior race) ! Erect a boundry wall around the city, main gates of the city, battlements, dig a moat surrounding the boundry wall, construct a śataghnī (a cannon by which hundred warriors can be murdered at a time) and then accept the consecration (प्रव्रज्या-दीक्षा). (18)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी– ॥१९॥

देवेन्द्र के यह वचन सुनकर तथा हेतु कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा–॥१९॥

Hearing these words and inspired by his reasons and causes, the royal sage Nami spoke unto the ruler of gods–(19)

'सद्धं नगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खन्तिं निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥२०॥

श्रद्धारूपी नगर, तप-संयम की अर्गला–सांकल, क्षमा का परकोटा और तीनों गुप्तियों (मन-वचन-काय गुप्ति) की बुर्ज, खाई और शतघ्नी से सुरक्षित, अजेय बनाकर–॥२०॥

Constructing city of faith, penance and control its bolts, forgiveness its rampart, tower, moat and cannon of restraints–(mental, vocal and bodily)in this way making secured and unconquerable–(20)

धणु परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमन्थए ॥२१॥

पराक्रम को धनुष तथा ईर्या समिति को उस धनुष की प्रत्यंचा (डोर), धृति को उसकी मूठ तथा सत्य से उसे बाँधकर–॥२१॥

Creating the bow of spiritual effort, its string of circumspective movement, stediness its poles and tied with the chord of truth–(21)

तवनारायजुत्तेण, भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥२२॥'

तपरूपी बाण से युक्त उस धनुष के द्वारा कर्म-कवच को छिन्न-भिन्न कर, अन्तर्युद्ध में विजय प्राप्त कर मुनि संसार-भ्रमण से मुक्त हो जाता है ॥२२॥

Harness the arrow of penance, by such a bow piercing the karma-armour and winning victory in this internal war–the monk gets liberation from the cycles of births and deaths. (22)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी–॥२३॥

नमि राजर्षि के इस उत्तर को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा–॥२३॥

Hearing this allegorical and metaphorical reply of royal sage Nami full with spiritualism, the king of gods inspired by his reasons and arguments said unto him–(23)

'पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य ।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥२४॥'

हे क्षत्रिय ! प्रासाद, वर्द्धमान गृह, चन्द्रशालाएँ (सरोवर के मध्य निर्मित छोटा महल, जलमहल या हवामहल) बनवाओ, तदुपरान्त दीक्षा ग्रहण करना ॥२४॥

O Kṣatriya ! Build up strong palaces, apartments, excellent buildings with diverse architectural designs, exquisite turrents (a chamber (जल महल) between a tank) and then you accept consecration. (24)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी–॥२५॥

इस कथन को सुनकर हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा ॥२५॥

Having heard these words and inspired by his reasons and arguments the royal sage Nami replied the ruler of gods–(25)

'संसयं खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं ।
जत्थेव गन्तुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्वेज्ज सासयं ॥२६॥'

जिसके मन में शंका होती है, वही मार्ग में घर का निर्माण करता है। जहाँ जाने की इच्छा हो, वहीं अपना शाश्वत–स्थायी निवास बनाना चाहिए ॥२६॥

Suspicious minds erect the house on the way. One should make his eternal home, if he is sure to attain the goal. (26)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी– ॥२७॥

इस उत्तर को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित इन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा– ॥२७॥

Hearing this reply of royal sage Nami, the ruler of gods inspired by his reasons and arguments spoke unto him–(27)

'आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।
नगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥२८॥'

हे क्षत्रिय ! तुम लुटेरों, प्राणघातक दस्युओं, हत्यारों, गिरहकटों और चोरों–तस्करों से नगर को सुरक्षित करके तदुपरान्त श्रमणत्व धारण कर लेना ॥२८॥

O Kṣatriya ! First you safe your city from robbers, burglars, killers, pick pockets, thieves etc., and then be consecrated. (28)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण - चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी– ॥२९॥

इन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा– ॥२९॥

Hearing these words of king of gods, the royal seer Nami inspired by reasons and causes told him these words–(29)

'असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादण्डो पजुंजई ।
अकारिणोऽत्थ बज्झन्ति, मुच्चई कारगो जणो ॥३०॥'

मनुष्यों के द्वारा कई बार गलत दण्ड का भी प्रयोग किया जाता है। निर्दोष दण्डित हो जाते हैं और अपराधी साफ छूट जाते हैं ॥३०॥

Sometimes men give the punishment in wrong way, innocents are caught and harrassed while the culprits escape. (30)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी– ॥३१॥

इस उत्तर को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा– ॥३१॥

Hearing this reply of royal seer Nami, the ruler of gods inspired by reasons and arguments told unto him–(31)

'जे केई पत्थिवा तुब्भं, नाऽऽनमन्ति नराहिवा !
वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥३२॥'

हे राजन् ! जो राजा तुम्हारे समक्ष झुकते नहीं, उन पर विजय प्राप्त करके वश में करो तब प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ॥३२॥

O king ! Those rulers who have not submitted to you, subjugate them and then be consecrated. (32)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी- ॥३३॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने इन्द्र से कहा- ॥३३॥

Hearing this, the royal sage Nami pursuing his reasons and arguments, replied the king of gods by these words-(33)

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥३४॥

दुर्जय संग्राम में जो दस लाख योद्धाओं को जीत लेता है उसकी अपेक्षा सच्चा वीर वही है जो अपनी आत्मा को जीत लेता है। आत्मविजय ही सच्ची विजय है ॥३४॥

A warrior who wins thousands and thousands valiants in dreadful battle, campared to him the true brave is he who wins his own soul (filled with passions and amusements). Winning one's own soul is the real (true) victory. (34)

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ?
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥३५॥

स्वयं अपनी आत्मा से ही युद्ध करना चाहिए, बाह्य युद्ध से क्या लाभ है? आत्मा से आत्मा को जीतने पर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है ॥३५॥

One should fight against one's own soul by own self. What is the use of external fight. Winning the soul by own soul, the true happiness obtained. (35)

पंचिन्दियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥३६॥'

पाँचों इन्द्रियाँ, क्रोध-मान-माया-लोभ और मन-ये सभी दुर्जेय हैं। एक अपनी आत्मा को जीत लेने से इन सब पर विजय प्राप्त हो जाती है ॥३६॥

Five senses (hearing, sight, smell, taste and touch), four passions-anger, pride, deceit and greed and mind all (ten) these are too difficult to conquer. And to subjugate mind is a most difficult task. But by winning own self, these all are winned easily. (36)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण-चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी- ॥३७॥

नमि राजर्षि के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा- ॥३७॥

Hearing this reply of royal seer Nami, the ruler of gods pursuing his arguments and reasons spoke these words-(37)

'जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समणमाहणे ।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥३८॥'

हे क्षत्रिय ! पहले तुम विशाल यज्ञ करो, श्रमण और माहनों को भोजन कराओ, दान दो, भोगों को भोगो और फिर स्वयं यज्ञ करके साधु होना ॥३८॥

Kṣatriya (great warrior) ! Organise an elaborate oblation (religious sacrifice according to vaidic tradition), feed hermitages–sages and priests–brāhmaṇas, give alms, enjoy yourself and then be an ascetic. (38)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी– ॥३९॥

इन्द्र के इस कथन को सुन और हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने इन्द्र से कहा– ॥३९॥

Hearing these word of ruler of gods, the royal seer Nami pursuing his arguments and reasons spoke thus unto him–(39)

'जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए ।
तस्सावि संजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किंचण ॥४०॥

जो मानव प्रति मास दस लाख गायें दान देता है उसके लिए भी संयम श्रेयस्कर है–कल्याणकारी है, चाहे वह कुछ भी दान न दे ॥४०॥

One who donates thousands and thousands cows every month, but superior is he who observe restrain though he has nothing to give. (40)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण – चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी– ॥४१॥

राजर्षि के इस अर्थ को सुनकर, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा– ॥४१॥

Hearing this reply given by royal seer Nami, the king of gods inspired by his causes and reasons spoke these words unto him–(41)

'घोरासमं चइत्ताणं, अन्नं पत्थेसि आसमं ।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा ! ॥४२॥'

हे नराधिप ! तुम घोराश्रम–गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य आश्रम (संन्यास) की इच्छा कर रहे हो (यह अनुचित है)। इसी गृहस्थाश्रम में रहकर पोषधरत हो जाओ ॥४२॥

Renouncing the most difficult life-order (घोराश्रम) i. e., the life-order of a householder, you are wishing to enter another life-order viz., recluse life-order. It is not proper to you. Remaining a householder observe poṣadha. (42)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी– ॥४३॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने उससे कहा– ॥४३॥

Hearing these words spoken by ruler of gods, the royal seer Nami pursuing his arguments and reasons said unto him–(43)

'मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।
न सो सुयक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥४४॥'

अज्ञानी तपस्वी एक-एक मास की तपस्या करके पारणे में कुशाग्र–कुश की नोंक पर आये उतना ही भोजन करता है उसका वह घोर तप भी सु-आख्यात–तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित श्रमण धर्म की तुलना में सोलहवीं कला–अंश के बराबर भी नहीं है ॥४४॥

A hermitage, unaware of true religion, observes hunger-hardship upto every 30 days and eats as much eatables as stand on a tip of *kuṣa* grass after one month's fast, his such tremendous hunger-hardship can not even approach the sixteenth part of the Śramaṇa (sage) religious order prescribed by the Tīrthaṁkaras. (44)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी– ॥४५॥

नमि राजर्षि का यह अर्थ सुनकर तथा हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने उनसे कहा– ॥४५॥

Hearing this meaningful reply of the royal seer Nami, the ruler of gods inspired by his reasons and causes spoke thus unto him–(45)

'हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।
कोसं वड्ढावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ! ॥४६॥'

हे क्षत्रिय ! चाँदी, सोना, मणि, मोती, काँसे के बर्तन, वस्त्र, वाहन तथा कोष को बढ़ाकर उसके उपरान्त प्रव्रजित होना ॥४६॥

O Kṣatriya (the talented warrior) ! Exaggerate many times your silver, gold, jewels, gems, pearls, bronze (utensils), cloths, fine robes, carriages, vehicles and treasures; then you accept consecration. (46)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणब्बवी– ॥४७॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने उससे कहा– ॥४७॥

Hearing these words of ruler of gods, the royal seer Nami pursuing his reason and cause spoke these words unto him–(47)

'सुवण्ण-रुप्पस उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा उ आगाससमा अणन्तिया ॥४८॥

कैलाश के समान स्वर्ण और चाँदी के असंख्य पर्वत भी हों, किन्तु उनसे भी लोभी व्यक्ति की बिल्कुल भी तृप्ति नहीं होती क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं ॥४८॥

If there are innumerable mountains of gold and silver as vast and high as Kailāśa-mountain, even then the greedy person cannot get a bit of contentment because the desires are infinite–as vast as the space. (48)

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ॥४९॥'

समस्त पृथ्वी, चावल, जौ तथा अन्य धान्य, पशु और स्वर्ण–ये सभी एक व्यक्ति की भी इच्छा पूरी नहीं कर सकते–यह जानकर तप का आचरण करे ॥४९॥

The whole earth with its crops of rice, barley and other grains and corns along with all wealths and cattles and gold and other metals–all these cannot fulfil the desire of a single man. Knowing this fact, one should practise penances. (49)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण–चोइओ ।
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी–॥५०॥

नमि राजर्षि के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने उनसे कहा–॥५०॥

Hearing the reply of royal seer Nami, the king of gods inspired by reasons and causes, said these words unto him–(50)

'अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा !
असन्ते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहन्नसि ॥५१॥'

हे पृथ्वीनाथ ! आश्चर्य है कि अभ्युदय काल में प्रत्यक्ष प्राप्त भोगों का तो त्याग कर रहे हो और अप्राप्त भोगों की इच्छा कर रहे हो; तुम अपने संकल्प से ही प्रताड़ित हो रहे हो ॥५१॥

O the owner of the earth, the king ! it is strange and unusual that you are renouncing the acquired and visible pleasures and amusements in your progressive period of life and willing the unacquired, non-existing and non-visible pleasures; thus you will have to suffer by your own resolve. (51)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ–कारणचोइओ ।
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी–॥५२॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन और हेतु-कारण से प्रेरित हो नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं–॥५२॥

On hearing such words of god's-ruler, the royal seer Nami, pursuing his reasons and arguments said these words unto him–(52)

'सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइं ॥५३॥

जगत के काम-भोग शल्य हैं, विष हैं और आशीविष सर्प के समान हैं। जो लोग काम-भोगों की इच्छा रखते हैं लेकिन किसी कारणवश भोग नहीं पाते, वे भी दुर्गति में जाते हैं ॥५३॥

The mundane pleasures, lusts, desires are like the thorns that rankle, are poisons, the venomous cobra. He, who hankers after the lusts, but cannot enjoy pleasures due to unavoidable causes, still they are to take birth in ill-existences (दुर्गति). (53)

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गईपडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भयं ॥५४॥'

क्रोध से नीच गति और मान से अधम गति की प्राप्ति होती है तथा छल-कपट-माया सुगति को रोक देती है और लोभ से इस लोक तथा परलोक–दोनों में भय होता है ॥५४॥

Anger takes to mean existence (नीच गति), the pride to low (अधम) existence, the deceit obstructs the gracious existence (सुगति) and the greed begets dreadfulness in this life and the life to come after-both worlds. (54)

अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इन्दत्तं ।
वन्दइ अभित्थुणन्तो, इमाहि महुराहिं वग्गूहिं–॥५५॥

विप्ररूप को त्यागकर देवेन्द्र अपने वास्तविक रूप में आया तथा मधुर और प्रशस्त वचनों से नमि राजर्षि की वन्दना करता हुआ कहने लगा–॥५५॥

Śakra, the king of gods, made his apperance in his full lustre, by throwing off the brāhmaṇa guise, he bowed down to the royal seer Nami and praised him with these sweet words–(55)

'अहो ! ते निज्जिओ कोहो, अहो ! ते माणो पराजिओ ।
अहो ! ते निरक्किया माया, अहो ! ते लोभो वसीकओ ॥५६॥

अहो ! तुमने क्रोध पर विजय प्राप्त की। अहो ! तुमने मान को पराजित कर दिया। अहो ! तुमने छल-कपट-माया को दूर कर दिया। अहो ! तुमने लोभ को वश में कर लिया ॥५६॥

Bravo ! you have conquered anger; Bravo ! you have overcame pride; Bravo ! you have vanquished the deceit; Bravo ! you have subjugated greed. (56)

अहो ! ते अज्जवं साहु, अहो ! ते साहु मद्दवं ।
अहो ! ते उत्तमा खन्ती, अहो ! ते मुत्ति उत्तमा ॥५७॥

अहो ! तुम्हारा आर्जव उत्तम है। अहो ! तुम्हारा मार्दव उत्तम है। तुम्हारी क्षमा और निर्लोभता उत्तम है ॥५७॥

Your simplicity is full of grace, your mildness is also graceful. Your forgiveness is utmost and your ungreediness is of highest rank. (57)

इहं सि उत्तमो भन्ते ! पेच्चा होहिसि उत्तमो ।
लोगत्तमुत्तमं ठाणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ ॥५८॥'

भगवन् ! आप इस लोक में भी उत्तम हैं और परलोक में उत्तम होंगे। कर्म-मल से रहित होकर आप लोक में उत्तमोत्तम स्थान–सिद्ध-स्थान को प्राप्त करेंगे ॥५८॥

O venerable ! You are excellent in this world (life) and would be super-excellent in next world (life). Destroying all karma-dust you will obtain the super excellent liberation-abode. (58)

एवं अभित्थुणंतो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।
पयाहिणं करेन्तो, पुणो पुणो वन्दई सक्को ॥५९॥

इस प्रकार देवेन्द्र–शक्रेन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से नमि राजर्षि की स्तुति और प्रदक्षिणा की और बार-बार वन्दना की ॥५९॥

Thus praising the royal sage with utmost right faith, *Śakrendra*, the king of gods; circumambulated (प्रदक्षिणा दी) with devotion, and bowed down many many times. (59)

तो वन्दिऊण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स ।
आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुंडलतिरीडी ॥६०॥

तत्पश्चात नमि मुनिराज के चक्र और अंकुश के लक्षणों से युक्त पाद-पद्मों की वन्दना करके ललित तथा चपल कुण्डल और मुकुट धारण किये हुए देवराज शक्रेन्द्र आकाश में ऊपर चला गया ॥६०॥

Thus bowing down with devotion at the feet of royal seer, which (the feet) were marked with disk (wheel–चक्र) and goad (hook-अंकुश) the Śakra with his crown and his ear-rings dazzling and dangling (prettily trembling) flew in the space for his celestial abode. (60)

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥६१॥

राजर्षि नमि ने अपनी आत्मा को आत्म-भावों में विनत किया, साक्षात् इन्द्र द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए, गृह तथा विदेह देश की राज्यलक्ष्मी को त्याग कर श्रामण्य भाव में स्थिर रहे ॥६१॥

Royal seer Nami fixed his l in soul-virtues (thoughts) did not fickle from religious rituals, even inspired by king of gods in person, and renouncing home and the kingdom of videharājya, remained steady in sage-hood. (61)

एवं करेन्ति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा से नमी रायरिसी ॥६२॥

–त्ति बेमि ।

संबुद्ध, पण्डित, प्रविचक्षण साधक ऐसा ही आचरण करते हैं; नमि राजर्षि के समान काम-भोगों से निवृत्त होकर आत्म-साधना में निरत होते हैं ॥६२॥ **–ऐसा मैं कहता हूँ ।**

So do the enlightened, witty and proficient adepts; like royal seer Nami they abandon pleasures, amusements and addict to self-transact (आत्मसाधना) (62) **–Such I speak**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७–साधारण मकान गृह होता है, और सात या उससे अधिक मंजिलों का भवन प्रासाद कहलाता है। अथवा देवमन्दिर और राजभवन प्रासाद कहलाते हैं–(बृहद्वृत्ति)

गाथा ८–हेतु–साध्य के अभाव में जिसका अभाव निश्चित हो, उसे हेतु कहते हैं। उसका प्रयोग इस प्रकार है–जैसे कि इन्द्र कहता है–तुम्हारा अभिनिष्क्रमण अनुचित है, क्योंकि तुम्हारे अभिनिष्क्रमण के कारण समूचे नगर में हृदयद्रावक कोलाहल हो रहा है। पहला अंश प्रतिज्ञा वचन है, अतः वह पक्ष है। और दूसरा, वचन हेतु है, जो अभिनिष्क्रमण के अनौचित्य को सिद्ध करता है।

कारण–जिसके अभाव में कार्य की उत्पत्ति किसी भी प्रकार सम्भव न हो, अर्थात् जो नियत रूप से कार्य का पूर्ववर्ती हो, उसे कारण कहते हैं। जैसे धूम्र रूप कार्य का पूर्ववर्ती कारण अग्नि है। इस प्रसंग में इन्द्र ने जो कहा–कि (यदि) तुम अभिनिष्क्रमण नहीं करते, तो इतना हृदयद्रावक कोलाहल नहीं होता। इसमें कोलाहल कार्य है, अभिनिष्क्रमण उसका कारण है। (सुखबोधावृत्ति)

गाथा २४–मूल "पोसहं" शब्द के श्वेताम्बर साहित्य में "पोषध" तथा "प्रोषध" दोनों संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं। दिगम्बर साहित्य में इसे "प्रोषध" और बौद्ध साहित्य में "उपोसथ" कहते हैं। शान्त्याचार्य ने पोषध की व्युत्पत्ति की है–"धर्म के पोष अर्थात् पुष्टि को धारण करने वाला व्रतविशेष–"पोषं धर्मपुष्टिं विधत्ते।" (बृ. वृ.)

बौद्ध परम्परा में (अंगुत्तर निकाय भा. १, पृ. २१२) के अनुसार प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पंचदशी (पूर्णिमा और अमावस्या) को उपोसथ होता है। उपोसथ में प्राणियों की हिंसा, चोरी, मैथुन और मृषावाद का त्याग होता है। रात्रि में भोजन नहीं किया जाता। दिन में भी विकाल में एक बार ही भोजन होता है। माला, ग्रन्थ आदि का उपयोग नहीं किया जाता है।

Salient Elucidations

Gāthā 7–Ordinary residence is called house, and the building of seven and more than seven storeys is called palace (प्रासाद) or temples of gods and the residential mansions of kings and rulers are called palaces. (*Vṛhad Vṛtti*)

Gāthā 8–**Reason** (हेतु)–In the absence of inference, disappearance of which is definite that is called reason. Its use is as–e. g. king of gods says–your moving out is not proper, because by your moving out, the heart-piercing uproar is taking place. The first portion of this sentence is a statement of proposition that is to be proved, so it is a side of argument. And the second side the alternative is reason which proves the unproperness of moving out.

Cause (कारण)–In absence of which (cause) the effect cannot originate in any way. Inevitably which is preceding to effect (कार्य) is called a cause. For example–fire is the preceding cause of smoke.

In the present reference–the king of gods has said–if you did not move out then so much heart-piercing uproar would not have aroused.

Here the uproar is the effect and moving out is its cause. (*Sukhabodhā Vṛtti*)

Gāthā 24–Two *Sanskṛt* renderings are found-as *Poṣadha* (पोषध) and *Proṣadha* (प्रोषध) of original *Prākṛta* word Posaha (पोसह) in *Śwetāmabara* literature.

It is termed as *Proṣadha* (प्रोषध) in Digambara literature.

Bauddha literature terms it as Uposatha (उपोसथ)

Śāntyācārya gave the grammatical origin of the word Poṣadha like this–the special vow, which nourishes the religion (religious rituals) *Poṣa dharmapuṣṭi vidhate* (*V. V.*)

According to Bauddha tradition (*Aṅguttara*, Vol. I, p. 212) every fortnight of lunar month-eighth, tenth, fifteenth (full-moon and no moon–पूर्णिमा और अमावस्या) days, uposatha is observed. In it, the renouncement of killing the living beings, untruth, stealing, sexual intercourse is done. No eatables taken in night. Even in the day one meal that also not at the proper meal-time. Book, rosary are also not taken in use.

दशम अध्ययन : द्रुमपत्रक

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम दुमपत्तयं (संस्कृत–द्रुमपत्रक) इसकी प्रथम गाथा के प्रथम शब्द के आधार पर रखा गया है।

इससे पूर्व नौवें अध्ययन में श्रमण संस्कृति द्वारा अनुमोदित आध्यात्मिक स्वर मुखर हुआ था। इस दसवें अध्ययन में साधक को जागरूक रहने और जीवन के प्रत्येक क्षण के सदुपयोग की प्रेरणा दी गई है।

वृक्ष के पके हुए श्वेत-पीत पत्र को आधार बनाकर साधकों को जीवन की नश्वरता का बोध देकर अप्रमाद की प्रेरणा दी है।

यद्यपि भगवान महावीर प्रत्यक्ष रूप से गौतम गणधर को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे गौतम ! एक क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो; किन्तु यह उद्‌बोधन श्रमण अथवा श्रावक–सभी साधकों के लिए है।

मानव जीवन की नश्वरता के प्रतिपादन के साथ पाँचों एकेन्द्रिय स्थावरकायों, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय त्रसकाय के जीवों की कायस्थिति और आयुस्थिति भी बताई गई है। पंचेन्द्रिय जीवों की आयु का भी वर्णन है।

इस वर्णन का अभिप्राय यह है कि यदि वर्तमान मानव-जीवन में मुक्ति प्राप्त नहीं की तो अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

मनुष्य गति में भी अनेक विघ्न-बाधाओं, रोगों, आतंकों का वर्णन करके कहा गया है कि शरीर दिन-दिन क्षीण हो रहा है अतः प्रमाद को जीवन में स्थान मत दो। शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करो।

अप्रमाद का प्रबल प्रेरक यह एक अध्ययन ही वैराग्य ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठापित हो सकता है।

इस अध्ययन की भाषा सुललित और हृदयहारिणी है। शैली की प्रवाहशीलता में प्रवहण करता हुआ साधक (पाठक) वैराग्य भावों में सराबोर हो जाता है।

निर्युक्ति, चूर्णि आदि के अनुसार इस अध्ययन की पृष्ठभूमि में गौतम गणधर की खिन्नता बताई गई है। उस खिन्नता का कारण कई घटनाएँ थीं। सभी घटनाएँ 'उत्तराध्ययन महिमा' में संकलित हैं। वहाँ देखें।

गौतम की खिन्नता का प्रमुख कारण उन्हें केवलज्ञान की उत्पत्ति न होना था जबकि उनके बाद प्रव्रजित हुए अनेक साधु केवली बन चुके थे। गौतम को केवलज्ञान न होने का प्रमुख कारण उनका भगवान के प्रति धर्म-स्नेह था। इसीलिए भगवान ने इस अध्ययन की २८वीं गाथा में गौतम को स्नेह बंधन को तोड़ने की पुरजोर प्रेरणा दी।

इस संपूर्ण अध्ययन में अप्रमाद, सतत जागरूकता, निर्लेपता, चारित्र और ज्ञान आराधना का स्वर गुंजायमान है। साधक की निर्दोष और सतत साधना के लिए यह अध्ययन महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३७ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 10
THE TREE-LEAF

Foreview

The title of this chapter based on the first word of first couplet–'Tree-Leaf (दुम-पत्तयं–द्रुमपत्रक).

In the preceding ninth chapter spiritualism was elaborated as vitalized by Śramaṇa culture. While by this chpater an adept is inspired to ever remain alert, careful and to utilize the every moment of life.

Taking example of ripen (fallow–whitish-yellow) leaf of a tree the momentariness of life is elaborated and making an adept wakeful he is inspired to be ever careful and never be negligent.

Through out Bhagawāna Mahāvīra, directly addressing Gautama Gaṇadhara says that 'O Gautama ! Never be careless even for a moment' but this address is meant for all religious practisers, may they be sages or householders (observers of full or partial vows).

With the description of transient human life; the life-duration and body-duration of five one-sensed immovalable beings, two-sensed, three-sensed, four-sensed movable beings is also described. The life-duration of the beings, having all five senses, we also get.

The underlying idea of all this description lies in the fact, if one does not attain salvation by this human life then he will have to transmigrate in this world upto endless time.

Describing the hindrances, obstacles, panics and diseases in human life, it is told with emphasis that the body is weakening day by day, so never be negligent; and attain salvation as soon as possible.

The intense inspirer of non-negligence, this very chapter can be placed as a scripture of apathy.

The language of this chapter is very charming and lucid. The style is so fluent that the reader becomes engrossed in apathetic-thoughts.

According to Niryukti, Cūrṇī etc., the background of this chapter is told the mental depression of Gautama Gaṇadhara. The cause of this depression were many happenings.

All those happenings are compiled in the book *Uttarādhayana Mahimā*. Readers are requested to read that book.

The primary cause of Gautama's depression was not attaining supreme knowledge; while many saints adopting monkhood after him attained that. The main cause of non-revealing the supreme knowledge was his pious-love with Bhagawāna Mahāvīra. Therefore Bhagawāna Mahāvīra instantly inspired Gautama to break down all the love-snares in the 28th couplet of this chapter.

The whole chapter endowed with carefulness, constant wakefulness, and practising conduct and knowledge. For faultless and constant adeptation this chapter is full of inspirations.

This chapter contains 37 couplets.

दसमं अज्झयणं : दुमपत्तयं
दशम अध्ययन : द्रुमपत्रक

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१॥

जिस प्रकार रात्रियाँ (समय) बीत जाने पर वृक्ष का पका हुआ पत्ता झड़ जाता है। उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। इसलिये हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो ॥१॥

With passing nights (time) as the ripened whitish-yellow–fallow leaf of the tree falls down to the ground. The life of man is like this. So Gautama ! do not be careless for even a moment. (1)

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२॥

कुश (घास) के अग्रभाग (नोंक) पर चमकते हुए ओसबिन्दु के समान यह मानव जीवन क्षणिक है। अत: हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥२॥

The life-duration of a man is transient like a dew-drop at the tip of *Kuṣa*-grass. Therefore Gautama ! be not negligent even for a moment. (2)

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३॥

यह अल्पकालीन मनुष्य आयु भी बहुत से विघ्नों से भरी है और इसी में सम्पूर्ण कर्म-रज को झाड़ देना है। इसलिए हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३॥

This short-termed man-life is full of many hindrances; and in this short life all dust of karmas to be annihilated. So Gautama ! have no negligence even for a moment. (3)

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥४॥

संसार के समस्त प्राणियों को चिरकाल से ही मनुष्य-जन्म की प्राप्ति बहुत दुर्लभ रही है और कर्मों का विपाक अत्यन्त सुदृढ़ तथा तीव्र है। इस कारण हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥४॥

To be born as a man, is very difficult over the span of time; and the consequences of karmas are very rigid and intense. So Gautama ! be not careless evern for an instant. (4)

पुढविक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥५॥

पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ जीव, उसी काय में पुनःपुनः जन्म-मरण करता हुआ, अधिकतम असंख्यात काल तक पृथ्वीकाय में ही रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥५॥

The soul taking birth in earth-body, by continuous births and deaths in that body, remains in the same body utmost upto innumerable span of time. So Gautama ! do not be negligent even for a thousandth part of a second. (5)

आउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥६॥

जलकाय में उत्पन्न हुआ जीव, उसी काय में बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, अधिकतम असंख्यात काल तक रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥६॥

The soul, born in water-body, by continuous births and deaths in that body, remains in the same body utmost upto innumerable span of time. So Gautama ! be not careless even for awhile. (6)

तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥७॥

जो जीव तेजस्काय में उत्पन्न होता है, वह उसी काय में बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, अधिक से अधिक संख्यातीत–असंख्य काल तक उसी तेजस्काय में रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥७॥

The soul takes birth in fire-body, by continuous births and deaths in the same body, remains in that body upto utmost innumerable time period. So Gautama ! have no negligence even for a moment. (7)

वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥८॥

वायुकाय में जो जीव उत्पन्न होता है, वह बार-बार वायुकाय में ही जन्म मरण करता हुआ, अधिक से अधिक असंख्य काल तक उसी वायुकाय में रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥८॥

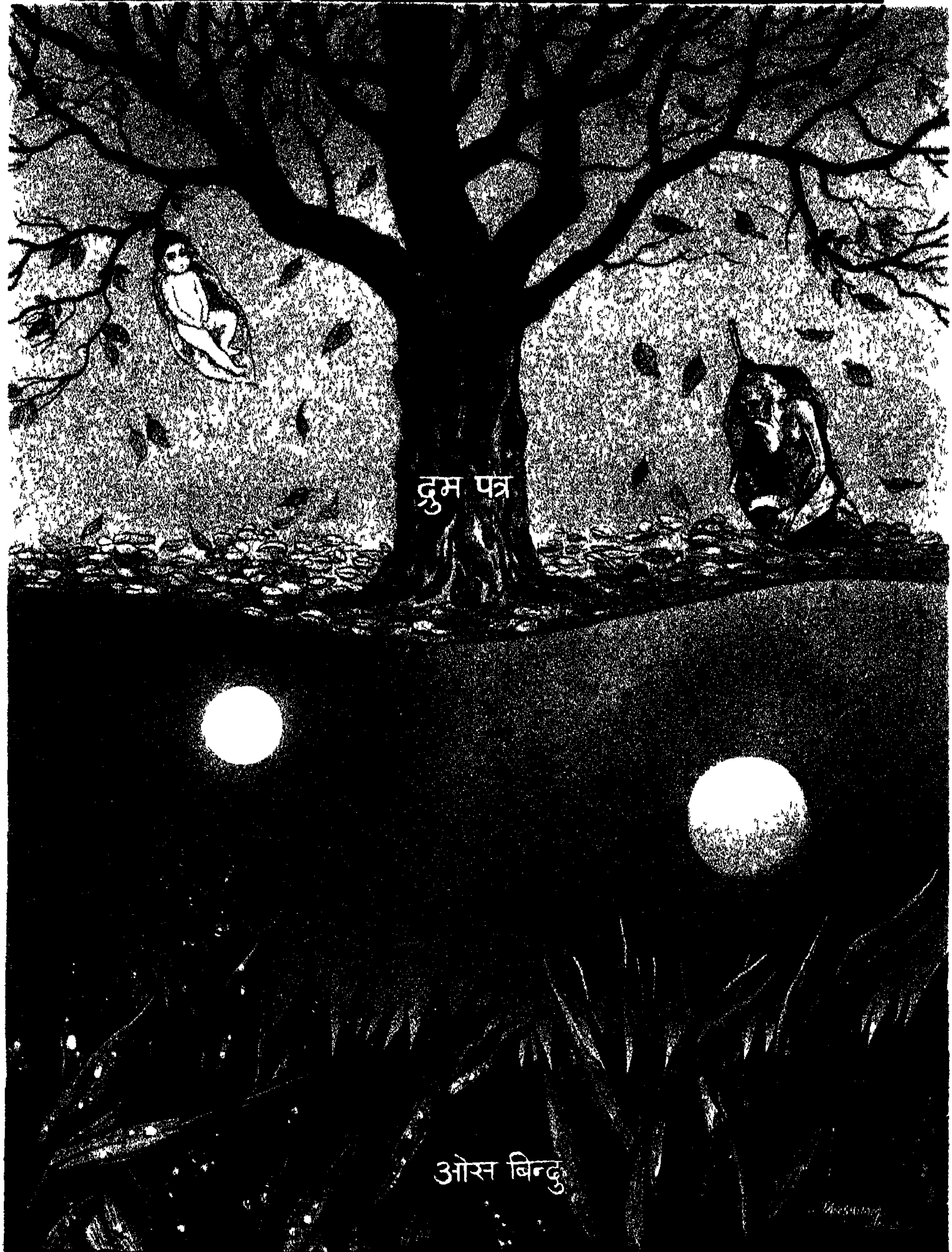
The soul born in air-body, by continuous births and deaths in the same body, remains there utmost upto innumerable time. Hence Gautama ! have no negligence even for a moment. (8)

वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालमणन्तदुरन्तं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥९॥

वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुआ जीव, बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, उत्कृष्टतः दुरन्त अनन्तकाल तक उसी काय में रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥९॥

The soul vegetate as green-stuff–vegetation-body, by continuous births and deaths in the same body, remains in that body utmost upto infinite time which is very difficult to end. Therefore Gautama ! be not negligent even for a moment. (9)

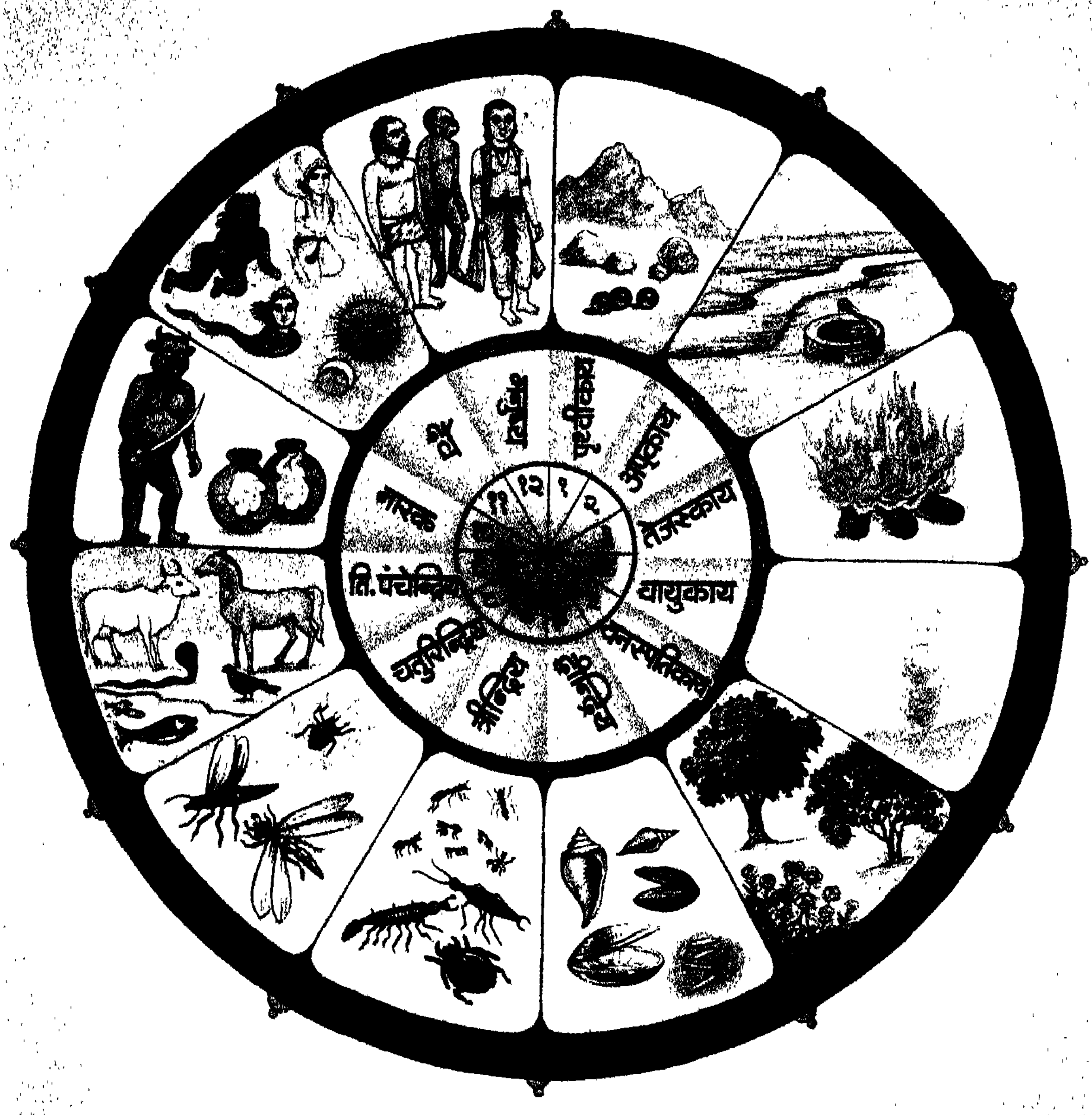
ILLUSTRATION NO. 23 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22



चित्र क्रमांक २३ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 24 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 22

संसार चक्र



चित्र क्रमांक २४ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

बेइन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१०॥

द्वीन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्यातकाल तक उसी काय में रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥१०॥

The soul born in two-sensed beings-body inherits in the same body by continuous births and deaths, utmost upto numerable time. So Gautama ! do not be negligent even for a smallest bit of time. (10)

तेइन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥११॥

त्रीन्द्रियकाय के जीवों की उत्कृष्टतः कायस्थिति संख्यात काल तक की है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥११॥

The soul born in three-sensed-beings-body, inherits the same body by continuous births and deaths, utmost upto numerable time. Hence Gautama ! have no negligence even for awhile. (11)

चउरिन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१२॥

चतुरिन्द्रिय काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्यात काल तक उसमें रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥१२॥

The soul born in four-sensed-beings-body, inherits in the same body by continuous births and deaths upto utmost numerable period of time. So Gautama ! be not negligent even for a moment. (12)

पंचिन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तट्ठ-भवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१३॥

पंचेन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक सात या आठ बार तक उसी गति में जन्म-मरण कर सकता है। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥१३॥

The soul born in five-sensed-beings (men and beasts) may take birth and death only seven or eight times maximumly. So Gautama ! have no negligence even for a moment. (13)

देवे नेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्किक्क भवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१४॥

देव और नारकी जीव अधिक से अधिक उसी गति में एक बार ही जन्म लेते हैं। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥१४॥

The hellish-beings and gods may take continuous birth only once in those existences (गति) maximumly. So Gautama ! be not careless even for awhile. (14)

एवं भव-संसारे, संसरइ सुहासुहेहि कम्मेहिं ।
जीवो पमाय-बहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१५॥

इस प्रकार प्रमाद की अधिकता वाला जीव, शुभाशुभ कर्मों के कारण जन्म-मरणरूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥१५॥

Thus the soul engrossed by too much negligence, due to auspicious and inauspicious karmas transmigrates in this world full of births and deaths. So Gautama ! be not negligent for even a moment. (15)

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं ।
बहवे दसुया मिलेक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१६॥

मनुष्य जन्म पाने के बाद भी आर्यत्व की प्राप्ति और भी दुर्लभ है क्योंकि बहुत से मनुष्य दस्यु तथा म्लेच्छ भी होते हैं। अतः हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥१६॥

After getting the birth in human existence it is more difficult to attain nobleness (आर्यत्व) because many men are plunderers (दस्यु) and of low plights (म्लेच्छ). Hence Gautama ! be not negligent even for awhile. (16)

लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिन्दियया हु दुल्लहा ।
विगलिन्दियया हु दीसई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१७॥

आर्यत्व प्राप्ति के उपरान्त भी पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता प्राप्ति और भी कठिन है; क्योंकि बहुत से आर्य भी परिपूर्ण इन्द्रियों वाले नहीं दिखाई देते। अतः हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥१७॥

Attaining nobleness or noble origin the attainment of completion of all the five senses is also difficult; because many nobles suffer by imperfect sense-organs. Hence Gautama ! be not negligent for even an instant. (17)

अहीणपंचिन्दियत्तं पि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए ॥१८॥

पंचेन्द्रिय की परिपूर्णता प्राप्त होने पर भी उत्तम धर्म का श्रवण और भी कठिन है क्योंकि बहुत से मानव कुतीर्थिकों के उपासक होते हैं। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥१८॥

Obtaining perfect five sense-organs, listening the true religion is more difficult; because many men are worshippers of heretical teachers. Hence Gautama ! have no negligence even for an instant. (18)

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥१९॥

उत्तम धर्म का श्रवण होने पर भी इस सद्धर्म पर श्रद्धा होना और भी कठिन है क्योंकि बहुत से मनुष्य मिथ्यात्वी भी होते हैं, मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥१९॥

On having heard the true religion, it is more difficult to fix faith in it; because many men are false-believers, they practise superstitions. Hence Gautama ! be not negligent even for awhile. (19)

धम्मं पि हु सद्दहन्तया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिमुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२०॥

उत्तम धर्म पर श्रद्धा होने के उपरान्त भी उसका आचरण करना और भी दुष्कर है; क्योंकि बहुत से श्रद्धावान भी काम-भोगों में आसक्त रहते हैं। इसलिए हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥२०॥

Fixing the faith in true religion, to practise it, is even more difficult; for many men are seen indulged in pleasures and amusements. Hence Gautama ! be not careless even for a moment. (20)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२१॥

तुम्हारा शरीर जर्जरित हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं, सुनने की शक्ति कम हो रही है। हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥२१॥

Your body is weakening, your hairs turning whitish, the power of hearing decreasing. Hence Gautama ! be not negligent even for a moment. (21)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।
से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२२॥

तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, सिर के बाल सफेद हो रहे हैं, नेत्र-ज्योति मन्द हो रही है। हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥२२॥

Your body is decaying, your hairs are turning whitish-yellow, your eye-sight is regularly dimming. So Gautama ! be not careless even for an instant. (22)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२३॥

तुम्हारा शरीर कमजोर हो रहा है, सिर के केश श्वेत हो रहे हैं, सूँघने की शक्ति घटती जा रही है। हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥२३॥

Your body is declining, your hairs are turning yellowish white, your strength of smelling is waning. So Gautama ! have no neglience even for awhile. (23)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।
से जिब्भ-बले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२४॥

तुम्हारा शरीर परिजीर्ण हो रहा है, केश श्वेत हो रहे हैं, जिह्वा बल–रस लेने और बोलने की शक्ति कम हो रही है। हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥२४॥

Your body is weakening, your hairs are turning whitish, your tongue-power, of tasting and speaking is deteriorating. Hence Gautama ! be not negligent even for a moment. (24)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से फास-बले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२५॥

तुम्हारा शरीर जर्जरित हो रहा है, केश श्वेत हो रहे हैं, कायबल क्षीण होता जा रहा है। हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥२५॥

Your body is declining, your hairs are turning whitish, the strength of your body is declining. So Gautama ! be not careless even for awhile. (25)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।
से सव्वबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२६॥

तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश धवल हो रहे हैं, सभी प्रकार के बल क्षीण हो रहे हैं। हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥२६॥

Your body is weakening, your hairs are turning white, all type of strength is decaying Therefore Gautama ! have no negligence even for a moment. (26)

अरई गण्डं विसूइया, आयंका विविहा फुसन्ति ते ।
विवडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२७॥

वात या पित्त विकार से होने वाला चित्त का उद्वेग, फोड़ा, विसूचिका (हैजा-वमन) आदि विविध प्रकार के शीघ्रघाती रोगों से तुम्हारा शरीर गिर जाता है, विध्वस्त हो जाता है। अतः हे गौतम ! एक क्षण भर का भी प्रमाद मत करो ॥२७॥

Despondency, boils, cholera, mortal diseases of many kind wrecked your body, so it wastes and befall. Therefore Gautama ! have not negligence even for awhile. (27)

वोछिन्द सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं ।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२८॥

शरद् ऋतु का चन्द्र विकासी कमल जैसे जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार तुम भी अपने स्नेह बंधन को तोड़ दो, उसमें लिप्त मत बनो और फिर सभी प्रकार के स्नेहों को त्याग दो। हे गौतम ! इस कार्य में-स्नेह बंधनों को तोड़ने में क्षण भर भी प्रमाद मत करो ॥२८॥

As the moon-bloom autumn lotus does not stick to water flowing around and cast away it. In the same way you broke up all the ties of attachments, do not incline towards them. O Gautama ! take no time in casting aside all connections and be not negligent even for a moment. (28)

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वन्तं पुणो वि आइए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥२९॥

ILLUSTRATION NO. 25 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. .23



चित्र क्रमांक २५ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

धन तथा पत्नी को त्यागकर तुम अनगार बने हो, प्रव्रजित हुए हो। उन वमन किये हुए भोगों की पुनः इच्छा मत करो। हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥२९॥

Renouncing wealth and woman you become a houseless monk, do not desire those vomitted pleasures (renounced rejoincings). O Gautama ! be not careless even for a moment. (29)

अवउज्झिय मित्तबन्धवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३०॥

मित्र, बान्धव, विपुल धन आदि के संचय का परित्याग कर, पुनः दूसरी बार इन मित्रादि की इच्छा मत करो और उनकी तलाश भी मत करो। हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३०॥

You have given up your friends, kins, relations and amassed wealth etc. Now again do not desire those friends etc., and not even hanker about them. Gautama ! be not careless even for awhile. (30)

न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३१॥

आज जिन नहीं दीख रहे हैं और मार्गदर्शकों के भी भिन्न-भिन्न अनेक प्रकार के मत हैं। (भविष्य में साधकों के समक्ष यह कठिन स्थिति उपस्थित होगी।) किन्तु आज–अभी मेरी उपस्थिति में तुम्हें संसार से पार ले जाने में सक्षम न्यायपूर्ण पथ प्राप्त है। अतः हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३१॥

Today there a e no Jinas (victors of attachment and aversion–destroyer of four vitiating karmas) and ther are many dogmas of creed-pioneers–in future this difficult position will arise before the adepts) but today-now, in my presence you have acquired the right path, competent for crossing this worldly ocean. So Gautama ! have no negligence even for awhile. (31)

अवसोहिय कण्टगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३२॥

कंटक भरे मार्ग को छोड़कर तुम विशाल महापथ–राजमार्ग पर आ गये हो, दृढ़ निश्चय करके इसी पथ पर बढ़े चलो। हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो ॥३२॥

Leaving the thorny path you are now walking on the broad highway. Be firm determined and go ahead on this very path. Gautama ! be not regligent for awhile. (32)

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३३॥

शक्तिहीन भारवाहक के समान तुम विषम मार्ग पर मत चले जाना; क्योंकि विषम मार्ग पर चलने वाले भारवाहक और साधक को बाद में पछताना पड़ता है। अतः हे गौतम ! निमेष मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३३॥

Like a weak burden-bearer do not go on the uneven path; for the adept and burden-bearer, who take uneven path, both lament. Therefore Gautama ! be not uncautious even for awhile. (33)

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३४॥

तुम संसार रूपी महासागर को पार कर आये हो; किन्तु अब किनारे पर क्यों खड़े रह गये हो? इसे पार करने की शीघ्रता करो। हे गौतम ! क्षणभर का भी प्रमाद मत करो ॥३४॥

You have crossed the great worldly ocean but why you are slacked so near the shore ? Make haste to cross it, reach the other side. Gautama ! do not have negligence even for an instant. (34)

अकलेवरसेणिमुस्सिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि ।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३५॥

तुम अशरीरी सिद्ध पद तक पहुँचाने वाली क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर क्षेम अनुत्तर शिव रूप सिद्ध लोक को प्राप्त करोगे। इसलिए हे गौतम ! तुम क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३५॥

Steadily stepping on the karma-destructing meditative-current-ladder (क्षपक श्रेणी) which is thoroughly capable to attain the bodiless emancipated state. You will obtain the supreme liberation abode. So Gautama ! be not negligent even for a moment. (35)

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामगए नगरे व संजए ।
सन्तिमग्गं च बूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥३६॥

तत्त्वज्ञ, परिनिर्वृत्त–उपशांत और संयम में निरत होकर तुम ग्राम-नगरों में विचरण करके शांति मार्ग को बढ़ाओ, उसका प्रचार-प्रसार करो। हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥३६॥

Being enlightened, calm and practising self-control by wandering in villages and towns you propogate. this path of peace. Gautama ! be not negligent for awhile. (36)

बुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।
रागं दोसं च छिन्दिया, सिद्धिगइं गए गोयमे ॥३७॥

–त्ति बेमि ।

अर्थ और पदों से सुशोभित, सुकथित सर्वज्ञ भगवान महावीर की वाणी को सुनकर तथा राग-द्वेष का छेदन कर गौतम गणधर सिद्धि गति में गये ॥३७॥ **–ऐसा मैं कहता हूँ ।**

Having heard the sermon of omniscient Bhagawāna Mahāvīra, adorned by meaningfulness, cutting off attachment and aversion Gautama attained the liberation abode. (37)

–Such I speak

卐

एकादश अध्ययन : बहुश्रुतपूजा

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम बहुश्रुत पूजा (Reverence to learning and learneds) है। बहुश्रुत का अभिप्राय विशिष्ट ज्ञानियों से है। इस अध्ययन में ज्ञानियों की श्रेष्ठता और उनकी महत्ता का वर्णन किया गया है। पूजा का अभिप्राय यहाँ बहुश्रुतों के प्रति बहुमान, भक्ति और मानसिक, वाचिक, कायिक विनम्रता है।

पिछले दसवें अध्ययन द्रुमपत्रक में साधक को अप्रमाद की प्रेरणा दी गई थी और प्रस्तुत अध्ययन में ज्ञानियों की महिमा का उल्लेख है।

बहुश्रुतों की तीन कोटियाँ मानी गई हैं-(१) जघन्य-कम से कम आचार प्रकल्प और निशीथ सूत्र का ज्ञाता हो, (२) मध्यम-वृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र का ज्ञाता हो और (३) उत्कृष्ट-नौवें पूर्व की तीन वस्तुओं अथवा दसवें पूर्व का ज्ञाता हो; और १४ पूर्व का धारी सर्वोत्कृष्ट बहुश्रुत होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम अबहुश्रुतों के स्वरूप का वर्णन करके बहुश्रुत होने के कारणों का उल्लेख किया गया है। इसका अभिप्राय साधक को बहुश्रुत बनने का दिशा-निर्देश देना है।

आगे अविनीतता के १४ लक्षण दिये गये हैं जो बहुश्रुत बनने में बाधक हैं; साथ ही बहुश्रुत बनने के साधक १५ गुणों का उल्लेख भी किया गया है। तदुपरान्त बहुश्रुत को सूर्य, चन्द्र, कंथक अश्व आदि भौतिक जगत की १५ विशिष्ट वस्तुओं से उपमित करके ज्ञान और ज्ञानी की महत्ता का प्रेरक शब्दों में प्रतिपादन किया गया है।

और अन्त में बहुश्रुतता की फलश्रुति मोक्षगामिता बताई गई है।

यह सम्पूर्ण अध्ययन ज्ञान की महत्ता को प्रतिस्थापित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३२ गाथाएँ हैं।

卐

(४) सर्वथा शील रहित न होना, (५) विकृत शील वाला न होना, (६) अतिलोलुपी-रस लंपट न होना, (७) अत्यधिक क्रोधी न होना तथा (८) सदा सत्य में अनुरक्त रहना ॥५॥

(4) not to be averse to discipline; (5) nor to be perverse to discipline; (6) not to be covetuous; (7) not to be choleric and; (8) to be fixed in truth. (5).

अह चउदसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चई सो उ, निव्वाणं च न गच्छइ ॥६॥
अभिक्खणं कोही हवइ, पबन्धं च पकुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जई ॥७॥
अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पई ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥८॥
पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अचियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥९॥

चौदह स्थानों-दोषों से युक्त व्यवहार करने वाला संयमी साधु अविनीत कहा जाता है और वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता ॥६॥

(१) जो बार-बार क्रोध करता है। (२) दीर्घकाल तक क्रोध करता रहता है। (३) मित्रता किये जाने पर भी उसे ठुकरा देता है। (४) श्रुतज्ञान को उपलब्ध करके उसका अभिमान करता है। ॥७॥

(५) स्खलना होने पर आचार्यादि का तिरस्कार करता है। (६) मित्रों पर भी कुपित होता है। (७) अतिप्रिय मित्र के भी एकान्त में अवगुणवाद बोलता है ॥८॥

(८) असम्बद्ध प्रलाप करता है। (९) द्रोही है। (१०) अभिमानी है। (११) आहार में लुब्ध है। (१२) मन और इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता। (१३) असंविभागी है। (१४) अप्रीतिकर है।

वह अविनीत कहा जाता है ॥९॥

The restrained ascetic, if his behaviour is mixed with 14 faults, he is called undisciplined and cannot attain liberation, The 14 faults are as following–(6)

(1) who often loses his temper; (2) who persevers in wrath; (3) who spurns friendship; (4) who is pround of his scriptural knowledge. (7)

(5) Who disgraces the preceptors etc., for their petty slips; (6) to be angry with friends ; (7) to speak ill of most dear friend in his absence. (8)

(8) who talks irrelvant; (9) malicious; (10) proudy; (11) greedy of food; (12) does not control his senses and mind; (13) not shares with his fellow ascetics; (14) obnoxious.

He is called ill-behaved and undisciplined. (9)

अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई ।
नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥१०॥
अप्पं चाऽहिक्खिवई, पबन्धं च न कुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धुं न मज्जई ॥११॥

न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई ।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई ॥१२॥
कलह-डमरवज्जए, बुद्धे अभिजाइए ।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई ॥१३॥

पन्द्रह स्थानों–गुणों से सुविनीत कहा जाता है–

(१) नम्रता। (२) अचपलता-स्थिरता। (३) दम्भ का अभाव–सरलता। (४) अकौतुहलत्व–गंभीरता–॥१०॥

(५) किसी की निन्दा न करना। (६) लम्बे समय तक क्रोध न करते रहना। (७) मित्रों के प्रति कृतज्ञता। (८) श्रुत-प्राप्ति होने पर भी अहंकार नहीं करना–॥११॥

(९) स्खलना होने पर भी उसका तिरस्कार न करना। (१०) मित्रों पर क्रोध न करना। (११) अप्रिय मित्र के प्रति भी एकान्त में उसके कल्याण की बात कहना–॥१२॥

(१२) वाक्कलह और मार-पीट न करना। (१३) अभिजात्यता–कुलीनता (शालीनता)। (१४) लज्जाशीलता। (१५) प्रतिसंलीनता–आत्मलीनता।

इन १५ गुणों को धारण करने वाला साधु सुविनीत होता है ॥१३॥

By fifteen virtuous qualities an adept called well-behaved. These qualities are–

(1) modesty; (2) stability; (3) simplicity; (4) free from curiosity–soberness. (10)

(5) abuses no body; (6) not persevering wrath for long time; (7) gratefulness towards friends; (8) unproudy of learning (knowledge). (11)

(9) not disgraces the preceptors etc., for their petty slips; (10) no anger with friends; (11) to speak well even of a undear friend in his absence. (12)

(12) to abstain from quarrels and rows; (13) politeness; (14) shyness; (15) fixing himself in his own soul (calm).

The ascetic who possesses these fifteen virtuous qualities called well-behaved–disciplined. (13)

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥१४॥

सदा गुरुकुल–गुरुजनों की सेवा में रहने वाला, योग उपधान–शास्त्र-स्वाध्याय संबंधी तप करने वाला तथा प्रिय करने वाला और प्रिय बोलने वाला साधु शिक्षा-प्राप्ति के योग्य होता है ॥१४॥

Who always lives in the service of preachers and observes the penances which are prescribed with studying holy scriptures, sweet speaking and doing agreeable is worth to receive instructions. (14)

जहा संखम्मि पयं निहियं दुहओ वि विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं ॥१५॥

जिस प्रकार शंख में रखा हुआ दूध स्वयं अपने और अपने आधार को सुशोभित करता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत भी अपने और अपने आधार से सुशोभित होते हैं, मल और विकार रहित रहते हैं ॥१५॥

As the milk filled in conch-shell shines itself and its base (the conch-shell) so the religion, fame, piety and scriptural knowledge shine, being devoid of filth and defect, in a learned mendicant. (15)

जहा से कम्बोयाणं, आइण्णे कन्थए सिया ।
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१६॥

जैसे कम्बोज देश के घोड़ों में कन्थक अश्व, जाति एवं वेग में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है ॥१६॥

As a trained kamboja horse exceeds all other horses in speed, so the learned exceeds all others. (16)

जहाऽऽइण्णसमारूढे, सूरे दढपरक्कमे ।
उभओ नन्दिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१७॥

जिस प्रकार आकीर्ण–जातिमान् अश्व पर सवार दृढ़ पराक्रमी शूर-वीर दोनों ओर के नन्दीघोषों–जय-जयकारों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी सुशोभित होता है ॥१७॥

As a valiant hero with firm valour bestriding a trained horse, flank by heralds singining merrily, both the opposites and his side; just like is the learned mendicant. (17)

जहा करेणुपरिकिण्णे, कुंजरे सट्ठिहायणे ।
बलवन्ते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१८॥

जिस प्रकार हथिनियों से परिवृत साठ वर्ष का शक्तिशाली हाथी किसी अन्य हाथी से पराजित नहीं होता; उसी प्रकार बहुश्रुत भी अपराजित रहते हैं ॥१८॥

Just as a strong and irresistible elephant of sixty years, surrounded by its females, never winned by other elephant ; so is the deep learned sage. (18)

जहा से तिक्खसिंगे, जायखन्धे विरायई ।
वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥१९॥

जिस तरह तीखे सींगों और बलिष्ठ स्कन्धों वाला, गौसमूह का अधिपति, वृषभ सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी शोभायमान होते हैं ॥१९॥

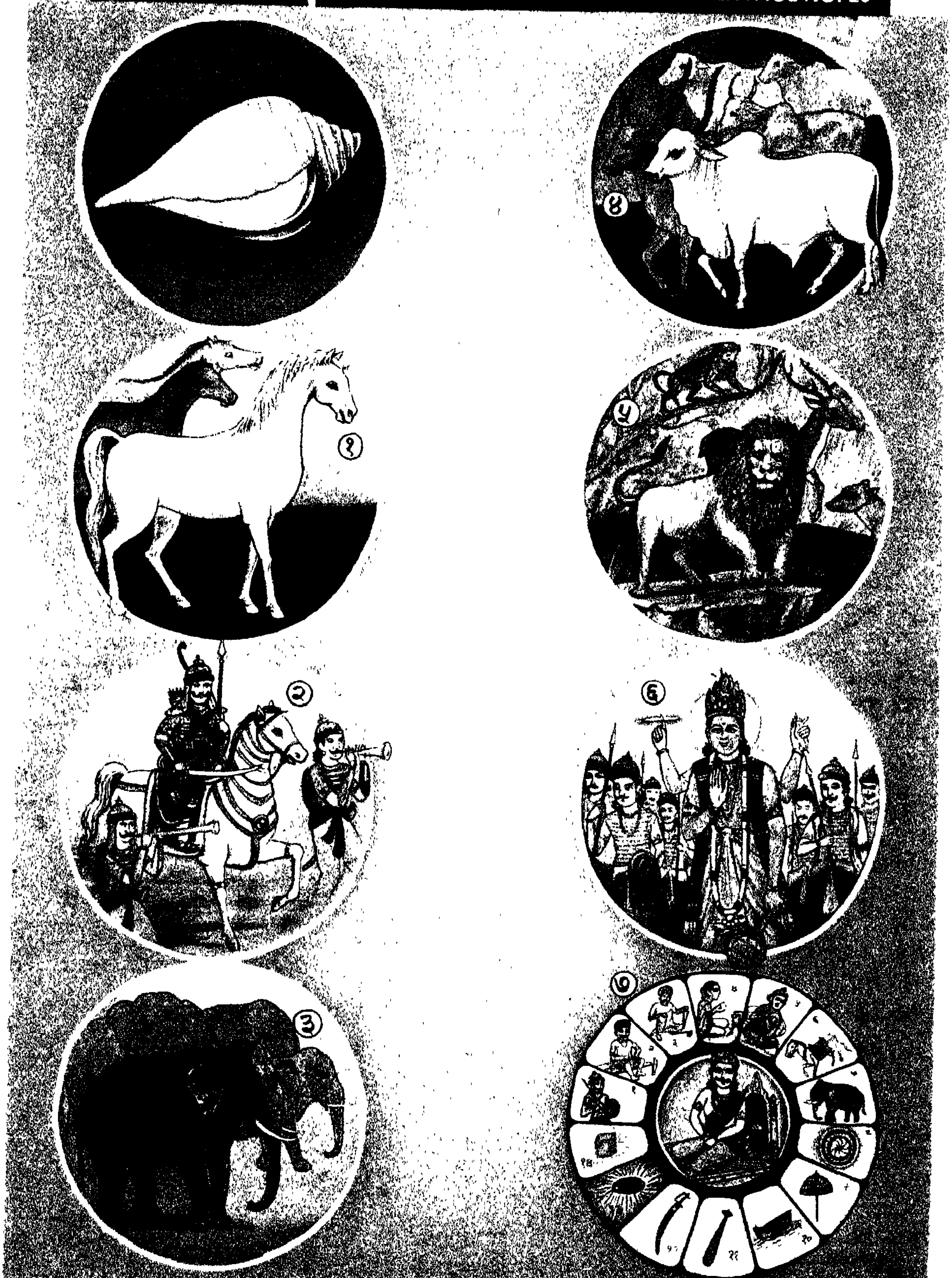
As an ox with pointed horns and strong humps, the leader of its herd–the group of cows, seems graceful; so is the learned sage. (19)

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए ।
सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२०॥

जैसे तीक्ष्ण दाढ़ों वाला, पूर्ण युवा और दुर्जेय सिंह वन्य पशुओं में प्रधान होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥२०॥

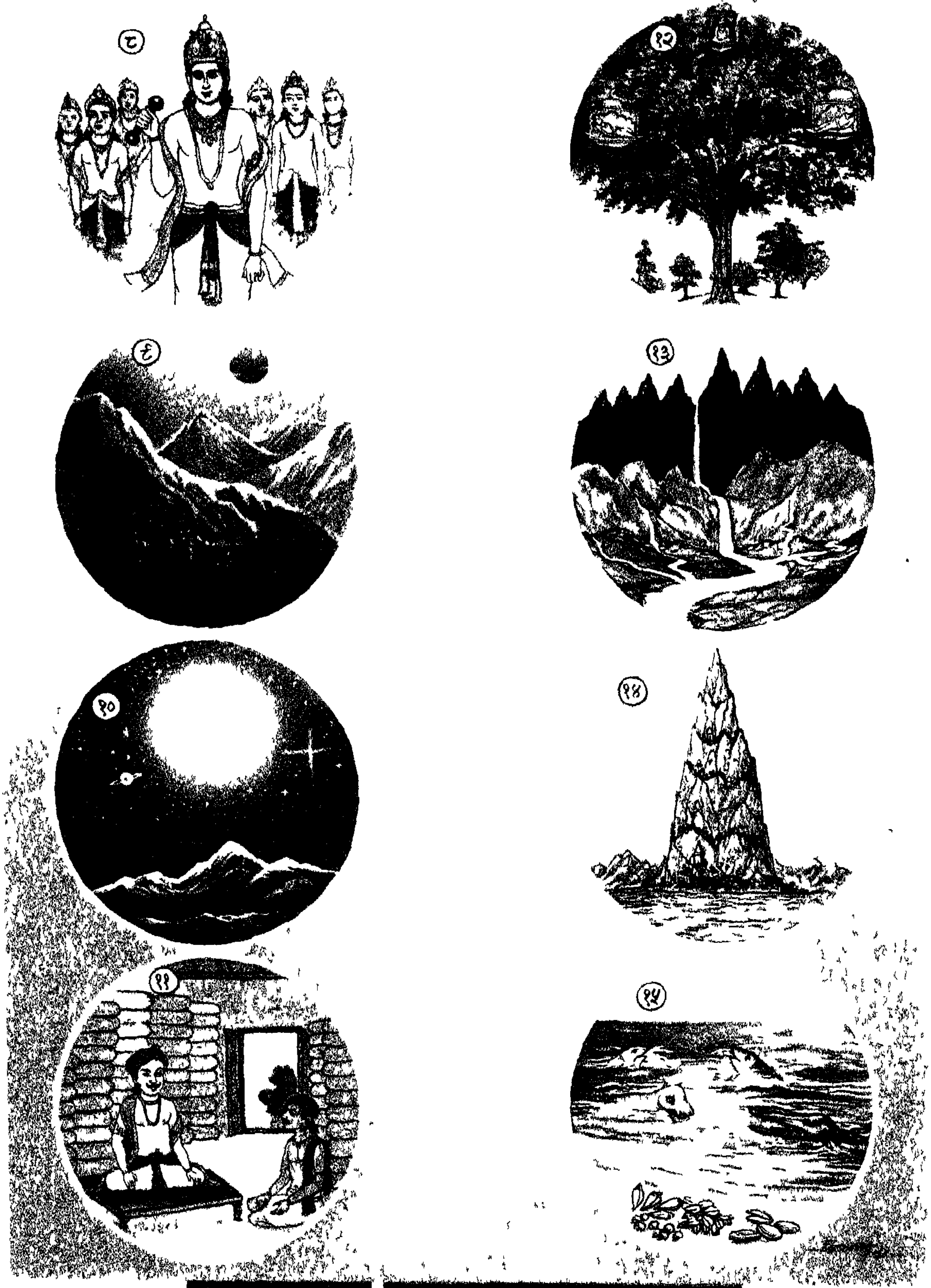
As a young lion full of strength and having sharp fangs, unconquerable by any other power, becomes chieftain of all wild-beasts; so is the very learned sage. (20)

ILLUSTRATION NO. 26 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 23



चित्र क्रमांक २६ | पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 27 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 23



चित्र क्रमांक २७ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

जहा से वासुदेवे, संख-चक्क-गयाधरे ।
अप्पडिहयबले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२१॥

जिस प्रकार शंख, चक्र, और गदा आयुधों को धारण करने वाला वासुदेव अप्रतिहत बलशाली योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥२१॥

As the possessor of conch-shell (शंख) discus (चक्र) club (गदा) weapons the Vâsudeva is an unconquerable warrior; so is the very deep learned sage. (21)

जहा से चाउरन्ते, चक्कवट्टी महिड्ढिए ।
चउद्दसरयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२२॥

जिस प्रकार चारों दिशाओं के अन्त तक का स्वामी, महर्द्धिक, चौदह रत्नों का अधिपति चक्रवर्ती सम्राट होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी चौदह पूर्वों के ज्ञान का धारक होता है ॥२२॥

As the universal monarch (really the ruler of six regions of Bhârat) (चक्रवर्ती) is the ruler upto the end of all the four directions, exalted, master of 14 gems; so is the deep learned sage possessor of the knowledge of 14 pūrvas. (22)

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरन्दरे ।
सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२३॥

जिस प्रकार सहस्रचक्षु, वज्रपाणि, पुरन्दर शक्रेन्द्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी दिव्य ज्ञान का अधिपति होता है ॥२३॥

As the thousand-eyed, thunderbolt in hand, destroyer of fortresses, king of gods is Śakra; so the very deep learned sage is the master of holy scriptural knowledge. (23)

जहा से तिमिरविद्धंसे, उत्तिट्ठन्ते दिवायरे ।
जलन्ते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२४॥

जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला, उदय होता हुआ सहस्ररश्मि दिवाकर अपने तेज से जाज्वल्यमान प्रतीत होता है उसी प्रकार बहुश्रुत भी तेजस्वी होता है ॥२४॥

As the rising sun, the dispeller of darkness, with thousand rays, fiery with its lustre; so the very learned sage is also lustrous. (24)

जहा से उडुवई चन्दे, नक्खत्त-परिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२५॥

जैसे तारागणों का अधिपति चन्द्रमा नक्षत्रों से परिवृत पूर्णिमा को अपनी परिपूर्ण ज्योत्स्ना से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥२५॥

As the moon, the head of stars, surrounded by asterisms, manifests its full light in the full moon night; so is the deep learned sage. (25)

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए ।
नाणाधन्नपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२६॥

जैसे सामाजिकों-किसान, व्यापारियों का भण्डार सुरक्षित एवं विभिन्न प्रकार के धान्यों से भरा-पूरा रहता है उसी तरह बहुश्रुत भी अनेक प्रकार के श्रुत से परिपूर्ण होता है ॥२६॥

As the store-houses of farmers and merchants (traders) well-guarded and filled with various types of grains; so the learned sage is full of many kinds and branches of learning and knowledge. (26)

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा ।
अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२७॥

जिस प्रकार अनाधृत देव का निवास स्थान सुदर्शन जम्बू वृक्ष सभी वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी श्रेष्ठ होता है ॥२७॥

As the abode of Anādhṛtra deity, the Jambū tree is the best of all trees; so the learned sage is supreme of all. (27)

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।
सीया नीलवन्तपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२८॥

जिस प्रकार नीलवंत वर्षधर पर्वत से निकली, सदैव जल से परिपूर्ण, सागर में मिलने वाली सीता नदी अन्य नदियों से श्रेष्ठ है उसी प्रकार बहुश्रुत भी सर्वश्रेष्ठ होता है ॥२८॥

As the Sītā river arising from Nīlavanta Varṣadhara mountain and flowing upto ocean, always filled with water is the best river in comparison to other rivers; so is the deep learned supreme. (28)

जहा से नगाण पवरे, सुमहं मन्दरे गिरी ।
नाणोसहिपज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥२९॥

जैसे अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त, महान मन्दरगिरि-मेरु पर्वत सभी पर्वतों में श्रेष्ठ माना जाता है उसी तरह बहुश्रुत भी श्रेष्ठ माना जाता है ॥२९॥

As the Mandara Giri–the mountain Meru, lustrous with many kinds of plants and herbs, accepted as the best of all mountains; so is the very best the learned sage. (29)

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥३०॥

जिस प्रकार अक्षय जल से भरा-पूरा तथा अनेक रत्नों से परिपूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार बहुश्रुत भी श्रेष्ठ ज्ञान रत्नों से परिपूर्ण होता है ॥३०॥

As the Swayaṁbhū ramaṇa ocean, filled with inexhaustible water and full of many kinds of jewels and precious stones; so the best learned sage is full of various types of knowledge-jewels. (30)

समुद्दगम्भीरसमा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥३१॥

सागर जैसे गम्भीर, कष्टों से अबाधित (दुरासद), किसी से भी पराजित न होने वाले, अविचलित, विपुल श्रुतज्ञान से परिपूर्ण, छह काय के रक्षक, बहुश्रुत कर्मों का क्षय करके उत्तम गति को प्राप्त करते हैं ॥३१॥

The best learneds, deep like ocean, unobstructed by difficulties, cannot be overcome by any body, daunt, enormously filled by holy scriptural knowledge, protector of all the living beings of world–those learneds attain the best existence i. e., liberation, destroying all the karmas. (31)

तम्हा सुयमहिट्ठिज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ।
जेणऽप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥३२॥

–त्ति बेमि ।

इसलिए उत्तम अर्थ के गवेषक, मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु श्रुत का अध्ययन करें जिससे वे स्वयं भी मुक्त हो सकें तथा अन्यों को भी सिद्धि–मुक्ति प्राप्त करा सकें ॥३२॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

Therefore the seekers of the best truth, having the wish of salvation–the liberation-willers (मुमुक्षु) study the holy scriptures, so that they may attain liberation themselves and be helpful to others for getting salvation. (32) **–Such I Speak**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २१–वासुदेव के शंख का नाम पाञ्चजन्य, चक्र का सुदर्शन और गदा का नाम कौमोदकी है। लोहे के दण्डविशेष को गदा कहते हैं। (बृ. वृ.)

गाथा २२–जिसके राज्य के उत्तर सीमान्त परिदिगन्त में हिमवान् पर्वत और शेष तीन दिगन्तों में समुद्र हो, वह "चातुरन्त" कहलाता है।

चक्रवर्ती के १४ रत्न इस प्रकार हैं–(१) सेनापति (२) गाथापति (३) पुरोहित (४) गज, (५) अश्व (६) मनचाहा भवन का निर्माण करने वाला वर्द्धकि अर्थात् बढ़ई (७) स्त्री (८) चक्र (९) छत्र (१०) चर्म (११) मणि (१२) जिससे पर्वत शिलाओं पर लेख या मण्डल अंकित किये जाते हैं, वह काकिणी (१३) खड्ग और (१४) दण्ड। (बृ. वृ.) (चित्र देखें)

गाथा २३–इन्द्र के सहस्राक्ष और पुरन्दर नाम वैदिक पुराणों के कथानकों पर आधारित हैं। इन्द्र के पाँच सौ देव मन्त्री होते हैं। राजा मन्त्री की आँखों से देखता है, अर्थात् उनकी दृष्टि से अपनी नीति निर्धारित करता है, इसलिये इन्द्र सहस्राक्ष है। दूसरा अर्थ है जितना हजार आँखों से दीखता है, इन्द्र उससे अधिक अपनी दो आँखों से देख लेता है, इसलिये वह सहस्राक्ष है। "जं सहस्सेण अक्खाणं दीसति, तं सो दोहि अक्खीहिं अब्भहियतरागं पेच्छति"–चूर्णि।

Salient Elucidations

Gāthā 21–The names of Vāsudeva's weapons are–the conch-shell (शंख) is called as Pāñcajanya (पांचजन्य), the discus or wheel weapon (चक्र) is Sudarśana (सुदर्शन) and club (गदा) weapon is Kaumodakī (कौमोदकी). Club is a weapon–an iron rod. (*V. V.*)

Gāthā 22–The Himavāna mountain ascertains the north direction of whose sujreignty the remaining three directions–east, west, south are determined by sea or ocean that is called Cāturanta

The 14 jewels (or utmost important possessions) of a world-sovereign (really the ruler of six regions of Bhārata) are–

(1) Chief of army (commander-in-chief) (2) Gāthāpati (3) Priest (4) Elephant (5) Horse (6) Carpenter who can make the hosue as wished (7) Woman–chief queen (8) discus or wheel weapon (9) umbrella (छत्र) (10) charma (चर्म) (11) Kākiṇī–by this the scripts on mountain-rocks and circles are embossed or scorched (12) jewel (मणि) (13) sword and (14) rod (*V. V.*) See illustration.

Gāthā 23–The two names of king of gods–thousand-eyed and destroyer of fortresses are based on vaidic purāṇas. King of gods has five hundred ministers. The king sees by the eyes of ministers, meaning, he frames his policy, so king of gods is called thousand-eyed.

The other interpretation–As much can be viewed by thousand eyes, the king of gods can see much more than it by his two eyes, hence he is thousand-eyed, *Jaṁ sahasseṇa akkhāṇam dīsati, taṁ so dohi akkhīhiṁ abbhahiyatarāṅg pecchati. (Cūrṇi)*

卐

द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम इसके प्रमुख पात्र हरिकेशबल के नाम पर प्रसिद्ध हुआ है।

पिछले बहुश्रुत पूजा अध्ययन में बहुश्रुत की तेजस्विता का वर्णन किया गया है और प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत तथा शुद्ध श्रमणधर्म का पालन करने वाले मुनि हरिकेशबल की तेजस्विता और विशिष्ट प्रभावशालिता का वर्णन बड़े ही रोमांचक और चमत्कारी ढंग से प्रतिपादित हुआ है।

मुनि हरिकेशबल के चाण्डाल कुल में जन्म, पूर्व-जन्म तथा इस जन्म की विशिष्ट घटनाएँ, श्रमणत्व धारण और पालन आदि के संबंध में जिज्ञासा होनी भी स्वाभाविक है और उनकी तेजस्विता के लिए इन घटनाओं को जानना भी आवश्यक है।

कथासूत्र—

संक्षेप में हरिकेशबल से संबंधित घटनाएँ इस प्रकार हैं–

मथुरानरेश राजा शंख संसार से विरक्त हुए। उन्होंने उग्र तप किया। तप के प्रभाव से अनेक विशिष्ट लब्धियाँ उन्हें प्राप्त हो गईं।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वे हस्तिनापुर पधारे। भिक्षा के लिए नगर की ओर चले। नगर-प्रवेश के दो मार्ग थे। उनमें से एक मार्ग पर लोगों को आते-जाते न देखकर शंख-मुनि विचार में पड़ गये। एक व्यक्ति को उसके घर के बाह्य भाग में बैठा देखकर उससे नगर प्रवेश का मार्ग पूछा।

वह व्यक्ति ब्राह्मण सोमदत्त था। सोमदत्त जात्यभिमान से ग्रसित और श्रमणद्वेषी था। उसने गलत मार्ग बताते हुए कहा–"यह मार्ग निकट का है। आप शीघ्र ही नगर में पहुँच जायेंगे।"

तपस्वी मुनि उसी मार्ग पर चल दिये।

वास्तविकता यह थी कि उस मार्ग का नाम 'हुताशन' अथवा 'हुतवह रथ्या' था। वह मार्ग अग्नि की भांति गरम रहता था, उस पर चलना कठिन था; लेकिन ग्रीष्म काल में तो वह तपे हुए तवे की भाँति जलता था।

सोमदत्त ने शंख मुनि को वह मार्ग द्वेषवश बताया था; लेकिन जब उसने देखा कि मुनि तो गजगति से उस मार्ग पर शांतिपूर्वक चले जा रहे हैं तो वह चकित हुआ। उसने स्वयं उस मार्ग पर चलकर देखा तो उसे वह मार्ग हिम के समान शीतल लगा। वह समझ गया कि ये विशिष्ट लब्धिधारी मुनि हैं, इनके तप:प्रभाव से यह उष्ण मार्ग शीतल हो गया है।

चमत्कार को नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण सोमदत्त शीघ्र ही शंख मुनि के पास पहुँचा और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा।

जैन श्रमण तो क्षमावीर होते ही हैं, क्षमा कर दिया। साथ ही सोमदत्त की जिज्ञासा पर धर्म का उपदेश भी दिया। उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर सोमदत्त दीक्षित हो गया, तपस्या करने लगा; लेकिन जात्यभिमान और रूपमद करता ही रहा। अन्त समय तक भी वह जाति-मद के चंगुल से छूट नहीं सका। चारित्र-पालन के परिणामस्वरूप आयु पूर्ण कर वह देव बना।

देवायु पूर्ण कर वह मृतगंगा के किनारे हरिकेश गोत्रीय चाण्डालों के अधिपति 'बलकोट्ट' नामक चाण्डाल की पत्नी गौरी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'बल' रखा गया।

यही बालक आगे चलकर हरिकेशबल कहलाया।

पूर्वजन्म में किये गये जातिमद और रूपमद के कारण उसका जन्म चाण्डालकुल में हुआ तथा उसका शरीर भी काला-कलूटा, बेडौल और कुरूप था। ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ उसके स्वभाव में उग्रता बढ़ती गई। क्रोधी, झगड़ालू और कटुभाषी बन गया। शरीर की कुरूपता और स्वभाव की उग्रता–करेला और नीम चढ़ा वाली कहावत चरितार्थ हो गई। बस्ती के सभी लोगों, साथी बालकों और यहाँ तक कि माता-पिता की आँखों में भी कण्टक सा खटकने लगा।

एक बार बस्ती के सभी लोग उद्यान में वसन्तोत्सव मना रहे थे। बालक खेल रहे थे। हरिकेशबल ने उनके साथ खेलने का प्रयत्न किया तो खेल में किसी बात पर क्रुद्ध होकर वह अपशब्द बोलने लगा, गाली बकने लगा तो अन्य बालकों ने उसे निकाल दिया। वह उपेक्षित-सा एक ओर बैठ गया।

सभी लोग खुशियाँ मना रहे थे और हरिकेशबल अकेला बैठा उन्हें घूर रहा था।

तभी एक विषधर सर्प निकला। लोगों ने उसे बैंत-लाठियों से उसी क्षण मार दिया। कुछ समय बाद एक निर्विष सर्प (दुमुही–अलसिया) निकला। उसे देखकर लोगों ने कहा–'अरे यह तो विष रहित है, किसी को काटता नहीं। इसे मारने से क्या लाभ ? पकड़कर दूर छोड़ आओ।' और कुछ लोग उस निर्विष सर्प को दूर छोड़कर पुनः उत्सव क्रीड़ा में निमग्न हो गये।

हरिकेशबल भी इस घटना को देख रहा था। उसका विचार-प्रवाह बहने लगा–प्राणी अपने ही दोषों के कारण दु:ख पाता है, समाज का तिरस्कार सहता है। लोगों ने विषधर सर्प को मार दिया और विषहीन को नहीं मारा। मैं भी अपनी कड़वी जुबान और दुर्व्यवहार के कारण उपेक्षित बना हुआ हूँ। यदि इन दोषों को छोड़ दूँ तो सबका प्रिय बन जाऊँ। लेकिन मुझमें ये दोष आये ही क्यों? इसका क्या कारण है.........

यों सोचते-सोचते हरिकेशबल का चिन्तन गहरा हुआ। उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व के दो जन्म (सोमदत्त विप्र और स्वर्ग के देव भव) उसके स्मृति पटल पर चलचित्र के समान तैर गये।

उसी क्षण उसे संसार और सांसारिक संबंधों तथा भोगोपभोगों से विरक्ति हो गई, निम्न कुल में जन्म होने का तथा कुरूपता एवं उग्र स्वभावी होने का कारण भी ज्ञात हो गया।

वह वहाँ से उठकर चल दिया। किसी श्रमण के पास पहुँचकर भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। शुद्ध श्रामण्य–मुनिधर्म का पालन करने लगा। चाण्डाल हरिकेशबल अब मुनि हरिकेशबल बनकर ग्रामानुग्राम विहार करने लगे। उनकी तपश्चर्या इतनी उच्चकोटि पर पहुँच गई कि देवता भी उन्हें नमन करने लगे, पूज्य और आराध्य मानने लगे तथा सेवा में तत्पर रहने लगे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे वाराणसी नगरी में आये। उद्यान में अवस्थित यक्षमन्दिर में मासखमण की प्रतिज्ञा धारण कर कायोत्सर्ग में लीन हो गये। उनके उत्कट तप के प्रभाव से प्रभावित यक्षराज तिन्दुक उन्हें अपना आराध्य मानने लगा।

किसी दिन नगरनरेश कौशलिक की पुत्री भद्रा अपनी सखियों सहित यक्ष की पूजा के लिए यक्षमन्दिर में आई। यक्ष-प्रतिमा की प्रदक्षिणा करते हुए उसकी दृष्टि एक वृक्ष के नीच खड़े कायोत्सर्ग-लीन मुनि हरिकेशबल पर पड़ी। मुनि की कुरूपता, मलिन शरीर और वस्त्रों को देखकर राजकुमारी भद्रा का हृदय घृणा से भर गया। ग्लानि में भरकर उसने मुनि के मुँह पर थूक दिया।

ILLUSTRATION NO. 28 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक २८ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 29 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक २९ पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

अपने आराध्य मुनि का यह अपमान तिन्दुक यक्ष न सह सका। तुरन्त राजकुमारी भद्रा के शरीर में प्रविष्ट हो गया। यक्षाविष्ट राजकुमारी भद्रा अण्ट शण्ट बोलती और अनर्गल चेष्टाएँ करती हुई बेहोश हो गई। सखियाँ किसी तरह उसे राजमहल में ले गईं।

राजा ने पुत्री के बहुत उपचार कराये किन्तु कोई लाभ न हुआ। राजा अपनी पुत्री के जीवन के लिए चिन्तित हो गया। तब राजकुमारी के शरीर में प्रविष्ट यक्ष ने कहा–

"राजन् ! तुम कितने भी उपचार करा लो, कोई लाभ नहीं होगा। इसने मेरे मन्दिर में ध्यानलीन एक घोर तपस्वी महामुनि का अपमान कर दिया है। उसका फल चखाने के लिए ही मैंने इसकी यह दशा की है। यदि तुम उन महामुनि के साथ इसका विवाह करो तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ अन्यथा इसे जीवित नहीं रहने दूँगा।"

पिता को पुत्री प्रिय होती ही है। राजा ने यक्ष की शर्त स्वीकार करली। यक्ष राजकुमारी के शरीर से निकल गया। राजकुमारी स्वस्थ हो गई।

राजा अपनी पुत्री को साथ लेकर तिन्दुक यक्ष के आयतन में पहुँचा। पिता ने अपनी पुत्री के अपराध के लिए क्षमा माँगी और करबद्ध होकर तथा भद्रा को सामने करके प्रार्थना की–भगवन् ! इस कन्या ने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। इसका प्रायश्चित्त यही है कि आप इसके साथ पाणिग्रहण करें और यह कन्या परिचारिका के रूप में आपकी सेवा करे।

मुनि हरिकेशबल ने कहा–राजन् ! न तो इस कन्या ने मेरा कोई अपराध किया है और न मेरा अपमान ही हुआ है। पाणिग्रहण की बात तो बहुत दूर, मैं ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करने वाला हूँ। जहाँ स्त्रियों का आवागमन हो, वहाँ मैं ठहर भी नहीं सकता। तुम अपनी पुत्री को ले जाओ। मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

राजा ने कन्या को यक्ष-प्रकोप से मुक्त करने की मुनि से प्रार्थना की; लेकिन मुनि मौन हो गये। तब यक्ष ने ही कहा–मुनि तुम्हें स्वीकार नहीं करते तो तुम चली जाओ।

राजा अपनी पुत्री के साथ वापिस लौट आया।[1]

राजा ने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया तो मंत्रियों ने कहा–मुनि-परित्यक्ता कन्या का विवाह ब्राह्मण के साथ ही किया जा सकता है। अतः भद्रा का विवाह विप्र रुद्रदेव याज्ञिक के साथ हो गया।

रुद्रदेव ने अपनी यज्ञशाला की व्यवस्था नवविवाहिता पत्नी राजकुमारी भद्रा को सौंपी और एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया।

मासोपवासी मुनि हरिकेशबल भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए संयोगवश उसी यज्ञशाला में पहुँचे।

आगे की कथा प्रस्तुत अध्ययन की गाथा १२ से ४७ तक प्रतिपादित है।

---

१. (विशेष–ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि राजा अपनी पुत्री को वहीं छोड़कर चला आता है। यक्ष मुनि हरिकेशबल का रूप रखकर राजकुमारी के साथ पाणिग्रहण करता है। प्रातः मुनि से सच्चाई जानकर राजकुमारी वापस राजमहल लौट जाती है। तदुपरान्त ऋषि-पत्नी मानकर उसका विवाह याज्ञिक रुद्रदेव के साथ होता है।)

(Note–This description also we get in some scriptures–

King returns to his palace leaving the princess in Yakṣa temple. Yakṣa weds the princess in the guise of monk Harikeśabala. In the morning, being aware of true position, princess returns to palace. Supposing as the wife of monk, she was married to sacrificer (याज्ञिक) Rudradeva.)

इस अध्ययन में कई ऐसी विशेषताएँ हैं, जो शाश्वत महत्व की हैं जैसे–

जाति का कोई महत्व नहीं; शील-सदाचार, तप-त्याग आदि ही महत्वपूर्ण होते हैं।

यज्ञ-याग आदि का वास्तविक स्वरूप ।

वैदिक परम्परा जाति पर आधारित है। जाति-व्यवस्था के आधार पर ही ब्राह्मण सर्वोच्च और पूज्य माने जाते थे; जबकि चांडाल आदि निकृष्टतम।

श्रमण (जैन और बौद्ध दोनों) परम्परा जाति का महत्व नहीं मानती, यहाँ सदाचरण और गुणों का महत्व तथा तप-त्याग की विशेषता मानी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में मुनि हरिकेशबल ने वैदिक और जैन–दोनों परम्पराओं के समन्वय का प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में पुण्य क्षेत्र, आत्मिक यज्ञ, शील-सदाचार, चारित्र, ब्रह्मचर्य आदि की यथार्थ स्थिति की बड़े ही सम्यक् ढंग से विवेचना करके स्थापना की गई है।

ब्राह्मणत्व पर श्रमणत्व की विजय की अनुगूँज प्रसरित हो रही है।

प्रस्तुत अध्ययन में ४७ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 12
HARIKEŚABALA

Foreview

The base of the title of this chapter is its principal character named–Harikeśabala.

In the preceding eleventh chapter the ardour of learneds is described and in this chapter the nobility of monk Harikeśabala, who was learned and observer of pure sagehood elaborated in a very influential, amazing and titillating style.

The birth of monk Harikeśabala in untouchable lowest tribe (श्वपाक-चांडाल कुल), his former life, the main happenings of this life, observation of sagehood–the curiosity about all these is very natural; and it is also very necessary to be aware of all these happenings for realising his lustre.

Recital Clue

In short, the happenings relating to sage Harikeśabala are–

King Śaṅkha, the ruler of Mathurā city discinclined to worldliness. He became a sage, observed rigorous penances. Due to penances many high exalts, he attained.

Wandering village to village he arrived Hastināpura. Moved towards the city for getting alms. There were two entrance paths to enter the city. Seeing one path, without movement of people, sage Śaṅkha engrossed by hesitation. He asked the man, who was sitting in corridor of his house, about the path for entering the city.

That man was Brāhmaṇa Somadutta, proud of his clan and envious of sages (श्रमण-द्वेषी). He told by pointing towards wrong path–

"This way is a short cut. You will reach the city in no time."

The sage moved on the path, pointed out by the Brāhmaṇa Somadutta.

The reality was otherwise. The name of that path was fiery (हुताशन) or the lane of fire (हुतवह रथ्या). The way was fire-hot. It was very hazardous to move on it. In summer season it burnt like a hot grid.

Somadutta pointed out this path to sage Śaṅha due to his hate for sages; but when he saw that monk is moving on that very path slowly like the slow movement of elephant, then he amazed.

He himself moved on that path and realised the path is as cool as ice. He understood that this monk has special exalts. The path became cool due to his exalt.

Influenced by titillation he approached near the monk and begged pardon for his offence.

Jain monks are forgivers. He forgave Somadutta and at the curiosity of Somadutta he instructed him the true religious order. Being enlightened Somadutta accepted monkhood; but he remain engrossed by proud of his caste and his beauty. Till end of his life he could not get rid of his prouds. But as a result of conduct of a monk he became god, completing his human-duration.

On completion of his god-duration he took birth in the lowest clan. He born as a son of Balakoṭṭha and his wife Gaurī. Balakoṭṭha was the ruler of Harikeśa lineage, Chāṇḍāla-helmet, situated at the bank of Mṛtagaṅgā. He, the child was named as Bala.

Later on, the same child known by the name Harikeśabala.

Due to prouds of clan and beauty, he has done in his former life, he took birth in lowest and untouchable class–cāṇḍāla and his body also was pitch black, ugly and clumsy. As he grew up he became violent-natured. All the persons, boys and even his parents began to hate him.

Once all the persons of his helmet were enjoying the spring ceremony in a nearby garden. Boys were playing. Harikeśabala also began to play with them. Being angry on a meagre thing he began to abuse them. Boys made him out of play. Disregarded he sat aside.

All the persons, boys were rejoicing, making amusements; and Harikeśabala was gazing them sitting alone.

At the same time a poisonous serpent came out. People killed it by canes and sticks at the same moment and spot. After some time an unpoisonous serpent (the snake having two mouths–दुमुही) came out. Watching it the people said–'Oh ! it is poisonless. It does not bite anybody. What is the use of killing it ? Catch it and leave it at a far place.'

Some of them catching that poisonless serpent left it far from garden and coming back they engrossed in pleasures.

Harikeśabala was watching this incident. He felt it deeply. His thought-current began to flow–The living being suffers due to his own faults, and the disgrace of society. People killed the poisonous snake and did not kill the poisonless. My pinching language and ill-behaviour made me disgraceful. If I give up these faults, I may be dear to all. But why these vices caught up me ? What is the cause..............

Pondering thus the thinking of Harikeśabala became too deep. He recollected his previous births. Two former births (the birth of Somadutla brāhamaṇa and god existence in heavenly abode) swim in his memory like a cinema scene.

At the same moment a disgust arouse in his heart about the world, worldly connections, pleasures and rejoicings. He also became aware about the cause of his birth in lowest untouchable class, ugly and clumsy pitch black body and ill-temper.

He stood up and went out. Arriving near a great sage he accepted the Jain consecration. Began to practise pious monkhood.

The cāṇḍāla Herikeśabala now began to wander village by village as a monk Harikeśabala. His practice of monkhood touched such heights that the deities also began to bow him; considering as venerable, they began to serve him.

Wandering village to village monk Harikeśabala arrived the city Vārāṇasī (Banārasa–Kāśī). In the outer part of city there was a temple (tenement) of Yakṣarāja Tinduka situated in a garden. Resolving not to accept food for a month, monk Harikeśabala, standing in that temple went deep in meditation. Due to such excessive penance Yakṣarāja

Tinduka effected much and being influenced he accepted the monk as his venerable and began to serve him with devotion.

One day Bhadrā, the daughter of king Kauśalika–the ruler of city, with her confederate, came to the temple of deity (Yakṣa) to worship him. Circumambulating the idol of deity, her glance fell on the monk, who was in deep meditation. Seeing the ugly body filled with dirt and dirty cloths of monk, the heart of princess Bhadrā filled with hate. In the rage of hate she spat at the face of great monk.

How can Tinduka deity (Yakṣa) bear such a great insult of his venerable monk. He at once entered the body of princess. Affected by deity (Yakṣa), princess uttering irrelvant words and doing futile activities swooned then and there. Confederate, any how, brought her to king's palace.

King gave many treatments to his daughter, but in vain. King became concerned for the life of his daughter. Then the deity (Yakṣa). who was entered in the body of princess, spoke–

"O king ! No treatment can cure your daughter. She has insulted a great monk, who was meditating in my temple. For teaching the lesson of that misdeed, I myself brought her to this serious condition. If you accept to marry the princess with that great monk, then I will relinquish her, otherwise she cannot survive."

Every father loves his daughter. King accepted the term of deity. Deity went out of the body of princess. Princess became all-right.

King reached the temple of Tinduka deity with her daughter. The father begged pardon for the offence of his daughter, and with folded hands and taking Bhadrā before the monk Harikeśabala he prayed–

"Reverend! the offence of my daughter is too serious. The only expiation is, that you please wed this girl and she serve you as a fervent servant."

But the monk outrightly refused this offer, he said–

"This girl committed no offence nor insulted me. What to say about wedding, I am thoroughly celebate, I can not even stay at the place where women move frequently. You take your daughter. I have no purpose with her. I do not need her."

The king prayed to monk to get rid of the deity's anger. Monk became silent at this point.

Then the deity spoke in his voice unto princess –"If monk does not want you, you return to your palace."

Disappointed king returned to his palace with his daughter Bhadrā.

Now the serious problem arose before king, because it was more difficult to find a groom for princess now.

He consulted his ministers. The ministers suggest that settle the princess with a brāhamaṇa. So princess Bhadrā married to a brāhmaṇa, named Rudradeva.

Rudradeva made incharge of his canopy for the performance of sacrifice (यज्ञशाला) his newly wed wife, princess Bhadrā, and arranged for a huge sacrifice.

Hunger-penanced of one month monk Harikeṣabala, wandering for alms, perchance reached the same canopy of sacrifice.

The further recital is described in the couplets numbering 12 to 47 of this chapter.

This chapter bears many specialities which are of eternal importance, as–

Tribe has no importance; discipline–decorum, good character, penance, renouncement etc., are important.

The real conception of oblation etc.

Vaidic tradition is based on clans and tribes. On account of class-order brāhamaṇa supposed to be supermost and object of worship while cāṇḍālas the lowest, mean and untouchables.

Śramaṇa traditions (Jain and Bauddha–both) pay no importance to class-order. Here good character and virtues bear importance and penances, renouncements are specialities.

In this chapter monk Harikeśabala tried to unite both the Vaidic and Jain traditions.

Real position of meritorious sphere, soul oblation, amiableness (शील) rectitude (सदाचार) conduct (चारित्र) celibacy (ब्रह्मचर्य) etc., are established with due discrimination.

The victory of Śramaṇahood over brāhamaṇahood is reverberated in whole chapter.

This chapter has 47 couplets.

卐

बारसमं अज्झयणं : हरिएसिज्जं
द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय

सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसबलो नाम, आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥१॥

हरिकेशबल नामक मुनि श्वपाक–चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु वे क्षमा आदि उत्तम गुणों को धारण करने वाले जितेन्द्रिय भिक्षु थे ॥१॥

Harikeśabala was born in śvapaka-cāṇḍāla clan; but he was a superior mendicant possessing great virtues of forgiveness etc. (1)

इरि-एसण-भासाए, उच्चार-समिईसु य ।
जओ आयाणनिक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ॥२॥

ईर्या, भाषा, एषणा, उच्चार-प्रस्रवण-खेल्ल-जल्ल परिष्ठापनिका एवं आदान-निक्षेपण–इन पाँच समितियों में यतनाशील, सुसमाधिस्थ एवं संयत थे ॥२॥

He was circumspect by five circumspections (1) movement, (2) speech (language) (3) seeking for necessities (4) excretion (5) put and take; contemplated and self–controlled. (2)

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइन्दिओ ।
भिक्खट्ठा बम्भ–इज्जंमि, जन्नवाडं उवट्ठिओ ॥३॥

मन-वचन-काय गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियविजयी मुनि हरिकेशबल एक दिन भिक्षा हेतु ब्राह्मणों द्वारा संपादित यज्ञ मंडप में पहुँचे ॥३॥

He was restrained by three restraints viz. (1) restraint of mind (2) of speach (3) of body; and subdued his senses–monk Harikeśabala wandering for alms perchance approached the enclosure–the canopy for sacrifice, where the brāhamaṇas were performing the sacrifice-rituals. (3)

तं पासिऊणमेज्जन्तं, तवेण परिसोसियं ।
पन्तोवहिउवगरणं, उवहसन्ति अणारिया ॥४॥

तप से कृश हुए शरीर वाले तथा मलिन एवं जीर्ण उपकरण वाले मुनि को यज्ञ मंडप की ओर आते देखकर अनार्य–अशिष्ट व्यक्ति उनका उपहास करने लगे ॥४॥

As the brāhamaṇas saw that a monk is coming towards their enclosure, stricken with penance, clothed in rags and dirty bodied, the uncivil ruffians began to laugh at him. (4)

जाईमयपडिथद्धा, हिंसगा अजिइन्दिया ।
अबम्भचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी– ॥५॥

जातिमद के अंहकार से ग्रसित, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मण इस प्रकार के वचन कहने लगे-॥५॥

Stuck up by pride of their high birth, but killers, unsubdued senses, non-celebate and idiotic brāhmaṇas began to speak such words aiming him-(5)

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विगराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कण्ठे ॥६॥

दैत्य जैसे बीभत्स रूप वाला, काला-कलूटा, विकराल, मोटी और बेडौल नाक वाला, अल्प और जीर्ण वस्त्र वाला, पिशाच जैसा गले में श्मशानी फटा चिथड़ा धारण किये हुए यह कौन आ रहा है? ॥६॥

Who is coming here ? He is swarthy dreadful, with a flat nose, pitch black complexion a very devil of a dirty man, with a filthy cloth round his neck. (6)

कयरे तुमं इग अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा पंसुपिसायभूया, गच्छ क्खलाहि किमिह ठिओ सि ? ॥७॥

अदर्शनीय रूप वाले तुम कौन हो? किस आशा से यहाँ आये हो? अरे जीर्णवस्त्रधारी, पिशाच-जैसे दिखाई देने वाले तुम यहाँ क्यों खड़े हो? हटो, यहाँ से चले जाओ ॥७॥

Who are you, uncanny man ? With what hope you came here ? O torn-clothed, seeming like devil, why are you standing here ? Go, get away from here. (7)

जक्खो तहिं तिन्दुयरुक्खवासी, अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्था-॥८॥

उस समय तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष जो मुनि के प्रति अनुकम्पाभावी (सेवाभावी) था, उसने अपने शरीर को छिपाकर, मुनि के शरीर में प्रविष्ट होकर इस प्रकार के वचन कहे-॥८॥

At that moment Tinduka-Yakṣa, who was most fervent devotee of the great monk, invisibly possessed the body of sage and spoke thus-(8)

समणो अहं संजओ बम्भयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥

मैं श्रमण हूँ, संयमी हूँ, ब्रह्मचारी हूँ, धन-पचन (भोजन पकाने), परिग्रह से विरत हूँ। मैं तो भिक्षा के समय, दूसरों के लिए बनाए गये आहार के लिए तुम्हारे यज्ञ-मंडल में आया हूँ ॥९॥

I am a sage, restrained, celibate, cook no food. Hither I came for getting food, which is prepared-cooked for others. (9)

वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जई य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे जायणजीविणु त्ति, सेसावसेसं लभऊ तवस्सी ॥१०॥

यहाँ प्रचुर आहार दिया जा रहा है, खाया जा रहा है, उपभोग किया जा रहा है। आप यह निश्चित जानिये कि मैं भिक्षाजीवी हूँ। अतः बचे हुए आहार में से कुछ तपस्वी को भी मिल जाए ॥१०॥

Here plenty of food is giving up, eating up and consuming up. You, please be definite that I subsist by begging, let the mendicant get some food, out of the eatables prepared for others. (10)

उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।
न ऊ वयं एरिसमन्न-पाणं, दाहासु तुज्झं किमिहं ठिओ सि ? ॥११॥

(याज्ञिक प्रमुख रुद्रदेव)–यहाँ बनाया हुआ, यह भोजन केवल ब्राह्मणों के–अपने लिए है, एक पक्षीय है, अतः दूसरों को नहीं दिया जा सकता। हम तुम्हें इसमें से भोजन नहीं देंगे। फिर तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥११॥

(Chief sacrificer Rudradeva). Here prepared food is only for brāhamaṇas. It cannot be given to others. We shall not give food to you from this. Then why are you standing here? (11)

थलेसु बीयाइ ववन्ति कासगा, तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खेत्तं ॥१२॥

(मुनि शरीर में प्रविष्ट यक्ष)–उत्तम फसल की आशा से कृषक जैसे ऊँची भूमि में बीज बोता है, उसी प्रकार नीची भूमि में भी बोता है। इसी श्रद्धा से मुझे भोजन देकर इस पुण्य क्षेत्र की आराधना अवश्य कर लो ॥१२॥

(The entered *Yakṣa* in the body of monk) Farmers with the hope of high yield sow the seeds on high ground and low ground alike. With the same belief (faith), you must propitiate this field full of merits by giving me food. (12)

खेत्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा ।
जे माहणा जाइ–विज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

(रुद्रदेव)–संसार में हमें ऐसे क्षेत्र ज्ञात हैं, जिनमें बोया हुआ बीज पूर्ण रूप से उग आता है और ऐसे पुण्य क्षेत्र जाति तथा विद्या से संपन्न ब्राह्मण ही हैं ॥१३॥

(Rudradeva) We are well aware of such fields in the world, where sown seed fully grows up. Such meritorious fields are only the brāhmaṇas, who are of high birth and well-versed in learnings. (13)

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

(यक्ष)–जिनके जीवन में क्रोध, मान, हिंसा, असत्य, परिग्रह आदि दुर्गुणों का समावेश है वे ब्राह्मण होते हुए भी विद्या और जाति से हीन हैं, वे पाप क्षेत्र हैं ॥१४॥

(Yakṣa) The life of those filled with defects, like–anger, pride, killing, falsehood, being brāhamaṇa, they are destitute from learning and high birth, they are sinfields. (14)

तुब्भेत्थ भो ! भारधरा गिराणं, अट्ठं न जाणाह अहिज्ज वेए।
उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥१५॥

हे विप्रो ! तुम केवल वेद आदि वाणी का बोझा ही ढो रहे हो। वेदों को पढ़कर भी उनका अर्थ नहीं समझते हो। स्वयं पाचन (भोजन बनाकर) न करके जो संयमी भिक्षु समभाव पूर्वक ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े घरों से प्राप्त भिक्षा द्वारा अपनी संयम यात्रा का निर्वाह करते हैं, वे ही वास्तविक पुण्य क्षेत्र हैं ॥१५॥

You are only carrying the burden of Veda-words. Reading the Vedas you do not know the meaning inherent in Veda-words. The mendicants not cooking food themselves and subsist by the eatables got from high or low houses, with even mind; only they are the real merit-fields. (15)

अज्झावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किंनु सगासि अम्हं ।
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दहामु तुमं नियण्ठा ॥१६॥

(रुद्रदेव के छात्र) हमारे अध्यापकों के प्रति ऐसे प्रतिकूल वचन बोलने वाले निर्ग्रन्थ ! तू क्यों बढ़-बढ़कर बोल रहा है? यह भोजन, चाहे सड़-गल कर नष्ट हो जाए, किन्तु तुमको बिलकुल भी नहीं देंगे ॥१६॥

(Pupils of Rudradeva) O Knotless Monk (निर्ग्रन्थ) ! How you dare to detract our teachers? Why you are speaking so high ? This food may rot, but we will not give you a bit of it. (16)

समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स ।
जइ मे न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जन्नाण लहित्थ लाहं? ॥१७॥

(यक्ष)-मैं पाँच समितियों से समाहित तथा तीन गुप्तियों से गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ। यदि मुझे यह निर्दोष भोजन नहीं दोगे तो इस यज्ञ का लाभ तुम्हें कैसे मिलेगा? ॥१७॥

(Yakṣa) I am circumspect by five circumspections and vigilent by three restraints and have subdued to my senses. If you will not give me food then how can you get the emolutions of this sacrifice. (17)

के एत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खण्डिएहिं ।
एयं खु दण्डेण फलेण हन्ता, कण्ठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं ? ॥१८॥

(रुद्रदेव)-यहाँ क्षत्रिय, रसोइया, अध्यापक, छात्र आदि कोई है जो इस निर्ग्रन्थ को डण्डे से, काष्ट के फलक से पीटकर और गला पकड़कर निकाल दे ॥१८॥

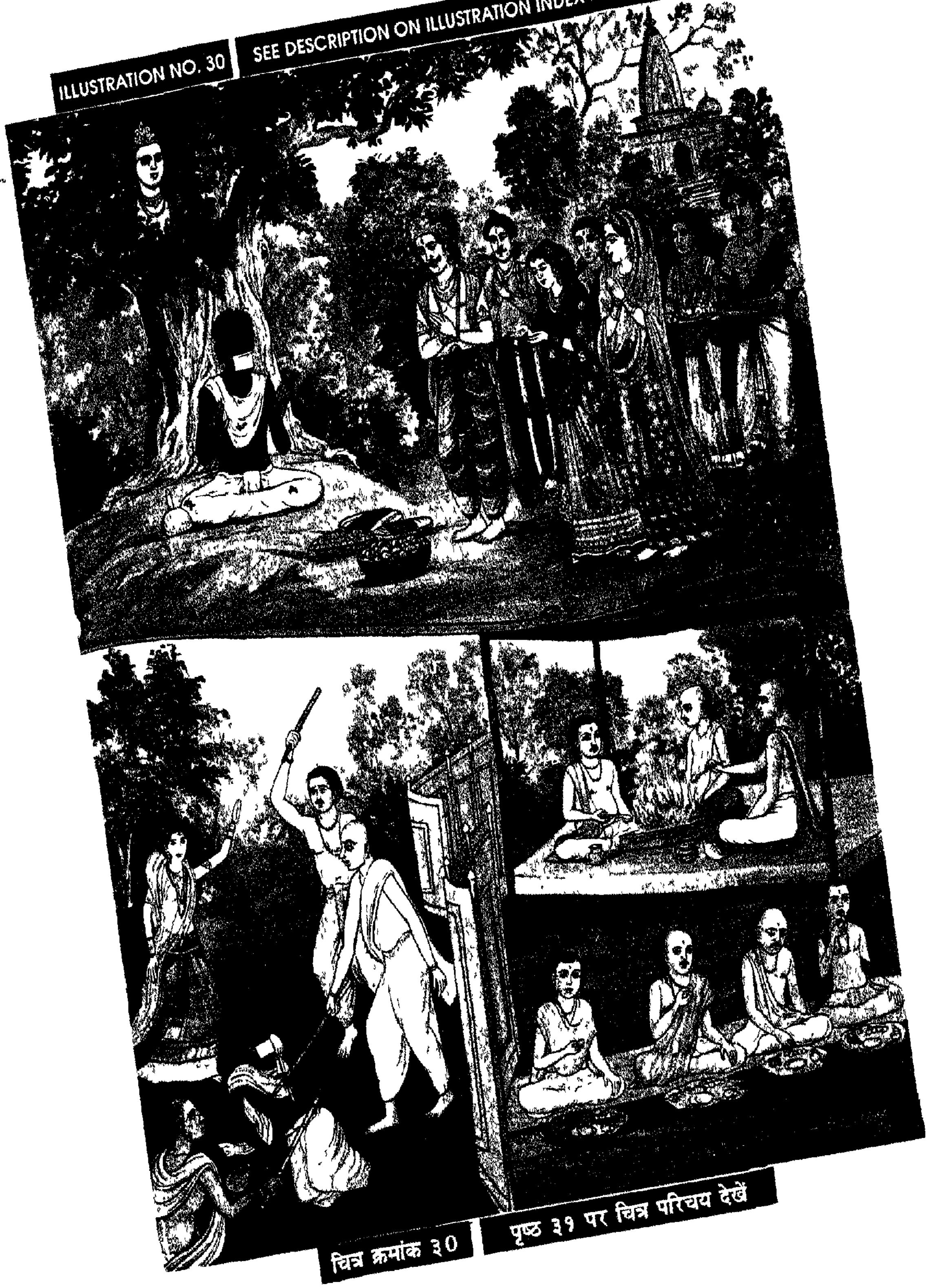
(Rudradeva) Is there any Kṣtriya, cook, teacher present, who can turn this knotless monk out by neck, beating by sticks and wooden logs–sticks etc.. (18)

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव, समागया तं इसि तालयन्ति ॥१९॥

अध्यापकों के ऐसे वचन सुनकर वहाँ बहुत-से कुमार दौड़ते हुए आए और ऋषि (हरिकेशबल) को डंडों से, वेंतों से, चाबुकों से पीटने लगे ॥१९॥

Hearing such harsh words of teachers, rushed forward many youngsters. They began to beat monk Harikeśabala by canes, sticks and whips. (19)

ILLUSTRATION NO. 30 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक ३० पृष्ठ ३१ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 31 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक ३१ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

रन्नो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्द त्ति नामेण अणिन्दियंगी ।
तं पासिया संजय हम्ममाणं, कुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ॥२०॥

कौशलिक राजा की अनिन्द्य सुन्दरी भद्रा नामक पुत्री ने ऋषि को इस प्रकार पिटते देखा तो क्रुद्ध कुमारों को शांत करने का प्रयास करने लगी ॥२०॥

The most beautiful Bhadrā, daughter of king Kauśalika, when saw the monk beaten, she began to appease the angry youngsters. (20)

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना मु रन्ना मणसा न झाया ।
नरिन्द-देविन्दऽभिवन्दिएणं, जेणऽम्हि वन्ता इसिणा स एसो ॥२१॥

(भद्रा)–यक्ष देवता की बलवती प्रेरणा से प्रेरित होकर मेरे पिता राजा कौशलिक ने मुझे इनको प्रदान किया था; किन्तु इन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा। मेरा परित्याग करने वाले ये ऋषि नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा भी पूजित हैं ॥२१॥

(Bhadrā) Impelled by the deity (Tinduka Yakṣa) my father has given me to this very monk but this monk did not wish me even by mind, decliner of me, this great sage is worshipped by kings of men and gods. (21)

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइन्दिओ संजओ बम्भयारी ।
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ॥२२॥

ये वही उग्र तपस्वी, महात्मा, इन्द्रिय विजेता, संयत और ब्रह्मचारी हैं; जिन्होंने उस समय मेरे पिता राजा कौशलिक द्वारा मुझे इनको दिये जाने पर भी इन्होंने मेरी तनिक भी इच्छा नहीं की ॥२२॥

This is the same great seer, rigorous penancer, conqueror of senses, restrained and celibate, to whom my father king Kauśalika gave me; but he did not wish me. (22)

महाजसो एस महाणुभागो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
मा एयं हीलह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे निद्दहेज्जा ॥२३॥

ये मुनि महा यशस्वी, महानुभाग, घोरव्रती और घोर पराक्रमी हैं। ये अवहेलना योग्य नहीं हैं। इनकी अवहेलना मत करो। कहीं ऐसा न हो कि अपने तप-तेज से ये तुम सबको भस्म कर दें ॥२३॥

This monk possesses great fame and power, mightily strong, deep rooted in vows. Do him no wrong He is not to be injured, lest he consume you all by his fire of penance. (23)

एयाइं तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुहासियाइं ।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयन्ति ॥२४॥

रुद्रदेव पुरोहित की पत्नी भद्रा के इन सुन्दर वचनों को सुनकर ऋषि हरिकेशबल की सेवा करने वाले यक्षों ने भी उन विप्रकुमारों को रोकने का प्रयत्न किया ॥२४॥

Hearing the well-said sweet-words of Bhadrā, the wife of chief sacrificer Rudradeva, the servant Yakṣas of sage Harikeśabala, also tried to check-up the brāhamaṇa youngsters (24)

ते घोररूवा ठिय अन्तलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयन्ति ।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमन्ते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥२५॥

आकाश में स्थित भयंकर रूप और असुरभाव वाले यक्ष उन कुमारों को प्रताड़ित करने लगे। उन अदृश्य प्रहारों से विप्रकुमारों के क्षत-विक्षत शरीर और उन्हें रक्त-वमन करते हुए देखकर भद्रा ने पुनः कहा ॥२५॥

Present, yet hidden in sky, having ferocious frame and ill-feelings the Yakṣas began to beat those brāhmaṇa youngsters. Due to the invisible strokes the bodies of brāhamaṇa youngsters became torned and they began to vomit blood. Seeing this Bhadrā spoke thus–(25)

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दन्तेहिं खायह ।
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥

जो लोग साधु का अपमान करते हैं, वे नाखूनों से पर्वत खोदते हैं, दाँतों से लोहा खाते हैं, पैरों से अग्नि को कुचलते हैं ॥२६॥

Those who insult a saint, they dig the mountain by nails, cut iron by teeth, crush fire by bare feet. (26)

आसीविसो उग्गतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।
अगणिं व पक्खन्द पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह ॥२७॥

ये महर्षि आशीविष (लब्धि सम्पन्न) हैं, उग्र तपस्वी, घोर व्रती और महापराक्रमी हैं। जो व्यक्ति भिक्षा के समय भिक्षु को व्यथित करते हैं; वे पतंगों के समान अग्नि में कूदते हैं ॥२७॥

This great sage is endowed with āśīviṣa exalt or mighty like a martial poisonous snake, rigorous penancer, deep rooted in vows and mightily strong. Who give pain a mendicant at his begging hour they are like moths attacking fire. (27)

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे ।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥२८॥

यदि तुम लोग अपना जीवन तथा धन सुरक्षित चाहते हो तो सिर झुकाकर सभी इनकी शरण ग्रहण करो। ये मुनि यदि क्रोधित हो गये तो सम्पूर्ण संसार को भस्म कर सकते हैं ॥२८॥

If you want your life and possessions safe then submit him with bowed down heads. If the anger of this great sage aroused, he can consume the whole world. (28)

अवहेडिय पिट्ठसउत्तमंगे, पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे ।
निब्भेरियच्छे रुहिरं वमन्ते, उड्ढं मुहे निग्गय-जीह-नेत्ते ॥२९॥

मुनि हरिकेशबल को पीटने वाले छात्रों के सिर पीठ की ओर झुक गये थे। उनकी बाहुएँ फैल गई थीं और वे निश्चेष्ट हो गये थे तथा उनकी आँखें खुली की खुली रह गई थीं। उनके मुखों से रक्त निकलने लगा था, मुँह ऊपर को हो गये थे और जिह्वाएँ बाहर की ओर निकल आई थीं ॥२९॥

The students, who were beating monk Harikeśabala, their heads sunk backwards, arms stretched, strength has gone, eyes wide-opened, vomitted blood, faces became upward, tongues protruded and became like lifeless logs. (29)

ते पासिया खण्डिय कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो ।
इसिं पसाएइ सभारियाओ, हीलं च निन्दं च खमाह भन्ते ॥३०॥

छात्रों को काष्ट के समान निश्चेष्ट देखकर वह विप्र रुद्रदेव उदास और भयभीत हो गया तथा अपनी पत्नी भद्रा सहित मुनि को प्रसन्न करने लगा, कहने लगा–हे भगवन् ! हमने जो आपकी निन्दा और अवहेलना की है, हमारे इस अपराध की क्षमा प्रदान करें ॥३०॥

Seeing his students like lifeless logs, brāhmaṇa Rudradeva became sad and filled with fear and began to appease monk with his consort Bhadrā, he prayed–Reverend ! we have abused and insulted you, please forgive us for our offence. (30)

बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भन्ते !
महप्पसाया इसिणो हवन्ति, न हु मुणी कोवपरा हवन्ति ॥३१॥

हे भगवन् ! ऋषिजन तो महान प्रसन्नचित्त होते हैं, वे किसी पर क्रोध नहीं करते। आप भी इन मूर्ख अज्ञानी बालकों को इनके द्वारा की गई आपकी अवहेलना को क्षमा करें ॥३१॥

O Venerable ! seers are always pleased minded. They never be angry with anyone. You please forgive the insult and abuse, that is done by these ignorant yougsters. (31)

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ।
जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥३२॥

(मुनि हरिकेशबल)–हे सौम्य ! मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति किसी प्रकार का द्वेष न पहले कभी था, न अब है और न भविष्य में ही कभी होगा। मेरी सेवा में जो यक्ष रहते हैं, उन्होंने ही कुमारों की ऐसी दशा की है ॥३२॥

(Monk Harikeśabala) There is not the least anger for you, ever before, now, or in future in my heart. The yakṣas, who serve me, came forth themselves and brought the youngsters to this condition. (32)

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपन्ना ।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ॥३३॥

(रुद्रदेव)–धर्म और उसके अर्थ को वास्तविक रूप से जानने वाले आप भूतिप्रज्ञ हैं–रक्षाप्रधान बुद्धि से युक्त हैं। आप क्रोध नहीं करते हैं। हम सब आपकी शरण ग्रहण कर रहे हैं ॥३३॥

(Rudradeva) You very-well know the religion and its true interpretation, you are wise and witty. You are free of anger. O Compassionate sage ! we all take refuge at your feet. (33)

अच्चेमु ते महाभाग ! न ते किंचि न अच्चिमो ।
भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणावंजण–संजुयं ॥३४॥

हे महाभाग ! हम आपकी अर्चना करते हैं। आपका ऐसा कुछ भी नहीं है जो अर्चनीय न हो। अब आप दधि आदि अनेक प्रकार के व्यंजनों से युक्त शालि-चावलों से तैयार किया हुआ भोजन ग्रहण करिए ॥३४॥

Revered sir ! we adore you. There is nothing in you which cannot be adored. Now, be kind to accept this food of boiled rice of best quality mixed with curd and seasoned with many condiments. (34)

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसू अम्ह अणुग्गहट्ठा ।
'बाढं' ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥३५॥

इस प्रचुर अन्न को मेरे अनुग्रह हेतु आप स्वीकार करिए। पुरोहित के आग्रह को मान देकर महामुनि ने एक मास की तपस्या के पारणे के लिए आहार-पानी स्वीकार किया ॥३५॥

Please accept as per your need, out of this plenty food for my favour. The great sage accepted food and water to end his month-long fast-penance. (35)

तहियं गन्धोदय - पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा ।
पहयाओ दुन्दुहीओ सुरेहिं, आगासे अहो दाणं च घुट्ठं ॥३६॥

उसी समय वहाँ देवों ने पंच दिव्य प्रगट किये-(१-३) सुगन्धित पुष्पों, सुगन्धित जल एवं दिव्य धन की वृष्टि की (४) देव-दुन्दुभि बजाई और (५) अहोदान-अहोदानं का दिव्य घोष किया ॥३६॥

At the same time gods presented five divines-(1) rain of perfumed water, (2) shower of divine flowers (3) rain of divine wealth (4) sounded divine drums and (5) praise of noble offer. (36)

सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइविसेस कोई ।
सोवागपुत्ते हरिएस साहू, जस्सेरिस्सा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

प्रत्यक्षत: तप की ही विशेषता-महिमा है, जाति की कोई विशेषता नहीं दिखाई देती। जिसकी ऐसी महान ऋद्धि है, वह हरिकेशबल साधु चाण्डाल-पुत्र है ॥३७॥

The speciality and greatness is apparently visualised, there is no importance of birth. Who possessesed such a great exalt the monk Harikeśabala is a son of śwapāka-cāṇḍāla-the lowest and untouchable caste. (37)

किं माहणा ! जोइसमारभन्ता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा ?
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयन्ति ॥३८॥

(मुनि)-हे ब्राह्मणो ! अग्नि का समारम्भ-यज्ञ आदि करके क्या तुम बाहर से-जल से शुद्धि करना चाहते हो ? जो बाह्य शुद्धि करना चाहते हैं, उन्हें कुशल पुरुष सुदृष्टिवान् नहीं कहते ॥३८॥

(Monk) Brāhamaṇas ! you desire to pure yourselves by tending fire, washing your skin by water, it is merely external purity. Wise do not accept the external purifiers as having true-viewpoint. (38)

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसन्ता ।
पाणाइ भूयाइ विहेडयन्ता, भुज्जो वि मन्दा ! पगरेह पावं ॥३९॥

कुश, यूप–यज्ञस्तम्भ, तृण, काष्ट तथा अग्नि का प्रयोग और प्रातः-सन्ध्या जल का स्पर्श–इस तरह तुम मन्द-बुद्धि लोग प्राणियों और जीवों का विनाश करके पापकर्मों का संचय कर रहे हो ॥३९॥

By use of kuśa-grass, sacrificial poles, straw, wood and touching or bathing in water every morning and evening–you ignorant and idle-minded persons injure and kill the living beings and thus you are accumulating sinful karmas. (39)

कहं चरे ? भिक्खु ! वयं जयामो ?, पावाइ कम्माइ पणुल्लयामो ?
अक्खाहि णे संजय ! जक्खपूइया !, कहं सुइट्ठं कुसला वयन्ति ? ॥४०॥

(रुद्रदेव)–हे साधु ! हम किस प्रकार प्रवृत्ति करें, यज्ञ करें ? जिससे पापकर्मों से दूर रहें। हे यक्षार्चित संयत ! हमें बताएँ कि तत्त्वज्ञानी पुरुष किस प्रकार का यज्ञ श्रेष्ठ बताते हैं ॥४०॥

(Rudradeva)– O great sage ! How should we act. What type of sacrifice we should do ? So that we may not incur the sinful deeds. O Yakṣa adored Saint ! Tell us, what type of sacrifices enlightened seers declare best. (40)

छज्जीवकाए असमारभन्ता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं, एयं परिन्नाय चरन्ति दन्ता ॥४१॥

(मुनि)–इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष पृथ्वीकाय आदि छह कायों के जीवों की हिंसा नहीं करते, असत्य नहीं बोलते, अदत्तादान नहीं करते, परिग्रह, स्त्री, मान और माया के स्वरूप को जानकर उनका परित्याग करते हैं ॥४१॥

(Monk) Subduer of senses the noble men never injure any living being of six species, never tell a lie, never steal, never own possessions, concepting women, pride and deceit, they renounce them. (41)

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणो ।
वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं ॥४२॥

जो पाँचों प्रकार के संवरों से संवृत होते हैं, जीवन की आकांक्षा और शरीर की आसक्ति का त्याग करते हैं, विदेह भाव में रहते हैं, पवित्र हैं; ऐसे वासनाओं पर विजय पाने वाले महाजयी पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं ॥४२॥

Who are well protected by five kind preventions of karma-inflow, renounce the desire of life and addiction to their own body, subsist in the feelings of bodylessness, conquerors of lust–such great victors perform the best sacrifice. (42)

के ते जोई ? के व ते जोइठाणे ?, का ते सुया ? किं व ते कारिसंगं?
एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !, कयरेण होमेण हुणासि जोइं ? ॥४३॥

(रुद्रदेव)–हे भिक्षु ! आपकी ज्योति (अग्नि) कौन-सी है? ज्योतिस्थान क्या है? घृत आदि डालने की कड़छियाँ कौन-सी हैं? अग्नि को दीपित वाले कण्डे क्या हैं? आपका ईंधन और शांति पाठ क्या है? और किस होम से आप अग्नि को प्रज्वलित करते हैं–जलाते हैं ॥४३॥

(Rudradeva) O monk ! What is your fire, your fire-place, your ladles to pour ghee (refined butter), what are dried cowdungs to burn fire, your fuel, your pacifying words and what oblation do you offer the fire ? (43)

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्म एहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामी इसिणं पसत्थं ॥४४॥

(मुनि)-तप ज्योति है। जीवात्मा ज्योतिस्थान है। मन-वचन-काया-ये तीनों योग कड़छियाँ हैं। शरीर कण्डे है। कर्म ईंधन है। संयम की प्रवृत्ति शान्ति पाठ है। मैं ऐसा ऋषियों द्वारा प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ॥४४॥

(Monk–) Penance is my fire, soul is fire-place, mind-speech-body are ladles, body is dried cow-dung, karmas are fuels, restrain is my pacifying words–such sacrifice I perform which is praised by sages. (44)

के ते हरए ? के य ते सन्तितित्थे ?, कहिंसि ण्हाओ व रयं जहासि ?
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया !, इच्छामो नाउं भवओ सगासे ॥४५॥

(रुद्रदेव)-हे यक्ष पूजित संयमी साधु ! आपका ह्रद (सरोवर) कौन-सा है, शांति-तीर्थ कौन-से हैं? तुम कहाँ स्नान करके मलिनता दूर करते हो? यह सब हमारी जानने की इच्छा है ॥४५॥

(Rudradeva) O Yakṣa-worshipped restrained ascetic ! What is your pond, your tranquillising sacred place, where you purify yourself by bath–we wish to know all this ? (45)

धम्मे हरए बंभे सन्तितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ॥४६॥

धर्म मेरा ह्रद है, ब्रह्मचर्य शान्ति-तीर्थ है-जहाँ आत्मा की लेश्या प्रशस्त हो जाती है। जिसमें स्नान करके मैं भावमल और कर्मकलंक से रहित होता हूँ। शारीरिक-मानसिक संतापों से रहित, शीतल-शांत होता हुआ रागादि दोषों को दूर करता हूँ ॥४६॥

Religion is my pond, celibacy my holy spot, where the tinges of soul eulogised, and bathing in it I become free of internal dirt and blemishes of karmas. Becoming free of mental-bodily torments, thoroughly cooled and tranquil, I cut off attachment and aversion. (46)

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमठाण पत्ते ॥४७॥

–त्ति बेमि ।

कुशल तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने इसे ही वास्तविक स्नान बताया है। ऋषियों के लिए यही महास्नान प्रशस्त है। इसी धर्म जलाशय में स्नान करके महर्षियों ने कर्ममल रहित और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान प्राप्त किया है ॥४७॥

–ऐसा मैं कहता हूँ ।

Enlightends declare this as real bath. This great bath is excellent for sages. Bathing in this very religious-pond the sages attained the highest place, being devoid of karma-dirt and outrightly pure. (47)

–Such I speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १-श्वपाक का अर्थ चाण्डाल लिया जाता है। यह एक अत्यन्त निम्न श्रेणी की नीच जाति थी। चूर्णि के अनुसार इस जाति में कुत्ते का मांस पकाया जाता था। "श्वेन पचतीति श्वपाकः"।

गाथा १८-उपज्योतिष्क का अर्थ है-अग्नि के समीप रहने वाला रसोइया।

गाथा २४-"वेयावडियं" की व्युत्पत्ति चूर्णिकार ने बड़ी ही महत्वपूर्ण की है जिससे कर्मों का विदारण होता है, उसे "वेयावडिय" कहते हैं-"विदारयति वेदारयति वा कर्म वेदावडिता।"

गाथा २७-"आशीविष" एक योगजन्य लब्धि है। आशीविष लब्धि के द्वारा साधक किसी का भी मनचाहा अनुग्रह और निग्रह करने में समर्थ हो जाता है। वैसे आशीविष सर्प को भी कहते हैं। मुनि को छेड़ना, आशीविष सर्प को छेड़ना है।

Salient Elucidations

Gāthā 1–Śwapāka is interpretated as cāṇḍāla. It was a caste of lowest category. According to *Cūrni* in this caste the flesh of dog was cooked. "*Swena pacatīti swa-pākaḥ.*"

Gāthā 18–Upajyotiṣka means a person who sits by the sacrificial fire–a cook.

Gāthā 24–Cūrṇikāra gave the very important origin of the word *veyāvaḍiyaṁ*. By which the karmas are destructed that is *veyāvaḍiyaṁ*–"*vidārayati vedārayati vā karma vedāvaḍitā*.

Gāthā 27–Āśiviṣa is an exalt attained by profound meditation. By this exalt the practiser becomes capable to offer boons and bans to any body according to his wish. The ferocious and poisonous snake is also called āśivsa. To vex a monk is as full of fear as to irritate a poisonous cobra.

त्रयोदश अध्ययन : चित्र सम्भूतीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम चित्रसंभूतीय है। चित्र और संभूत–दोनों भाई थे। पिछले पाँच जन्मों तक ये दोनों भाई साथ-साथ उत्पन्न हुए, जिए और मरे। लेकिन छठवें जन्म में बिछुड़ गये। इस बिछुड़न का कारण था–संभूत मुनि का निदान–काम-भोगों की तीव्र आकांक्षा।

पिछले अध्ययन 'हरिकेशी' में उग्र तपस्वी की तेजस्विता का चमत्कारी ढंग से वर्णन हुआ था और इस अध्ययन में काम-भोगों के निदान से मुनि का पतन–संसारभ्रमण का चित्रण किया गया है। साथ ही इच्छा-काम-रहित मुनि की मुक्ति का प्रतिपादन हुआ है।

इस प्रकार इस अध्ययन में भोग और योग का द्वन्द्व तथा उनका दुष्परिणाम एवं सुपरिणाम लक्षित होता है। योग और वियोग पर यह अध्ययन आधारित है।

चित्र-संभूत के पिछले पाँच जन्मों का घटनाक्रम–

चित्र और संभूत के पिछले पांच जन्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

साकेत देश के राजा चन्द्रावतंसक के पुत्र राजा मुनिचन्द्र को राज-भोग करते-करते विरक्ति हो गई। उन्होंने मुनि सागरचन्द्र से भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। कठोर तपस्या करने लगे।

एक बार वे एक सार्थ के साथ वन में होकर एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। समीप के ग्राम में गोचरी हेतु गये और लौटे तब तक सार्थ जा चुका था। वन मार्ग से अनभिज्ञ मुनि मुनिचन्द्र वन में भटक गये। भूख-प्यास से व्यथित होकर मूर्च्छित हो गये।

कुछ ही दूर चार गोपाल-पुत्र अपनी गायें चरा रहे थे। उन्होंने मुनि को मूर्च्छित देखा तो उनकी परिचर्या की। मुनि की मूर्च्छा टूटी। उन्होंने उन गोपाल-पुत्रों को धर्मोपदेश दिया तो चारों गोपाल-पुत्रों की आत्मा उद्‌बुद्ध हो उठी। उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया, साधुत्व का पालन करने लगे।

उनमें से दो साधु तो श्रमणधर्म का पालन शुद्ध रूप से करते रहे किन्तु दो साधुओं को मलिन वस्त्रों से जुगुप्सा हो गई, फिर भी साधु-धर्म का पालन करते रहे।

जुगुप्सा (घृणा) भाव वाले दोनों साधु मृत्यु के उपरान्त देव बने और वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर दशार्णनगर (दशपुर) में शांडिल्य ब्राह्मण की दासी यशोमति की कुक्षि से युगल रूप में उत्पन्न हुए।

एक बार दोनों भाई खेत में रात्रि के समय एक वृक्ष के नीचे सो रहे थे कि एक सर्प ने उन्हें डँस लिया।

दोनों भाई मरण पाकर कालिंजर पर्वत पर युगल रूप से हरिण बने। एक बार एक शिकारी ने दोनों हरिणों को एक बाण से वींध दिया। वहाँ से मरकर दोनों मृतगंगा के तट पर राजहंस बने। वहाँ एक मछुए ने दोनों की गरदन मरोड़कर उनका प्राणान्त कर दिया।

राजहंस की योनि से निकलकर दोनों वाराणसी के अति समृद्ध और चाण्डालों के अधिपति भूतदत्त के पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। उनके नाम चित्र और संभूत रखे गये। दोनों भाइयों में परस्पर बहुत प्रेम था। उनका रूप भी सुन्दर था।

वाराणसी में उस समय राजा शंख राज्य करता था। उसका मंत्री नमुचि था। किसी भयंकर अपराध पर राजा शंख ने नमुचि को मृत्यु दण्ड दिया। वध का कार्य चाण्डाल भूतदत्त करता था। नमुचि ने उससे प्राणभिक्षा माँगी। तब भूतदत्त ने शर्त रखी कि यदि आप मेरे पुत्रों को अध्ययन करायें, विद्या सिखाएं तो मैं आपको अपने भूमिगृह (तहखाने) में छिपाकर रख सकता हूँ। नमुचि ने यह शर्त स्वीकार कर ली। भूतदत्त ने उसे अपने घर में छिपा लिया। नमुचि के प्राण बच गये।

नमुचि ने कुछ ही वर्षों में दोनों चाण्डाल-पुत्रों को कई विद्याओं में प्रवीण बना दिया। चाण्डाल-पत्नी भोजनादि से नमुचि की सेवा करती थी। नमुचि ने उससे अनुचित संबंध बना लिये। भूतदत्त को ज्योंही मालूम हुआ तो उसने नमुचि के वध का निश्चय कर लिया। परन्तु चित्र-सम्भूत ने गुरु के प्रति कृतज्ञतावश नमुचि को सूचित कर दिया और घर से सुरक्षित निकाल दिया।

नमुचि वहाँ से भागकर हस्तिनापुर पहुँचा और चक्रवर्ती सनत्कुमार का मंत्री बन गया।

एक बार वाराणसी में कोई उत्सव हुआ। उसमें चित्र-संभूत भी सम्मिलित हुए। उन्होंने मधुर कंठ से संगीत विद्या का प्रदर्शन किया तो श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो गये। जनसाधारण स्पर्श्य-अस्पर्श्य का भेद ही भूल गये। किन्तु कुछ ब्राह्मणों का जात्यभिमान जाग उठा। उन्होंने राजा से शिकायत कर दी। राजा ने नगर-निष्कासन का दण्ड दिया। दोनों भाई नगर से निकाल दिये गये। वे नगर से बाहर किसी अन्य स्थान पर रहने लगे।

वाराणसी में कौमुदी महोत्सव का आयोजन हुआ। कलाकार की सबसे बड़ी कमजोरी यह होती है कि वह अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। कपड़े से मुख ढंककर दोनों भाई उत्सव मे सम्मिलित होकर अपनी संगीत कला का प्रदर्शन करने लगे। जनता मंत्रमुग्ध हो गई। लेकिन स्वर से इन्हें पहचान लिया गया। वस्त्र हटाकर देखा तो सारा रहस्य स्पष्ट हो गया।

इस बार कट्टर जाति अभिमानियों ने स्वयं ही इन दोनों भाइयों को मारा-पीटा और नगर से बाहर निकाल दिया।

चित्र-संभूत—दोनों भाइयों को इस बार का तिरस्कार बहुत बुरा लगा। वे समझ गये हीन कुल में उत्पन्न होने के कारण उन्हें कहीं भी स्नेह, मान-सम्मान नहीं मिल सकता। उनकी सारी कलाएँ व्यर्थ हैं।

क्षुब्ध होकर उन्होंने निर्णय किया—इस अपमानपूर्ण जीवन से तो मृत्यु ही भली। और आत्म-हत्या का निर्णय करके वे एक पर्वत पर जा चढ़े। वहाँ से गिरने वाले ही थे कि किसी श्रमण ने उन्हें देख लिया, आत्म-हत्या से रोका, समझाया और उनका समस्त वीतक सुनकर कहा—यदि तुम श्रमण बन जाओ तो सम्मान का जीवन जी सकोगे।

मुनि की प्रेरणा से चित्र-संभूत—दोनों ने श्रामणी दीक्षा स्वीकार करली। गुरुकृपा से ज्ञानाभ्यास किया, उग्र तपश्चर्या करने लगे, फलस्वरूप अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गईं। गीतार्थ बनकर विचरण करने लगे।

विचरण करते हुए वे हस्तिनापुर जा पहुँचे। उद्यान में ठहरे। सम्भूत मुनि गोचरी हेतु निकले। राजमार्ग पर गजगति से चल रहे थे। उस समय मंत्री नमुचि अपने भवन के गवाक्ष में बैठा था। सम्भूत मुनि उसकी दृष्टि में आ गये। 'कहीं ये मुनि मेरा रहस्य न प्रगट कर दें' इस आशंका से ग्रसित होकर उसने अपने सुभटों को आदेश दिया कि इस श्रमण को मार-पीटकर नगर से बाहर निकाल दो।

मंत्री नमुचि के सुभटों ने सम्भूत मुनि को मुक्कों, लातों, लाठियों से खूब पीटा, मारते ही चले गये। समताभावी सम्भूत मुनि उस मार को सहते रहे, सहते रहे।

लेकिन सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। अत्याचारी के अत्याचार जब सीमा से बढ़ जाते हैं तो शीतल चन्दन भी आग उगलने लगता है। निर्मम पिटाई से संभूत मुनि का हृदय भी अशांत हो गया। लब्धिवंत तो थे ही, तेजोलेश्या प्रगट करके मुख खोल दिया। उनके मुख से तेज धूँआ निकलने लगा। कुछ ही क्षणों में धूँआ सम्पूर्ण हस्तिनापुर नगर के आकाश में छा गया। लोग भयभीत हो गये। स्वयं चक्रवर्ती भी चकित और भयभीत हुआ। अपनी पटरानी सुनन्दा के साथ आया और संभूत मुनि से क्रोध को शांत करने की प्रार्थना करने लगा, जनता तो प्रार्थना कर ही रही थी। चित्र मुनि भी आगये, उन्होंने संभूत मुनि को समझाया। उनके समझाने से संभूत मुनि का क्रोध उपशान्त हुआ। उन्होंने अपनी तेजोलेश्या समेट ली। नगर की रक्षा हो गई।

चक्रवर्ती सनत्कुमार ने भावभक्तिपूर्वक सम्भूत मुनि को वन्दन किया; पटरानी सुनन्दा ने भी झुककर प्रणाम किया। असावधानीवश उसके लम्बे कोमल सचिक्कण केशों का स्पर्श संभूत मुनि के पैरों से हो गया। मुनि का चित्त चंचल हो गया। उन्होंने निदान किया-यदि मेरी तपस्या का कुछ भी फल हो तो मैं भविष्य में चक्रवर्ती बनकर संसार के अनुपम सुख भोगूँ।

चित्र और संभूत-दोनों ने अनशन किया। दोनों ने कालधर्म प्राप्त किया। लेकिन संभूत मुनि ने अन्तिम समय तक अपने निदान की आलोचना नहीं की। कालधर्म प्राप्त कर दोनों मुनि सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म विमान में देव बने।

वहाँ का आयुष्य पूर्णकर संभूत मुनि के जीव ने काम्पिल्य नगर के ब्रह्म राजा की रानी चुलनी की कुक्षि से जन्म लिया और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बनकर सांसारिक सुखों का भोग करने लगा।

चित्र मुनि के जीव ने पुरिमताल नगर के एक अत्यधिक धनाढ्य सेठ के पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया। स्थविरों का उपदेश सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ, श्रामणी दीक्षा ग्रहण करके तप-संयम में लीन हो गया।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती एक बार नाटक देख रहा था। नाटक देखते-देखते उसके मन में विचार आया--ऐसा नाटक मैंने पहले भी कभी देखा है। पर कब और कहाँ? इस प्रकार मनोमंथन करते-करते उसे अपने पाँच पूर्वजन्मों की स्मृति हो आई। (चित्र देखें) वह अपने भाई चित्र की स्मृति में विकल हो गया। उसकी खोज करने के लिए ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने श्लोक की एक पंक्ति बनाई और घोषणा की-जो इस श्लोक की पूर्ति करेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा। श्लोक का पूर्वार्द्ध था-

आश्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंगाऽवमरौ तथा।

चक्रवर्ती के आधे राज्य का लोभ बहुत बड़ा होता है। यद्यपि इस श्लोकार्ध के रहस्य का ज्ञान किसी को नहीं था, अतः कोई पादपूर्ति तो न कर सका; किन्तु यह पंक्ति साक्षर-निरक्षर, उच्च-नीच, श्रेष्ठी-श्रमिक सभी की जुबान पर चढ़ गई थी, सभी इसे यत्र-तत्र गुनगुनाते रहते थे।

चित्र मुनि ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एक बार कांपिल्यपुर में आये और नगर के बाहर उद्यान में ठहर गये। वहाँ खेत पर अरघट चलाने वाला इसी पंक्ति को गुनगुना रहा था। मुनि ने पंक्ति सुनी और तुरन्त पाद-पूर्ति कर दी-

एषा नौ षष्ठिका जातिः, अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः।

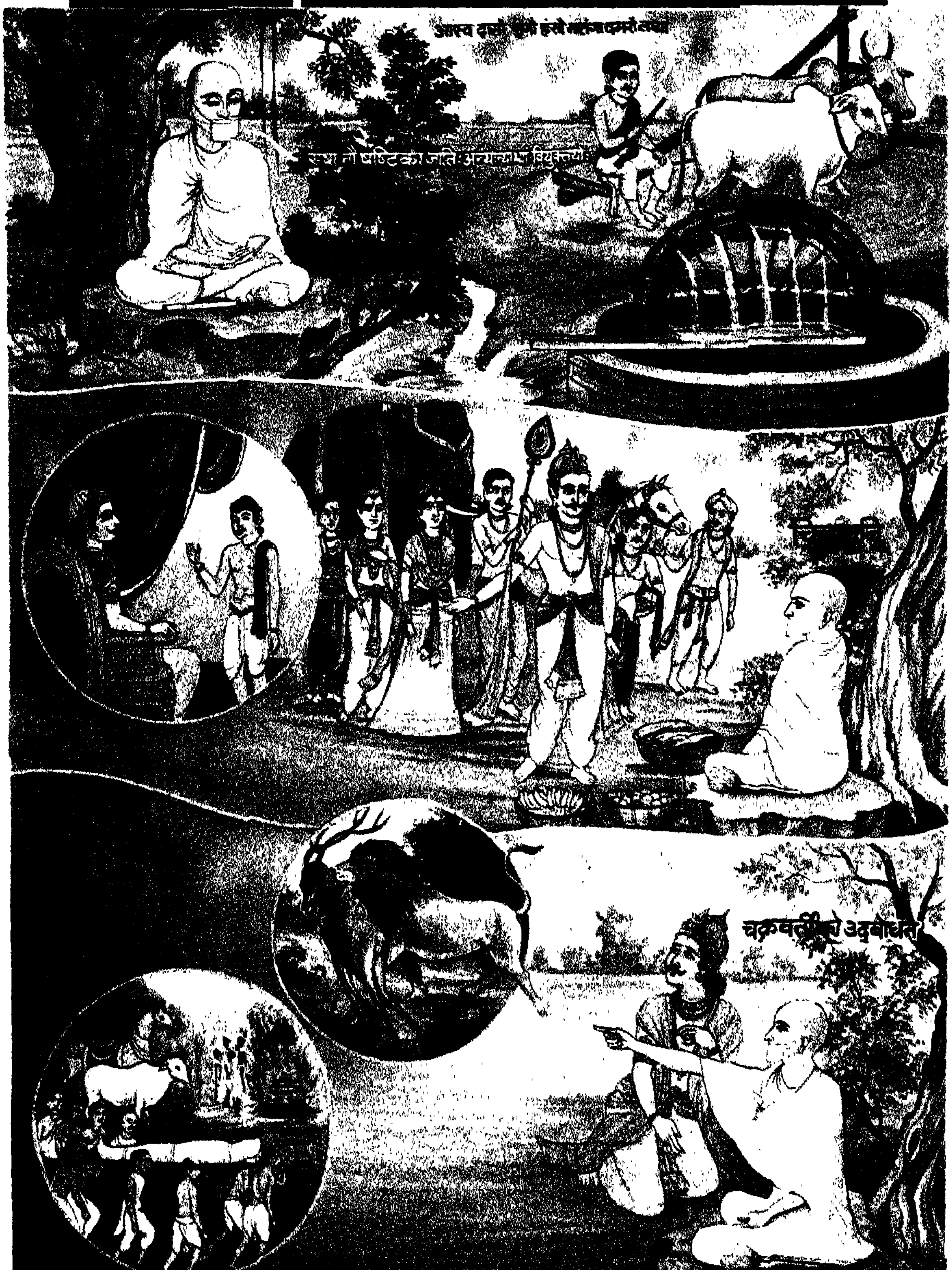
अरघट चालक ने इस पंक्ति को रटकर कंठस्थ किया और चक्रवर्ती की राजसभा में जाकर वह पंक्ति ज्यों की त्यों सुनादी।

ILLUSTRATION NO. 32 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक ३२ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 33 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 24



चित्र क्रमांक ३३ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

चक्रवर्ती ने पूछा—क्या यह पाद-पूर्ति तुमने की है?

अरघट चालक ने बताया—महाराज ! मैं इतना विद्वान कहाँ हूँ। उद्यान में एक मुनि आज ही आये हैं। उन्होंने ही इस पंक्ति की रचना की है।

सच्चाई जानकर चक्रवर्ती स्वयं उद्यान में आया। अपने पूर्वजन्मों के भाई चित्र मुनि से मिला, उनकी वन्दना की और फिर वार्तालाप करने लगा।

उनका वार्तालाप मूल अध्ययन में वर्णित है ही।

पूर्वजन्मों के स्नेह के कारण चित्र मुनि ने ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को संयम ग्रहण करने की बहुत प्रेरणा दी। यहाँ तक कहा कि यदि तू संयम का पालन नहीं कर सकता तो कम से कम आर्यकर्म तो कर जिससे अगले जन्म में महर्द्धिक देव बन सके।

लेकिन ब्रह्मदत्त पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने अंत में कह दिया—मेरी दशा दलदल में फँसे उस हाथी जैसी है जो तट को देखता तो है किन्तु वहाँ पहुँच नहीं सकता।

आखिर चित्र मुनि वहाँ से यह कहकर चले जाते हैं कि राजन् ! मैंने तुम्हें समझाने में व्यर्थ ही समय नष्ट किया।

चित्र मुनि ने उत्कृष्ट साधना की और अनुत्तर सिद्ध पद प्राप्त किया। इसके विपरीत कामभोग में फँसा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती लोक के निकृष्टतम स्थान सातवीं नरक में पहुँचा।

नाम आदि के परिवर्तनों के साथ यही प्रसंग बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

इस अध्ययन की प्रमुख विशेषता है—निदान (काम-भोगों की तीव्र इच्छा) की विवशता। काम-भोग ही आत्मा के लिए सबसे बड़े बंधन हैं। इनकी आसक्ति के कारण ही जीव दुर्गति में जाकर दुःख भोगता है।

इसके विपरीत भोगेच्छाओं से उपरत रहने वाला व्यक्ति, चाहे वह सांसारिक दृष्टि से अभावग्रस्त ही क्यों न हो, सुखी रहता है। और अकिंचन श्रमण तो सर्वश्रेष्ठ आत्मिक सुख की उपलब्धि कर लेते हैं। उन्हें शाश्वत, अव्याबाध मुक्तिसुख प्राप्त हो जाता है।

इस अध्ययन में इच्छाओं की दासता से दुःख और इच्छाओं के स्वामी बनने से सुख-प्राप्ति का स्वर प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठापित हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३५ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 13
CITRA AND SAMBHŪTA

Foreview

The name of this chapter is Citra-Samhūta (चित्र-संभूत), based on the principal characters.

Citra and Sambhūta were brothers. In the former five births, both brothers born, lived and died together. But separated in the sixth birth. The cause of this separation was the volition (निदान-strong desire for getting worldly pleasures as a fruit of penance and religious activities in the life to come) of Sambhūta, while he was a monk.

In the previous twelfth chapter 'Harikeśa' there was a description of magnificence of a rigorous penancer in an amazing method. While in this chapter the downfall of monk is shown due to his lust for worldly pleasures. Along with salvation of desireless monk is also ascertained.

Thus in this chapter the combat of worldly pleasures and contemplation and their ill and well consequences are described. This chapter is based on union and separation.

Happenings of Five Previous births of Citra-Sambhūta.

The description of five former births of Citra-Sambhūta, in nutshell, as follows–

The ruler of Sāketa (साकेत) region was king Candrāvatansaka (चन्द्रावतंसक). After him his son Municandra enthroned. He reigned for a long time. Long time reigning caused a disgust in his mind about kingdom and kingship. He accepted Jain consecration from the monk Sāgaradutta (सागरदत्त) and began to observe rigorous penances.

Once he was going from a city to another through the forest path, with a trader's group. The group hault for cooking food. Monk Municandra went to getting alms in a nearby village. Taking alms he returned, then he saw that trader's group has gone far away. Being unknown to forest-path monk Municandra went astray in jungle. He swooned due to the agony of hunger and thirst.

Not far four lads of cowmen were grazing their cowherd in a pasture. They saw the swooned monk, served him. Monk came to consciousness. He bestowed religious path to them. All the four lads (the sons of cowmen) enlightened. They accepted restrainment, began to observe ascetic-order.

Among them two practise pure monk-order but remaining two engrossed with hate due to their dirty cloths, still they do practise the monk-order, though outwardly.

As a result of practising monk-order, the two sages, bearing hate, took birth in heaven as gods.

Completing the god-duration, they took birth as twin from the womb of Yśomati, the slave-maid of Śāṇḍilya brāhmaṇa, in Daśārṇapura (Daśapura).

Once both the brothers were sleeping under a tree in the night in a field, a poisonous snake bite them and they died. It was their first life.

Then both born as twin deers at the mountain Kāliñjara. Once a hunter hunted both by a single arrow. They died. It was their second birth.

In the third birth they become geese on the bank of Mṛtagaṅgā. There a fisherman killed both of them by twisting their necks.

Their fourth birth is as follows–

Leaving the existence of geese both brothers born as twin sons of Bhūtadutta, who possessed great wealth, and was ruler of cāṇḍālas of Vārāṇasī. They were named as Citra and Sambhūta. Both were immensely fond of one another. Their body-frame was also handsome and beautiful, attractive.

At that time, King Śaṅkha ruled over Vārāṇasī. His chief minister named Namuci was a very talented person. He was very clever and expert in many branches of learning., Being cunning diplomat and politician, he was also an expert musician. But he was not a man of principle. His character was not strong.

Once he was caught in King's seraglio doing lewd activities. For this offence, king sentenced him to death. Cāṇḍāla Bhūtadutta was the hangman. So Namuci was handed over to him to hang till death.

Cunning Namuci prayed Bhūtadutta to save his life. Bhūtadutta put his term–If you educate my sons in various branches of learning then I can leave you alive. You will have to live in my cellar. In this way your life will be safe. Namuci agreed to this term. His life become safe.

During a few years Namuci made expert Citra-Sambhūta in many branches of learning. They become specifically specialist of music.

Cāṇḍāla Bhūtadutta's wife was table-maid for Namuci. She daily serve him food in cellar. Easy-character Namuci established sexual relations with her.

Being aware of this fact, Bhūtadutta made his mind to kill Namuci; but by the feelings of obligation towards teacher, Citra-Sambhūta informed Namuci and get him out of their home safely.

Running away from there Namuci approached Hastināpura and by his cleverness became the minister of monarch Sanatkumāra.

Once there was held a ceremony in Vārāṇasī. Citra-Sambhūta also rejoiced it. Listening their music and singing listeners charmed. Audience forgot the difference of touchable and non-touchable. But the pride of some brāhmaṇas, of their high caste, awoke. They complained the king. King gave punishment to turn out of city. Both brothers were turned out of city. They began to live at any place out of city.

Spring festival was going to be performed in Vārāṇasī. The foremost weakness of an artist is that he always remains eager to show his art. Wrapping their faces by a cloth-piece both the brothers, accompanied the festival and began to sing songs in a very lucid and sweet voice. Audience became spell-bound. Due to voice they were recognised. Visualised taking off the wrapping cloth from their faces, the whole secret revealed.

This time the fanatic high-caste-proudy took the law and order in their own hands. They severely punished both the brothers by beating and banished them out of city.

Citra-Sambhūta, both the brothers, felt this insult deeply. It hurt their hearts. They fully realised that due to their lowest caste, they can never get affection and honour anywhere, their all arts worth nothing.

With depressed mind they thought–death is better than disgraced life.

Thus determined for suicide, both climbed on a peak of nearby mountain. They were just about to take jump from that peak, at the eleventh hour the glance of a sage fell on them, he haulted them from suicide. Hearing their life-happenings the sage said–If you both accept monkhood then you can live an honourable life.

By the inspiration of sage, both the brothers–Citra-Sambhūta accepted the Jain consecration, studied the holy scriptures from their teacher and began to observe rigorous penances.

Practising pure monk-order and rigorous penances, they obtained many exalts.

Being firmly accomplished in right faith-knowledge-conduct-penance both the brother monks began to wander in various villages, cities and regions.

Wandering they arrived at Hastināpura. Stayed in a garden. Sambhūta monk went to city for seeking food, going slowly on highway–the royal road. At that time Namuci was visualizing the persons moving on royal road, sitting by the little window of his palace. His eyes fixed on monk Sambhūta. He recognised the monk. Apprehending that my past misdeeds may be exposed, he ordered his servants to exile the monk out of city by beating.

The servants of Namuci began to beat monk Sambhūta by fists, kicks, canes and sticks. and go on beating severely. Peace-minded monk tolerated.......tolerated....... .

But there is a limit of tolerance. When oppressions of a cruel oppressor exceeds the limit then the cool sandal-wood vomits fire. The heart of Sambhūta monk became disturbed by this cruel beating. Exalted he was. Manifesting *tajoleśyā* he opened his mouth. Sharp and dense smoke flooded out of his mouth. Within a few moments, the dense smoke covered the whole sky of Hastināpura.

People frightened. Even the monarch himself frightened and amazed. At once came with his chief queen Sunandā to monk and began to pray to pacify his anger. The public was also praying. Monk Citra also arrived. By his sweet and comfort words, the anger of Sambhūta monk pacified. He contracted his *tejoleśyā* and preserved deeply in his own soul. City became safe.

Monarch bowed down with devotion, folded palms and touching forehead at the feet of monk Sambhūta. Queen Sunandā also bowed down. But due to lack of care her long, smooth and greasy hairs touched the feet of monk Sambhūta. Mind of the monk agiled. He made firm volition–if there is any fruit–good consequence of my penance then in future becoming a monarch I may experience the excellent pleasures and amusements of this world.

After this both the brother monks, Citra-Sambhūta, observed the fast penance till death. Both ended their lives. But monk Sambhūta did not criticise (expiation) of his volition till the

last moment of his life. Still both the monks took birth as gods in celestial home named Padmagulma of the first heaven Saudharma gods' abode.

Completing the life-span of god, the soul of Sambhūta monk took birth from the womb of queen Culani, consort of Brahma rājā, the ruler of Kāmpilyanagar and becoming Brahmadutta monarch (really the ruler of six regions of Bhārata) indulged in worldly pleasures.

The soul of monk Citra born as a son of very richman of Purimatāla city. When he was of age, he heard the sermon of aged and experienced sages, he recollected the memory of his former births. Accepting the monk-hood he engrossed in restrain and penances.

Monarch Brahmadutta was once seeing a drama. Visualising that drama he began to think, I have seen such drama, but when and where ? Thinking deep he recollected the memory of previous births. (see Illustration) Now he became uneasy in the momory of his beloved brother; but he had no information, where his brother was. For searching him monarch composed a line (half of śloka–couplet) which was as following–

We were slaves, deers and geese,
then cāṇḍālas and at last gods.

and announced that who will compose the second line of this śloka–Couplet, I will give him half of my kingdom.

The greed of half kingdom of a monarch is very great and immensely attractive. Though none was aware about the secret of this line, still any and every body muttered this line may he be literate or illiterate, labour or richman, of high or low class.

Wandering village to village monk Citra arrived at Kāmpilyapura and stayed in the garden situated outside of the city. There the garden keeper was muttering that line, pulling up the water from well.

Monk heard this line, composed the second one–

This is our sixth birth,
in which we are separated from each other.

Thus the stanza (śloka) completed.

Hearing this the garden keeper became very glad. He rotated this second line many times, went to the court of monarch and recited as it is.

Amazingly monarch enquired–Did you compose this line ?

He told–King! I am not so literate that could compose this line. A monk has come to the garden, he composed this line.

Knowing the fact, monarch himself came to the garden, met the brother of former lives, bowed the monk and then began to talk.

The conversation we get in the text.

On account of previous lives' affection monk Citra inspired much monarch Brahmadutta to accept and practise restrain. He said to the extent that–'if you cannot practise monk-order,

then do noble and auspicious deeds, so you can become the god with great fortune in your next birth.

But Brahmadutta remained uneffected. In the end he declared–my condition is like that elephant which evolved in a swamp, who can only see the dry land-the shore of swamp but cannot come out of that swamp and reach the dry land.

At last monk Citra went away, saying–Monarch! I have wasted my tme in vain, because you could not understand the benefit of your soul.

Monk Citra obtained salvation by practising monk-order excellently. Contrary to this, indulged in worldly pleasures monarch Brahmadutta born in the seventh hell.

This episode, we also get in Bauddha literature, with a slight change of names etc.

The salient feature of this chapter is the compulsion of volition–the extreme lust of empirical and sensual desires, pleasures, amusements and rejoicings. Worldly pleasures are the greatest bondage for soul. Due to the indulgence in these pleasures, soul suffers torments, taking birth in ill-existences.

Contrary to this, the person disinclined to the desires of pleasure-experiences remains happy, may he be destitute by the worldly view-point; and the sages, having nothing their own, attain the supreme spiritual bliss. Eternal, never-ending happiness they obtain.

Slavery of desires begets misery and subjugation of them is the cause of happiness–this fact is influensively elaborated in this chapter.

There are 35 couplets in this chapter.

卐

तेरसमं अज्झयणं : चित्तसम्भूइज्जं

त्रयोदश अध्ययन : चित्र-सम्भूतीय

जाईपराजिओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीए बम्भदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥१॥

जाति से तिरस्कृत (पराजित) सम्भूत मुनि ने हस्तिनापुर में चक्रवर्ती बनने का निदान किया। इसलिए पद्मगुल्म देव विमान से अपना आयुष्य पूर्ण कर चुलनी रानी की कुक्षि से उत्पन्न होकर वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना ॥१॥

Contemptuously treated due to his lowest-untouchable caste (Cāṇḍāla) Sambhūta monk made a firm volition to be world-monarch (चक्रवर्ती–really the ruler of six regions of Bhārata). Therefore completing his god-duration from Padmagulma celestial home, taking birth from the womb of queen Culanī, he became monarch Brahmadutta. (1)

कम्पिल्ले सम्भूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥

काम्पिल्य नगर में संभूत का जीव उत्पन्न हुआ और चित्र मुनि का जीव पुरिमताल नगर में एक श्रेष्ठि के घर में उत्पन्न हुआ। वहाँ स्थविरों से धर्म सुनकर वह प्रव्रजित हो गया ॥२॥

The soul of monk Sambhūta born in Kāmpilya city and the soul of Citra monk took birth in the house of a very rich man of Purimatāla city. There listening the sermon of aged sages he became consecrated. (2)

कम्पिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्तसम्भूया ।
सुहदुक्खफलविवागं, कहेन्ति ते एक्कमेक्कस्स ॥३॥

एक बार चित्र और सम्भूत दोनों काम्पिल्य नगर में मिले। दोनों ने एक-दूसरे से सुख-दुःखरूप कर्मफल विपाक के सम्बन्ध में वार्ता की ॥३॥

Once Citra and Sambhūta, both the brothers of previous lives, met in Kāmpilya city and talked each other about the experiences of pleasures and pains, the outcome of good and bad deeds. (3)

चक्कवट्टी महिड्ढीओ, बम्भदत्तो महायसो ।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी–॥४॥

महायशस्वी और महा ऋद्धि से सम्पन्न ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (संभूत मुनि का जीव) ने बहुमान पूर्वक अपने भाई से कहा ॥४॥

Brahmadutta monarch (the soul of monk Sambhūta), who was now possessor of enormous fortune and wide fame, said with great respect to his brother (monk)–(4)

आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा ।
अन्नमन्नमणूरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो ॥५॥
दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे ।
हंसा मयंगतीरे य, सोवागा कासिभूमिए ॥६॥
देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिड्ढिया ।
इमा नो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥७॥

(ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती–) इसके पूर्व हम दोनों भाई परस्पर एक-दूसरे का अनुगमन करने वाले, अनुरक्त और हित चाहने वाले थे ॥५॥

(Monarch Brahmadutta) Before this birth, we were brothers fond, loving and beneficial to each other. (5)

हम दोनों पहले दशार्ण देश में दास थे, फिर कालिंजर पर्वत पर हरिण, तदुपरान्त मृतगंगा के किनारे हंस और फिर काशी में चाण्डाल के रूप में उत्पन्न हुए थे ॥६॥

We were slaves in Daśārṇapura, then deers (antelopes) on mountain Kālinjara, then geese on the shore of Mṛtagangā and then Śvapākas–Cāṇḍālas in the land of Kāśī. (6)

तदुपरान्त हम दोनों देवलोक में महान ऋद्धिधारी देव थे। यह हमारा छठवाँ जन्म है, जिसमें हम दोनों पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए हैं ॥७॥

Then we were the gods with great power in heavenly abode. This is our sixth birth, we are separately born from each other. (7)

कम्मा नियाणप्पगडा, तुमे राय ! विचिन्तिया ।
तेसिं फलविवागेण, विप्पओगमुवागया ॥८॥

(चित्र मुनि–) हे राजन् ! तुमने काम-भोगों की अभिलाषारूप निदान किया था। उस निदानकृत कर्मों के विपाक के कारण हम दोनों पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए हैं ॥८॥

(monk Citra) King ! you had firm determined volition for the desire of exercising mundane pleasures and amusements. Due to the fruition of that volition we took birth separately from each other. (8)

सच्चसोयप्पगडा, कम्मा जाए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ॥९॥ ?

(ब्रह्मदत्त–) हे चित्र मुनि ! पूर्वजन्म में किये गये सत्य और शुभ कर्मों का फल मैं अब इस जन्म में भोग रहा हूँ। क्या तुम भी ऐसा ही फल भोग रहे हो ? ॥९॥

(Brahmadutta) O Citra monk ! The good and truthful activities done by me in former life. I am exercising the pleasing consequences now in this life. Do you also exercising such fruits ? (9)

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि, आया ममं पुण्णफलोववेए ॥१०॥

जाणासि संभूय ! महाणुभागं, महिड्ढियं पुण्णफलोववेयं ।
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं ! इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥११॥
महत्थरूवा वयणऽप्पभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहऽज्जयन्ते समणो म्हि जाओ ॥१२॥

(चित्र मुनि–) मानव अपने किये हुए सभी कर्मों का फल भोगते हैं। कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। मेरी आत्मा भी उत्तम अर्थों और कामों के फल से युक्त रही है ॥१०॥

(Citra monk) All good deeds bear their fruits to men (being), there is no escape from the effects of one's actions. I also get rewards of my virtuous deeds. (10)

हे सम्भूत ! जिस प्रकार तुम स्वयं को महाभाग्यवान, महान ऋद्धिधारी और पुण्यफल से युक्त समझते हो; उसी प्रकार चित्र को भी समझो। हे राजन् ! उसके पास भी प्रभूत ऋद्धि और द्युति रही है ॥११॥

Sambhūta ! As you consider yourself great fortunate, wealthy and prosperous, endowed with the rewards of meritorious deeds. Know such about Citra, he also obtained prosperity, splendour and wealth. (11)

स्थविरों ने जन समुदाय में अल्प अक्षर किन्तु महान गंभीर अर्थ से युक्त गाथा कही थी जिसे शील और गुणों से सम्पन्न भिक्षु बड़े यत्न से प्राप्त करते हैं। उस गाथा को सुनकर मैं श्रमण बन गया ॥१२॥

The old sages (स्थविर) vocalised a couplet of deep meaning and condensed words midst the gathering of men. Having heard that couplet I became a monk. (12)

उच्चोदए महु कक्के य बम्भे, पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्तधणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥
नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाइं परिवारयन्तो ।
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू ! मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥१४॥

(ब्रह्मदत्त–) हे चित्र मुनि ! उच्च, उदय, मधु, कर्क और ब्रह्म–ये पाँच प्रकार के प्रमुख महल तथा अन्य भी महल हैं जो उत्तम कारीगरों के द्वारा निर्मित हैं। पांचाल देश के इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों से युक्त तथा धन-धान्य से परिपूर्ण इन भवनों को स्वीकार करो ॥१३॥

(Brahmadutta) O Citra monk ! The five kinds of main palaces are here, named Ucca, Udaya, Madhu, Kark and Brahma, besides these there are other palaces also, constructed by great architects. All affluenced by the heart-pleasening pleasures and wealth-grains etc. of Pāncāla country, accept and enjoy them as your own. (13)

हे भिक्षु ! नृत्य, गीत, वाद्यों के साथ युवती स्त्रियों से घिरे हुए इन भोगों को भोगो। मुझे तो यह रुचिकर लगते हैं, प्रव्रज्या तो निश्चित ही दुःखद है ॥१४॥

O mendicant ! Enjoy all the pleasures and surround yourself with the beautiful and finest maidens, who sing, dance and make music. To me all these are interesting and heart-charming. Renunciation and consecration is really full of pains. (14)

तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था ॥१५॥
सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥
बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं !
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥१७॥

(चित्र मुनि–) पूर्वजन्मों के स्नेह के कारण कामभोगों में गृद्ध राजा को धर्म में स्थिर चित्र मुनि ने उस चक्रवर्ती के लिए हितकारी ये उद्‌गार व्यक्त किये ॥१५॥

(Citra monk) Due to kinship and love of former lives towards the king, who was bogged in sensual pleasures; pious and fixed in religious order Citra monk, for the beneficence of king spoke these words– (15)

सभी गीत विलाप, सभी नाटक विडम्बना, सभी आभूषण भारभूत और सभी कामभोग दुःख देने वाले हैं ॥१६॥

All songs and music are but prattle, all dances are but mockery, all ornaments are but burden, all pleasures harbinger of pains. (16)

हे राजन् ! अज्ञानियों को सुन्दर लगने वाले किन्तु यथार्थ में दुःख देने वाले काम-भोगों में वह सुख नहीं है जो सुख काम-भोगों से विरक्त, शील आदि गुणों में रत तपोधन भिक्षुओं को प्राप्त होता है ॥१७॥

King ! For ignorants (devoid of the knowledge of truth and untruth) these pleasures are heart-attracting, but in fact bearing the pains, there is no happiness in these worldly pleasures. The real bliss get the mendicants, who are disinclined to sensual pleasures and indulged in virtues and penances. (17)

नरिंद ! जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ।
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसीय सोवाग–निवेसणेसु ॥१८॥

हे नरेन्द्र ! मनुष्यों में सबसे अधिक अधम समझी जाने वाली चाण्डाल जाति में उत्पन्न होकर हम सभी मानवों के घृणा-पात्र बने ॥१८॥

O Ruler ! Taking birth in the lowest caste we became the object hate of all people. (18)

तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवागनिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं ॥१९॥

उस पापिष्ठ–निन्दनीय चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुए हम चाण्डाल बस्ती में सभी के घृणा पात्र बनकर रहते थे; किन्तु इस जन्म में हमें जो श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्वजन्म में किये हुए शुभ कर्मों का फल है ॥१९॥

In that miserable birth, we lived in the helmets of Śvapāka–Cāṇḍālas detested by all people. Now, we obtained this highest status, as the consequence of the good deeds which we have done in the previous life. (19)

सो दाणिसिं रांय ! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं, आयाणहेउं अभिणिक्खमाहि ॥२०॥

हे राजन् ! वही सम्भूत के जीव तुम पूर्व शुभ कर्मों के कारण इस समय महाभाग्यवान, महाऋद्धिवान् एवं पुण्यफलों से युक्त हो। अब इन क्षणिक काम-भोगों को त्यागकर, चारित्र धर्म को ग्रहण करने के लिए अभिनिष्क्रमण करो ॥२०॥

O King ! you are the soul of same Sambhūta, enjoying the fruits of meritorious activities done in the former life in the form of great fortune, prosperity, wealth and kingdom. Now renouncing these transitory pleasures and for accepting the monk-conduct come out. (20)

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसि लोए ॥२१॥

हे राजन् ! इस नश्वर मानव-जीवन को पाकर जो विपुल पुण्य कर्म नहीं करता, वह मृत्यु के समय शोक करता है और धर्म न करने के कारण परलोक में भी शोक करता है ॥२१॥

O King ! He who does not do enormous meritorious deeds, he laments at the hour of death and by not doing religious activities becomes full of sorrow in the life to come or in the next life. (21)

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मिंऽसहरा भवंति ॥२२॥

जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़कर ले जाता है उसी प्रकार आयु समाप्त होने पर मृत्यु भी अन्त समय में मानव को पकड़कर ले जाती है। मृत्यु के समय माता-पिता, भाई-बन्धु कोई भी उसके सहायक नहीं होते ॥२२॥

As the lion takes hold of a deer, so death leads off a man in his last hour. At that time mother, father, brother, brethren none can become helpful. (22)

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बन्धवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥२३॥

उस मृत्यु के मुख में जाते हुए व्यक्ति के दुःख को जाति जन, मित्र, पुत्र तथा बान्धव नहीं बंटा सकते। वह स्वयं अकेला ही उन प्राप्त दुखों को भोगता है; क्योंकि कर्म कर्ता का ही अनुगमन करता है ॥२३॥

Neither kinsmen, nor friends, nor sons, nor relations can co-share the miseries of the man in the jaws of death; he alone has to suffer it; because the karmas follow only the accumulator–doer. (23)

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं ।
कम्मप्पबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर पावगं वा ॥२४॥

द्विपद, चतुष्पद, खेत, घर, धन-धान्य आदि सब कुछ यहीं छोड़कर वह पराधीन आत्मा अपने कृतकर्मों को साथ लिए सुन्दर–शुभ अथवा पाप–अशुभ गतिरूप परभव को जाता है ॥२४॥

Leaving here his bipeds, quadripeds, fields, houses, wealth, corn and everything this precarious soul, accompanied only by its karmas (deeds) enters a new existence good or bad. (24)

तं इक्कगं तुच्छसरीरगं से, चिईगयं डहिय उ पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमन्ति ॥२५॥

आत्मा रहित इस तुच्छ शरीर को चिता में भस्म करके स्त्री, पुत्र तथा जाति-जन किसी अन्य आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं ॥२५॥

Burning, this soul-less body–corpse in pyre to ashes; the wife, sons and kinsfolk follow any other person as shelter, *i.e.*, they took refuge of any other man. (25)

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं !
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥२६॥

हे राजन् ! किसी प्रकार का प्रमाद अथवा भूल किये बिना कर्म जीवन को प्रत्येक क्षण मृत्यु के समीप ले जा रहा है और यह वृद्धावस्था शरीर के लावण्य का हरण कर रही है। अतः हे पांचालराज ! मेरे वचनों को सुनो और अधिक पापकर्मों को मत करो ॥२६॥

O King ! Without any slip and negligence karmas drag life continuously towards death and old age carries off the grace and valour of man. So Ruler of Pāñcāla kingdom ! pay heed to my words and do no much fear begeting sinful deeds. (26)

अहं पि जाणामि जहेह साहू ! जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं ।
भोगा इमे संगकरा हवन्ति, जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहिं ॥२७॥

(ब्रह्मदत्त–) हे साधु चित्र ! जैसा आप मुझे बता रहे हैं, मैं भी जानता हूँ कि ये काम-भोग बन्धन रूप हैं किन्तु हे आर्य ! मेरे जैसे लोगों के लिए तो ये दुर्जेय ही हैं ॥२७॥

(Brahmadutta) O Citra sage ! As you are telling me, I also know that these pleasures and amusements bind the soul but O reverend sage ! these cannot be overcome by the persons like me. (27)

हत्थिणपुरम्मि चित्ता ! दट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥२८॥

हे चित्र ! हस्तिनापुर में महाऋद्धि वाले चक्रवर्ती को देखकर, भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान किया था ॥२८॥

O monk Citra ! In Hastināpura, seeing the huge fortunes of great monarch (Sanatkumāra) and becoming desirous of worldly pleasures I made demeritorious firm volition. (28)

तस्स मे अपडिकन्तस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९॥

मैंने उस निदान का प्रतिक्रमण नहीं किया था उसी का यह परिणाम है कि धर्म को जानता हुआ भी मैं काम-भोगों में मूर्च्छित–अत्यासक्त हो रहा हूँ ॥२९॥

No exculpation and expiation done by me of that volition, the result is this that knowing religion, I am deeply indulged in mundane pleasures. (29)

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥३०॥

जिस प्रकार दल-दल में फँसा हुआ हाथी स्थल को देखकर भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता उसी प्रकार काम-भोगों में आसक्त हम जैसे लोग भिक्षु-मार्ग (साधु धर्म) का अनुसरण नहीं कर पाते ॥३०॥

As an elephant sinking down in a quagmire, sees the raised and dry ground but cannot reach the shore of bog and step on the ground, so the persons like me indulged in empirical pleasures cannot follow monk-conduct. (30)

अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उविच्च भोगा पुरिसं चयन्ति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥३१॥

(चित्र मुनि) हे राजन् ! समय व्यतीत हो रहा है, रात्रियां भागती जा रही हैं। मानवीय भोग भी नित्य नहीं हैं। जिस प्रकार क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं उसी तरह पुण्य क्षीण होने जाने पर मानव को काम-भोग भी छोड़ देते हैं ॥३१॥

(Citra monk) O Ruler ! Time elapsing, quickly fleeting the nights, the pleasures of man are transient. As birds leave the tree devoid of fruits, in the same way the worldly pleasures abandon the man, when the accumulation of his meritorious deeds exhausts. (31)

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं !।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥३२॥

हे राजन् ! यदि तुम काम-भोगों को नहीं छोड़ सकते तो आर्यकर्म ही करो। धर्म में स्थित होकर सभी जीवों के प्रति दया का आचरण करो जिसके फलस्वरूप अगले जन्म में वैक्रिय शरीरधारी देव बन सकोगे ॥३२॥

O Ruler ! If you cannot renounce the mundane pleasures, do the noble deeds. Be stable in religion and have compassion on all the living beings, so that you can become a god in the next birth. (32)

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भ-परिग्गहेसु ।
मोहं कओ एत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं ! आमन्तिओऽसि ॥३३॥

तुम्हारी बुद्धि भोगों को छोड़ने की नहीं है। तुम आरम्भ तथा परिग्रह में बहुत आसक्त हो। मैंने व्यर्थ ही इतने समय तक विप्रलाप (बकवास) किया–तुम्हें प्रबोधित करने का असफल प्रयत्न किया। हे राजन् ! अब मैं जा रहा हूँ ॥३३॥

You are not intended to abandon the pleasures. You are too much indulged in possessions and undertakings, I twaddle for such a long time but in vain, my effort to enlighten you became totally unsuccessful, O King ! now I am going, farewell to you. (33)

पंचालराया वि य बम्भदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥३४॥

पांचालदेश का स्वामी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त चित्र मुनि के वचनों का पालन न कर सका। अतः वह अनुत्तर उत्कृष्ट काम-भोगों को भोगकर अनुत्तर–निम्नतम–सातवें नरक में उत्पन्न हुआ ॥३४॥

The ruler of Pāñcāla country, great monarch Brahmadutta could not do according, to the counsel of monk Citra. So enjoying the extreme mundane pleasure he born in the seventh hell, which is the lowest. (34)

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो, उदग्गचारित्त-तवो महेसी ।
अणुत्तरं संजम पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ ॥३५॥

–त्ति बेमि

काम-भोगों से विरक्त, उग्र चारित्री एवं तपस्वी महर्षि चित्र मुनि अनुत्तर-उत्कृष्ट संयम का पालन करके अनुत्तर-उत्कृष्ट-सिद्धगति को प्राप्त हुए ॥३५॥

–ऐसा मैं कहता हूँ।

Disinclined to the worldly pleasures, rigorous penancer and observer of pure monk conduct, practising the highest self-control Citra monk obtained the emancipation. (35)

–Such I Speak

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–निदान–तपश्चरण आदि के बदले में भोग प्राप्ति के लिये किया जाने वाला दृढ़ संकल्प निदान है। यह आर्तध्यान का ही एक भेद है।

गाथा ६–चूर्णि आदि ग्रन्थों के अनुसार गंगा प्रतिवर्ष अपना मार्ग बदलती रहती है। जो पहले का मार्ग छोड़ देती है, उस छोडे हुए मार्ग की भूमि को मृतगंगा कहते हैं।

Salient Elucidations

Gāthā 1–Firm volition (निदान)–It is a resolve to get worldly pleasures in exchange of penances etc. It is a kind of ārta-dhyāna.

Gāthā 6–According to the scriptures *Cūrṇi* etc. the river Gaṅgā is said to change its course every year. The previous course, which it relinquishes, the ground of that course is called Mṛtagaṅgā.

卐

चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम इषुकारीय है। यद्यपि इस अध्ययन के प्रमुख पात्र भृगुपुरोहित के दोनों पुत्र हैं। उन्हीं से भृगु पुरोहित, उसकी पत्नी यशा प्रतिबोध पाते हैं और रानी कमलावती से प्रेरणा पाकर राजा इषुकार श्रमण बनकर सद्धर्म का आचरण करते हैं। किन्तु राजा की प्रमुखता होने के कारण इस अध्ययन का नाम इषुकारीय रखा गया है।

राजा का नाम इषुकार है और नगर का नाम भी इषुकार ही है।

कथासूत्र–

भृगु पुरोहित के पुत्रों को बाल्य अवस्था में जो वैराग्य हुआ, उसका कारण उनके पूर्व जन्मों में निहित है। राजा इषुकार, रानी कमलावती, भृगु पुरोहित और पुरोहित-पत्नी यशा तथा उनके दोनों पुत्र–ये छहों जीव पूर्व जन्मों में भी परस्पर सम्बन्धित रहे हैं। संक्षिप्त घटना क्रम इस प्रकार हैं–

पिछले अध्ययन 'चित्र-संभूतीय' में चार गोपाल-पुत्र साधुओं का वर्णन आया था, उनमें से दो तो चित्र-संभूत के रूप में वर्णित हो चुके हैं। शेष दो का संबंध इस अध्ययन से है।

वे दोनों देव अपना देवायुष्य पूर्ण कर क्षितिप्रतिष्ठित नगर में इभ्यकुल में उत्पन्न हुए। वहाँ उनकी मित्रता अन्य चार श्रेष्ठि-पुत्रों से हुई। उन छहों ने एक बार स्थविरों से श्रेष्ठ धर्म सुना और दीक्षित हो गये। दीर्घकाल तक संयम का पालन करते रहे। आयु के अन्त में समाधिमरण किया और ये छहों सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म नामक विमान में चार पल्योपम की आयु वाले देव बने।

देवायु पूर्ण होने पर एक देव तो इषुकार नगर का राजा इषुकार बना, दूसरा उसकी रानी कमलावती, तीसरा भृगु पुरोहित और चौथा उसकी पत्नी यशा के रूप में उत्पन्न हुआ।

गोपाल-पुत्र दोनों देवों का आयुष्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था, वे दोनों स्वर्ग में ही थे।

भृगु पुरोहित और उसकी पत्नी यशा को दीर्घकाल तक पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तो वे चिन्तित रहने लगे। पुत्र-प्राप्ति की उनकी उत्कट अभिलाषा थी।

इधर देवलोक में रहे हुए देवों ने अपने भविष्य के विषय में विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि 'हम भृगु पुरोहित के पुत्र बनेंगे' तब उन्होंने सोचा–'मानव भव में कहीं हम धर्म को न भूल जायँ, इसके लिए पहले ही प्रबन्ध कर लेना चाहिए।'

वे श्रमण वेष धारण कर भृगु पुरोहित के घर आये। पति-पत्नी–दोनों ने श्रमणों की वन्दना की। श्रमणों ने धर्मोपदेश दिया। पति-पत्नी ने पुत्र-प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की। श्रमण वेषधारी देवों ने कहा–तुम को दो पुत्र प्राप्त होंगे; किन्तु वे लघु वय में ही दीक्षित हो जायेंगे, उन्हें रोकना मत।

इतना कहकर श्रमण वेषधारी देव चले गये।

ग्वाल-पुत्र देवों का आयुष्य पूर्ण हुआ। उन्होंने भृगु पुरोहित के घर में जन्म लिया। पुत्र-प्राप्ति से पति-पत्नी के हृदय की कली खिल गई। साथ ही चिन्ता भी लग गई कि पुत्र कहीं दीक्षित न हो जायँ। इस कारण इषुकार नगर छोड़कर पास ही ब्रज गाँव में रहने लगे। साथ ही पुत्रों को दीक्षा से विरत करने के

लिए यदा-कदा कहते रहते–ये साधु ऊपर से भले दीखते हैं, पर बड़े भयंकर होते हैं। झोली में छुरी काँटे रखते हैं। छोटे बच्चों को पकड़कर ले जाते हैं; आदि।

माता-पिता की इस विपरीत शिक्षा से दोनों बालकों के मन में साधुओं के प्रति डर समा गया। एक दिन दोनों भाई गाँव के बाहर एक विशाल छायादार वृक्ष के नीचे खेल रहे थे। कुछ साधुओं को आते देखा तो भयभीत होकर उसी वृक्ष पर चढ़कर पत्तों में छिप गये। साधु भी उसी वृक्ष के नीचे रुक. गये। स्थान स्वच्छ कर भोजन करने लगे। उनका दयामय व्यवहार और सात्विक आहार को देखकर भृगु-पुत्रों का भय निकल गया, साधुओं के प्रति अधिक ऊहापोह करने से जातिस्मरणज्ञान हो गया। घर आकर माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगने लगे।

पिछले अध्ययन चित्र संभूतीय में भोग और योग की दुःख तथा सुखमय परिणति का दिग्दर्शन कराया गया था; किन्तु प्रस्तुत अध्ययन वैराग्यपरक है।

वैदिक तथा अन्य तत्कालीन धार्मिक जगत में प्रचलित परम्पराओं का बड़े ही तार्किक ढंग से निरसन करके श्रमणधर्म की मान्यताओं की स्थापना की गई है। इस रूप में यह अध्ययन तर्कप्रधान है। रानी कमलावती ने भी उस समय की प्रचलित राजकीय परम्परा 'कि अपुत्री के धन का स्वामी राजा होता है' को बड़े तर्कपूर्ण ढंग से निन्द्य सिद्ध कर अपने पति राजा इषुकार को भृगु पुरोहित का धन लेने से विरत करके संयम की ओर मोड़ा है।

यह तो परम सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्वजन्म के संस्कारों को लेकर आता है और वर्तमान परिस्थितियों तथा पर्यावरण से भी प्रभावित होता है।

इस अध्ययन का प्रत्येक पात्र एक टाईप है, एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। राजा इषुकार इस राजनीतिक विचारधारा का प्रतिनिधि है कि उत्तराधिकारी विहीन व्यक्ति की संपत्ति का स्वामी राजा होता है। रानी कमलावती भोग के कीचड़ में भी निर्लिप्त कमलिनी के समान है।

भृगु पुरोहित तत्कालीन ब्राह्मण तथा अन्य धार्मिक विचारधाराओं का प्रतिनिधि है तो उसकी पत्नी यशा कामभोगों का सुख लेना चाहती है; वह सामान्य नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह पति को संसार में ही फँसाये रखने का प्रयत्न करती है।

भृगु पुरोहित के दोनों पुत्र श्रमण विचारधारा के प्रतिनिधि हैं। पिता द्वारा प्रस्तुत विचारधाराओं का प्रमाण पुरस्सर निरसन करते हैं, हृदयस्पर्शी शब्दों में उचित उत्तर देते हैं। उनके उत्तरों से पिता का मोह भंग होता है और वह भी गृहत्याग के लिए तत्पर हो जाता है, तब पुरोहित-पत्नी भी संयमी जीवन स्वीकार करने को उद्यत होती है।

रानी कमलावती अपने पति राजा इषुकार को विभिन्न तर्कों और दृष्टान्तों से समझाती है तथा स्वयं प्रव्रजित होने की इच्छा प्रगट करती है। उसके तथ्य पूर्ण वचनों से प्रभावित राजा इषुकार भी संयम ग्रहण कर लेते हैं।

इस प्रकार भृगु पुरोहित, पुरोहित-पत्नी यशा, उनके दोनों पुत्र और रानी कमलावती तथा राजा इषुकार छहों व्यक्ति श्रमण धर्म का पालन कर संसार से मुक्त होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ५३ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 14
IṢUKĀRA

Foreview

This chapter bears the title Iṣukārīya. Though the principal characters are the two sons of Bhṛgu Purohita. Purohita Bhṛgu and his wife Yaśā are enlightened by them and getting the inspiration of queen Kamalāvatī, the king Iṣukāra becomes a sage and practises true religion. But due to the primacy of king the name Iṣukarīya is given to this chapter.

King and city–both bears the same name Iṣukāra.

Recital Clue

Both the sons of Bhṛgu Purohit became apathetic in their boyhood, the cause of their apathy lies in their former births. Kings Iṣukāra, queen Kamalāvatī, Bhṛgu Purohita, his spouse Yaśā and their both sons–all these six were related in former births. Episode, in nutshell, is following–

In the previous thirteenth chapter Citra-Sambhūta, there was a description of four sons of cowman. Among them, life sketch of two has been expressed as Citra-Sambhūta in the previous chapter. Remaining two are related to this chapter.

These two gods completing their god-duration took birth in the house of a very rich man of Kṣitipratiṣṭhita city. There four rich-youngs became their friends. All the six consecrated hearing the true religion. Practised monk-order upto long time, at the end of age left this gross body peacefully. All the six born as gods in Padmagulma celestial palace of first heaven Saudharma gods' abode having the life-duration of four palyopama.

On completion of god-duration one god born as Iṣukāra, the ruler of the city of the same name Iṣukāra, the second as his queen Kamalāvatī, the third as Bhṛgu Purohita and the fourth as his wife Yaśā in the same Iṣukāra city.

Life duration of cowman-sons-gods until not finished. They were still in heaven.

No child born to Bhṛgu Purohita and his wife Yaśa upto a long period, then they became worried. They were much eager for a child.

On the other hand, the two gods remaining in heaven considering about their future, came to know that 'we will take birth as the sons of Bhṛgu Purohita' then they thought 'in human birth we may not forget the religion, for that we should make provision before hand'.

They came to the home of Bhṛgu Purohita in the guise of sages. Couple bowed with devotion. Sages bestowed sermon. Couple expressed keen desire for issue. Guised as sages gods told–you will beget two sons, but they will be consecrated in their boyhood. Do not obstruct them.

Saying such both the sage-guised gods went away.

The god-duration of cowman-son-gods completed. They took birth in the house of Bhṛgu Purohita. Couple pleased much. The worry also engrossed them–lest the sons may not be consecrated. For this purpose, they left the city and began to reside in a nearby village (–a small village where the cowherd maintained).

To make against the sages and sage-order the parents began to poison the minds of their sons often instructing them by speaking such words–these sages seem simple and good externally but really they are very ferocious, they keep daggers and forks in their bags. They kidnap the childs.

By these adverse instructions of parents the hearts of sons filled with fear about the sages.

Once both brothers were playing out of the village under a huge tree which was full of leaves and casting dense shadow on the ground. They saw some sages coming towards them, then being frightened they climbed up on the same tree and hide themselves behind the leaves.

Perchance sages too stayed under the same tree, cleaning some place began to eat food. Watching the compassionate behaviour and pure vegetarian food the fear of Bhṛgu-sons perished and by deep reasoning about sages they recollected the memory of former births. Coming home they expressed their wish to get approval for consecration from parents.

In the previous chapter the contrast of amusements and disinclination and their painful and happy consequences were elaborated but this chapter aims at apathy.

Discarding logically the traditions of Vaidic and other creeds prevailing at that time in religous world; the rules and recognitions of Śramaṇa religion established. Thus this chapter became full of logic. Queen Kamalāvatī also proved contemptuousness towards the political tradition prevailing at that time that 'the ruler becomes the owner of the riches of the heirless person'. She inspired her husband king Iṣukāra not to confiscate the wealth of Bhṛgu Purohita and to observe the monkhood.

It is very truth that each and every person takes birth bearing the impressions of former life and lives and also influenced by the present circumstances surrounding him.

Every character of this chapter is a type and represents a certain current of thought. King Iṣukāra represents the political tradition that ruler is the owner of heirless richmen's wealth. Queen Kamalāvatī is like a lotus, which remains untouched by the mud of mundane pleasures, though living amidst them.

Bhṛgu Purohita represents the thought currents of Vaidic, Brāhmanic and other creeds.

Yaśā, the wife of Bhṛgu Purohita, represents average woman. Like an average woman she is desirous of sensual pleasures. She wishes to ensnare her husband in world and worldly pleasures and makes efforts to fulfil her desires.

Both the sons of Bhṛgu Purohita are the representatives of Śramaṇa thought-current. They reply the thoughts and questions presented by their father, in heart-touching and proper words. Due to their answers the delusion of their father disrupts and he also becomes ready to renounce the home, then his wife Yaśā prepares herself for accepting the ascetic-life-order.

Queen Kamalāvatī makes her husband understand by various arguments and examples; and declares her keen desire for consecration. Influenced by her de facto thoughts King Iṣukāra also accepts sagehood.

Thus, Bhṛgu Purohita, his spouse Yaśa, both sons, King Iṣukāra, Queen Kamalāvatī–all the six persons attains salvation by practising pious sagehood.

This chapter bears 53 couplets.

चउद्दसमं अज्झयणं : उसुयारिज्जं
चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय

देवा भवित्ताण पुरे भवम्मी, केइ चुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे उसुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥१॥

सुरलोक के समान रम्य-मनोहर इषुकार नाम का एक समृद्ध, प्रसिद्ध, प्राचीन नगर था। एक ही देव विमान वासी कई देव अपना देव आयुष्य पूर्ण कर उस नगर में मनुष्य रूप में उत्पन्न हुए ॥१॥

There was an ancient, wealthy, famous and beautiful like heaven, the city named Iṣukāra. In that city many gods of one celestial palace completing their life-duration born as human beings. (1)

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विण्णसंसारभया जहाय, जिणिन्दमग्गं सरणं पवन्ना ॥२॥

पूर्वजन्म में कृत अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण वे सभी आत्माएँ उच्च कुलों में उत्पन्न हुए और संसारभय से उद्विग्न होकर तथा काम-भोगों को त्यागकर सभी ने जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की शरण ग्रहण की ॥२॥

Due to remnant of meritorious deeds, which they accumulated in former life, they all were born in noble families. Disgusted with transmigrational world and renouncing the mundane pleasures, they all took refuge in the path of Jinas (victor of karmas). (2)

पुमत्तमागम्म कुमार दो वी, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायत्थ देवी कमलावई य ॥३॥

पुरुषत्व को प्राप्त करके दोनों पुरोहित-पुत्र तथा पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विपुल कीर्ति वाला राजा इषुकार और उसकी रानी कमलावती-यह छह व्यक्ति थे ॥३॥

These were six persons–Two sons of Bhṛgu Purohita, Bhṛgu Purohita himself, his wife Yaśā, widely-famed King Iṣukāra and his queen Kamalāvatī. (3)

जाई-जरा-मच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता ।
संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥

मुनियों के दर्शन करके वे दोनों पुरोहित-पुत्र जन्म-जरा-मृत्यु के भय से उद्विग्न हो गये। उनके चित्त बहिर्विहार-मोक्ष की ओर आकृष्ट हो गये और संसार-चक्र से विमुक्त होने के लिए वे कामगुणों से विरक्त हुए ॥४॥

Having seen the virtuous saints both the sons of Bhṛgu Purohita, overcome by fear of birth, old age and death. Their hearts and heads attracted towards salvation, and for escaping the wheel of birth and deaths, they become disinclined towards the empirical pleasures and amusements. (4)

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तव-संजमं च ॥५॥

यज्ञ-याग आदि अपने कर्म में निरत भृगु पुरोहित के उन दोनों प्रिय पुत्रों को अपने पिछले जन्म तथा उसमें सुआचरित तप-संयम का स्मरण हो आया ॥५॥

Indulged in his own activities of sacrifices Bhṛgu Purohita's both sons remembered their former life and well-practised penance and self-control in that life. (5)

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।
मोक्खाभिकंखी अभिजायसड्ढा, तायं उवागम्म इमं उदाहु ॥६॥

मानुषिक तथा दिव्य कामभोगों में अनासक्त, एक मात्र मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक, श्रद्धा संपन्न दोनों पुरोहित-पुत्र पिता के पास आकर कहने लगे ॥६॥

Averse to human and divine pleasures, desirous to obtain only salvation, full of faith both *purohita-sons* came to his father and spoke these words–(6)

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअन्तरायं न य दीहमाउं ।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो, आमन्तयामो चरिस्सामु मोणं ॥७॥

(पुत्र) यह मनुष्य जन्म अनित्य है, इसमें बहुत-सी बाधाएँ हैं, आयु भी दीर्घ नहीं है; इस कारण घर में हमें कोई रुचि नहीं है। मुनिधर्म-पालन हेतु आपकी अनुमति चाहते हैं ॥७॥

(Sons) This human life is transient, many hindrances are in it, this life lasts not long, therefore we have no interest in domestic life. We wish your consent to practise monk order. (7)

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी ।
इमं वयं वेयविओ वयन्ति, जहा न होई असुयाण लोगो ॥८॥

(पुरोहित) पुत्रों के यह वचन सुनकर पिता ने उनको रोकने का प्रयास किया, कहा–पुत्रो ! वेद के ज्ञाताओं का यह कथन है कि पुत्रहीन को सद्‌गति प्राप्त नहीं होती ॥८॥

(Purohita) Having heard these words of sons the father (Bhṛgu Purohita) tried to resist them, he spoke–Dear sons ! Those versed in the Vedas, say that who has no sons he can not get good existence. (8)

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया !
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥९॥

अतः पहले वेदों का अध्ययन करो, विप्रों को भोजन दो, विवाह करके स्त्रियों के साथ भोग भोगो–तत्पश्चात् पुत्रों को घर का भार देकर अरण्यवासी श्रेष्ठ मुनि बन जाना ॥९॥

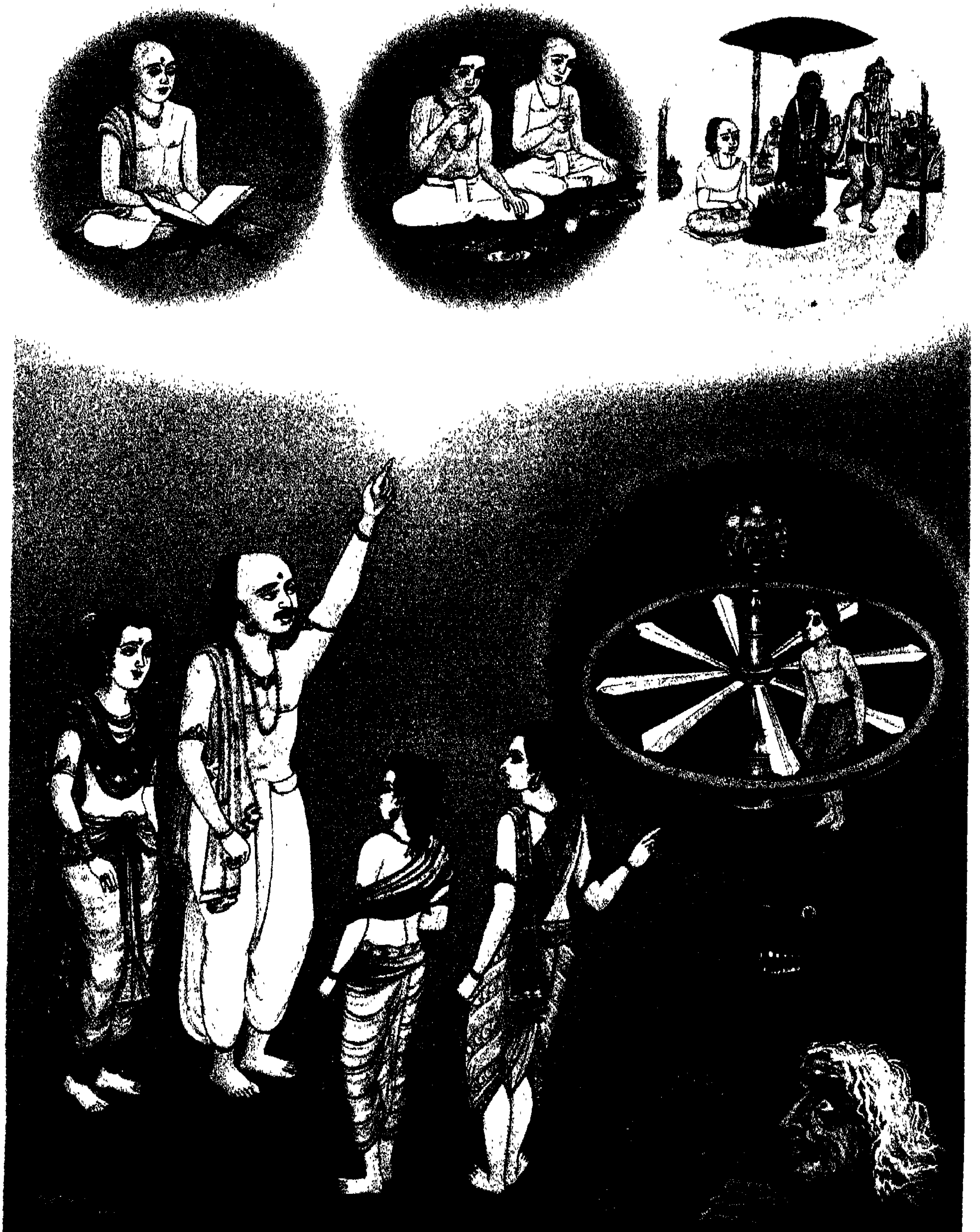
Therefore first of all study Vedas, feed Brāhmaṇas, enjoy pleasures with women wedding them, place your sons as the head of home, thereafter become the praise-worthy hermitage. (9)

ILLUSTRATION NO. 34 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३४ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 35 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३५ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

सोयग्गिणा आयगुणिन्धणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिएणं ।
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च ॥१०॥

अपने रागादि गुण रूप ईंधन और मोहरूपी पवन से अधिकाधिक प्रज्वलित अग्नि से संतप्त, परितप्त, मोहवश दीन-हीन वचन बोलते हुए-॥१०॥

Due to the fuel of attachments, fed by wind of delusion, sorrowful by the blazing internal fire, subjugated by infatuation, speaking destitute and benign words-(10)

पुरोहिययं तं कमसोऽणुणन्तं, निमंतयन्तं च सुए धणेणं ।
जहक्कमं कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं ॥११॥

तथा पुत्रों की एक के बाद एक अनुनय करते हुए, धन के, काम-भोगों के निमंत्रण देते हुए पिता को मोहाच्छादित देखकर कुमारों ने कहा-॥११॥

Flattering sons and inviting one after another for wealth, pleasures etc. Thus seeing the father engrossed by delusion, sons spoke thus- (11)

वेया अहीया न भवन्ति ताणं, भुत्ता दिया निन्ति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥१२॥

(पुत्र) अध्ययन किये हुए-अधीत वेद रक्षक नहीं होते। ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले भी तमस्तम नरक में जाते हैं। उत्पन्न हुए अपने पुत्र भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते। अतः आपके इस कथन का कौन अनुमोदन करेगा? ॥१२॥

(Sons) Studied Vedas cannot be a saviour, feeders of Brāhmaṇas go to the seventh hell (तमस्तम नरक), own sons cannot be capable to protect. So who will assent your these words. (12)

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥१३॥

कामभोग क्षण मात्र के लिए सुखद हैं, और दीर्घकाल तक दुखदायी हैं। वे अधिक दुःख और अल्पसुख देते हैं। ये संसार से मुक्त होने में बाधक हैं। इसलिए अनर्थों की खानि हैं ॥१३॥

Worldly pleasures are joyful for a moment and painful for a very long time, they provide intense suffering and slight joy. These are obstacles to attain liberation from worldly ties and so are a very mine of great evils and misfortunes. (13)

परिव्वयन्ते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोत्ति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥१४॥

जो पुरुष कामनाओं से निवृत्त नहीं है, वह अतृप्ति की अग्नि से संतप्त होकर रात-दिन भटकता रहता है। दूसरों के प्रति आसक्त ऐसा पुरुष धन की खोज करता हुआ वृद्धावस्था और मृत्यु को प्राप्त करता है ॥१४॥

A man who has not abandoned desires, he wanders about being distressed by the fire of discontentment. Charmed to others such person seeking for wealth, comes to old age and death. (14)

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाए ? ॥१५॥

यह मेरे पास है, यह मेरे पास नहीं है। मुझे यह करना है, यह नहीं करना है–इस प्रकार व्यर्थ की बकवास करने वाले व्यक्ति को मृत्यु उठा लेती है। ऐसा स्थिति में प्रमाद कैसा ? ॥१५॥

I have this, I have not that; I must do it, I should not do that. These are all the fallacies and vain talks. Death takes up such person, then why to be negligent in this position. (15)

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा ।
तवं कए तप्पइ जस्स लोगो, तं सव्व साहीणमिवेह तुब्भं ॥१६॥

(पिता) जिसके लिए व्यक्ति तपस्या करते हैं, वे सब साधन–प्रचुर धन, स्त्रियाँ, उत्कृष्ट काम-भोग तथा स्वजन तुम्हें यहीं पर स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं तब परलोक के इन सुखों के लिए साधु क्यों बनते हो ? ॥१६॥

(Father) Enormous wealth, women, excellent pleasures etc., for getting these all, men practise penances. While all these are feasible to you, then why you want to be an ascetic for getting all these in the next birth. (16)

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥१७॥

(पुत्र) धर्म की धुरा को धारण करने वाले को धन, स्वजन, कामभोगों से क्या प्रयोजन है? हम तो गुणों के धारक, अप्रतिबद्ध विहारी शुद्ध भिक्षाजीवी श्रमण बनेंगे ॥१७॥

(Sons) The maintainers of the axis of religion have what purpose with wealth, relations and pleasures ? We want only to be virtuous mendicants. (17)

जहा य अग्गी अरणीउऽसन्तो, खीरे घयं तेल्ल महातिलेसु ।
एमेव जाया ! सरीरंसि सत्ता, संमुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥१८॥

(पिता) पुत्रो ! जिस तरह अरणिकाष्ठ में अग्नि, दूध में घी और तिलों में तेल असत् होते हुए भी प्रगट होता है। उसी प्रकार शरीर में जीव भी असत् होते हुए भी उत्पन्न होता है और शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाता है ॥१८॥

(Father) As fire is produced from the wooden drill (अरणि काष्ठ), ghee (butter) from milk, oil from sesamum seeds, yet these does not exist in them. So is the soul produced in the body. It takes place with the body and perishes as the body finishes. (18)

नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो ।
अज्झत्थहेउं निययऽस्स बन्धो, संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ॥१९॥

(पुत्र) रूप, गन्ध आदि रहित अमूर्त भाव–आत्मा, इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। लेकिन अमूर्तभाव नित्य होते हैं। आत्मा के राग-द्वेषादि आन्तरिक दोषों के कारण ही बन्ध होता है और बन्ध ही संसार का हेतु कहा गया है ॥१९॥

(Sons) Devoid of sight, smell etc., the formless soul cannot be known by senses. But the formless existences are eternal. Bondage is created by the internal defects–attachment etc., of soul and bondage alone is called as the cause of world–cycle of births and deaths. (19)

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।
ओरुज्झमाणा परिरक्खियन्ता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥२०॥

हम जब तक धर्म को नहीं जानते थे, पाप करते रहे। आपने हमें रोका और हमारा पालन-पोषण किया। लेकिन अब हम पाप कर्म नहीं करेंगे ॥२०॥

Until we were not aware about religion, we did sins, you have dissuade and grown up us. But now we would not do any sinful deed. (20)

अब्भाहयंमि लोगंमि, सव्वओ परिवारिए ।
अमोहाहिं पडन्तीहिं, गिहंसि न रइं लभे ॥२१॥

लोक पीड़ित है। चारों ओर से घिरा है। अमोघा आ रही है। इस दशा में हम घर में सुख का अनुभव नहीं कर पाते हैं ॥२१॥

All the living beings–loka is oppressed, surrounded by all sides, continuous moving the wheel of time (अमोघा) is coming. In such position, we are feeling no delight living in house. (21)

केण अब्भाहओ लोगो ?, केण वा परिवारिओ ? ।
का वा अमोहा वुत्ता ?, जाया ! चिंतावरो हुमि ॥२२॥

(पिता) पुत्रो ! यह लोक किस से आहत अथवा पीड़ित है ? किस से घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहते है ? मैं यह जानने के लिए चिन्तित हूँ ॥२२॥

(Father) Sons ! By what these living beings–loka is injured ? Surrouned by what ? What do you mean by amoghā ? I am anxious to know all these. (22)

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय ! वियाणह ॥२३॥

(पुत्र) पिताजी ! आप भली भाँति जान लें कि यह संसार मृत्यु से आहत है, वृद्धावस्था से घिरा हुआ है और समयचक्र की कभी न रुकने वाली गति (दिन-रात की गति) को अमोघा कहा जाता है ॥२३॥

(Sons) Respected father ! very well you should know that all the living beings–loka is oppressed by death, surrounded by old age and the ever continuous wheel of time (the day and night) is called as amoghā. (23)

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥२४॥

जो रात्रियां व्यतीत हो रही हैं, वे कभी वापस लौटकर नहीं आतीं। अधर्म करने वालों की रात्रियां निष्फल जाती हैं ॥२४॥

Passing nights (time) never return. The nights (time) of irreligious persons become fruitless–unsuccessful. (24)

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥२५॥

जो रात्रियाँ व्यतीत हो रही हैं वे कभी लौटकर वापस नहीं आतीं। धर्म करने वालों की रात्रियाँ सफल होती हैं ॥२५॥

Passing nights (moment of time) never come again. Persons practise religious order their nights (time) become fruitful–successful. (25)

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्मत्तसंजुया ।
पच्छा जाया ! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

(पिता) पुत्रो ! पहले तुम और हम सब सुख से गृहवास में रहकर सम्यक्त्व और व्रतों का पालन करें तत्पश्चात् वृद्धावस्था में भिक्षाजीवी श्रमण बन जायेंगे ॥२६॥

(Father) Sons ! First we all acquire right faith and practise partial vows living in the home after that in old age we would be mendicants. (26)

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं ।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

(पुत्र–) पिताजी ! जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो अथवा जो मृत्यु आने पर पलायन कर सकता हो, या जिसको विश्वास हो कि 'मैं कभी मरूँगा ही नहीं'; वही कल की प्रतीक्षा कर सकता है ॥२७॥

(Sons) Father ! Who has friendship with death or who can escape, or who has strong belief that 'I shall never die'; only he can wait for tomorrow. (27)

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो ।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥२८॥

पिताजी ! हम आज ही राग को त्यागकर श्रद्धा सहित उस मुनिधर्म को ग्रहण करेंगे, जिसे ग्रहण करने के पश्चात् पुनः संसार में नहीं आना पड़ता। रही भोगों की बात, वे अनन्त बार भोगे जा चुके हैं, अतः कोई भी भोग अभुक्त नहीं है ॥२८॥

Father ! We shall adopt the monkhood now, adopting and practising we will not born again in this world. And about pleasures, they are experienced infinite times, so no pleasure is non-experienced. We shall destroy the attachment by our firm faith. (28)

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिट्ठि ! भिक्खायरियाइ कालो ।
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥२९॥

(पुरोहित) हे वाशिष्ठि (पुरोहित की पत्नी) ! पुत्रों के बिना अब मैं इस घर में नहीं रह सकता। मेरा भिक्षाचर्या का समय आ गया है। वृक्ष शाखाओं से शोभित होता है और शाखाएँ कट जाने पर ठूँठ हो जाता है ॥२९॥

(Purohita) O Vāsiṭhi ! (the wife of Purohita) I cannot live in this home without sons. The time has arrived also for me to turn mendicant friar. Tree is adorned by its branches and if branches are cut off it remains only a stump (of a tree). (29)

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी, भिच्चा विहूणो व्व रणे नरिन्दो ।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि ॥३०॥

इस संसार में जैसे पंखों के बिना पक्षी, सैनिकों के बिना राजा और नौका ―― धनहीन वणिक असहाय होता है। पुत्रों के बिना ऐसी ही दशा मेरी भी है ॥३०॥

As a bird without wings, a king without his warriors, a merchant on boat without goods becomes helpless; the same I am without sons. (30)

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिण्डिया अग्गरसप्पभूया ।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥३१॥

(पुरोहित पत्नी) हे स्वामी ! सुसंस्कृत तथा सुगृहीत कामभोगरूप प्रचुर विषय-रस जो हमें प्राप्त हैं। उनको इच्छानुरूप भोग लें। बाद में प्रव्रज्यारूप प्रधान मोक्ष मार्ग पर चलेंगे ॥३१॥

(Wife of Purohita) We have cultured and accumulated objects of pleasures, we must enjoy them fully and then we will take the path of salvation. (31)

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ, न जीवियट्ठा पजहामि भोए ।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ॥३२॥

(पुरोहित) हे भगवती ! हम विषय-रसों को बहुत भोग चुके। युवावस्था भी अब हमें छोड़ रही है। मैं स्वर्गीय जीवन-प्राप्ति के लिए इन भोगों का त्याग नहीं कर रहा हूँ अपितु लाभ-अलाभ, सुख-दुःख में समभाव से मुनि धर्म–मोण का पालन करूँगा ॥३२॥

(Purohita) We have enjoyed sensual pleasures much more. Our young age is passing. I am not renouncing these amusements for the sake of divine pleasures ; but I shall practise the sage-order keeping mind full of peace in gain and no-gain, pleasure and pain. (32)

मा हू तुमं सोयरियाण संभरे, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।
भुंजाहि भोगाइ मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरियाविहारो ॥३३॥

(पुरोहित-पत्नी) स्वामी ! धारा के विपरीत तैरने वाले–प्रतिस्रोतगामी वृद्ध हंस के समान आपको भी कहीं अपने बन्धुओं को याद न करना पड़े। अतः मेरे साथ भोग भोगो। भिक्षाचर्या और विहार निश्चित रूप से बहुत ही कष्टकारी हैं ॥३३॥

(Wife of Purohita) May you not remember your brothers like the old goose swimming against the current. So enjoy pleasures with me. The mendicant-order, sally forth and wandering bare feet is really very painful. (33)

जहा य भोई ! तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।
एमेए जाया पयहन्ति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्को ? ॥३४॥

(पुरोहित) जिस तरह भुजंग अपने शरीर की केंचुली छोड़कर मुक्त मन से चलता है उसी प्रकार ये दोनों पुत्र भोगों का त्याग कर रहे हैं। अब मैं अकेला रहकर क्या करूँगा? क्यों न इनका ही अनुगमन करूँ ? ॥३४॥

(Purohita) As a serpent casts off the slough of his body and moves free and easy, even so my sons renounced the pleasures. Why should I, being left alone, not follow them. (34)

छिन्दित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरिन्ति ॥३५॥

जिस प्रकार कमजोर जाल को काटकर रोहित मत्स्य निकल जाते हैं। उसी प्रकार धारण किये हुए संयम के गुरुतर भार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी, धीर साधक कामगुणों को त्यागकर भिक्षाचर्या रूप श्रमणधर्म पर चल पड़ते हैं ॥३५॥

As the Rohita fishes break through the weak snare (net). In the same way, the great penancers and steady adepts, bearing the huge burden of accepted restrain abandoning the worldly pleasures move on the path of mendicants. (35)

जहेव कुंचा समइक्कमन्ता, तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झं, तेहं कहं नाणुगमिस्समेक्का ? ॥३६॥

(पुरोहित पत्नी) जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलिये द्वारा बिछाये गये जाल को काटकर आकाश में स्वतंत्र उड़ जाते हैं। उसी प्रकार मेरे पुत्र और पति भी जा रहे हैं। तब मैं अकेली रहकर क्या करूँगी? क्यों न मैं भी इनका ही अनुगमन करूँ ? ॥३६॥

(Wife of Purohita) As the herons and geese fly up freely in the sky, rending the snare stretched by the fowler. In the same way my husband and sons are going renouncing the home. Then what would I do remaining alone. Why should I not follow them? (36)

पुरोहियं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहाय भोए ।
कुडुंबसारं विउलुत्तमं तं, रायं अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

पुत्रों और पत्नी के साथ पुरोहित ने भोगों को त्याग कर गृहत्याग किया है, यह सुनकर उस परिवार की विपुल और उत्तम धन-सम्पत्ति की इच्छा रखने वाले राजा इषुकार से उसकी रानी कमलावती ने कहा- ॥३७॥

Hearing that, with sons and wife Bhṛgu Purohita has renounced his house, Queen Kamalāvatī said to her husband King Iṣukāra, who was desirous to confiscate the enormous wealth of that family. (37)

वन्तासी पुरिसो रायं ! न सो होइ पसंसिओ ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउमिच्छसि ॥३८॥

(रानी कमलावती) हे राजन् ! ब्राह्मण भृगु पुरोहित द्वारा परित्यक्त धन को आप लेना चाहते हो किन्तु वमन किये हुए पदार्थ को खाने वाला पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता ॥३८॥

(Queen Kamalāvatī) O King ! you want to confiscate the large property left by Brāhmaṇa (Bhṛgu Purohita); but the man who eats up the vomitted things, is never praised. (38)

ILLUSTRATION NO. 36 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३६ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 37 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३७ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥३९॥

यदि सारा जगत और संसार का सारा धन भी आपको प्राप्त हो जाय तो वह सब भी आपके लिए अपर्याप्त ही होगा; और वह धन भी आपकी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥३९॥

If you get whole world and the complete wealth of universe, that also would be insufficient for you; and that wealth could not save you. (39)

मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
एक्को हु धम्मो नरदेव! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ॥४०॥

राजन्! जब आप इन मनोज्ञ कामभोगों को छोड़कर मरोगे तब एक मात्र धर्म ही आपका रक्षक होगा। इसलिए हे नरेन्द्र! इस संसार में धर्म के अतिरिक्त इस प्राणी का कोई भी रक्षक नहीं है ॥४०॥

O King! when you will expire, all these objects of pleasures will be left here. Therefore O King! In this world there is no saviour of a being except religion. (40)

नाहं रमे पक्खिणी पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं।
अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा ॥४१॥

जिस प्रकार पिंजड़े में बन्द हुई पक्षिणी सुख का अनुभव नहीं करती, वैसे ही मैं भी नहीं करती। अतः मैं भी पारिवारिक स्नेह सम्बन्धों को तोड़कर, अकिंचन, सरल, शब्द आदि विषय-भोगों में अनासक्त, परिग्रह और हिंसा के दोषों से निवृत्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूँगी ॥४१॥

As a bird does not delight captivated in cage, so I also. Hence I shall practise the monk-order becoming a nun (साध्वी) and cutting off all the family relations, having nothing my own, upright, devoid of desires and the defects-faults of possessions and violence. (41)

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जन्तुसु।
अन्ने सत्ता पमोयन्ति, रागद्दोसवसं गया ॥४२॥

जिस प्रकार वन में लगे दावानल में जलते हुए जन्तुओं को देखकर राग-द्वेष के वशवर्ती होकर अन्य जीव प्रसन्न होते हैं ॥४२॥

As when by conflagration of a forest animals are burned, the other beasts rejoice under the influence of attachment and aversion. (42)

एवमेव वयं मूढा, काम भोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागद्दोसऽग्गिणा जगं ॥४३॥

उसी तरह काम-भोगों में मूर्च्छित हम मूढ़ लोग भी राग-द्वेष की अग्नि में जलते हुए संसार को नहीं समझ रहे हैं ॥४३॥

In the same way, indulged in pleasures we foolish people are not perceiving that this world–the living beings of this world are consuming in the fire of attachment and aversion. (43)

भोगे भोच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छन्ति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

भोगों को भोगकर तथा यथावसर उनका वमन करके आत्मगवेषी मुमुक्षु साधक वायु की भाँति लघुभूत होकर अप्रतिबद्ध विहार करते हैं। अपनी इच्छानुसार, पक्षियों के समान आत्मार्थी पुरुष आमोद पूर्वक विचरण करते हैं ॥४४॥

Having enjoyed the pleasures and at the right time vomiting them; the self-seeker, salvation-willing adept becoming light as air, wander like an unchecked breeze. Like birds, according to their will, the soul-fixed persons move with delight. (44)

इमे य बद्धा फन्दन्ति, मम हत्थऽज्जमागया ।
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥४५॥

हमारे हाथ में आये हुए और विविध प्रकार से सुरक्षित किये गये ये काम-भोग क्षणिक हैं। अभी हम इनमें आसक्त हैं। लेकिन जिस प्रकार पुरोहित परिवार इन्हें त्यागकर मुक्त हुआ है वैसे ही हम भी होंगे ॥४५॥

The pleasures now in our hand and preserved by various ways–all these are transient. Still now we are indulged in them. But as the family of Purohita became free renouncing these, so we would also become. (45)

सामिसं कुललं दिस्स, बज्झमाणं निरामिसं ।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामि निरामिसा ॥४६॥

मांस सहित पक्षी–गीध को अन्य मांसलोलुपी पक्षियों द्वारा पीड़ित किये जाते हुए तथा मांस रहित होने पर उसी पक्षी को निराकुल देखकर मैं भी मांस के समान इन सभी काम-भोगों को त्यागकर तथा भोगरूप मांस से रहित होकर विचरण करूँगी ॥४६॥

Watching the vulture with flesh, being harrassed by other flesh-voracious birds and when that becomes without flesh, seeing the same vulture unharrassed, I also wander as a nun renouncing all the pleasures and possessions, which are like flesh. (46)

गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व, संकमाणो तणुं चरे ॥४७॥

संसार-वृद्धि के हेतु काम-भोगों को गीध के समान जानकर उनसे उसी प्रकार शंकित होकर चलना चाहिए जैसे सर्प गरुड़ से शंकित होकर चलता है ॥४७॥

Acknowledging the worldly pleasures like a vulture with flesh and the causes of increasing the cycle of births and deaths; one should always be doubtful as the snake moves being suspicious of a large eagle. (47)

नागो व्व बन्धणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महारायं ! उसुयारि त्ति मे सुयं ॥४८॥

बंधन को तोड़कर जिस प्रकार हाथी अपने नैसर्गिक निवास स्थान-वन में चला जाता है उसी प्रकार हमको भी अपने वास्तविक स्थान-मोक्ष में चला जाना चाहिए। हे इषुकार महाराज ! ऐसा मैंने ज्ञानियों से श्रवण किया है ॥४८॥

Breaking the fetters as an elephant goes to its natural residence-the forest. In the same way we also should attain salvation, which is our real destination. O King ! such I have heard from the enlighteneds-wise men. (48)

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥४९॥

विशाल राज्य और दुस्त्याज्य काम-भोगों का परित्याग कर वे राजा-रानी भी निर्विषय, निरामिष, निःस्नेह और परिग्रह रहित हो गये ॥४९॥

Renouncing wide kingdom and difficult to abandon worldly pleasure-the king and queen also became devoid of affection, possession and passions. (49)

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चेच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झऽहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥५०॥

सम्यक् प्रकार से धर्म को जानकर तथा प्राप्त श्रेष्ठ कामगुणों को त्यागकर राजा-रानी दोनों ने ही यथोपदिष्ट उग्र तप को स्वीकार किया और संयम में घोर पराक्रम करने लगे ॥५०॥

Knowing well the religion and abandoning all pleasures and amusements; king and queen-both accepted rigorous penance and began to endeavour in restrain and self-control. (50)

एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।
जम्म-मच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥५१॥

इस प्रकार वे सब-छहों व्यक्ति बुद्ध और धर्मपरायण बने, जन्म एवं मरण से उद्विग्न हुए और दुःख परम्परा के अन्त की खोज में लग गये ॥५१॥

Thus all those six persons became enlightened, religious-minded, being frightened by the cycle of births and deaths, began to seek the end of miseries. (51)

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया ।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सन्तमुवागया ॥५२॥

पूर्व जन्म में जिन्होंने अनित्य आदि वैराग्य भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित किया था, अब मोहरहित होकर तथा जिनशासन की शरण ग्रहण करके थोड़े ही समय में सभी दुःखों का अन्त कर दिया ॥५२॥

In previous life they have endowed their souls by apathy feelings of ineternal, non-shelter etc. Now becoming devoid of delusion and taking shelter of the order of Jinas, in a short period, they ended all miseries. (52)

राया सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिब्बुडे ॥५३॥

–त्ति बेमि ।

इषुकार राजा, कमलावती रानी, पुरोहित, पुरोहित-पत्नी तथा उनके दोनों पुत्र–ये सभी परिनिर्वृत्त–मुक्त हो गये ॥५३॥ **–ऐसा मैं कहता हूँ ।**

King Iṣukāra, Queen Kamalāvatī, Bhṛgu Purohita, his wife and two sons–all these obtained liberation. **–Such I Speak**

卐

पन्द्रहवाँ अध्ययन : सभिक्षुक

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक सभिक्षुक है। इसके दो कारण हैं; प्रथम–इसकी प्रत्येक गाथा के अन्त में 'स भिक्षु' (स भिक्खु) शब्द का प्रयोग हुआ है। दूसरा, इसमें सद्भिक्षु के गुणों, लक्षणों और जीवन–चर्या का विवेचन है।

पिछले इषुकारीय अध्ययन में छह व्यक्ति भिक्षा-जीवी अनगार बने थे। भिक्षु के गुण, लक्षणों का वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

भिक्षु शब्द का यहाँ विशेष आशय है। यहाँ सद्भिक्षु ही विविक्षित है; ऐसा भिक्षु जो सर्वसम्पत्करी भिक्षा ग्रहण करता है, स्वयं अपनी संयम यात्रा तो चलाता ही है, दाता का भी अपने-आप हित होता है।

यह तो तथ्य है कि कंचन-कामिनी के त्यागी और घर-बार छोड़कर तपस्या करने वाले साधु को भी अपने शरीर-रक्षार्थ कुछ अत्यावश्यक साधनों की आवश्यकता होती ही है और वे सब याचना द्वारा सद्गृहस्थों से ही वह प्राप्त करता है।

इस याचना में कई बार उसे तिरस्कार भी सहना पड़ता है, शीत-उष्ण, शैया-निषद्या आदि परीषह भी सहने पड़ते हैं; पर वह खिन्न नहीं होता।

सद्भिक्षु अपनी जीवन-चर्या को निर्दोष रखता है, माया, निदान से दूर रहता है, सांसारिक जनों से अधिक परिचय नहीं रखता, रात्रि भोजन नहीं करता, अज्ञात-अपरिचित घरों में ही भिक्षा की गवेषणा करता है, किसी भी मनोज्ञ सचित्त अथवा अचित्त वस्तु में गृद्ध नहीं होता; सिर्फ आत्मोत्थान ही उसका लक्ष्य रहता है।

इस अध्ययन में निर्दोष भिक्षाजीवी, संयम यात्रा के पथिक सद्भिक्षु के लक्षण और जीवन-चर्या का संक्षेप में विवेचन कर दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में १६ गाथाएँ हैं ।

卐

CHAPTER 15
TRUE MENDICANT

Foreview

The title of this chapter is Sabhikkhuyaṁ (sabhikṣuka). There are two causes of this title–first, in the end of all couplets, the word Sa bhikṣuka (Sa bhikkhuyaṁ) has bean used. The second, in this chapter the virtues, symptoms and life-order of a true mendicant have been described.

Really the name of this chapter, Sa bhikkhu, is derived from the burden which runs through the whole chapter and winds up every couplet.

In the preceding fourteenth chapter six persons became homeless mendicants, whom life-order was to obtain all necessities by asking was described. The virtues and symptoms of mendicant's life-order (getting every thing by asking) are described in this chapter.

Here the word bhikśu bears special meaning. This word used only for true mendicant. Such mendicant who accepts the alms which is beneficial for both–giver and taker. Mendicant too leads his religious life and the giver automatically gets benefits.

It is an established fact that the observer of penances, who has abandoned home-women-possession-wealth, too needs some necessary means to subsist, and all these means he gets by asking from liberal householders.

During this asking many times he has to tolerate insult. The troubles of cold, heat, lodging etc., also he has to tolerate. But he never becomes depressed.

True mendicant preserves his asking-order faultless, remains away from deceit and volition, does not have more acquaintance with worldly persons, eats and drinks nothing in night, seeks alms from the unknown and unacquainted families, does not indulge any heart-attractive lifeless or with life thing; he aims only the progress of his own soul.

In this chapter the description of ask-subsistent, self-controller true mendicant is given, in short.

This chapter consists only 16 couplets.

卐

पनरसमं अज्झयणं : सभिक्खुयं
पञ्चदश अध्ययन : सभिक्षुक

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे नियाणछिन्ने ।
संथवं जहिज्ज अकामकामे, अन्नायएसी परिव्वए जे स भिक्खू ॥१॥

'धर्म को स्वीकार करके मुनिव्रतों का पालन करूँगा', इस संकल्प के साथ जो अन्य साधुओं के (तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त) साथ रहता है, सरल भाव से क्रिया करता है, निदान–विषय-वासनाओं की इच्छा जिसने त्याग दी है, पूर्व सांसारिक संबंधियों से परिचय का त्याग करता है, काम-भोगों की इच्छा नहीं करता, अपनी जाति, कुल आदि का परिचय न बताकर अज्ञात कुलों में निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करता है और अप्रतिबद्ध विहार करता है; वह भिक्षु है ॥१॥

'Accepting the religious life I will practise the monk-order–the full vows of a monk' with this solemn resolve who lives with other sages (and having firm belief in right knowledge-faith-conduct) acts sincerely, renounces the desire of volition–covetuousness, abandons the acquaintance of worldly and domestic relatives, has no wish for sensual pleasures, seeks for faultless asking, without giving introduction of own caste and clan, from unknown families and wanders unobstructed, he is a true mendicant. (1)

रागोवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए ।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हिंचि न मुच्छिए स भिक्खू ॥२॥

जो राग से उपरत है, (रात्रि भोजन का त्यागी है) सम्यक् रूप से साध्वाचार का पालन करता है, असंयम से विरत है, शास्त्रों का ज्ञाता है, आत्म-रक्षा के लिए तत्पर है, प्राज्ञ है, परीषहों तथा राग-द्वेष का विजेता है, सभी प्राणियों को अपने समान समझता है, किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होता; वह भिक्षु है ॥२॥

Who is disinterested to attachment (renouncer of night eating), practises the sage-conduct as prescribed, disinclined towards unrestrain, well-versed in scriptures, ready for soul (self) protection, wise and witty, victor of troubles and attachment-detachment, believes that all living beings are as (equal to) me, does not indulge in anything; he is a true mendicant. (2)

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥३॥

जो धीर मुनि आक्रोश–कठोर वचन एवं वध–ताडना-तर्जना को अपने पूर्वकृत कर्मों का फल जानकर संयम में प्रसन्न रहता है, असंयमस्थानों–आस्रवों से अपनी आत्मा को गुप्त–रक्षित रखता है, जो आकुलता और हर्षातिरेक नहीं करता और समभाव से सब कुछ सहता है; वह भिक्षु है ॥३॥

The steadfast monk, knowing the consequences of his own former deeds–the harsh words and beating etc., remains delightful in restrain, protects his own soul from inflow of

karmas–non-restrain, neither be sorrowful nor too much pleasant, tolerates all with even mind; he is a true mendicant. (3)

पन्तं सयणासणं भइत्ता, सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥४॥

अति सामान्य शयन और आसन को स्वीकार करने वाला, सर्दी-गर्मी, डांस-मच्छर आदि के परीषहों-उपसर्गों से व्याकुल न होने वाला तथा अनुकूल संयोगों में हर्षित न होने वाला तथा समभाव से सब कुछ सहन करने वाला भिक्षु कहलाता है ॥४॥

Who accepts most ordinary lowly beds and seats, bears the troubles of heat and cold, flies and insects, does not be joyful in favourable contacts and tolerates all with calm mind; he is a true mendicant. (4)

नो सक्कियमिच्छई न पूयं, नो वि य वन्दणगं, कुओ पसंसं ?
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥५॥

जो साधक सत्कार, पूजा और वन्दना की इच्छा भी नहीं करता, वह प्रशंसा की आकांक्षा कैसे कर सकता है? जो संयत, सुव्रती, तपस्वी, ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त है और आत्मा की गवेषणा करता है; वह भिक्षु है ॥५॥

The adept, who does not even wish the respect, hospitality and revrence, how he can desire paises ? Who is restrained, practises virtuous vows and austerities, engrossed well in right knowledge-faith-conduct and seeks his own soul; he is a true mendicant. (5)

जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छई ।
नरनारिं पजहे सया तवस्सी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥६॥

जिस कारण से संयमी जीवन छूट जाय, जिस कारण से कषाय-नोकषायरूप सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का बन्ध होता हो, ऐसे पुरुष-स्त्री की संगति को जो साधु सदा के लिए त्याग देता है तथा कुतूहल नहीं करता; वह भिक्षु है ॥६॥

Ascetic renounces the company for ever of man and woman, due to which his ascetic-life may set off, the bondage of full delusion karma–passions and auxiliary passions may occur and never be curious;, he is a true mendicant. (6)

छिन्नं सरं भोममन्तलिक्खं, सुमिणं लक्खणदण्डवत्थुविज्जं ।
अंगवियारं सरस्स विजयं, जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू ॥७॥

जो साधक छिन्नविद्या–वस्त्र अथवा पात्र के छिद्र अथवा कटे-फटे भाग से शुभाशुभ बताना, स्वर, भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु, अंग विकार, स्वर विज्ञान आदि विद्याओं से आजीविका नहीं चलाता; वह भिक्षु है ॥७॥

The adept who does not profes, nor lives on divination from cuts and shreds, sound (the air coming out through nostrils–exhaling) earth, sky or the science of meteorology, dreams, symptoms (diagrams), stick, structures, throbbings and changings of the body, lores; he is a true mendicant. (7)

मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं, वमणविरेयणधूमणेत्त-सिणाणं ।
आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥८॥

जो रोग आदि से ग्रसित होने पर भी मंत्र, जड़ी-बूटी, आदि तथा वमन, विरेचन, धूम्रपान की नली, स्नान और स्वजनों की शरण एवं चिकित्सा का त्याग कर देता है तथा अप्रतिबद्ध विहार करता है; वह भिक्षु है ॥८॥

The adept even caught by diseases, abandons–charms (spell), roots and herbs etc., and vomitting, purgatives, fumingation, smoking pipe, bathing, refuge and consolation of family members etc., –every kind of medical or other treatment; he is a true mendicant. (8)

खत्तियगणउग्गरायपुत्ता, माहणभोइयविविहा य सिप्पिणो ।
नो तेसिं वयइ सिलोगपूयं, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥९॥

क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक–सामन्त आदि–तथा अनेक प्रकार के शिल्पियों की प्रशंसा में कभी एक शब्द भी नहीं बोलता अपितु इसे हेय समझता है; वह भिक्षु है ॥९॥

Warriors (क्षत्रिय), ugra, gaṇa, princes, brahmaṇas, bhogikas–chieftains and artisans of all sorts, he who does not utter a word in praise of all these and abstains from all of them; he is a true mendicant. (9)

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व संथुया हविज्जा ।
तेसिं इहलोइयफलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥१०॥

प्रव्रजित होने के बाद अथवा पहले के परिचित व्यक्तियों के साथ इस लोक के फल-प्राप्ति हेतु जो संपर्क–मेल-जोल नहीं रखता; वह भिक्षु है ॥१०॥

Prior or posterior to his consecration, the acquaints, he does not contact for getting some gains of this mundane existence; he is a true mendicant. (10)

सयणासण-पाण-भोयणं, विविहं खाइमं साइमं परेसिं ।
अदए पडिसेहिए नियण्ठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥११॥

शयन, आसन, पान, भोजन तथा अनेक प्रकार के खाद्य और स्वाद्य पदार्थ कोई (गृहस्थ) स्वयं न दे अथवा माँगने पर भी न दे, इन्कार कर दे, उस व्यक्ति पर क्रोध-द्वेष न करने वाला निर्ग्रन्थ ही भिक्षु है ॥११॥

If a householder does not bestow lodge, bed, drink (lifeless water) and food, dainties and delicacies of many sorts, even then he does not give on asking, totally denies–not loses temper on such man; he is a true mendicant. (11)

जं किंचि आहारपाणं विविहं, खाइम-साइमं परेसिं लद्धुं ।
जो तं तिविहेण नाणुकंपे, मण-वय-कायसुसंवुडे स भिक्खू ॥१२॥

जो गृहस्थों से विभिन्न प्रकार के भोजन-पानी-खाद्य-स्वाद्य पदार्थ प्राप्त करके बदले में उन पर अनुकम्पा नहीं करता–आशीर्वाद नहीं देता–उपकार नहीं करता, अपितु मन-वचन-काया से सुसंवृत रहता है; वह भिक्षु है ॥१२॥

Who gets various sorts of food, water, dainties and delicacies but shows no favour in exchange of these receipts, neither blesses nor benefits him but remains under strict discipline of mind, speech and body; he is a true mendicant. (12)

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं च सोवीर-जवोदगं च।
नो हीलए पिण्डं नीरसं तु, पन्तकुलाइं परिव्वए स भिक्खू ॥१३॥

धान्य, यव का ओसामण, ठंडा भोजन, कांजी का पानी तथा जौ का पानी–ऐसे स्वाद रहित भोजन की जो निन्दा नहीं करता; साधारण घरों में भिक्षाटन करता है; वह भिक्षु है ॥१३॥

Rice-water, barley-pap, cold-sour gruel, barley wash–who does not despise such tasteless food and wander for alms in most ordinary lowly houses; he is a true mendicant. (13)

सद्दा विविहा भवन्ति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तहा तिरिच्छा।
भीमा भयभेरवा उराला, जो सोच्चा न वहिज्जई स भिक्खू ॥१४॥

जगत में देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी तथा तिर्यंच सम्बन्धी अनेक भीषण, भयोत्पादक और रौद्र शब्द होते हैं, जो उन शब्दों को सुनकर भयभीत नहीं होता ; वह भिक्षु है ॥१४॥

Many cruel, dreadful, frightful, awful noises and voices occur in this world of gods, men, beasts; he who does not engulfed with fear hearing those voices; he is a true monk. (14)

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, उवसन्ते अविहेडए स भिक्खू ॥१५॥

इस जगत में प्रचलित धर्म संबंधी अनेक प्रकार के वादों को जानकर भी जो अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त होकर संयम में संलग्न रहता है, जिसे शास्त्रों के परमार्थ का ज्ञान है, जो प्राज्ञ है, परीषहों पर विजय प्राप्त कर जो सबके प्रति समदृष्टि रखता है, उपशान्त है, किसी का न अपमान करता है, न पीड़ा देता है; वह भिक्षु है ॥१५॥

In this world there are many religious sects (disputations), knowing all these, who with his own right knowledge-faith-conduct deeply indulges in his restrain, who is well versed in scriptural knowledge, who is wise and witty, conquering the troubles, who keeps equal-equanimous sight on all, peaceful is he, insults none, nor injures; he is a true mendicant. (15)

असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते, जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के।
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी, चेच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥१६॥

–त्ति बेमि।

जो शिल्पजीवी नहीं है, गृहविहीन है, जिसका कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, परिग्रह से सर्वथा मुक्त है, जिसके कषाय अति मन्द हैं, जो हल्का-नीरस-अल्प भोजन ग्रहण करता है, गृहवास को छोड़ चुका है, अकेला-एक मात्र संयमभावों में विचरण करता है; वह भिक्षु है ॥१६॥ **–ऐसा मैं कहता हूँ।**

He who, not living by any art or craft, who has neither friend nor foe, who has subdued his senses, free of all possessions, whose passions are dimmed to lowest degree, eats

tasteless yet little and light food, quitted home, remaining alone engrossed in restrainment; he is a true mendicant. (16) –Such I speak

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–संस्तव के दो अर्थ हैं–स्तुति और परिचय। यहाँ परिचय अर्थ अनुकूल है। संस्तव के दो प्रकार हैं–संवास-संस्तव और वचन-संस्तव। असाधु जनों के साथ रहना संवास-संस्तव है और उनके साथ आलाप संलाप करना "वचन-संस्तव" है। साधक के लिये दोनों ही निषिद्ध हैं। (चूर्णि)

गाथा ७–यहाँ दश विद्याओं का उल्लेख है। उनमें (१) दण्ड-विद्या, (२) स्वर-विद्या, (३) वास्तु-विद्या को छोड़कर शेष सात विद्यायें निमित्त के अंग माने गये हैं। (१) अंग, (२) स्वर, (३) लक्षण, (४) व्यंजन (५) स्वप्न (६) छिन्न, (७) भौम और (८) अन्तरिक्ष ये अष्टांग निमित्त हैं।

(१) काष्ट, वस्त्र आदि में चूहे या कांटे आदि के द्वारा किये गये छेदों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना छिन्न निमित्त है।

(२) भूकम्प आदि के द्वारा, अथवा अकाल में होने वाले बेमौसमी पुष्प-फल आदि से शुभाशुभ का ज्ञान करना, भौम निमित्त है। भूमिगत धन एवं धातु आदि का ज्ञान करना भी "भौम' है।

(३) आकाश में होने वाले गन्धर्व नगर, दिग्दाह और धूलिवृष्टि आदि तथा ग्रहयोग आदि से शुभाशुभ का ज्ञान करना अन्तरिक्ष निमित्त है।

(४) स्वप्न पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना स्वप्न निमित्त है।

(५) शरीर के लक्षण तथा आँख फड़कना आदि अंगविकारों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना, क्रमशः लक्षण निमित्त और अंगविकार निमित्त हैं।

(६) दण्ड के गांठ आदि विभिन्न रूपों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना, दण्ड-विद्या है।

(७) मकानों के आगे-पीछे के विस्तार आदि लक्षणों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना, वास्तु विद्या है।

(८) षड्ज, ऋषभ आदि सात स्वरों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना, स्वर विद्या है।

उक्त विद्याओं के प्रयोग से भिक्षा प्राप्त करना, भिक्षा का "उत्पादना" नामक एक दोष है।

गाथा ८–परम्परानुसार "धूमनेत्त" एक संयुक्त शब्द माना गया है। जब कि टीकाकार धूम और नेत्र दो भिन्न शब्द मानते हैं। उनके मतानुसार धूम का अर्थ है–मनःशिला आदि धूप से शरीर को धूपित करना, और नेत्र का अर्थ है–नेत्र संस्कारक अंजन आदि से नेत्र "आंजना"। मुनिश्री नथमल जी द्वारा संपादित दशवैकालिक और उत्तराध्ययन में धूमनेत्र का 'धूएँ की नली से धुँआ लेना'–अर्थ किया है।

स्नान से यहाँ वह स्नान विद्या अभिप्रेत है, जिसमें पुत्र-प्राप्ति के लिये मन्त्र एवं औषधि से संस्कारित जल से स्नान कराया जाता है–बृहद्वृत्ति।

गाथा ९–आवश्यक निर्युक्ति (गा. १९८) के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने चार वर्ग स्थापित किये थे–(१) उग्र–आरक्षक, (२) भोग–गुरुस्थानीय, (३) राजन्य–समवयस्क या मित्र स्थानीय, (४) क्षत्रिय–अन्य शेष लोग।

भोगिक का अर्थ सामन्त भी होता है। शान्त्याचार्य "राजमान्य प्रधान पुरुष" अर्थ करते हैं।

"गण" से अभिप्राय गणतन्त्र के लोगों से है। भगवान् महावीर के समय में लिच्छवि एवं शाक्य आदि अनेक शक्तिशाली गणतन्त्र राज्य थे। वृज्जी गणतन्त्र में ९ लिच्छवि और ९ मल्लकी–ये काशी–कौशल के १८ गणराज्य सम्मिलित थे। कल्पसूत्र में इन्हें "गणरायाणो" लिखा है।

Salient Elucidations

Gāthā 1–The word Saṁstava has two meanings–(1) applause and (2) acquaintance. Here acquaintance is fit. There are two types of acquaintances–(1) living with and (2) talking with. To live

with unrighteous persons is Saṁvāsa-saṁstava while conversation with such persons is speaking saṁstava. Both are forbidden for an adept. (*Cūrṇi*)

Gāthā 7–Here is the description of ten types of scientology. Among them excepting stickology, voiceology and stuctureoloy the remaining limbology, musical lores, symptoms, signs, dreams, toms–holes, earth, planets and sky–Foretelling of auspicious and inauspicious happenings of past and future is called eight-limbed scientology. (अष्टांग निमित्त विज्ञान विद्या).

(1) Toms or holes in wood, cloth, etc., caused by thoms or mice, by these to know the gòod or bad happenings is tomology.

(2) By earthquake or unseasoned flowers-fruits etc., to know the good or bad happenings is earthology. It also contains to know the wealth, metals under the upper layer of earth.

(3) By burning (red, even after sun-set or in the night) the directions of sky, illusory image of a city seen in sky, raining of dirt from sky etc., and the position of the planets–by all these to know the good and bad effects is the science of meterology.

(4) To know good or bad effects of dreams is the science of dreams.

(5) To know good or bad effects by throbbings and changings of body is symptomology and the science of limb-alteration.

(6) The knots of and various forms of sticks,–by these to know good or bad effects is the science of sticks.

(7) To know good or bad effects by the dimensions, vastness in front and rear portion of houses–buildings is the science of grounds and buildings.

(8) To know good or bad consequences by lores or sounds of beings or musical lores and sounds is the science of tone or tonology.

To take alms by practising aforesaid sciences and logies is a fault of asking named utpādanā.

Gāthā 8–Traditionally dhūmanetta regarded as one compound word. But commentators take it two separate words–dhūma–smoke and netta–eyes. According to the opinion of commentators–dhūma means to fragrant the body by codiments, like–bitumen (मनःशिला) etc., and netta or eyes they take to apply collyrium etc., to the eyes.

In Daśavaikālika and Uttarādhyayana, edited by Muni Nathmalji, the editor gave the meaning of dhūmanetta word to smoke by the smoke-pipe.

Snāna (bath) here refers to special bath which is taken with herb-mixed and activated by charms water for getting son. (V. V.)

Gāthā 9–According to Āvaśyaka-Niryukti (gāthā 198) *Bhagawāna Ṛṣabhadeva* established four classes of men–*Ugra* (protectors) *Bhoga* (as teachers) *Rājanya* (as friend like) *Kṣatriya* (all remaining men)

Bhogika also denotes chieftains. Śāntyācārya interpretates Bhogika as–persons considerable by kings or rulers.

Gaṇa is used for the persons living in and enjoying republics. At the time of Bhagawāna Mahāvīra, *Licchavi* and *Śākya* etc., there were many powerful republics. In *Vajjī* republic, nine *Licchavi* and nine *Mallavi*-of *Kāśī-Kauśala*–these eighteen republics were incorporated. In Kalpasūtra these are mentioned as gaṇarāyāṇo–the republic states.

卐

सोलहवाँ अध्ययन : ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

उपोद्घात

प्रस्तुत अध्ययन का नाम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान है। यह अध्ययन सूत्रों और गाथाओं में निबद्ध है। सूत्रों का विस्तार अथवा परिपुष्टिकरण गाथाओं द्वारा किया गया है।

पिछले सभिक्षुक अध्ययन में निर्दोष भिक्षाजीवी श्रमण के लक्षण और जीवन-चर्या के उपरान्त उसे समाधि (शांति) के स्थान बताने के लिए इस अध्ययन में उपक्रम किया गया है।

साधारणतः ब्रह्मचर्य का अर्थ मैथुनविरति अथवा स्पर्शेन्द्रिय संयम लिया जाता है; किन्तु यह अर्थ संपूर्ण नहीं है। चिन्तन की गहराई में उतरने पर ब्रह्मचर्य का अभिप्राय सर्वेन्द्रिय संयम स्पष्ट होता है; लेकिन यह भी पूर्ण नहीं है। मानसिक, वाचिक और सभी इन्द्रियों का संयम ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ है।

ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक स्वरूप अपनी आत्मा में–आत्मस्वभाव में रमण करना है। आत्मा अनन्त, अक्षय, सुख और शांति का आगार है। लेकिन आत्मा की गहराइयों तक न पहुँचने वाला मानव इन्द्रिय-मोहक भौतिक सुख-साधनों में सुख की खोज करने वाला बाह्यगामी हो जाता है; उसकी इस दिग्भ्रांति को तोड़ने का प्रयास ही ब्रह्मचर्य का प्रारम्भ है।

प्रस्तुत अध्ययन में जो ब्रह्मचर्य के दस समाधिस्थान बताए गये हैं, वे ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ अथवा नव बाड़ हैं और दसवाँ स्थान है कोट-दुर्ग अथवा इन नव गुप्तियों का रक्षक।

ये नवबाड़ तथा दस समाधि स्थान स्वयं ब्रह्मचर्य नहीं हैं, ब्रह्मचर्य के रक्षक अथवा साधक हैं। इनसे ब्रह्मचर्य साधना में सहायता मिलती है।

इस दृष्टि से इन साधनों का महत्व कम नहीं है। साधक के लिए ये अनिवार्य हैं। इनमें स्खलना होने से ब्रह्मचर्य भंग होने की संभावना रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन की शैली से भी यह स्पष्ट है। एक ओर ब्रह्मचर्य के–इन गुप्तियों के लाभ बताये हैं तो तुरन्त ही इनकी स्खलना से होने वाले दोषों का भी सूचन कर दिया है।

प्रस्तुत अध्ययन में १२ सूत्र और १७ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 16
CONDITIONS OF PERFECT CELIBACY

Foreview

This chapter is named Conditions of Perfect Celibacy. It is composed in prose and verse both. The maxims are elaborated by couplets.

In the previous fifteenth chapter, there was the description of characterstics of a faultless mendicant sage and his life-order. Now in this chapter attempt has been made to tell him the places of a contemplation-peace.

Generally the meaning of celibacy is taken as non-intercourse or to control the genitals–subdue the touch-sense; but this interpretation is not complete.

Thinking deeply, celibacy denotes controlling all the five senses; but it is also not perfect.

Really the comprehensive meaning of celibacy is–to control all the five senses along with mental and vocal activities.

Spiritual conception of celibacy is to fix oneself in his own soul and soul-virtues.

The soul is eternal treasure of infinite imperishable bliss and peace. But the person, who cannot go deep in the deapth of soul, he searches the happiness in sensual and physical pleasures. So he becomes of outward outlook, extrovert. Attempt to break this delusion of man is the beginning of celibacy.

Ten places of celibacy contemplation are narrated, really these are the nine incognitoes (गुप्ति) or nine kraal rings (बाड़) and the tenth is like the fort, the protector of all these nine incognitoes or kraal rings.

These nine kraal rings and ten places of contemplation and peace are not themselves celibacy; but these are the protectors and helpers of celibacy. For practising celibacy these are helpful.

But this does not lessen their importance. These are must for an adept. By the slip in these, the probability of celibacy-break may occur.

It is also evident by the style of this chapter. On one hand the benefits of celibacy–these nine incognitoes are asserted and on the other hand the harms also described occuring by their slips.

This chapter contains 12 maxims and 17 couplets.

सोलसमं अज्झयणं : बम्भचेरसमाहिठाणं
षोडश अध्ययन : ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान

सूत्र १–सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इह खलु थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

सूत्र १–(सुधर्मा स्वामी) हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है कि उन भगवान ने ऐसा कहा है–

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने दस ब्रह्मचर्य समाधि के स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर तथा जिनके अर्थ को समझकर भिक्षु संयम में, संवर में और समाधि में अधिकाधिक संपन्न होकर मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को नियन्त्रित करे और गुप्त ब्रह्मचारी बनकर सदा अप्रमत्त होकर विचरण करे।

Maxim 1–(Sudharmā Swāmī) O long-lived (Jambū Swāmī) I have heard by my own ears that Bhagawāna Mahāvira has prescribed such–

In this knotless preception the reverend old experienced sages told ten contemplation peace conditions of celibacy, by hearing and understanding them, the mendicant becoming more and more opulent in restrain, obstruction of inflow of karmas and contemplation, should make latent (गोपन-गुप्त) all the restraints of mind-speech-body, control the senses and becoming latent celibate always move being non-negligent.

सूत्र २–कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

सूत्र २–(जम्बू स्वामी) हे भगवन् ! स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के वे कौन से दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थ निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और समाधि का बार-बार अभ्यास करे, मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों में जाने से रोके, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे और अप्रमत्त होकर विचरण करे।

Maxim 2–(Jambū Swāmī) Reverend sir ! the old and experienced reverend sages (स्थविर) told what ten contemplation peace conditions, by hearing which, determining their inherent meaning, mendicant should practise again and again restrain, check of inflow of karmas, contemplation, make latent mental, vocal and bodily activities, forbid the senses inclining their interesting objects, protect celibacy and move without negligence.

सूत्र ३–इमे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबंभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ।

तं जहा–

विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा, से निग्गन्थे ।

नो-इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा नो इत्थि-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

सूत्र ३–(सुधर्मा स्वामी) स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के ये दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निर्णय कर भिक्षु संयम, संवर, समाधि से अधिकाधिक संपन्न हो–मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को वश में रखे, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त रहकर विहार करे।

वे दश स्थान इस प्रकार हैं–

प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

जो विविक्त शयन आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

जो स्त्री, पशु, नपुंसक से संसक्त शयन आसन का सेवन–उपयोग नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं–स्त्री-पशु-नपुंसक से संस्पृष्ट-सेवित शयन और आसन का सेवन–उपयोग करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा (भोगेच्छा), विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है, या उन्माद अथवा दीर्घकालीन रोग और आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा कहे हुए धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः जो स्त्री-पशु-नपुंसक से संस्पृष्ट शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

Maxim 3–(Sudharmā Swāmī) Old experienced reverend sages told these ten conditions of celibacy contemplation, hearing these, deciding the inherent meanings of these, mendicant becoming more and more opulent in restrain, check of inflow of karmas and contemplation, should make latent mind, speech and body. Control the senses, protect celibacy and always carefully move.

These ten conditions are as follows–

First Celibacy condition

He, who uses the discriminated or separate (विविक्त) bed and seat is a knotless sage. Who does not use the bed and seat which have been used by woman, eunuch and beast, and avoids it, he is a knotless monk.

(Q). Why it is so ?

(Ans) Preceptor explains–If a celibate knotless monk uses the places for sleep and sitting, used by woman, beast and eunuch; then the doubt about the benefits of celibacy may arouse, desire of sexual intercourse may take place, his mind may be frustrated due to the

intensity of desire, or the vow of celibacy may be broken, or mental disorder and prolonged diseases may catch him, he deserts the faith in the religious order precepted by kevalins–possessor of limitless knowledge.

Therefore who does not use the bed or seat used or inflicted by woman, eunuch and beast is a knotless monk.

सूत्र ४–नो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा कंखा वा वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा नो इत्थीणं कहं कहेज्जा ।

द्वितीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ४–जो स्त्रियों के रूप, लावण्य, हाव-भाव आदि से संबंधित कामोत्तेजक कथा नहीं कहता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य उत्तर देते हुए कहते हैं–स्त्रियों की कथा कहने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, उसके ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, उन्माद अथवा दीर्घकालीन रोग और आतंक हो जाते हैं। वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को स्त्री-कथा नहीं कहनी चाहिए।

Maxim 4–(Second celibacy condition)–Who does not tell the sex exciting stories regarding beauty, grace, coquetry of women, he is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor explains–who tells sex-exciting stories about women; then doubts about the benefits of celibacy may arouse, desire of sexual intercourse may take place, his mind may be frustrated due to intense desire, or the vow of celibacy may be broken, or mental disruption may catch him or prolonged diseases, he deserts the religious-order precepted by kevalins.

Therefore celibate should not tell the women tale.

सूत्र ५–नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा ।

तृतीय ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ५–जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं–स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का नाश होता है, उन्माद और दीर्घकालीन रोग व आतंक उत्पन्न होते हैं, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म से विचलित हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर हरगिज न बैठे।

Maxim 5–(Third celibacy condition)–Who does not sit on one seat with women, he is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor expresses–The celibate knotless monk who sits on a seat with women; then the doubt about the benefits of celibacy may arouse, desire of sexual intercourse may take place, his mind may be frustrated by the intensity of desire, the vow of celibacy may be broken, or mental disorder may occur, mental frustration or prolonged sickness may catch him, he abandons the religious order precepted by kevalins.

So knotless monk should not sit on one seat with women on any account.

सूत्र ६–नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोइत्ता, निज्झाइत्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएमाणस्स, निज्झायमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु निग्गन्थे नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएज्जा, निज्झाएज्जा ।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ६–जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम–मन को हरण करने वाली तथा मन में विकार उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों को (टकटकी लगाकर) नहीं देखता और न ही उनके विषय में चिन्तन करता है; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं–स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखने और उनके विषय में चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, उन्माद तथा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों–अंगों को न तो देखे और न उनका चिन्तन ही करे।

Maxim 6–(Fourth celibacy condition)–Who does not gaze passionately the heart-attracting and exciting senses, limbs, part and portions of the body of women, and even not thinks about them; he is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor says–Who gazes the heart-attracting-attaching senses, portions of body and thinks about them; such celibate knotless monk may have doubt about the benefits of celibacy, desire of sexual intercourse may arouse, intense desire may frustrate his mind, vow of celibacy may be broken or mental disruption may occur, mental disorder or prolonged sickness may catch him, he abandons the religious order prescribed by kevalins.

Therefore knotless monk should not passionately gaze the heart-attracting senses and limbs of women nor think about them.

सूत्र ७–नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणेत्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु निग्गन्थे नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा ।

पंचम ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ७–जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, वस्त्र के परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन, विलाप–शब्दों को नहीं सुनता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं–मिट्टी की दीवार, परदे, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गायन, हास्य, गर्जन, क्रन्दन तथा विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, उन्माद तथा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इस कारण मिट्टी की कच्ची दीवार, कपड़े के परदे, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन, विलाप आदि शब्दों को निर्ग्रन्थ न सुने।

Maxim 7–(Fifth celibacy condition)–Who from behind the partition of a thatch, cloth curtain, stony wall does not hear the voices (sounds) of screeching, screaming, singing, laughing, giggling, crying of women; he is a knot-free monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor explains–By listening such voices of women, the celibate knot-free monk may be doubtful about the benefits of celibacy, he may desire sexual intercourse, intensity of desire may frustrate his mind, vow of celibacy may be broken, the position of mental disorder may occur, prolonged illness may catch him, he forsakes the religious order precepted by kevalins.

Therefore knot-free monk should not hear such words or voices of women.

सूत्र ८–नो निग्गन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बम्भयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा ।

छठा ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ८–संयम ग्रहण करने से पूर्व की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण जो नहीं करता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं- संयम ग्रहण करने से पूर्व की हुई रति एवं क्रीड़ा का स्मरण करने से ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का भंग हो जाता है या उन्माद उत्पन्न होता है अथवा दीर्घकालिक रोग व आतंक मे ग्रसित हो जाता है, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अत: निर्ग्रन्थ पूर्व रति और क्रीड़ा का स्मरण भी न करे।

Maxim 8–(Sixth celibacy condition)-Who does not recall to his memory the pleasures and amusements he enjoyed (with women) before becoming a houseless mendicant, he is a knot-free monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor tells–Before accepting restrain, one who has enjoyed pleasures and amusements in householder-life, by memorising them, the celibate knotless monk may be doubtful about the benefits of celibacy, may desire sexual intercourse, intensity of sexual feelings may frustrate his mind, celibacy may be broken, mental disorder may take place or he may be caught by dangerous sickness of long duration, he forsakes the religious order precepted by kevalins.

Therefore knot-free monk should not recall to mind the past amusements and pleasures.

सूत्र ९–नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु पणीयं पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।

सातवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ९–जो सरस, प्रणीत, पौष्टिक आहार नहीं करता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य ने कहा–सरस, पौष्टिक, प्रणीत आहार पानी का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का नाश हो जाता है, उन्माद उत्पन्न होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाता है, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित किये गये धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ रसयुक्त पौष्टिक आहार न करे।

Maxim 9–(Seventh celibacy condition)–Who does not eat delicious, nourishing and oozing ghee and oil-such food, is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor expresses–By taking nourishing, delicious and oozing ghee-oil diets, the celibate knotless monk may be doubtful regarding the benefits of celibacy, he may desire sexual intercourse, intensity of desire may cause mental frustration, vow of celibacy may be broken, mental disorder may arouse, or he may be caught by hazardous illness of long duration, he forbids the religious order precepted by kevalins.

So knot-free monk should not take delicious and nourishing diets.

सूत्र १०–नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स, बम्भयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे अइमायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा ।

आठवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र १०–जो अधिक मात्रा में–प्रमाण से अधिक भोजन-पान नहीं खाता-पाता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य ने कहा–मात्रा-परिमाण से अधिक भोजन-पान करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, उन्माद उत्पन्न होता है, दीर्घकालीन रोग व आतंक हो जाते हैं, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ को अधिक परिमाण में भोजन-पान नहीं करना चाहिए।

Maxim 10–(Eighth celibacy condition)–Who does not eat food and drink excessively (beyond the limit prescribed for a sage), he is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor explains–Who eats food and drinks water beyond limit; he may be full of doubts about the benefits of celibacy, desirous of sexual intercourse, intensity of sexual desires may crack his mind, vow of celibacy may be broken, mental disorder may happen, may he be caught by prolonged diseases, he abandons the religious order prescribed by kevalins.

So knot-free monk should not take food and water in excessive quantity.

सूत्र ११–नो विभूसाणुवाई हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–विभूसावत्तिए, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे विभूसाणुवाई सिया ।

नौवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र ११–जो शरीर की विभूषा-शोभा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य ने समाधान देते हुए कहा–जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, वह अपने शरीर को सजाता है; फलस्वरूप स्त्रियाँ उसे चाहने लगती हैं। तब स्त्रियों द्वारा अभिलाषा किये जाने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है या उन्माद हो जाता है अथवा वह दीर्घकालीन रोगों व आतंकों से ग्रसित हो जाता है, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ विभूषानुपाती (विभूषा में आसक्त) न बने।

Maxim 11–(Ninth celibacy condition)–Who does not decorate his body, he is a knotless monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor explains–Who has the tendency of adorning, he decorates his body, consequently women begin to desire (like) him, being desired by women, the celibate knotless monk doubts in the benefits of celibacy, desires sexual intercourse, due to extremity of sensual desire his mind cracks, celibacy is broken up, either he is gripped by mental disorder or by dreadful prolonged diseases, he quits the religious order precepted by kevalins.

So knotless monk should not decorate his body.

सूत्र १२–नो सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह–निग्गन्थस्स खलु सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाइस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हविज्जा ।

दसमे बम्भचेरसमाहिठाणे हवइ ।

दसवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

सूत्र १२–जो शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श में आसक्ति नहीं रखता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं–शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग होता है, उन्माद उत्पन्न हो जाता है, दीर्घकालीन रोग व आतंक पैदा हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ को शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में आसक्त नहीं होना चाहिए।

यह दशवाँ ब्रह्मचर्य समाधि स्थान है।

Maxim 12–(Tenth celibacy condition)–Who does not incline towards words (voices–sounds) sight (beauties–colours), smells, tastes and touches, he is a knot-free monk.

(Q.) Why it is so ?

(Ans.) Preceptor says–If a knotless monk indulged in sounds, colours–sights, smells, tastes and touches; he doubts about the benefits of celibacy, desires sexual intercourse, due to intensity of sensual desires his mind cracks, celibacy is broken up, either he is gripped by mental disorder or dreadful prolonged diseases, he abandons the religious order prescribed by kevalins.

So knot-free monk should not indulge himself in sounds, sights, smells, tastes and touches.

This is the tenth celibacy condition

भवन्ति इत्थ सिलोगा, तं जहा–

यहाँ इस विषय में कुछ गाथाएँ (श्लोक) हैं, जो इस प्रकार हैं–

Here are some verses (couplets–stanzas) to the same effect. These are as follows–

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं थीजणेण य ।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए ॥१॥

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए संयमी विविक्त–एकान्त, अनाकीर्ण एवं स्त्रियों से रहित स्थान में रहे॥१॥

For preservation of celibacy, the restrained takes up a detached, lonely lodging, free from and not frequented by women. (1)

मणपल्हायजणणिं, कामरागविवड्ढणिं ।
बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥२॥

ब्रह्मचर्यपरायण साधु चित्त में आल्हाद उत्पन्न करने वाली तथा काम-राग बढ़ाने वाली विकार वर्द्धक स्त्री-कथा का परित्याग कर दे ॥२॥

Celibate ascetic should abandon the women tale, which delights the mind and foments love and passion. (2)

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥३॥

ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाला भिक्षु स्त्रियों की प्रशंसा, उनके साथ अति परिचय तथा बार-बार वार्तालाप करना छोड़ दे ॥३॥

Celibate mendicant relinquish the appraisal of women, more acquaintance and again and again frequent conversation with them. (3)

अंगपच्चंग–संठाणं, चारुल्लविय-पेहियं ।
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥४॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु दृष्टिगोचर हुए स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, शरीर की रचना, वार्तालाप का ढंग तथा चितवन आदि को देखकर भी न देखे, अपनी दृष्टि तुरन्त वहाँ से हटा ले ॥४॥

A celibate mendicant, occuring before the sight, the part and portion, limbs, frame (figure) of body of women and their mode of conversation pleasant prattle and oglings-seeing all these he should treat as unseen, at once move his eyes from her. (4)

कुइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय–कन्दियं।
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥५॥

ब्रह्मचारी मुनि स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, क्रन्दन आदि शब्द न सुने, यदि भिक्षु के कानों में वे शब्द पड़ भी जायँ तो उन पर ध्यान न दे ॥५॥

A celibate monk should avoid hearing the screeching, screaming, singing, laughing, giggling and crying of women. If these words, any how listened, then he should pay no attention to them. (5)

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य ।
बम्भचेररओ थीणं, नाणुचिन्ते कयाइ वि ॥६॥

स्त्री के साथ गृहस्थ जीवन में किये हुए हास्य, क्रीड़ा, रति, दर्प–अभिमान, आकस्मिक त्रास आदि का ब्रह्मचर्यनिरत भिक्षु मन में भी चिन्तन न करे ॥६॥

A celibate monk should never recall to his mind–how he had laughed and played with women and had enjoyed them, how they became jealous and what tricks he played to frighten them, during his house holder-life. (6)

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥७॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु कामवासना को शीघ्र ही बढ़ाने वाले प्रणीत-रसयुक्त पौष्टिक भोजन का त्याग कर दे ॥७॥

A celibate should renounce the delicious, nourishing, ghee-oozing diets and water, which enhances sensual desires quickly. (7)

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बम्भचेररओ सया ॥८॥

ब्रह्मचर्यपरायण भिक्षु स्थिर एवं स्वस्थ चित्त होकर संयम यात्रा के लिए उचित समय में धर्ममर्यादा के अनुसार प्राप्त परिमित भोजन करे; मात्रा से अधिक आहार न करे ॥८॥

A celibate monk should eat his food with calm mind and stability, at the prescribed time and limit for only sustaining his body, for the sake of observing religious-rituals; he should not eat in excessive quantity. (8)

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीर परिमण्डणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ॥९॥

ब्रह्मचर्यनिरत भिक्षु विभूषा का परित्याग कर, शृंगार के लिए शरीर को सजाए–संवारे नहीं ॥९॥

A celibate mendicant should renounce adornig his body and not decorate the body for the sake of embellishment. (9)

सद्दे रूवे य गन्धे य, रसे फासे तहेव य ।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए ॥१०॥

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श–इन पाँच प्रकार के कामगुणों को ब्रह्मचर्यपरायण भिक्षु सदा के लिए त्याग दे ॥१०॥

A celibate monk should abandon for ever the five orders of pleasure–(1) sounds, (2) sights (3) smells, (4) tastes and (5) feelings of touches. (10) •

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा ।
संथवो चेव नारीणं, तासिं इन्दियदरिसणं ॥११॥
कुइयं रुइयं गीयं, हसियं भुत्तासियाणि य ।
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं ॥१२॥
गत्तभूसणमिट्ठं च, कामभोगा य दुज्जया ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥१३॥

(१) स्त्रियों से आकीर्ण-संसक्त स्थान।
(२) मनोरम स्त्री कथा।
(३) स्त्रियों के साथ अति परिचय ।

(४) उनकी इन्द्रियों पर दृष्टि जमाना ॥११॥

(५) स्त्रियों के कूजन, रुदन, हास्य, गीत, आदि शब्दों को सुनना।

(६) भुक्त भोगों और सह-अवस्थान–साथ रहने का स्मरण करना।

(७) प्रणीत-रसयुक्त पौष्टिक भोजन-पान करना।

(८) अधिक मात्रा में आहार करना ॥१२॥

(९) शरीर को सजाने–विभूषित करने की इच्छा।

(१०) दुर्जय काम-भोग।

आत्मार्थी पुरुष के लिये ये दस बातें तालपुट विष के समान हैं ॥१३॥

(1) Lodging frequented by women

(2) Heart-pleasing women-recitals

(3) More acquaintance or company of women

(4) To gaze passionately the charming organs of women. (11)

(5) To listen women's voices (sounds–words) of screeching, screaming, laughing, singing, giggling and crying of women.

(6) To recall past memories of–enjoyed amusements, and eating, sitting, sleeping with women.

(7) To eat nourishing, delicious, ghee–oozing food and drinking water.

(8) To take eatables (food) in excessive quantity. (12)

(9) Desire of decorating and adorning body.

(10) Unconquered pleasure and amusements.

These ten things are like most dangerous poison which kills a man as he takes it, i.e., it kills a man in such a short time as claping (तालपुट विष). So these are like a sharp dreadful poison for a self-seeking man. (13)

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए।
संकट्ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥१४॥

स्थिर चित्त वाला साधु दुर्जय काम-भोगों का सदा परित्याग करे और सभी प्रकार के शंका स्थानों से दूर रहे ॥१४॥

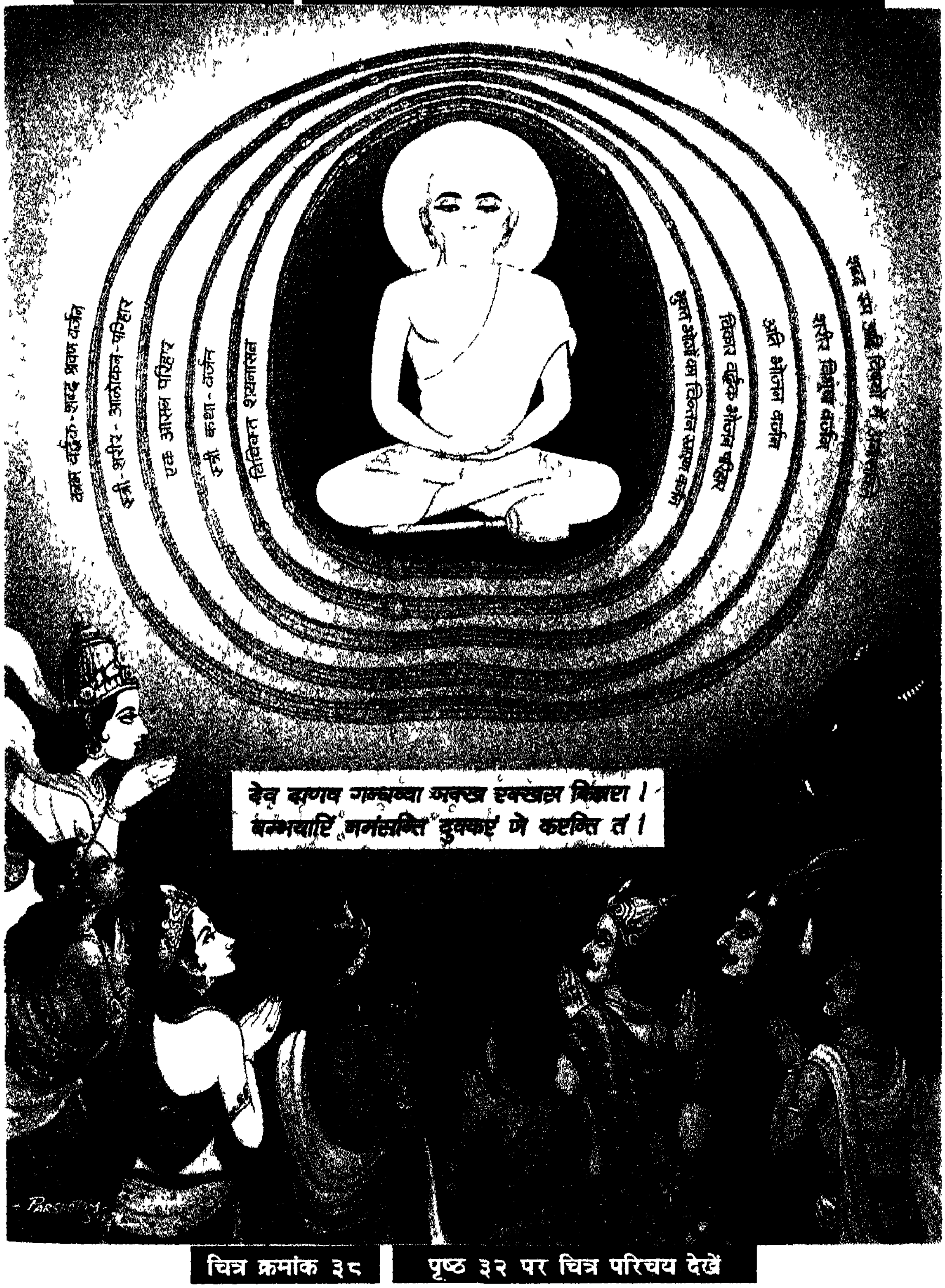
The sage having concentrated mind should renounce all the pleasures and amusements which are difficult to conquer, and should cast away all the doubts. (14)

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामरए दन्ते, बम्भचेर - समाहिए ॥१५॥

ब्रह्मचर्य में सुसमाहित भिक्षु धैर्यवान, धर्मरथ का सारथी, धर्मरूपी उद्यान में रत, इन्द्रियों और कषायों पर विजय प्राप्त करके धर्मरूपी उद्यान में विचरण करे ॥१५॥

Well versed in celibacy a mendicant, should be steady, charioteer of religious-chariot, indulged in the garden of religion, conquering the senses and passions; and make all activities in religious park. (15)

ILLUSTRATION NO. 38 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३८ पृष्ठ ३२ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 39 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ३९ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

देव – दाणव – गन्धव्वा, जक्ख–रक्खस–किन्नरा ।
बम्भयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करन्ति तं ॥१६॥

जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर–सभी नमन करते ॥१६॥

Who practises the pure celibacy, which is very difficult to observe; the gods, demons दानव), gandharvas, yakṣas (deities) rākṣasas and kinnaras pay homage to him. (16)

एस धम्मे धुवे निअए, सासए जिणदेसिए ।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्सन्ति तहावरे ॥१७॥

–त्ति बेमि

यह ब्रह्मचर्यधर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है। इस ब्रह्मचर्यधर्म का पालन करके तकाल में अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में भी सिद्ध होंगे ॥१७॥

–ऐसा मैं कहता हूँ।

This law of celibacy is unchangeable, permanent and eternal, precepted by Jinas. By actising celibacy innumerable souls attained emancipation in past, attaining in present and ill attain in future. (17)

–Such I speak

विशेष स्पष्टीकरण

सूत्र ३–ब्रह्मचर्य के लाभ में सन्देह होना "शंका" है। अब्रह्मचर्य–मैथुन की इच्छा "कांक्षा" है। अभिलाषा की तीव्रता होने चित्तविप्लव का होना, विचिकित्सा है। विचिकित्सा के तीव्र होने पर चारित्र का विनाश होना, "भेद" है।

सूत्र ९–प्रणीत का अर्थ पुष्टिकारक भोजन है, जिससे घृत तथा तेल आदि की बूँदें टपकती हों। (चूर्णि)

Salient Elucidations

Maxim 3–Suspicion about benefits of celibacy is doubt. Non-celibacy or wish of sexual ercourse is desire. Due to intensity of desire the frustration of mind is vicikitsā. Being sharp stration of mind, the loss of conduct is bheda.

Maxim 9–Such a nourishing diet from which the drops of ghee or oil ooz is praṇita food.

卐

सत्रहवाँ अध्ययन : पाप-श्रमणीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम पाप-श्रमणीय है। एक शब्द में कहा जाय तो पापश्रमण वह होता है जो सिंह वृत्ति से दीक्षा ग्रहण करके शृगाल वृत्ति से उसकी अनुपालना करता है अथवा शृगाल वृत्ति से ही श्रमणत्व धारण करता है और शृगाल वृत्ति से ही उसका पालन करता है।

पिछले १५वें अध्ययन में श्रेष्ठ भिक्षु (श्रमण) के लक्षण बताये गये थे और १६वें अध्ययन में ब्रह्मचर्य के महत्व का विवेचन किया गया था; जबकि प्रस्तुत अध्ययन में पापश्रमण के लक्षणों का विवेचन करके साधक को उन दोषों से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है।

यथार्थ में श्रमणत्व का पालन खांडे की धार पर चलना है। प्रतिक्षण जागरूकता, चारित्र के प्रति सजगता, साधुत्व के नियमों के प्रति प्रतिबद्धता और निरन्तर सम्यग्-ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना अति आवश्यक है।

लेकिन सभी साधक धर्मशीलिया नहीं होते, कुछ सुखशीलिया भी होते हैं। ऐसे साधकों को ही पापश्रमण कहा गया है। पापश्रमण की वृत्ति प्रवृत्ति का दिग्दर्शन प्रस्तुत अध्ययन में कराया गया है।

इस अध्ययन में गाथा १ से ४ तक ज्ञानाचार से सम्बन्धित, तथा गाथा ५ में दर्शनाचार, गाथा ६ से १४ तक चारित्राचार, गाथा १५-१६ में तपाचार एवं गाथा १७-१८ में वीर्याचार में निरपेक्ष रहने वाले पाप-श्रमण की बाह्य प्रवृत्तियों के साथ ही उसके मानसिक चिन्तन को भी स्पष्ट किया गया है।

इस अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट होती है कि आगम शास्त्रों में जहाँ सच्चे श्रमण के प्रति बहुमान प्रदर्शित करते हुए उसे अत्युच्च स्थान दिया गया है; वहाँ शिथिलाचारी पापश्रमण के प्रति कठोर रुख भी अपनाया गया है।

सम्पूर्ण अध्ययन का सार है–शिथिलाचार को छोड़कर सच्चे निर्दोष श्रमणत्व को पालन करने की प्रेरणा।

प्रस्तुत अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 17
SINFUL SAGE

Foreview

The title of this chapter is sinful sage. In short, sinful sage is he, who accepts consecration bravely like a lion but practises it cowardly like a jackal or becomes a sage cowardly like a jackal and also practises like a jackal.

In the preceding fifteenth chapter the characterstics of best mendicant (sage) were described and in the sixteenth chapter the importance of celibacy was analysed. While in this chapter by showing the faults (symptoms) of a sinful sage the adept is inspired to cast off those faults.

In fact to practise sagehood is to move on the edge of sharp sword bare-foot. Awakeness every moment, alertness for conduct, fixation to the rules of sagehood and regular propiliation (आराधना) of right knowledge-faith-conduct is very much essential.

But all the adepts are not addicted to religion–religious rituals, some of them are comfort-wishers. The comfort-wisher adepts are called as sinful sages. The tendencies and activities of such sinful sages are described in this chapter.

In this chapter, from couplet numbering 1 to 4 pertaining to knowledge-conduct, from 5 to 14 faith-conduct, 15-16 penance-conduct, 17-18 vigour-conducts (वीर्याचार)–remaining indifferent to all these–such sinful sage's external activities are elaborated along with mental thinking–mental attitude.

This fact is also becomes clear like daylight that in the canonieal scriptures of Jainism, on one hand the true sages are revered and on other hand strict attitude is taken for loose-conducted sinful sages.

The substance of whole chapter is–the inspiration to abandon loose conduct, and practise pure and pious sagehood.

This chapter contains only 21 couplets.

卐

सतरसमं अज्झयणं : पावसमणिज्जं

सप्तदश अध्ययन : पाप-श्रमणीय

जे के इमे पव्वइए नियण्ठे, धम्मं सुणित्ता विणओववन्ने ।
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥१॥

जो कोई श्रुत-चारित्ररूप धर्म को सुनकर, अत्यधिक दुर्लभ बोधिलाभ प्राप्त करके पहले तो विनय से युक्त होकर निर्ग्रन्थ धर्म में प्रव्रजित हो जाता है और बाद में सुखशील बनकर स्वच्छन्द विचरण करता है ॥१॥

One who hearing the religion of knowledge and conduct, attaining enlightenment which is very difficult to obtain, and being modest accepts the knotless religious order–consecration and afterwards becoming comfort-wisher moves (acts) according to his own wish. (1)

सेज्जा दढा पाउरणं मे अत्थि, उप्पज्जई भोत्तुं तहेव पाउं ।
जाणामि जं वट्टइ आउसु ! त्ति, किं नाम काहामि सुएण भन्ते ॥२॥

आचार्य अथवा गुरु-जन जब उसको श्रुत के अध्ययन की प्रेरणा देते हैं तब वह कहता है–हे आयुष्मन् ! निवास के लिए सुन्दर उपाश्रय, शरीर-रक्षा के लिए वस्त्र मेरे पास हैं, खाने-पीने को भी यथेच्छ भोजन प्राप्त हो जाता है और जो हो रहा है उसे मैं जानता हूँ। तब शास्त्रों का अध्ययन करके मैं क्या करूँगा ? ॥२॥

When preceptors and elder monks inspires him to study the holy scriptures, then he says–I have good lodging for inheritance, and cloths for protecting my body, I get food and drink as I wish and I know-what is happening; then what is the use of studying scriptures for me. (2)

जे के इमे पव्वइए, निद्दासीले पगामसो ।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥३॥

जो कोई प्रव्रज्या ग्रहण करके अत्यधिक निद्रा लेता है, इच्छानुकूल खा-पीकर (दिन में भी) सो जाता है, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ॥३॥

He, who being consecrated, takes much sleep, drinking and eating according to his own wish sleeps even in day time, he is called a sinful sage. (3)

आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।
ते चेव खिंसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥४॥

जिन आचार्यों और उपाध्यायों से श्रुत-ज्ञान और विनय-आचार की शिक्षा प्राप्त की है, उन्हीं गुरुजनों की जो निन्दा करता है, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ॥४॥

Acquired the instructions and studies of scriptural knowledge and courtesy-conduct from those preceptors and preachers, speaks ill for them; he is called as sinful sage. (4)

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ ।
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥५॥

जो आचार्यों और उपाध्यायों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता-सार-सँभाल नहीं करता, वह बड़ों का सम्मान न करने वाला, अभिमानी पाप-श्रमण कहलाता है ॥५॥

Who does not strive to please the preceptors and preachers, as he should do, does not respect the elder monks, such a proudy sage is called as sinful sage. (5)

सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजए संजयमन्नमाणे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥६॥

जो द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, बीज और हरित वनस्पति का संमर्दन करता रहता है, स्वयं असंयमी होते हुए भी अपने आपको संयमी मानता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ॥६॥

Who crushes the two-sensed etc., living beings, seeds and vegetables and being non-restrained believes himself restrained, he is called as a sinful sage. (6)

संथारं फलगं पीढं, निसेज्जं पायकम्बलं ।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥७॥

जो संस्तारक-बिछौना, पाट, आसन, निषद्या, स्वाध्याय भूमि, पाद-प्रोंछन-पैर पोंछने के लिए कंबल का टुकड़ा-इनका प्रमार्जन किये बिना ही इन पर बैठ जाता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ॥७॥

Without wiping (प्रमार्जना) bed, plank, seat, study-place, feet-cleaner (पाद प्रोंछन) (a piece of blanket for cleaning the feet from dust, dirt etc.,) uses all these, is called a sinful sage. (7)

दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चण्डे य, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥८॥

पैरों से दब-दब की आवाज करता हुआ जल्दी-जल्दी चलने वाला, बार-बार प्रमाद करने वाला, साधु-धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाला और अधिक क्रोध करने वाला पाप-श्रमण कहा जाता है ॥८॥

Who makes sound while walking, walks hastily, again and agein becomes careless, trespasses the laws of ascetic code and wrathed in anger, such sage is called sinful sage. (8)

पडिलेहेइ पमत्ते, उवउज्झइ पायकंबलं ।
पडिलेहणाअणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥९॥

प्रमादयुक्त-असावधान होकर प्रतिलेखन करने वाला, पात्र और कंबल को जहाँ-तहाँ-इधर-उधर रख देने वाला तथा प्रतिलेखन में अनायुक्त-असावधान रहने वाला पाप-श्रमण कहलाता है ॥९॥

Who inspect his possessions negligently, keeps his earthenwares-pots and piece of blanket hither and thither and becomes careless in inspection (प्रतिलेखन), he is called as sinful sage. (9)

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु निसामिया।
गुरुं परिभावए निच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१०॥

इधर-इधर की बातें सुनता हुआ जो प्रमत्त होकर प्रतिलेखना करता है और सदा गुरुजनों का तिरस्कार करता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ॥१०॥

Who inspects his possessions (cloth, earthenwares etc.) hearing the useless talks so becoming careless and even slights elder monks, he is called a sinful sage. (10)

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥११॥

अत्यधिक कपट युक्त, अत्यधिक बोलने वाला, ढीठ, लुब्ध, इन्द्रियों और मन पर उचित नियंत्रण न रखने वाला, प्राप्त वस्तुओं का संविभाग नहीं करने वाला तथा गुरु आदि के प्रति प्रेम न रखने वाला पाप-श्रमण कहलाता है ॥११॥

Who is too much deceitful, too much talkative, arrogant, greedy, does not properlry control his mind and senses, shares not with his fellow monks the receipts (food drinks etc.,) gotten from householders, and not of amiable position to teachers etc., he is called a sinful sage. (11)

विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपन्नहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१२॥

शान्त हुए विवाद को पुनः-पुनः भड़काने वाला, अधर्म का आचरण करने वाला, विग्रह-कदाग्रह-कलह में रत रहने वाला पाप-श्रमण कहलाता है ॥१२॥

Who insinuates the pacified disputes ever and anon, practise unrighteousness, delights in quarrels and contentions, he is called a sinful sage. (12)

अथिरासणे कुक्कुईए, जत्थ तत्थ निसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१३॥

जो अस्थिर-आसन वाला है—अर्थात् व्यर्थ ही इधर-उधर चक्कर काटता रहता है। भांडों जैसी कुचेष्टा करने वाला, जहाँ-तहाँ सचित्त स्थान पर भी बैठ जाने वाला इस प्रकार आसन के विषय में असावधान रहने वाला पाप-श्रमण कहा जाता है ॥१३॥

Who sits down on an unstable and creating the sound seat or moves hither and thither without purpose, even sits on the place which is not lifeless, thus remains careless about seat, makes bad demeanour of face and other organs of body like clowns (भांड़ों जैसी कुचेष्टा), he is called a sinful sage. (13)

ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहइ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१४॥

जो रज-धूल से भरे-सने पैरों से सो जाता है, शैया का प्रतिलेखन नहीं करता है, संस्तारक—बिछौने के संबंध में असावधान होता है, वह पाप श्रमण कहलाता है ॥१४॥

Who sleeps with dusty-dirty feet does not carefully inspect his couch and careless about his bed; he is called a sinful sge. (14)

दुद्ध-दहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१५॥

जो दूध-दही आदि विकारवर्द्धक पदार्थों का बार-बार आहार करता है और तपश्चर्या में अरुचि रखता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ॥१५॥

Who eats milk, curd and other exciting eatables frequently and has no inclination towards penances, he is called a sinful sage. (15)

अत्थन्तम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१६॥

जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक–दिन भर बार-बार आहार करता है, गुरु के समझाने पर उल्टा उन्हें ही उपदेश देने लगता है, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ॥१६॥

Who eats frequently (many time) from sun-rise to sun-set, and when admonished by teacher, makes an angry reply, he is called a sinful sage. (16)

आयरियपरिच्चाई, परपासण्डसेवए।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१७॥

जो अपने आचार्य को छोड़कर दूसरे धर्म-सम्प्रदायों मत-परम्पराओं को स्वीकार कर लेता है। छह महीने की अल्प अवधि में ही एक गण से दूसरे गण में चला जाता है, वह दुर्भूत–निन्दनीय पाप-श्रमण कहलाता है ॥१७॥

Who leaves his own preceptor and accepts other heretic-creed-traditions, in the short period of six months goes from one gaṇa to other gaṇa (the collection of pupils of one preacher) such bad ascetic, is called sinful sage. (17)

सयं गेहं परिचज्ज, परगेहंसि वावडे।
निमित्तेण य ववहरई, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१८॥

जो अपने घर को छोड़कर (प्रव्रजित होता है) दूसरे के घर के गृहकार्यों में लग जाता है; निमित्त–शुभाशुभ बताकर व्यवहार करता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥१८॥

Who leaving his own house (becomes consecrated) and busies himself another's house work, lives by foretelling fortunes, he is called a sinful sage. (18)

सन्नाइपिण्डं जेमेइ, नेच्छई सामुदाणियं।
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१९॥

जो अपने ज्ञाति जनों–पूर्व परिचितों से आहार प्राप्त करना चाहता है, सामुदानिक–अनेक घरों से भिक्षा नहीं लेना चाहता तथा गृहस्थ की शैया, आसन आदि पर बैठ जाता है, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ॥१९॥

Who wishes to get food from his caste-people–previous acquaintances, does not want to take alms from many rich and poor, higher or lower families and sits down on the seats and beds of householders, he is called a sinful sage. (19)

एयारिसे पंचकुसीलसंवुडे, रूवंधरे मुणिपवराण हेट्ठिमे।
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, न से इहं नेव परत्थ लोए ॥२०॥

जो इस प्रकार आचरण करता है, वह पाँच प्रकार के कुशील साधुओं के समान असंवृत है। सिर्फ मुनि-वेष का ही धारक है, श्रेष्ठ मुनियों में निकृष्ट है। वह इस लोक में विष की तरह निन्दनीय होता है। अतः वह न इस लोक का रहता है और न ही परलोक का रहता है ॥२०॥

Who behaves like this, he is unrestrained like five kuśīla saints (these are 1. lover of delicacies-*osanno*, 2. fallen–*pāsattho*, 3. indisciplined–*ahācchanda*, 4. misbehaved–*kuśīlo* and 5. addict–*āsakta*), though having the robe of an ascetic he is lowest among worthy monks, he is despised like a poison in this world. Therefore for him neither this world nor beyond. (20)

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए लोगमिणं तहावरं ॥२१॥

–त्ति बेमि।

जो इन सभी दोषों का सदा वर्जन करता है, वह मुनियों के मध्य में सुव्रत होता है तथा इस लोक में अमृत के समान पूजा जाता * और इस लोक तथा परलोक–दोनों लोकों का आराधक होता है ॥२१॥

–ऐसा मैं कहता हूं।

But who avoids all these faults, he becomes practiser of right vows among the monks. He is worshipped like nectar in this world and becomes propiliator (आराधक) of both worlds–this world and the next. (21)

–Such I speak

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५–विकृति और रस दोनों समानार्थक है। विकृति के नौ प्रकार हैं–१. दूध, २. दही, ३. नवनीत, ४. घृत, ५. तैल, ६. गुड़, ७. मधु, ८. मद्य और ९. मांस।

गाथा १७–पाषण्ड का अर्थ व्रत है। जो व्रतधारी है, वह पाषण्डी है। परपाषण्ड से यहाँ अभिप्राय अन्य मतों से है।

गाणंगणिक का अर्थ है "जल्दी-जल्दी गण बदलने वाला।" भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित संघव्यवस्था है कि भिक्षु जिस गण में दीक्षित हो, उसी में यावज्जीवन रहे। अध्ययन आदि के लिए यदि गण बदलने की जरूरत है तो गुरु की आज्ञा से अपने साधर्मिक गणों में जा सकता है। परन्तु दूसरे गण में जाकर भी कम से कम छह महीने तक तो गण का पुन: परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अत: जो मुनि बिना विशेष कारण के छह मास के भीतर ही गण परिवर्तन करता है, वह गाणंगणिक (गणबदलू) पापश्रमण है। (बृहद्वृत्ति)

गाथा १९–सामुदानिक भिक्षा का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है–१. अनेक घरों से लाई हुई भिक्षा और २. अज्ञात उञ्छ–अर्थात् अपरिचित घरों से थोड़ी-थोड़ी लाई हुई भिक्षा।

Salient Elucidations

Gāthā 15–Mental agitation or distortion of normal sense (विकृति) and tastiness or taste bear the same meaning Mental agitation is of nine kinds–1. milk, 2. curd, 3. butter, 4. ghṛta–ghee, 5. Oil–cooking oil, 6 treacle, 7. honey, 8. alcohol–wine, and 9. flesh–meat.

Gāthā 17–Pāṣaṇḍa means vow. Who observes vow is Pāṣaṇḍī. Para-Pāṣaṇḍa here means the other creeds and sects.

Gāṇamgaṇka means who changes the gaṇa very soon. The system of confederation (संघ व्यवस्था) commenced by Bhagawāna Mahāvīra is that the mendicant accepts the consecration in which gaṇa, should remain in the same till life. If change of gaṇa becomes essential for study then by consent of preceptor a mendicant can go to other gaṇa of the same religious order. But mendicant must remain in that gaṇa at least for six months; before this period the change of gaṇa cannot be done again. Therefore the monk who changes the gaṇa without any special cause, within the period of six months is gaṇaṁgaṇka (gaṇa changer) and he is a sinful sage. *(Vṛhad Vṛtti)*

Gāthā 19–Sāmudānika alm is interpretated in two ways–1. Alms taken from many houses and 2. from unacquainted houses taken alms in meagre quantity.

卐

अठारहवाँ अध्ययन : संजयीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम संजयीय इस अध्ययन के प्रमुख पात्र राजा संजय अथवा संयत के नाम पर आधारित है।

पिछले पाप श्रमणीय अध्ययन में निर्दोष श्रमणाचार पालन की प्रेरणा दी गई थी और इस अध्ययन में एक मृगया-प्रेमी हिंसक राजा संजय के हृदय-परिवर्तन तथा शुद्ध श्रमणाचार पालन की घटना दी गई है।

घटना क्रम

कांपिल्यपुर नगर का मृगया-प्रेमी राजा संजय (संयत) अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर शिकार के लिये वन में गया। सैनिकों ने मृगों को केशर उद्यान की ओर हाँका और राजा उन्हें बाणों से बींधने लगा। घायल हरिण इधर-उधर भाग रहे थे। उनमें से कुछ हरिण उद्यान में जाकर गिरे और मर गये। वहीं लता मण्डप में गर्दभालि मुनि ध्यानस्थ थे।

मृगों का पीछा करता हुआ राजा उद्यान में पहुँचा तो अनगार गर्दभालि को देखकर समझा कि ये हरिण इन्हीं मुनि के हैं। वह बहुत भयभीत हुआ। घोड़े से उतरा और करबद्ध होकर अपने अपराध (हरिणों को मारने के अपराध) की क्षमा माँगने लगा।

अनगार गर्दभालि ने ध्यान पूरा करके कहा—हे राजन् ! तुम्हें मेरी ओर से अभय है। तुम भी दूसरों के लिए अभयदाता बनो।

यदि इस घटना को प्रस्तुत अध्ययन की भूमिका मानें तो अध्ययन का प्रारम्भ 'अभयदाया भवाहि य' इन शब्दों से होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में श्रामण्य, दार्शनिक सिद्धान्तों और इतिहास का बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है।

अनगार गर्दभालि के उद्बोधनपरक उपदेश और संसारी रिश्ते-नातेदारों की स्वार्थपरता का वास्तविक स्वरूप जानकर राजा संजय दीक्षित हो जाता है। गुरुकृपा से ज्ञान-चारित्र में निष्णात बनकर एकल विहारी हो जाता है।

एकल विहारी राजर्षि संजय का शुभ मिलन एक क्षत्रिय राजर्षि से होता है। परस्पर वार्तालाप के दौरान विभिन्न दर्शनों, सिद्धान्तों, एकान्तवाद की चर्चा में क्षत्रिय राजर्षि भगवान महावीर द्वारा कथित अनेकान्तवाद को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं।

जैन दर्शन का यह स्थापित सत्य है कि अनेकान्तवाद के प्रथम प्रस्थापक भगवान ऋषभदेव थे। भगवान महावीर ने तो इसे पुनर्प्रचारित किया था।

अनेकान्तवाद की इस प्रतिष्ठापना को आधार बनाकर भरत, सगर, मघवा आदि १९ ऐसे महानात्माओं के दृष्टान्त सुनाते हैं जिन्होंने अनेकान्तवाद को भली-भाँति जाना और श्रमणत्व का पालनकर मुक्त हुए।

इन महापुरुषों के दृष्टान्त क्षत्रिय राजर्षि ने राजर्षि संजय को जिनशासन में और भी दृढ़ बनाने के लिए दिये।

द्रुमपत्रक अध्ययन में जिस प्रकार भगवान महावीर ने गौतम गणधर को क्षणमात्र भी प्रमाद न करने का उद्बोधन दिया था किन्तु था वह सबके लिए। इसी प्रकार क्षत्रिय राजर्षि का उद्बोधन, दार्शनिक चर्चा, अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठापना तथा महापुरुषों के दृष्टान्त सभी साधकों को जिनशासन में दृढ़ करने के प्रेरक सूत्र हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ५४ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 18
ROYAL SAGE SANJAYA

Foreview

This chapter is named Sañjayīya, on its pricipal character king Sañjaya or Saṁyata.

In the preceding seventeenth chapter inspiration was given to practise pure sage-conduct. While in this chapter the event is given the change of heart and practising pure sage-hood of a king who was fond of hunting and violent.

The Event-

Fond of hunting the king Sañjaya, ruler of Kāṁpilyapura went to forest with his fourfold army to prey the deers. Sentry tally ho the deers towards garden and king began to hunt them by arrows. Wounded deers were running all sides. Some of them reaching in garden fell and died there. There was standing in meditation homeless monk Gardabhāli in an avenue.

Chasing the deers king arrived in garden. Seeing monk Gardabhāli there, he thought that these deers are of this monk. He dismissed the horse and began to beg pardon of his fault of hunting deers.

Having completed his meditation monk Gardabhāli uttered–Be fear-free from me and you should also make every life free from fear.

If this event is taken as the introduction to this chapter, then this chapter begins with the words–make every life (living being) free from fear or fearless.

An effective and very good co-ordination of sagehood, philosophical doctrines and history presented in this chapter.

King Sañjaya becomes consecrated hearing the sermon of monk Gardabhāli and being aware about the reality of worldly connections and also the selfishness of relatives. Being expert in right knowledge and conduct he began to wander alone.

Lonely wanderer royal sage once meet the kṣatriya royal sage. During conversation kṣatriya royal sage established manysided viewpoint propounded by *Bhagawāna Mahāvīra* as the best in comparison to other philosophical doctrines and one-ended viewpoints.

It is the established truth of Jain philosophy that *Bhagawāna Ṛṣabhadeva* was the first commencer of polyended viewpoint and *Bhagawāna Mahāvīra* only propounded it again.

Taking as base the establishment of manyendedism, the kṣatriya monk relates the expamples of 19 enlightened great men like Bharat, Sagar, Maghvā etc., who became well-versed in manyendedism and practising monk-order, obtained liberation.

These examples were given by royal sage kṣatriya to royal sage Sañjaya for making him more fixed and steady in Jain order.

As *Bhagawāna Mahāvīra* bestowed his sermon to Gautama Gaṇadhara for not to be negligent even for awhile in the tenth chapter; but that was meant for all the religious persons wishing salvation. In the same way the initiation, philosophic conversation, establishment of manyendedism and the examples of noble and great persons given by kṣatriya royal sage are inspiring maxims for all practisers to make them steady in Jain order.

The present chapter contains 54 couplets.

अट्ठारसमं अज्झयणं : संजइज्जं
अष्टादश अध्ययन : संजयीय

कम्पिल्ले नयरे राया, उदिण्णबल-वाहणे ।
नामेणं संजए नाम, मिगव्वं उवणिग्गए ॥१॥

कांपिल्य नगर में बल-वाहन–सेना तथा रथादि से संपन्न संजय नाम का राजा राज्य करता था। एक बार वह मृगया–शिकार के लिए सेना आदि से सुसज्जित होकर निकला ॥१॥

The ruler of Kāṁpilyapura city named king Sañjaya, who possessed power, troops, chariots. Once he went out of city for a-hunting with his troops. (1)

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥२॥

वह संजय राजा चारों ओर से गज-सेना, अश्व-सेना, रथ-सेना तथा पैदल सैनिकों से परिवृत था ॥२॥

King Sañjaya was surrounded by troops of elephants, horses and military (footmen) on all sides. (2)

मिए छुभित्ता हयगओ, कम्पिल्लुज्जाणकेसरे ।
भीए सन्ते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥३॥

सैनिकों द्वारा कांपिल्य नगर के केशर उद्यान की ओर हाँके गये, भयभीत, श्रान्त मृगों को वह अश्वारूढ़ संजय राजा रस-लोलुप–मांस-लोलुप होकर मार रहा था ॥३॥

Chased by footmen to the Keśara garden of Kāṁpilyapura the frightened deers, the king who was fond of meat, began to shoot them by arrows. (3)

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झाय-ज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाणं झियायई ॥४॥

उस समय केशर उद्यान में ध्यान में लीन रहने वाले एक तपस्वी अनगार धर्म-ध्यान का एकाग्रचित्त से चिन्तन कर रहे थे ॥४॥

At that time a houseless penancer was in deep meditation with fixed mind. (4)

अप्फोवमण्डवम्मि, झायई झवियासवे ।
तस्सागए मिए पासं, वहेई से नराहिवे ॥५॥

आस्रवों का क्षय करने वाले वे अणगार एक लता मण्डप में ध्यान-लीन थे। उनके समीप आये हुए हरिणों को राजा संजय ने बाणों से मार डाला ॥५॥

Obstructor of inflow of karmas that houseless mendicant was deep in meditation in an avenue. King Sañjaya killed the deers who came near to mendicant. (5)

अह आसगओ राया, खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासई ॥६॥

जहाँ अनगार ध्यानस्थ थे, अश्वारूढ़ राजा संजय शीघ्र ही वहाँ आया। पहले उसने मृत हरिणों को देखा और फिर उसकी दृष्टि अनगार की ओर उठ गई ॥६॥

Now king Sañjaya on horseback came hastily there. First he saw the dead deers and then mendicant came in his sight. (6)

अह राया तत्थ संभन्तो, अणगारो मणाऽऽहओ ।
मए उ मन्दपुण्णेणं, रसगिद्धेण घन्तुणा ॥७॥

वहाँ अनगार को देखकर राजा सहसा भयाक्रांत हो गया। वह सोचने लगा—मैं कैसा मन्द-पुण्य, भाग्यहीन, रसलोलुप और हिंसक हूँ कि मैंने मृगों का वध करके व्यर्थ ही अनगार को पीड़ित किया ॥७॥

The king at once frightened. He began to think–How ill-fated, athirst to tastes and killer I am that murdering the deers I have uselessly injured (the feelings of) the mendicant. (7)

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो ।
विणएण वन्दए पाए, भगवं ! एत्थ मे खमे ॥८॥

अश्व को छोड़कर राजा ने विनयपूर्वक अनगार के चरणों में वन्दन किया और कहा—भगवन् ! इस अपराध के लिए मुझे क्षमा प्रदान करें ॥८॥

Dismissing the horse, king bowed respectfully at the feet of mendicant and said–reverend sir ! please pardon me for my offence. (8)

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए ।
रायाणं न पडिमन्तेइ, तओ राया भयद्दुओ ॥९॥

किन्तु उस समय वे अनगार भगवन्त मौन के साथ ध्यान में लीन थे। अतः उन्होंने राजा को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। राजा इससे और अधिक भयाक्रांत हुआ ॥९॥

But the reverend mendicant was plunged in deep silent meditation, so he did not respond. By it king became more frightened. (9)

संजओ अहमस्सीति, भगवं ! वाहराहि मे ।
कुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ ॥१०॥

भयाक्रान्त राजा नम्रतापूर्वक बोला—भगवन् ! मैं संजय राजा हूँ। आप मुझ से कुछ तो बोलें। क्योंकि कुपित हुए अनगार अपने तपःतेज से करोड़ों मनुष्यों को जलाकर भस्म कर सकते हैं ॥१०॥

Frightened king uttered modestly–Reverend sir ! I am king Sañjaya. You please speak even a-little to me. Because a mighty mendicant in his wrath, can reduce the millions of men to ashes. (10)

अभओ पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ? ॥११॥

(ध्यान पूरा करके) अनगार ने कहा-हे पृथ्वीपति ! तुमको अभय है ; लेकिन तुम भी अभयदाता बनो। इस अनित्य जीवलोक (जीवन) में तुम क्यों हिंसा में आसक्त हो रहे हो? ॥११॥

Completing his meditation the great mendicant spoke thus--Be fearless from me, but you also make all the living beings fear-free. In this transient world of living beings why are you addicted to violence ? (11)

जया सव्वं परिच्चज्ज, गन्तव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ? ॥१२॥

जब सब कुछ यहीं छोड़कर तुम्हें विवश होकर चले जाना है तब इस अनित्य जीवलोक में तुम क्यों राज्य में आसक्त बने हुए हो ? ॥१२॥

When you are bound to go, parting all these. Why do you cling to kingdom ? (12)

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय-चंचलं ।
जत्थ तं मुज्झसी रायं !, पेच्चत्थं नावबुज्झसे ॥१३॥

हे राजन् ! जिनमें तुम मोहमुग्ध बने हुए हो वह जीवन और सौन्दर्य विद्युत की चमक के समान चंचल है। तुम अपने परलोक के हित को नहीं समझ रहे हो ॥१३॥

This life and beauty you love, are like a flash of lightning. Being overwhelmed by these, O king ! You do not comprehend the benefits of the next world. (13)

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बन्धवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति, मयं नाणुव्वयन्ति य ॥१४॥

स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र तथा बन्धुजन-सभी जीवित व्यक्ति के साथ ही रहते हैं, मरने पर उसके साथ कोई भी नहीं जाता ॥१४॥

Wives (women), sons, friends and kins depend only on a living man, at the time of death none of these follow him. (14)

नीहरन्ति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते, बन्धू रायं ! तवं चरे ॥१५॥

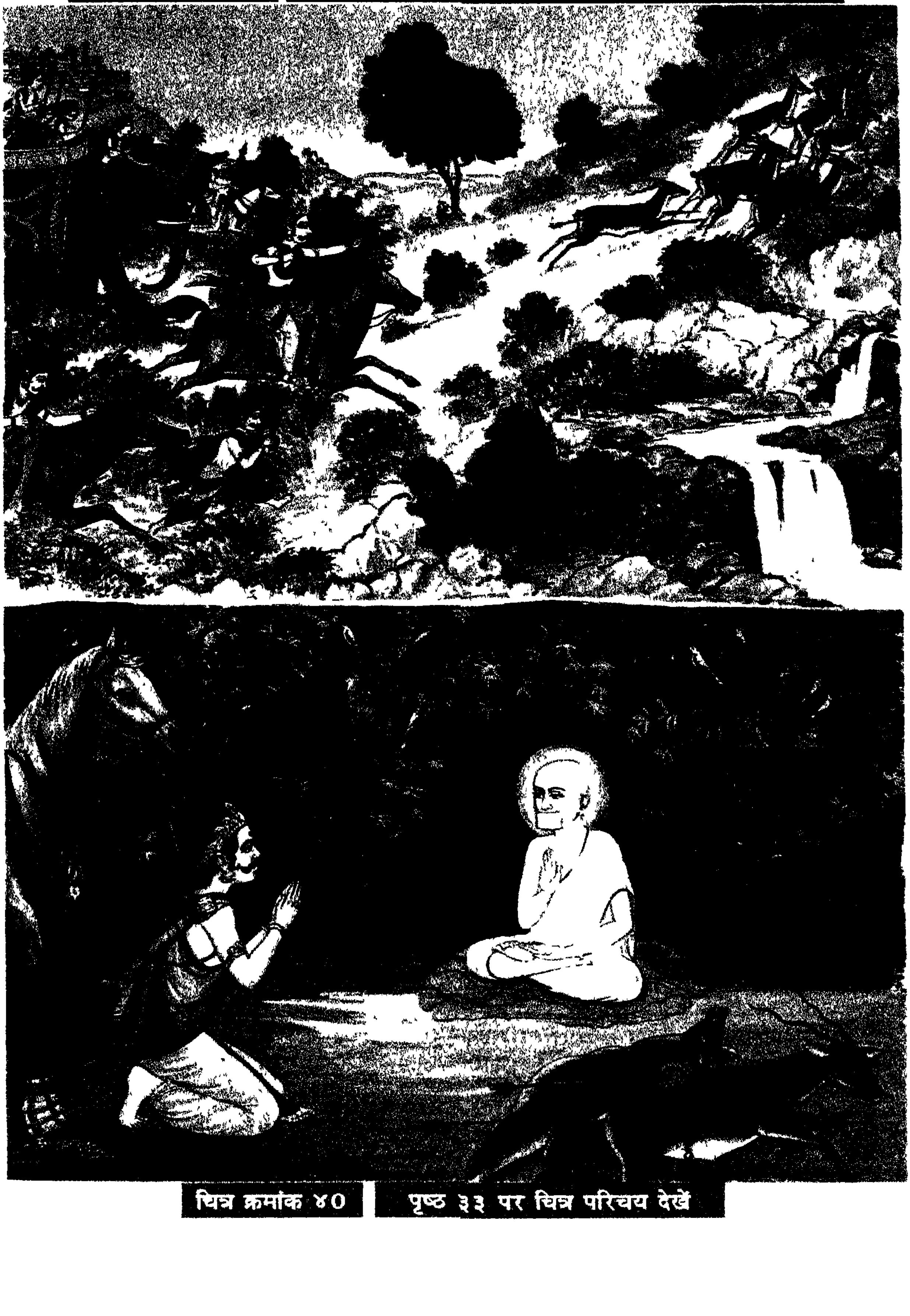
अत्यन्त दुःखी होकर पुत्र अपने मृत पिता को बाहर-श्मशान में निकाल देते हैं। इसी प्रकार पिता भी अपने पुत्र को और भाई अपने भाई को निकाल देते हैं। इसलिए हे राजन् ! तुम तपश्चरण करो ॥१५॥

Sons, full of sorrow, remove the corpse of their father to cemetry. In the same way father removes his son, and brother removes his brother. Therefore, O king ! You do penance. (15)

तओ तेणऽज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए ।
कीलन्तऽन्ने नरा रायं !, तुट्ठ-हट्ठ-मलंकिया ॥१६॥

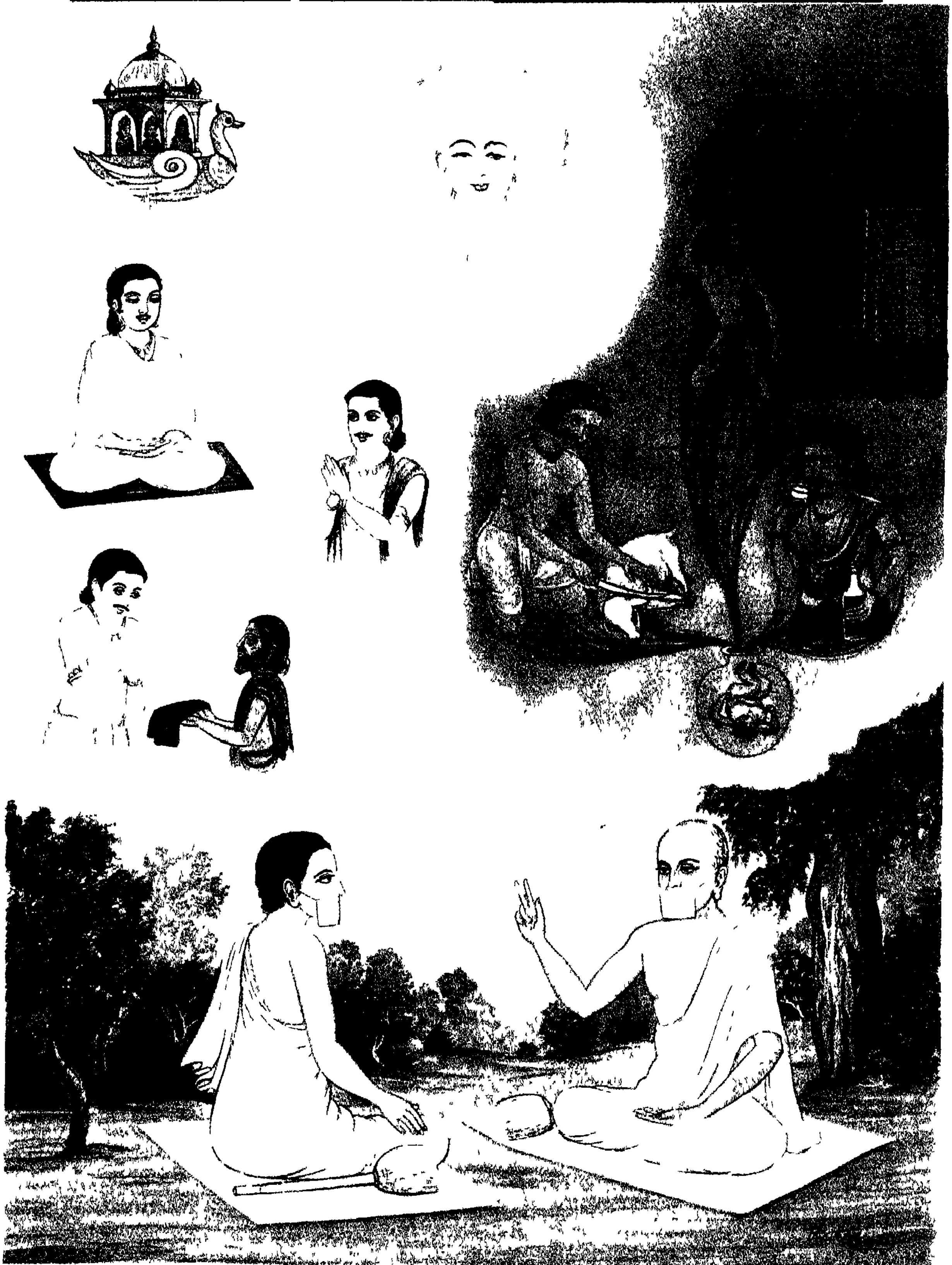
हे राजन् ! मृत्यु के उपरान्त उस व्यक्ति के उपार्जित धन एवं सुरक्षित स्त्रियों का अन्य व्यक्ति हृष्ट, तुष्ट और अलंकृत होकर उपभोग करते हैं ॥१६॥

ILLUSTRATION NO. 40 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 25



चित्र क्रमांक ४० पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 41 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४१ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

O king ! be sure, that after the death of a man, the other strong healthy person enjoys the earned amassed wealth and safeguarded wives (women) of the dead man with delights. (16)

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ॥१७॥

उस व्यक्ति ने जो भी दुःखकारक अथवा सुखकारक कर्म किये हैं, उनको साथ लेकर वह परभव में जाता है ॥१७॥

And that deceased man goes to next existence with his good or bad deeds. (17)

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अन्तिए ।
महया संवेगनिव्वेयं, समावन्नो नराहिवो ॥१८॥

अनगार से महान धर्म को सुनकर संजय राजा के हृदय में तीव्र संवेग और निर्वेद (वैराग्य) उत्पन्न हुआ ॥१८॥

Hearing the great religion from mendicant, the heart of king Sañjaya filled with intense wish to obtain salvation and disregard to worldly objects. (18)

संजओ चइउं रज्जं, निक्खन्तो जिणसासणे ।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अन्तिए ॥१९॥

राज्य को त्यागकर संजय राजा अनगार भगवान गर्दभालि के समीप जिनशासन में दीक्षित हो गया ॥१९॥

King Sañjaya gave up his kingdom and became consecrated in Jain order near the great mendicant Gardabhāli. (19)

चिच्चा रट्ठं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ ।
जहा ते दीसई रूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥२०॥

(क्षत्रिय राजर्षि) राष्ट्र को त्यागकर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक बार संजय राजर्षि से कहा–तुम वाह्य रूप से जैसे प्रसन्न दिखाई देते हो, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी प्रसन्न–विकार रहित है ॥२०॥

(Kṣatriya royal sage) Abandoning his nation and turning to a monk, a royal sage kṣatriya met the royal sage Sañjaya. During conversation the kṣatriya royal sage said to Sañjaya royal sage that 'as you look so happy in outward appearance, so your heart is also happy–fault-free. (20)

किं नामे ? किं गोत्ते ?, कस्सट्ठाए व माहणे ? ।
कहं पडियरसी बुद्धे ?, कहं विणीए त्ति वुच्चसि ? ॥२१॥

आपका नाम क्या है? गोत्र क्या है? किस प्रयोजन से आपने मुनिधर्म स्वीकार किया है? किस प्रकार आचार्यों की परिचर्या करते हो? और कैसे विनीत कहलाते हो? ॥२१॥

What is your name and lineage ? With what purpose you accepted consecration ? How do you serve the enlighteneds and how did you called a modest monk. (21)

संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो ।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ॥२२॥

(संजय राजर्षि) मेरा नाम संजय तथा गोत्र गौतम है। ज्ञान और चारित्र के पारगामी अनगार गर्दभालि मेरे आचार्य हैं ॥२२॥

(royal sage Sañjaya) My name is Sañjaya and lineage Gautama. My preceptor is monk Gardabhāli, who is conversant with scriptural knowledge and conduct (right knowledge and right conduct.) (22)

किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणी !
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासई ॥२३॥

(क्षत्रिय राजर्षि) हे महामुने ! क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान-इन चार स्थानों (वादों) के द्वारा कुछ एकान्तवादी तत्त्वज्ञ कुत्सित तत्व की प्ररूपणा करते हैं ॥२३॥

(kṣatriya royal sage) O great monk ! kriyā, akriyā, vinaya and ajñāna–by these four disputations some heretics expound the ill-elements. (23)

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुडे ।
विज्जा-चरणसंपन्ने, सच्चे सच्चपरक्कमे ॥२४॥

बुद्ध-तत्त्वज्ञानी, परिनिर्वृत्त-परिशांत, ज्ञान-चारित्र से संपन्न, सत्यवादी, सत्य पराक्रमी ज्ञातवंशीय भगवान महावीर ने इस प्रकार प्रगट किया है ॥२४॥

Bhagawāna Mahāvīra of jñāta lineage, who was enlightened, wise, metaphysician, calm, liberated, opulent with right knowledge and conduct, truthful and of right energy, has expressed–(24)

पडन्ति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

जो मानव पापकर्म करते हैं वे घोर नरक में गिरते हैं और जो श्रेष्ठ धर्म का आचरण करते हैं वे देवगति में जाते हैं ॥२५॥

Men who commit sins go to hell and practisers of best religious order attain god-existence. (25)

मायावुइयमेयं तु, मुसाभासा निरत्थिया ।
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि च ॥२६॥

एकान्तवादियों का कथन कपट से भरा है, मिथ्या है, निरर्थक है। मैं इन असत्य प्ररूपणाओं से निवृत्त और बचकर रहता हूँ ॥२६॥

The expression of particularists (एकान्तवादी) is full of deceit, false and vain; I remain far away from these false expressions. (26)

सव्वे ते विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥२७॥

मिथ्यादृष्टि और अनार्यों को मैंने जान लिया है। परलोक का अस्तित्व होने से मैं अपनी और पराई आत्मा को सम्यक् प्रकार से जानता हूँ ॥२७॥

I have known these false believers and in-nobles. I know that the existence of next life is a fact. So I very well know my own soul and souls of others. (27)

अहमासी महापाणे, जुइमं वरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ॥२८॥

मैं पिछले जन्म में पाँचवें देवलोक के महाप्राण विमान में वर्ष शतोपम आयु वाला द्युतिमान देव था। जिस प्रकार यहाँ मानव-जीवन में सौ वर्ष की आयु पूर्ण मानी जाती है उसी प्रकार देवलोक में पल्योपम और सागरोपम की आयु पूर्ण मानी जाती है। ऐसी ही पूर्ण आयु वहाँ मेरी भी थी ॥२८॥

In my previous birth, I was a lustrous god in Mahāprāṇa palace of fifth heaven having the duration of divine varṣa śatopama. As in this human-life the life-duration of one hundred years supposed as complete age, in the same way the life-duration of varṣa śatopama is meant as complete age. Such complete age was of mine also. (28)

से चुए बम्भलोगाओ, माणुस्सं भवमागए ।
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ॥२९॥

मैं ब्रह्मलोक से अपनी आयु पूर्ण होने पर इस मनुष्य लोक में आया हूँ। जिस प्रकार मैं अपनी आयु को जानता हूँ उसी प्रकार अन्यों की आयु को भी जानता हूँ ॥२९॥

I took birth in this human-abode completing the god-age from Brahmaloka heaven. As I know my own age, so I know the ages of all others. (29)

नाणारुइं च छन्दं च, परिवज्जेज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

अनेक प्रकार की रुचि, मनःकल्पित अभिप्राय और प्रयोजनशून्य व्यापारों का परित्याग करके संयतात्मा मुनि इस तत्त्वज्ञान रूपी विद्या का अनुसरण करता है ॥३०॥

Abandoning the manifold interests, fancies and purposeless activities; the restrained monk follows this elementology. (30)

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमन्तेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

मैं शुभाशुभ फल बताने वाले प्रश्नों और गृहस्थों की मंत्रणाओं से पृथक् रहता हूँ। अहो ! रात-दिन धर्माचरण के लिए मुझे तत्पर जानकर तुम भी तप का आचरण करो ॥३१॥

I remain away from the questions resulting auspicious and inauspicious consequences and secret talks of householders. I practise religious order day and night (twenty four hours), knowing such you also practise penance. (31)

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥३२॥

तुमने जो मुझसे सम्यक् शुद्धचित्त से काल (आयु) के विषय में प्रश्न किया है, वह सर्वज्ञ ने प्रकट किया है तथा वह जिनशासन में है ॥३२॥

With pure heart you questioned me about time (age), that is answered by omniscient and it is in Jain order. (32)

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं ॥३३॥

धीर पुरुष क्रिया में रुचि रखता है और अक्रिया का परित्याग करता है। सम्यग्दर्शन से दृष्टि सम्पन्न होकर अति दुश्चर श्रुत–चारित्र धर्म का आचरण करो ॥३३॥

Steady and wise person takes interest or believes in the existence of soul (क्रिया) and avoids the non-existence of soul (अक्रिया). Being opulent with right faith practise the religious order of knowledge and conduct, which is very difficult to practise. (33)

एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थ–धम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं, चेच्चा कामाइ पव्वए ॥३४॥

अर्थ (मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्यभूत उद्देश्य) और धर्म से उपशोभायमान इस पुण्यपद–पवित्र उपदेश वचन को सुनकर भरत चक्रवर्ती सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के राज्य और काम-भोगों को त्यागकर प्रव्रजित हुए थे ॥३४॥

Hearing this meritorious exhortation, aiming to obtain emancipation and adorned with true religion, universal monarch Bharata became consecrated in Jain monk-order abandoning all the worldly pleasures and amusements and vast kingdom of Bharata-kṣetra–the whole Bhārata-varṣa. (34)

सगरो वि सागरन्तं, भारहवासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे ॥३५॥

नराधिप सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त भारतवर्ष के राज्य तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य को त्यागकर दया–संयम की साधना द्वारा परिनिर्वृत्त–मुक्त हुए ॥३५॥

Monarch Sagara, the ruler of men, giving up the ocean-girt kingdom of Bhārata-varṣa and his unrivalled fortunes; and by the practice of compassion and restrain obtained liberation. (35)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥३६॥

महाऋद्धि सम्पन्न, महायशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने भी भारतवर्ष के राज्य को त्यागकर प्रव्रज्या स्वीकार की थी ॥३६॥

Opulent with great fortunes and glories monarch Maghavā also accepted consecration and gave up all these. (36)

सणंकुमारो मणुस्सिन्दो, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सो वि राया तवं चरे ॥३७॥

महर्द्धिक, मानवेन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती भी अपने पुत्र को राजसिंहासन देकर तपश्चर्या में लीन हो गये थे ॥३७॥

Great fortunate, ruler of men, monarch Sanatkumāra also plunged in penances enthroning his son. (37)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
सन्ती सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३८॥

महानऋद्धि के स्वामी और लोक में शांति करने वाले शांतिनाथ (तीर्थंकर) चक्रवर्ती ने भी संपूर्ण भारतवर्ष के राज्य का त्यागकर, प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अनुत्तर गति-सिद्धि गति प्राप्त की ॥३८॥

Owner of highest power, prosperity and wealth, showering peace in three worlds, universal monarch, Śāntinātha tīrthaṁkara also gave up the vast kingdom of Bhāratavarṣa and being consecrated obtained emancipation. (38)

इक्खागरायवसभो, कुन्थू नाम नराहिवो ।
विक्खायकित्ती धिइमं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३९॥

इक्ष्वाककुल के राजाओं में श्रेष्ठ, विख्यात कीर्ति वाले भगवान कुन्थुनाथ नरेश्वर-चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण कर अनुत्तर सिद्धि गति प्राप्त की ॥३९॥

Best among the kings of Ikṣvāka generation (इक्ष्वाक कुल) and with wide fame, ruler of men, universal monarch, Bhagawāna Kunthunātha accepted consecration and obtained emancipation. (39)

सागरन्तं जहित्ताणं, भरहं नरवरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

आ-समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष के राज्य को त्यागकर कर्मरज को दूर करके नरों में श्रेष्ठ अरनाथ चक्रवर्ती ने मोक्ष गति प्राप्त की ॥४०॥

Renouncing the kingdom of ocean-girt Bhāratavarṣa, and exhaustively shedding off karma-dirt (micro particles of kārmaṇa vargaṇā), best in human-beings, universal monarch Aranātha attained emancipation. (40)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी नराहिओ ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥४१॥

भारतवर्ष के विशाल राज्य तथा उत्तमोत्तम भोगों को त्यागकर महर्द्धिक चक्रवर्ती महापद्म नरेश्वर ने तप का आचरण किया था ॥४१॥

Renouncing the wide-spread kingdom of Bhāratavarṣa and exquisite pleasures, great fortuned monarch Mahāpadma practised penances. (41)

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माणनिसूरणो।
हरिसेणो मणुस्सिन्दो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

शत्रु राजाओं का मान मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी का एकच्छत्र शासन किया और फिर सर्वस्व त्यागकर संयम ग्रहण किया तथा मुक्ति प्राप्त की ॥४२॥

Humbler of all hostile kings, monarch Hariṣeṇa brought the whole earth under his sceptre and then renouncing all, accepted restrain and obtained salvation. (42)

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

सहस्रों राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य का परित्याग किया और जिनोक्त संयम का आचरण करके मुक्ति प्राप्त की ॥४३॥

The best renouncer monarch Jaya, with thousands of kings, abandoned his whole kingdom and practised restrain, as precepted by Jinas–the Jain monk-order and completing his human-duration attained salvation. (43)

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताण मुणी चरे।
दसण्णभद्दो निक्खन्तो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

साक्षात् शक्रेन्द्र द्वारा प्रेरित हुए दशार्णभद्र राजा ने प्रमुदित मन से अपने दशार्ण देश को छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की और मुनिधर्म का आचरण किया ॥४४॥

Inspired by Śakra (the king of gods of first heaven) himself, the king Daśārṇabhadra, ruler of Daśārṇa country, renouncing his flourishing state, accepted consecration and practised monk-conduct. (44)

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥४५॥

विदेहराज नमि राजर्षि ने साक्षात् इन्द्र द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी अपना राजभवन और सम्पूर्ण राज्य छोड़कर अपनी आत्मा को नमित किया और श्रमणत्व में सम्पूर्ण रूप से स्थिर हो गये ॥४५॥

Even directed by Śakra himself (not to be an ascetic) the ruler of Videha country, abandoning his whole kingdom and palaces humbled his own soul and became fixed in sagehood. (45)

करकण्डू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो।
नमी राया विदेहेसु, गन्धारेसु य नग्गई ॥४६॥

कलिंग देश में करकण्डु, पांचाल देश में राजा द्विमुख, विदेह राज्य में नमिराज और गांधार देश में नग्गति राजा ॥४६॥

King Karakandu of Kaliṅga country, king Dvimukha of Pāñcāla country, king Nami of Videha country and king Naggati of Gāndhāra country–(46)

एए नरिन्दवसभा, निक्खन्ता जिणसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

ये सभी राजाओं में उत्तम, वृषभ के समान श्रेष्ठ थे। इन चारों राजाओं-प्रत्येकबुद्धों ने अपने-अपने पुत्रों को राज्यभार दिया और प्रव्रजित होकर मुनिधर्म में सर्व रूपेण स्थिर हो गये ॥४७॥

These all the four were excellent among all the kings and best like an ox. All these four were enlightened visualising ordinary and most simple events. All these four enthroned their sons and being consecrated fixed in monkhood wholely. (47)

सोवीररायवसभो, चेच्चा रज्जं मुणी चरे ।
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ सौवीर नरेश उदायन ने राज्य का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की, मुनिधर्म का आचरण किया और मुक्ति प्राप्त की ॥४८॥

The best as an ox among all the kings,' the ruler of Sauvīra region king Udāyana, renouncing his kingdom, accepted consecration, practised monk-order and attained liberation. (48)

तहेव कासीराया, सेओ-सच्चपरक्कमे ।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥४९॥

इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमी काशी नरेश ने काम-भोगों का त्याग कर कर्म रूपी महावन को भस्म कर दिया ॥४९॥

In the same way king of Kāśī, exerted in merits and truth, renouncing all the pleasures, consumed great forest of karmas i.e., totally destructed all the karmas. (49)

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥५०॥

अमर कीर्तिधारी, महायशस्वी, गुण समृद्ध विजय राजा राज्य को तृणवत् त्यागकर प्रव्रजित हो गया ॥५०॥

Greatly glorified and opulent with virtues king Vijaya, abandoning his kingdom like a piece of straw, accepted consecration. (50)

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
महाबलो रायरिसी, अद्दाय सिरसा सिरं ॥५१॥

इसी तरह अव्याकुल मन से उग्र तपश्चर्या करके राजर्षि महाबल ने सिर देकर–अहंकार का त्याग कर सिर–शीर्ष स्थान मोक्ष प्राप्त किया ॥५१॥

Like this, practising severe penances with an undistracted mind, king Mahābala attained salvation, the highest place by giving up his head–meaning giving up his pride. (51)

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे ?
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥५२॥

ये भरत आदि शूरवीर दृढ़ पराक्रमी राजा जिनशासन में विशेषता जानकर ही प्रव्रजित हुए थे। अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई धीर पुरुष उन्मत्तों के समान पृथ्वी पर कैसे विचरण करे ॥५२॥

Being well aware of the out-topping excellence of Jain-order these intrepid champions like Bharat etc., were consecrated. How a wise and steady man, being inspired by reasonless disputations (अहेतुवाद) can live on earth as a madman. (53)

अच्चन्तनियाणखमा, सच्चा मे भासियावई ।
अतरिंसु तरन्तेगे, तरिस्सन्ति अणागया ॥५३॥

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम- पूर्णरूप से आत्म शुद्धि करने वाली सत्यवाणी कही है। इस वाणी को धारण करके अतीत काल में अनेक व्यक्ति संसार समुद्र से पार हो गये हैं, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में भी पार होंगे ॥५३॥

I have spoken to you the dialect which is utter-true and excellently capable to purification (अच्चन्तनियाणखमा). By taking this dialect to mind and heart innumerable persons crossed the ocean of world in past, crossing now in present and will cross in future. (53)

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ?
सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे हवइ नीरए ॥५४॥

–त्ति बेमि।

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवाद में अपनी आत्मा को कैसे लगा सकता है? जो सभी प्रकार के संगों–सम्बन्धों से विनिर्मुक्त होता है, वह कर्ममल से रहित होकर सिद्ध होता है ॥५४॥ **–ऐसा मैं कहता हूँ।**

How can a steady adept indulge his soul in causeless disputations ? Who is free from all the worldly ties–connections, he becomes liberated, becoming free from the whole karma-dust. (54) **–Such I Speak.**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २३-प्राचीन युग में दार्शनिक विचारधारा के चार प्रमुख वाद थे-१. क्रियावाद, २. अक्रियावाद, ३. अज्ञानवाद और ४. विनयवाद। सूत्रकृतांग के अनुसार इन चारों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

(१) क्रियावादी-आत्मा के अस्तित्व को तो मानते थे, पर उसके सर्वव्यापक या अव्यापक, कर्ता या अकर्ता, मूर्त या अमूर्त आदि स्वरूप के सम्बन्ध में संशय रखते थे।

(२) अक्रियावादी-आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं मानते थे। अतः उनके यहाँ पुण्य, पाप, लोक, परलोक, संसार और मोक्ष आदि की कोई भी मान्यता नहीं थी। यह प्राचीन युग की नास्तिक परम्परा है।

(३) अज्ञानवादी-अज्ञान से ही सिद्धि मानते थे। उनके मत में ज्ञान ही सारे पापों का मूल है, सभी द्वन्द्व ज्ञान में से ही खड़े होते हैं। ज्ञान के सर्वथा उच्छेद में ही उनके यहाँ मुक्ति है।

(४) विनयवादी-एकमात्र विनय से ही मुक्ति मानते थे। उनके विचार में देव, दानव, राजा, रंक, तपस्वी, भोगी, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, शृगाल आदि हर किसी मानव एवं पशु-पक्षी आदि को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने से ही क्लेशों का नाश होता है।

क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और विनयवादियों के ३२ भेद थे। इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ पाषण्ड थे।

गाथा २८-क्षत्रिय मुनि के कहे हुये "दिव्यवर्षशतोपम" का भाव यह है कि जैसे मनुष्य यहाँ वर्तमान में लोकदृष्टि से सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगता है, वैसे ही मैंने वहाँ देवलोक में दिव्य सौ वर्ष की आयु का भोग किया है।

"पाली" से पल्योपम और "महापाली" से सागरोपम अर्थ किया जाता है। "पाली" साधारण जलाशय से उपमित है, और "महापाली" सागर से।

पल्योपम (एक योजन के ऊँचे और विस्तृत पल्य, बोरा आदि या कूप) को सात दिन के जन्म लिये बालक के बारीक केशों से (केश के अग्र भागों से) ठसाठस भर दिया जाय, फिर सौ-सौ वर्ष के बाद क्रम से एक-एक केशखण्ड को निकाला जाये। जितने काल में वह पल्य अर्थात् कुआँ रिक्त हो, उतने काल को एक पल्य कहते हैं। इस प्रकार के दस कोड़ाकोडी पल्यों का एक सागर होता है। सागर अर्थात् समुद्र के जलकणों जितना विराट लम्बा कालचक्र। यह एक उपमा है, अतः इसे पल्योपम और सागरोपम भी कहते हैं।

अध्ययन में वर्णित प्राचीन राजाओं का कथानक उत्तराध्ययन महिमा में देखें। संक्षिप्त सूचना चित्रों में दी है।

गाथा ५१-"सिरसा सिर" का अर्थ है-शिर देकर शिर लेना। अर्थात् जीवन की कामना से मुक्त रहकर मानव शरीर में सर्वोपरिस्थ शिर के समान सर्वोपरिवर्ती मोक्ष को प्राप्त करना।

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व्व महिं चरे ?
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥५२॥

ये भरत आदि शूरवीर दृढ़ पराक्रमी राजा जिनशासन में विशेषता जानकर ही प्रव्रजित हुए थे। अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई धीर पुरुष उन्मत्तों के समान पृथ्वी पर कैसे विचरण करे ॥५२॥

Being well aware of the out-topping excellence of Jain-order these intrepid champions like Bharat etc., were consecrated. How a wise and steady man, being inspired by reasonless disputations (अहेतुवाद) can live on earth as a madman. (53)

अच्चन्तनियाणखमा, सच्चा मे भासियावई ।
अतरिंसु तरन्तेगे, तरिस्सन्ति अणागया ॥५३॥

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम- पूर्णरूप से आत्म शुद्धि करने वाली सत्यवाणी कही है। इस वाणी को धारण करके अतीत काल में अनेक व्यक्ति संसार समुद्र से पार हो गये हैं, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में भी पार होंगे ॥५३॥

I have spoken to you the dialect which is utter-true and excellently capable to purification (अच्चन्तनियाणखमा). By taking this dialect to mind and heart innumerable persons crossed the ocean of world in past, crossing now in present and will cross in future. (53)

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ?
सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे हवइ नीरए ॥५४॥

—त्ति बेमि।

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवाद में अपनी आत्मा को कैसे लगा सकता है? जो सभी प्रकार के संगों-सम्बन्धों से विनिर्मुक्त होता है, वह कर्ममल से रहित होकर सिद्ध होता है ॥५४॥ **—ऐसा मैं कहता हूँ।**

How can a steady adept indulge his soul in causeless disputations ? Who is free from all the worldly ties–connections, he becomes liberated, becoming free from the whole karma-dust. (54)

—Such I Speak.

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २३-प्राचीन युग में दार्शनिक विचारधारा के चार प्रमुख वाद थे-१. क्रियावाद, २. अक्रियावाद, ३. अज्ञानवाद और ४. विनयवाद। सूत्रकृतांग के अनुसार इन चारों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

(१) क्रियावादी-आत्मा के अस्तित्व को तो मानते थे, पर उसके सर्वव्यापक या अव्यापक, कर्ता या अकर्ता, मूर्त या अमूर्त आदि स्वरूप के सम्बन्ध में संशय रखते थे।

(२) अक्रियावादी-आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं मानते थे। अतः उनके यहाँ पुण्य, पाप, लोक, परलोक, संसार और मोक्ष आदि की कोई भी मान्यता नहीं थी। यह प्राचीन युग की नास्तिक परम्परा है।

(३) अज्ञानवादी-अज्ञान से ही सिद्धि मानते थे। उनके मत में ज्ञान ही सारे पापों का मूल है, सभी द्वन्द्व ज्ञान में से ही खड़े होते हैं। ज्ञान के सर्वथा उच्छेद में ही उनके यहाँ मुक्ति है।

(४) विनयवादी-एकमात्र विनय से ही मुक्ति मानते थे। उनके विचार में देव, दानव, राजा, रंक, तपस्वी, भोगी, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, शृगाल आदि हर किसी मानव एवं पशु-पक्षी आदि को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने से ही क्लेशों का नाश होता है।

क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और विनयवादियों के ३२ भेद थे। इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ पाषण्ड थे।

गाथा २८-क्षत्रिय मुनि के कहे हुये "दिव्यवर्षशतोपम" का भाव यह है कि जैसे मनुष्य यहाँ वर्तमान में लोकदृष्टि से सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगता है, वैसे ही मैंने वहाँ देवलोक में दिव्य सौ वर्ष की आयु का भोग किया है।

"पाली" से पल्योपम और "महापाली" से सागरोपम अर्थ किया जाता है। "पाली" साधारण जलाशय से उपमित है, और "महापाली" सागर से।

पल्योपम (एक योजन के ऊँचे और विस्तृत पल्य, बोरा आदि या कूप) को सात दिन के जन्म लिये बालक के बारीक केशों से (केश के अग्र भागों से) ठसाठस भर दिया जाय, फिर सौ-सौ वर्ष के बाद क्रम से एक-एक केशखण्ड को निकाला जाये। जितने काल में यह पल्य अर्थात् कुआँ रिक्त हो, उतने काल को एक पल्य कहते हैं। इस प्रकार के दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है। सागर अर्थात् समुद्र के जलकणों जितना विराट लम्बा कालचक्र। यह एक उपमा है, अतः इसे पल्योपम और सागरोपम भी कहते हैं।

अध्ययन में वर्णित प्राचीन राजाओं का कथानक उत्तराध्ययन महिमा में देखें। संक्षिप्त सूचना चित्रों में दी है।

गाथा ५१-"सिरसा सिर" का अर्थ है-शिर देकर शिर लेना। अर्थात् जीवन की कामना से मुक्त रहकर मानव शरीर में सर्वोपरिस्थ शिर के समान सर्वोपरिवर्ती मोक्ष को प्राप्त करना।

Salient Elucidations

Gāthā 23–In ancient age there were four disputations of philosophical school of thought–1. Kriyāvāda 2. Akriyāvāda 3. Ajñānavāda and 4. Vinayavāda. Detailed description of all these can be read in Sūtrakṛtāṅga.

(1) *Kriyāvādins* accept the existence of soul, but they were suspicious about its conception like–prevalence-non-prevalence, doer-undoer, with form or formless etc.

(2) *Akriyāvādins* do not accept even the existence of soul. Therefore in their sect there was no acceptance of merit-demerit, this loka other loka, world-salvation or bondage-liberation etc. This was the heretic (नास्तिक) tradition of that age.

(3) *Ajñānavādins* accept attainment of salvation by ingnorance. In their opinion, only knowledge is the root cause of all sins. All the cobats blow up from only knowledge. Salvation is attained by uprooting knowledge in their opinion.

(4) *Vinayavādins* accept-suppose that liberation can be attained by only courtesy and modesty or humility According to their thinking all the chagrins can be removed only by saluting with faith all the beings of world, may they be gods, demons, kings, poor, penancers, afflicted to sensual pleasures, elephants, horses, cows, buffalloes, jackals and every man, even beasts and birds.

There were 180 divisions of *Kriyāvādins*, 84 of *Akriyāvādins*, 67 of *Ajñānavādins* and 32 of *Vinayavādins* Thus there were 363 divisions of heretics in all at that time.

Gāthā 28–The meaning of 'Divyavarṣaśatopama', as told by kṣatriya monk, is that–as in this human world according to the viewpoint of human-folk a man enjoys the complete duration of 100 years, in the same way I have enjoyed the duration of complete Divya hundred years' gods' life.

'*Pālī*' is meant for *Palyopama* and *Mahāpālī* for *Sāgaropama*. Pāli is like an ordinary tank and *Mahāpālī* as an ocean.

Palyopama–one Yojan (9.9 miles high with same vastness a palya) a sack or a well of the size as aforesaid, if filled up to the brim by smallest bits of the hairs of 7 days' child and then after per hundred years one bit of hair is taken out. The well completely emptied in a period, that is called a *palya* Ten crores multiplied by ten crores palyas make a sāgara. Thus sāgara is a circle of time as wide and long as the water-drops of an ocean. It is a simile. Therefore these are also called as *palyopama* and *sāgaropama*.

Gāthā 51–sirasā sira means by giving head, taking head. Its inherent meaning is–becoming free from the wish of life, highest placed in manly body–like a head, to attain the highest abode–salvation.

Note–For the episodes of the kings, hinted in this chapter, the full description is given in the book *Uttarādhyayana Mahimā*. Here (in this book) the short information given through illustrations. So readers are requested to read *Uttarādhyayana Mahimā* for detailed study and information about the great men and kings mentioned in this chapter.

卐

उन्नीसवाँ अध्ययन : मृगापुत्रीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सुग्रीव नगर के राजा बलभद्र और उनकी रानी मृगावती के सुपुत्र युवराज मृगापुत्र के नाम पर निर्धारित किया गया है। युवराज का नाम बलश्री था किन्तु मृगापुत्र नाम से वह अधिक विश्रुत था।

पिछले अध्ययनों से इस अध्ययन में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नरक और नरक के दुःखों का अनुभूत वर्णन हुआ है।

एक बार युवराज मृगापुत्र अपने महल के गवाक्ष में बैठा नगर की चहल-पहल देख रहा था। उसकी दृष्टि में, एक मुनि आते हैं। मुनि के तेजस्वी ललाट और तपस्या से कृश दुर्बल शरीर को देखकर उसका चिन्तन गहरा होता है, उसे जातिस्मरण ज्ञान (पिछले जन्मों का ज्ञान) हो जाता है कि पिछले जन्म में मैं भी इसी प्रकार एक श्रमण था।

बस, पूर्वजन्म की स्मृति के कारण उसका मन संसार से विरक्त हो जाता है। माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगता है। माता-पिता के यह कहने पर कि श्रमणाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। उत्तर में मृगापुत्र बताता है कि मेरी आत्मा ने नरकों में ऐसे कष्ट भोगे हैं, जिनका शतांश भी इस मानव लोक में नहीं है।

और फिर वह नरक के दुःखों का वर्णन करता है। यह वर्णन इतना सजीव, रोमांचकर और भयप्रद है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नारकीय यातनाओं को पढ़कर शरीर में सिहरन भर जाती है, हृदय काँपने लगता है। (चित्र देखें)

माता-पिता अपने पुत्र को दीक्षित होने से रोकने का अन्तिम प्रयास करते हैं कि—श्रमणत्व धारण करने के पश्चात् यदि कोई रोग हो जाता है तो उसकी चिकित्सा नहीं कराई जाती।

मृगापुत्र इसका यथातथ्य उत्तर देता है कि वन में मृगों के रोगी होने पर उनकी चिकित्सा भी कोई नहीं कराता, वे स्वयं ही स्वस्थ हो जाते हैं। मैं भी मृगचर्या करूँगा।

पुत्र के दृढ़ संकल्प और तीव्र वैराग्य को जानकर माता-पिता ने दीक्षा की अनुमति दे दी। दीक्षित होकर मृगापुत्र ने उत्कृष्ट तपःसाधना करके मुक्ति प्राप्त की।

इस अध्ययन में ९९ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 19
MRGĀPUTRA

Foreview

The title of this chapter based on the son and crown prince of king Balabhadra, ruler of Sugrīvanagara, and his queen Mṛgāvatī. The name of the crown-prince was Balaśrī but he was famed by name Mṛgāputra. So this chapter titled as Mṛgāputra. Another cause seems that Mṛgāputra is the principal character of this chapter.

Special characterstic of this chapter is that it is, totally different from all preceding chapters. In this chapter the agonies, torments, sufferings of hellish beings are described in detail and with full force.

Once prince Mṛgāputra was watching the persons coming and going on the royal road, sitting by the window of his palace. His glance fell on a sage. Seeing the brilliant forehead and weak constructure of sage due to penances; his thinking went deep. He recollected the memory of his former life and lives that I was also a sage in my former life.

Due to the memory of his former lives; his heart disinclined towards the world and worldly ties. He came to his parents to get their consent for consecration. When parents say that to practise monk-conduct is as difficult as to move on the edge of sharp sword bare foot. Then in reply Mṛgāputra expresses the severe torments of hellish beings and says that here in this world agonies are not one-hundredth part in comparison to hellish agonies.

He describes the agonies of hell. This description is so exciting, horripilate and fearful that the hairs stand on their head. By reading the hellish torments, body begins to shiver and heart trembles. (see illustration).

Parents make their last effort to check their son by saying that after consecration, if any disease catches up, then no treatment can be given.

Mṛgāputra says in reply that none gives treatment to deers in forest. They are cured by themselves. I will also do the same.

Knowing the firm resolve and keen apathy of their son, the parents gave their consent. Accepting consecration Mṛgāputra practised excellent penances and attained salvation.

This chapter contains 99 couplets.

卐

एगूणविंसइमं अज्झयणं : मियापुत्तिज्जं
एकोनविंश अध्ययन : मृगापुत्रीय

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए।
राया बलभद्दे त्ति, मिया तस्सऽग्गमाहिसी ॥१॥

वनों और उद्यानों से शोभायमान सुरम्य सुग्रीवनगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगा था ॥१॥

Adorned by gardens and parks, there was a pleasant city named Sugrīvanagara. King Balabhadra ruled over this city and the name of his queen was Mṛgā. (1)

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।
अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

उनके बलश्री नाम का एक पुत्र था जो मृगापुत्र के नाम से विख्यात था। वह माता-पिता को अतिप्रिय था। वह युवराज तथा दमीश्वर (शत्रुओं का दमन करने वालों में प्रमुख) था ॥२॥

Their son was Balaśrī, but he was popular by the name Mṛgāputra (son of queen Mṛgā). He was much dear to his parents and was crown-prince. He was also a foremost subduer of enemies. (2)

नन्दणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं।
देवो दोगुन्दगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥३॥

वह सदा दोगुन्दक देवों के समान प्रसन्नचित्त रहकर आनन्ददायक महल में निवास करता हुआ अपनी रमणियों के साथ क्रीड़ा में निमग्न रहता था ॥३॥

Living in his comfortable palace named Nandana, he dallied with his wives, with always pleasant mind like *dogundaka* gods. (These gods are addicted to luxurious living.) (3)

मणिरयणकुट्टिमतले, पासायालोयणट्ठिओ।
आलोएइ नगरस्स, चउक्क-तिय-चच्चरे ॥४॥

एक दिन, मृगापुत्र मणि-रत्नों से जड़े फर्श वाले प्रासाद-महल के गवाक्ष में बैठा नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों पर होने वाले कुतूहलों को देख रहा था ॥४॥

One day Mṛgāputra, sitting by the window of his chamber (palace) the floor of which was adorned by jewels and precious stones, was looking at the quadrivials, trivials and the persons moving on the royal road. (4)

अह तत्थ अइच्छन्तं, पासई समणसंजयं।
तव-नियम-संजमधरं, सीलड्ढं गुणआगरं ॥५॥

उसने वहाँ राजपथ पर गमन करते हुए तप-नियम-संयम के धारक, शील संपन्न, गुणों के आकर संयमी श्रमण को देखा ॥५॥

He saw there moving on royal road a restrained sage, who was practiser of penances and monk-rules, full of virtues and very mine of best qualities. (5)

तं देहई मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ ।
कहिं मन्नेरिसं रूवं, दिट्ठपुव्वं मए पुरा ॥६॥

श्रमण को मृगापुत्र अपलक दृष्टि से देखता हुआ विचार करता है–मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप इससे पूर्व भी मैंने कहीं देखा है ॥६॥

Mṛgāputra looks at the sage with unwinking eyes and considers that I suppose that I have seen such form anywhere before. (6)

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणंमि सोहणे ।
मोहं गयस्स सन्तस्स, जाईसरणं समुप्पन्नं ॥७॥

साधु के दर्शन तथा उसके उपरान्त शुद्ध अध्यवसायों से ऊहापोह करने पर उसे जाति-स्मरणज्ञान समुत्पन्न हुआ ॥७॥

Looking at the sage and then pondering with pure mind he recollected his former births. (7)

देवलोग-चुओ संतो, माणुस्सं भवमागओ ।
सन्निनाणे समुप्पण्णे, जाइं सरइ पुराणयं ॥८॥

संज्ञिज्ञान–जातिस्मरणज्ञान होने पर उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया कि मैं देवलोक से च्यवित होकर इस मनुष्य भव में आया हूँ ॥८॥

By the memory of former births he became aware that completing god-duration from god-abode I took birth in this human existence. (8)

जाइसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरई पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥९॥

जातिस्मरणज्ञान समुत्पन्न होते ही महान राज्य ऋद्धि वाले मृगापुत्र को पूर्वजन्म में आचरित श्रमण धर्म का ज्ञान हो गया ॥९॥

By the memory of his former births, most fortunate and prosperous Mṛgāputra became well aware of practised sage-conduct in former life. (9)

विसएहि अरज्जन्तो, रज्जन्तो संजमम्मि य ।
अम्मापियरं उवागम्म, इमं वयणमब्बवी ॥१०॥

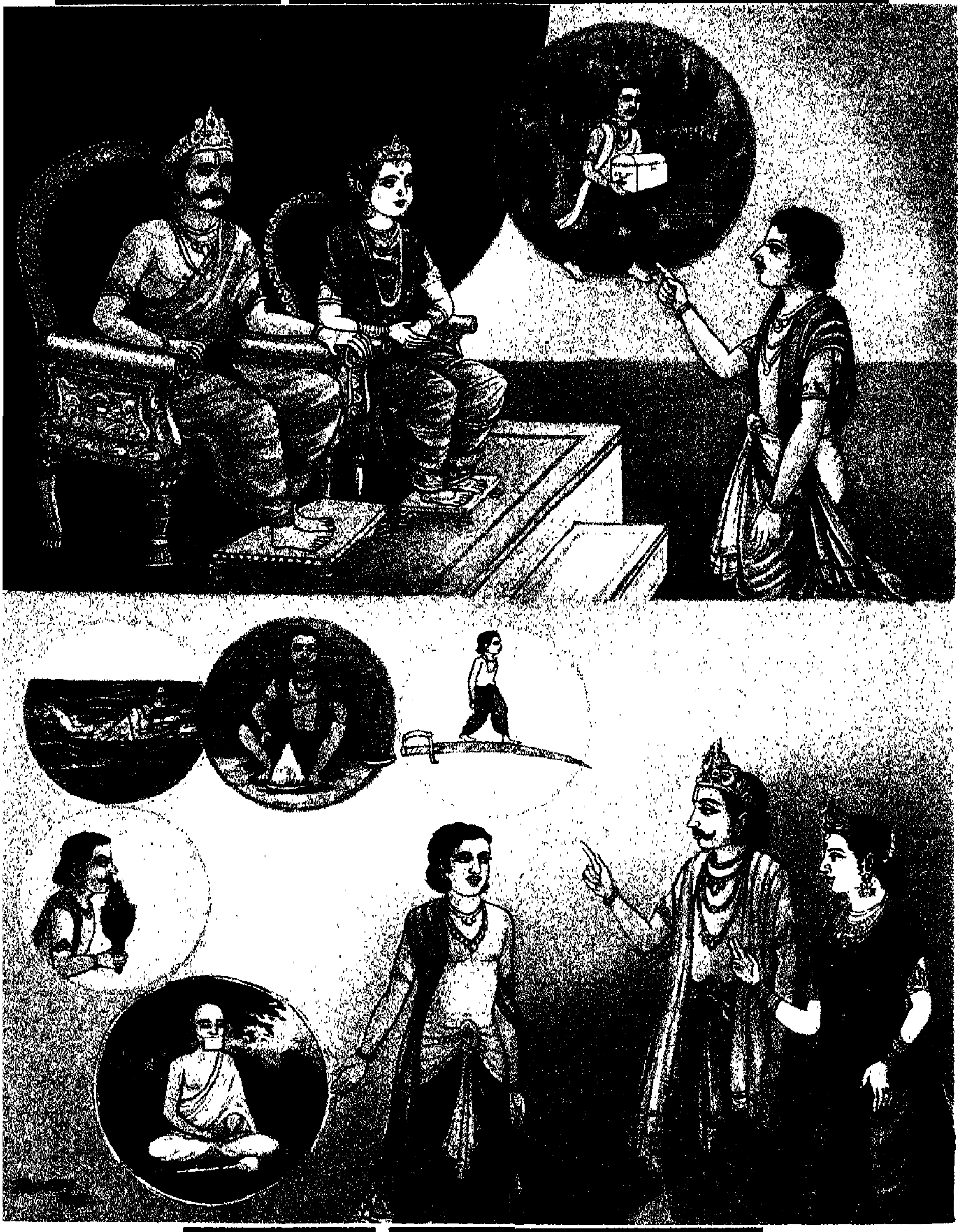
विषयों से विरक्त और संयम में अनुरक्त मृगापुत्र माता-पिता के समीप आया और उनसे इस प्रकार कहने लगा–॥१०॥

ILLUSTRATION NO. 42 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४२ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 43 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४३ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

Disinclined to sensual pleasures and inclined to restrain Mṛgāputra., came to his parents and thus spoke unto them. (10)

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु ।
निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥११॥

(मृगापुत्र) मैंने पाँच महाव्रतों को सुना है। नरक और तिर्यंच योनियों के दुःख भी मैं जानता हूँ। संसार रूपी महासागर से विरक्त हो गया हूँ, मुझे काम-भोगों की अभिलाषा नहीं रही है। मैं अब प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा। हे माता ! मुझे अनुमति दो ॥११॥

(Mṛgāputra) I have heard about five full (great) vows. I also know the torments and sufferings of hellish and beast existences. I became disinclined to worldly ocean. I have no desire of empirical pleasures and amusements. Now I shall accept consecration. Please give me your consent. (11)

अम्मताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा ।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबन्ध–दुहावहा ॥१२॥

हे माता-पिता ! मैं भोगों को भोग चुका हूँ। ये विषफल के समान हैं। बाद में कटुविपाक वाले और निरन्तर दुःख देने वाले हैं ॥१२॥

Parents ! I have exercised amusements. These are like poisonous fruits; their consequences are pungent and they entail continuous pains. (12)

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।
असासयावासमिणं, दुक्ख-केसाण भायणं ॥१३॥

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशुचि से उत्पन्न हुआ है तथा अशुचि–मल-मूत्र आदि का उत्पत्ति स्थान है। इसमें आत्मा का आवास अशाश्वत है तथा यह शरीर दुःखों और क्लेशों का भाजन है ॥१३॥

This body is transient, impure, originated with and by impurity and also produces impurities, like-urine, stool etc. Inheritance of soul in it is transitory and this body is the vessel of miseries and sufferings. (13)

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं ।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुय–सन्निभे ॥१४॥

पहले या पीछे इसे छोड़ना ही है। यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। अतः इसमें मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है ॥१४॥

This body is like a bubble and had to leave before or after (sooner or later). Therefore, no delight I am getting in it. (14)

माणुसत्ते असारम्मि, वाही–रोगाण आलए ।
जरा–मरणघत्थम्मि, खणं पि न रमामऽहं ॥१५॥

रोगों और व्याधियों के घर तथा जरा और मरण से ग्रसित इस असार मानव शरीर में मुझे एक क्षण भी सुख प्राप्त नहीं हो रहा है ॥१५॥

Abode of sickness and diseases, swallowed up by old age and death–this human body does not please me even for an instant. (15)

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जन्तवो ॥१६॥

जन्म दुःख है। वृद्धता दुःख है। रोग और मरण का दुःख है। यह सम्पूर्ण संसार ही दुःखमय है, जहाँ जीव क्लेश ही पाते हैं ॥१६॥

Birth is ache, old age is ache and so are the disease and death. Really this whole world is full of miseries where the souls suffer distress. (16)

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्त–दारं च बन्धवा ।
चइत्ताणं इमं देहं, गन्तव्वमवसस्स मे ॥१७॥

क्षेत्र–खुली भूमि, वास्तु–मकान, स्वर्ण, पुत्र, स्त्री तथा बन्धुजन और इस शरीर को भी छोड़कर एक दिन मुझे यहाँ से लाचार होकर चला जाना है ॥१७॥

Leaving behind the fields, houses (palaces), gold, son, women, kins and even my body; I have to go from here. (17)

जहा किम्पागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥१८॥

जिस प्रकार किम्पाक फल–विषफल का परिणाम सुन्दर नहीं होता उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता ॥१८॥

As the consequences of Kimpāka-fruit–poisonous fruit are not good so the consequences of rejoiced amusements are not good. (18)

अद्धाणं जो महन्तं तु, अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुही होई, छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥१९॥
एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥२०॥

जो व्यक्ति बिना पाथेय लिए लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह मार्ग में चलते हुए भूख-प्यास से पीड़ित होकर कष्ट पाता है ॥१९॥

इसी तरह जो व्यक्ति धर्म का आचरण किये बिना ही परलोक को प्रस्थान कर देता है, वह व्याधि और रोगों से पीड़ित होकर दुःखी होता है ॥२०॥

The person who starts on a long journey without taking provisions with him, he suffers in the way by the agonies of hunger and thirst. (19)

In the same way, the person without practising the religious rituals in this life, goes to next birth he suffers from disease and sickness. (10)

अद्धाणं जो महन्तं तु, सपाहेओ पवज्जई।
गच्छन्तो सो सुही होइ, छुहा–तण्हाविवज्जिओ ॥२१॥
एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छन्तो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥२२॥

जो व्यक्ति पाथेय (मार्ग का संबल) साथ लेकर लम्बे मार्ग पर प्रयाण करता है वह भूख-प्यास से पीड़ित न होकर सुखी होता है ॥२१॥

इसी प्रकार जो मानव धर्म करके परलोक को प्रयाण करता है वह अल्पकर्मा जीव वेदना से रहित होकर सुखी होता है ॥२२॥

The person who starts on a long journey taking provisions with him, he remains happy and suffers not by hunger and thirst. (21)

In the same way, the person who goes to next birth practising religious rituals in this life, such person being of few karmas, becomes happy and without sufferings. (22)

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥२४॥

जैसे घर में अग्नि का प्रकोप हो जाने–आग लग जाने पर घर का स्वामी पहले मूल्यवान सार वस्तुओं को बाहर निकालता है और निस्सार वस्तुओं को छोड़ देता है ॥२३॥

इसी तरह मैं भी (हे माता, पिता!) आपकी अनुमति पाकर वृद्धत्व और मृत्यु से जलते हुए इस संसार में से सारभूत अपनी आत्मा को निकालना चाहता हूँ ॥२४॥

As when a house is on fire, the owner rescues his valuable goods and leaves behind worthless things. (23)

Likewise the world is in flames of old age and death. I want to save my soul, by your consent. (24)

तं बिंत ऽम्मापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं।
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणो ॥२५॥

(माता-पिता) माता-पिता ने तब मृगापुत्र से कहा–हे पुत्र ! श्रमण धर्म का पालन अति कठिन है। उसमें हजारों गुण–नियमोपनियम भिक्षु को धारण करने पड़ते हैं ॥२५॥

(Parents) Then parents said to Mṛgâputra,–O son ! It is very difficult to practise sage-order. Mendicant has to observe thousands of virtues–rules and regulations. (25)

समया सव्वभूएसु, सत्तु मित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥२६॥

संसार के सभी जीवों पर, चाहें वे शत्रु हों अथवा मित्र, समभाव रखना और आजीवन प्राणातिपात–हिंसा से विरत होना अत्यन्त दुष्कर है ॥२६॥

Being impartial towards all the beings, may they be friends or foes; and not to injure any throughout life, is extremely difficult. (26)

निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ॥२७॥

सदैव अप्रमत्त रहकर मृषावाद का त्याग करना तथा सतत उपयोग के साथ हितकारी सत्य बोलना बहुत कठिन है ॥२७॥

Being ever careful to abandon falsehood and to speak beneficial truth is also very difficult. (27)

दन्त-सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गेण्हणा अवि दुक्करं ॥२८॥

दंत शोधन (दतौन) भी बिना दिये न लेना तथा दिया हुआ भी निर्दोष और एषणीय ही लेना, अत्यधिक दुष्कर है ॥२८॥

Not to take anything ungiven even a tooth-pick; and to take any thing yet being given but it should be faultless, it is more difficult. (28)

विरई अबम्भचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।
उग्गं महव्वयं बम्भं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥२९॥

काम-भोगों के रसों–स्वादों को जानने वाले व्यक्ति के लिए अब्रह्मचर्य से विरति और उग्र महाव्रत ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यधिक कठिन है ॥२९॥

Who has tasted the sexual pleasures, it is very difficult for him to completely abstain from non-celibacy and to practise the severe great vow of celibacy. (29)

धण-धन्न-पेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणं ।
सव्वारम्भपरिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥३०॥

धन-धान्य, प्रेष्य–सेवक वर्ग तथा परिग्रह का एवं सर्व आरम्भ का परित्याग और ममत्व रहित होना बहुत ही कठिन है ॥३०॥

Renouncement of weath, corn and servants, all possessions and becoming totally affection-free is very difficult. (30)

चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा ।
सन्निहीसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करो ॥३१॥

अशन-पान आदि चारों प्रकार के आहारों का रात्रि में त्याग करना तथा संनिधि और संचय का त्याग करना अतीव दुष्कर है ॥३१॥

Not to eat four types of food, drink, dainties and spices–in night and not to store and keep with him, is very difficult. (31)

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ॥३२॥
तालणा तज्जणा चेव, वह-बन्धपरीसहा ।
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥३३॥

भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, डांस-मच्छर की पीड़ा, आक्रोश वचन, दुःखप्रद शैया, तृणस्पर्श, जल्ल-मैल–॥३२॥

ताड़ना, तर्जना, वध, बन्धन, भिक्षाचर्या, याचना, अलाभ आदि परीषहों को समभाव से सहन करना बहुत ही दुष्कर है ॥३३॥

Hunger and thirst, cold and heat, pains caused by flies and gnats, insulting words, painful lodging, princking of grass, excretions of body–(32)

Blows and threats, corporeal punishment and ties, mendicant's life-order, asking and fruitless begging etc., to bear all these troubles with evenmind is very-very difficult. (33)

कावोया जा इमा वित्ती, केसलोओ य दारुणो ।
दुक्खं बम्भवयं घोरं, धारेउं य महप्पणो ॥३४॥

कापोतीवृति–कबूतर की तरह दोषों से सशंक और सतर्क रहना, दारुण केश लोंच तथा घोर ब्रह्मचर्य धारण करना महान आत्माओं के लिए भी अति दुष्कर है ॥३४॥

Like the tendency of pigeon (who is always afraid of dangers) always to be alert and suspicious about faults and much grievious is the tonsure of hairs and to practise rigorous celibacy is very much hard even for the great men. (34)

सुहोइओ तुमं पुत्ता ! सुकुमालो सुमज्जिओ ।
न हु सी पभू तुमं पुत्ता ! सामण्णमणुपालिउं ॥३५॥

पुत्र ! तू अभी सुख भोगने योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित–साफ-सुथरा रहता है। अतः अभी तू श्रमण धर्म का पालन करने के लिए सक्षम नहीं है ॥३५॥

O Son ! Still you are fit for enjoying pleasures, remains always neat and clean. So you are not capable to practise sage-order–sagehood. (35)

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महाभरो ।
गुरुओ लोहभारो व्व, जो पुत्ता ! होई दुव्वहो ॥३६॥

हे पुत्र ! साधुचर्या के नियमों गुणों का भार तो लोहे के समान भारी है, जिसे जीवन भर बिना विश्राम लिए उठाना है, यह कार्य बहुत ही दुर्वह है, इसे जीवन भर वहन करना अत्यधिक कठिन है ॥३६॥

O son ! The burden of sage-order-virtues is more heavy than iron-weight, which to be lifted whole life without rest even for a moment, it is very hard, to lift-up it for whole life is very much difficult. (36)

आगासे गंग सोउव्व, पडिसोओ व्व दुत्तरो।
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोयही ॥३७॥

जिस प्रकार आकाश-गंगा का अनुस्रोत और जल प्रवाह का प्रतिस्रोत दुस्तर हैं, सागर को भुजाओं से तैरकर पार करना कठिन है; उसी प्रकार गुणों के समुद्र संयम को भी पार करना अत्यधिक दुष्कर है ॥३७॥

It is as difficult like impossible to cross the great ocean of milkyway (heavenly Gaṅgā) against and with its current, by arms. It the same way to cross the great ocean of virtues–restrainment is too much difficult. (37)

वालुयाकवले चेव, निरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥३८॥

बालू-रेत के कवल-कौर की तरह संयम निःस्वाद-नीरस है तथा तप का आचरण तो तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है ॥३८॥

Restrainment is tasteless like a mouthful of sand and to practise penance is to move on the sharp edge of sword, such difficult it is. (38)

अहीवेगन्तदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त! दुच्चरे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥३९॥

सर्प के समान एकाग्र दृष्टि से चारित्रधर्म पर चलना दुष्कर है। लोहे के जौ चबाना जैसे कठिन है उसी तरह चारित्र का पालन करना भी दुष्कर है ॥३९॥

Like a snake with fixed eyes on target it is very difficult to practise great conduct-order, chewing or cutting the iron-barleys by wax-teeth is too much difficult, such difficult is to practise conduct-order. (39)

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करं।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥४०॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि शिखा का पान करना दुष्कर है उसी प्रकार तरुणावस्था में श्रमण धर्म का पालन करना भी दुष्कर है ॥४०॥

As, it is very difficult to swallow the ablazed flame of burning fire, so it is very difficult to practise sagehood in young age. (40)

जहा दुक्खं भरेउं जे, होई वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥४१॥

जैसे कपड़े के थैले को हवा से भरना कठिन होता है, वैसे ही कायर पुरुष के द्वारा श्रमणाचार का पालन दुःखप्रद होता है ॥४१॥

As to fill a bag of cloth by wind is a difficult task, so the practising sagehood by coward man is full of miseries. (41)

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करं मन्दरो गिरी ।
तहा निहुयं नीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥४२॥

जैसे मंदरगिरि–मेरु पर्वत को तराजू से तोलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चल और निःशंक होकर श्रमण धर्म का पालन दुष्कर है ॥४२॥

As to weigh the mountain Meru–Mandara Giri by balance is too much difficult task so to practise sagehood steadily and undoubtedly is very difficult. (42)

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणागरो ।
तहा अणुवसन्तेणं, दुक्करं दमसागरो ॥४३॥

जैसे रत्नाकर समुद्र को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशांत व्यक्ति के लिए संयम के सागर को पार करना दुष्कर है ॥४३॥

It is difficult to swim over and cross the ocean full of gems by arms, so its is too much difficult to cross the ocean of restrainment for the man whose mind is unpacified. (43)

भुंज माणुस्सए भोगे, पंचलक्खणए तुमं ।
भुत्तभोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥४४॥

हे पुत्र ! पहले तुम पांच लक्षणों वाले (शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श) मनुष्य संबंधी भोगों का उपभोग करो, उसके उपरान्त भुक्तभोगी बनकर श्रमणधर्म का आचरण करना ॥४४॥

O son ! therefore you enjoy the five-fold (of touch, taste, smell, sight and hearing–the objects of senses respectively) human pleasures. Afterwards you may practise sage-order. (44)

तं बिंत ऽम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं ॥४५॥

(मृगापुत्र) मृगापुत्र ने कहा–आपने श्रामण्य की दुष्करता के लिए जो कहा, वह सब सत्य है; लेकिन इस संसार से जिसकी तृष्णा शांत हो जाती है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥४५॥

(Mṛgāputra) Hearing these words of parents, Mṛgāputra replied–Revered Mother and Father ! What you have told about sage-order is completely true; but whose worldly desire becomes pacified, for him nothing is difficult. (45)

सारीर-माणसा चेव, वेयणाओ अणन्तसो ।
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खभयाणि य ॥४६॥

मैंने शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ अनेक बार भोगी हैं और दुःख एवं भयों का भी अनुभव किया है ॥४६॥

I have suffered mental and bodily agonies innumerable times and experienced pains and fears. (46)

जरा-मरणकन्तारे, चाउरन्ते भयागरे ।
मए सोढाणि भीमाणि, जम्माणि मरणाणि य ॥४७॥

मैंने चतुर्गति रूप भय के स्थल, वृद्धत्व और मृत्यु रूपी महावन में जन्म-मरण के कष्टों को सहन किया है ॥४७॥

I have undergone the fearful world of four existences i. e., hell, beast, human and god, and suffered the miseries and pains of old age, birth and death, in this broad wood of universe. (47)

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणन्तगुणे तहिं ।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

अग्नि यहाँ जितनी उष्ण है, उससे भी अनेक (अनन्त) गुनी उष्णता मैंने नरकों में भोगी है ॥४८॥

The fire as hot in this human world. I have suffered infinite times heat in hells. (48)

जहा इमं इहं सीयं, एत्तोऽणंतगुणं तहिं ।
नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥४९॥

यहाँ जितना शीत है उससे भी अनन्त गुणी शीत वेदना मैंने नरकों में सहन की है ॥४९॥

As much cold is in this world. I have experienced infinite times cold torments in hells. (49)

कन्दन्तो कंदुकुम्भीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो ।
हुयासणे जलन्तम्मि, पक्कपुव्वो अणन्तसो ॥५०॥

मैं नरक की कन्दुकुम्भियों में नीचे सिर और ऊपर पैर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हूँ ॥५०॥

I have been roasted in vast cauldrons (कन्दुकुम्भी) of hell infinite times, though screaming, by blazing fire, my legs up and head down. (50)

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए ।
कलम्बवालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणन्तसो ॥५१॥

महाभयंकर दावाग्नि के समान मरुप्रदेश में वज्र-जैसी कंकरीली रेत में तथा नदी तट की तप्त बालुका में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ ॥५१॥

I have been roasted as the desert on fire, the sands of rivers vairavāluya (the sand on the bank of this river like steel filings-वज्रवालुका) and kadamba-vāluya (its sand is turmeric) infinite number of times. (51)

रसन्तो कंदुकुम्भीसु, उड्ढं बद्धो अबन्धवो ।
करवत्त-करकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणन्तसो ॥५२॥

बन्धु-बान्धवों से रहित, असहाय, रोता-आक्रन्दन करता हुआ मैं कन्दुकुम्भी में ऊँचा बाँधा गया और करवत तथा क्रकच, आरा आदि शस्त्रों से अनन्त बार छेदा-भेदा गया हूँ ॥५२॥

Without brethrens, helpless, weeping and screaming I was suspended upside of a cauldron, cut to pieces by scissors, saws and daggers infinite number of times. (52)

अइतिक्खकंटगाइण्णे, तुंगे सिम्बलिपायवे।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥५३॥

अत्यन्त तीक्ष्ण काँटों से आकीर्ण शाल्मली वृक्ष से जाल (पाश) द्वारा बाँधकर मुझे इधर-उधर खींचा गया, उस दुस्सह कष्ट को मैं भोग चुका हूँ ॥५३॥

I was tied to Śālmalī tree bristling with very sharp thorns, with the help of snares and pushed and pulled up and down, this side that side. I have undergone such unbearable agonies. (53)

महाजन्तेसु उच्छू वा, आरसन्तो सुभेरवं।
पीलिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणन्तसो ॥५४॥

अपने ही पापकर्मों के कारण बड़े-बड़े यन्त्रों–कोल्हुओं में मुझे इक्षु के समान अनन्त बार पीला गया। उन दुस्सह कष्टों को मुझे आक्रन्दन करते हुए भोगना पड़ा ॥५४॥

On acount of my own sins I have been crushed like sugarcane in heavy presses infinite number of times. I have to bear those torments with screamings, wailings and weepings. (54)

कूवन्तो कोलसुणएहिं, सामेहिं सबलेहि य।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

सूअर और श्वान रूपधारी श्याम और शबल नामक परमाधर्मी देवों द्वारा, इधर-उधर भागते हुए, चिल्लाते हुए मुझे पकड़ा गया, अनेक बार ऊपर से नीचे गिराया गया, फाड़ा गया और छिन्न-भिन्न किया गया ॥५५॥

By the most irreligious cruel deities (परमाधर्मी देव) named Śyāma and Śabala (black and spotted) in the guise of wild hogs and haunting dogs I was caught, when I was running hither and thither for escape and screaming, I was innumerable times thrown–fallen down, torned and lacerated. (55)

असीहि अयसिवण्णाहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, ओइण्णो पावकम्मुणा ॥५६॥

पापकर्मों के कारण मैं नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ मुझे अलसी के फूल के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोहे के डण्डों से पीटा गया, छेदा गया, भेदा गया, और खण्ड-खण्ड कर दिया गया ॥५६॥

I was born in hell for my sins. There I was cut, pierced and hacked to pieces by swords, daggers, darts, javelins and iron rods. (56)

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलन्ते समिलाजुए।
चोइओ तोत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ॥५७॥

कील (समिला) युक्त जुए वाले, जलते हुए लोहे के रथ में जबरदस्ती जोता गया हूँ, चाबुक और रस्सियों से हांका गया हूँ तथा रोझ के समान पीट-पीटकर जमीन-भूमि पर गिराया गया हूँ ॥५७॥

I was forcibly yoked to a chariot, of burning iron and fixed nail (समिला) or gue and then I was driven by whips and ropes and by beating I was fallen down like an antelope (रोझ). (57)

हुयासणे जलन्तम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ॥५८॥

अपने ही पापों के कारण मैं जलती हुई चिताओं की अग्नि में भैंसे की तरह जलाया और पकाया गया हूँ ॥५८॥

Due to my own sins, I have forcibly been burnt and roasted like a he-buffalo on piles and in ablazing fire. (58)

बला संडासतुण्डेहिं, लोहतुण्डेहि पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवन्तोऽहं, ढंक-गिद्धेहिऽणन्तसो ॥५९॥

लोहे जैसे कठोर और मजबूत मुख तथा संडासी जैसी नुकीली चोंच वाले गीध और ढंक पक्षियों द्वारा रोता-बिलखता हुआ मैं अनंत बार नोंचा गया हूँ ॥५९॥

I have been violently lacerated by birds (devilish vultures in the guise of birds) with iron bills and shaped like tongs, screaming and wailing, infinite times. (59)

तण्हाकिलन्तो धावन्तो, पत्तो वेयरणिं नदिं ।
जलं पाहिं त्ति चिन्तन्तो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

मैं प्यास से व्याकुल होकर, दौड़ता हुआ वैतरणी नदी के पास पहुँचा। जल पीने की सोच ही रहा था कि छुरे की धार जैसी तीक्ष्ण धारा ने मुझे चीर दिया ॥६०॥

Suffering from agony of thirst, I ran to hellish river Vaitaraṇī. I was thinking to drink water, but the sharp current of river cleaved me. (60)

उण्हाभितत्तो संपत्तो, असिपत्तं महावणं ।
असिपत्तेहिं पडन्तेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

गर्मी से संतप्त होकर छाया के लिए मैं असिपत्र महावन में पहुँचा। लेकिन वृक्षों से गिरते हुए छुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्तों ने मुझे चीर दिया ॥६१॥

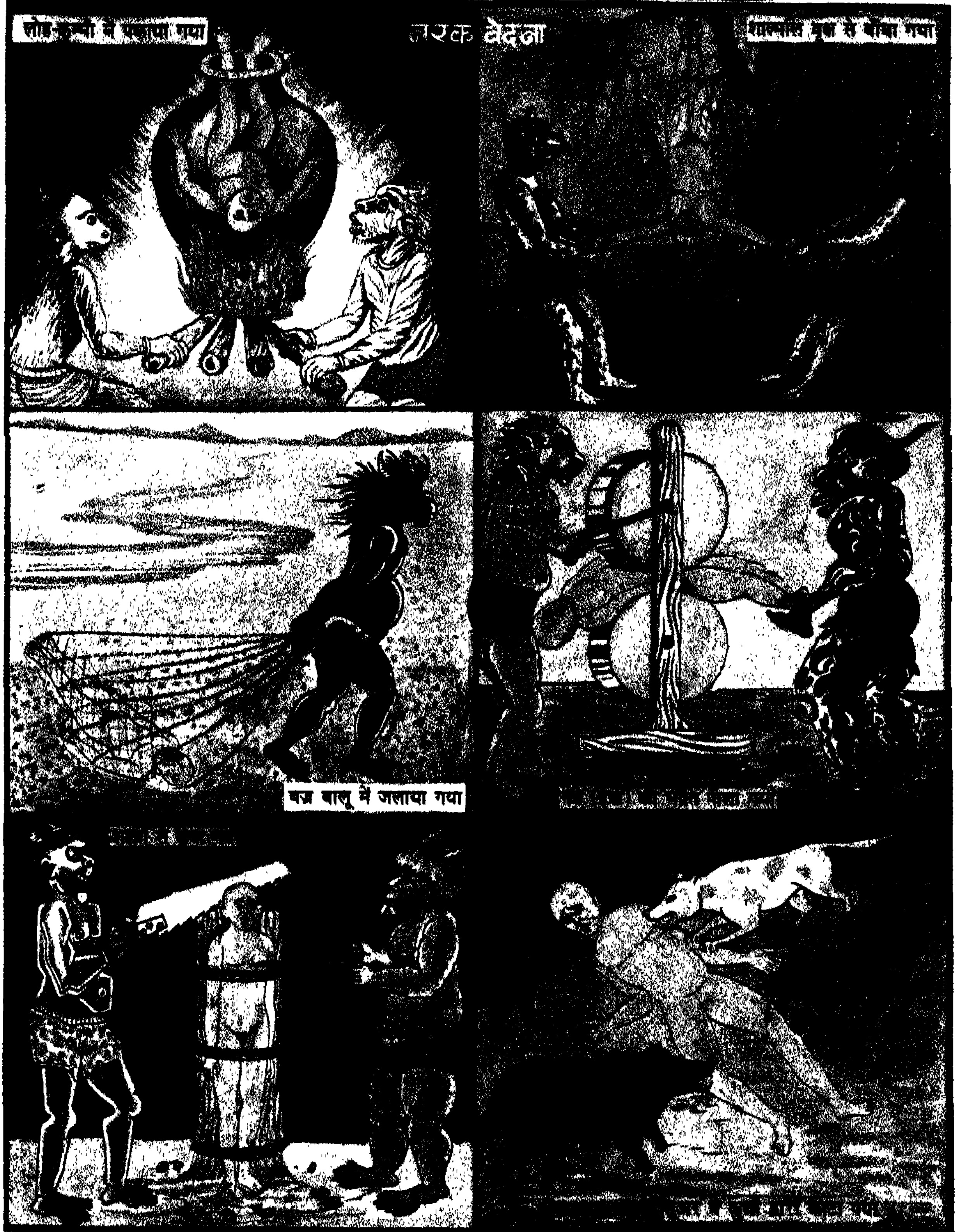
Distressed by extreme heat I approached the Asipatra Mahāvana. But the leaves dropping down from which were as sharp as daggers, those leaves cleaved me. (61)

मुग्गरेहिं मुसंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य ।
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणन्तसो ॥६२॥

सभी ओर से निराश हुए मुझे मुद्गरों, मुसुण्डियों, शूलों और मूसलों से चूर-चूर कर दिया गया। ऐसा भयंकर दुःख-कष्ट मैंने अनन्त बार भोगा है ॥६२॥

ILLUSTRATION NO. 44 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26

[illegible] का [illegible] वर्णन : [illegible] तक



चित्र क्रमांक ४४ | पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 45 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26

[illegible] तृतीय वर्णन : अध्ययन १९ गाथा [illegible]



चित्र क्रमांक ४५ | पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

Being disappointed I crushed to pieces by mallets, knives, thoms, forks, maces. Such dreadful torments I have experienced infinite numbers of time. (62)

खुरेहि तिक्खधारेहि, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कत्तो य अणेगसो ॥६३॥

अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले छुरों से, छुरियों से और कैंचियों–कतरनियों से मैं अनेक बार काटा गया हूँ, कपड़े की तरह फाड़ा गया हूँ, छेदा गया हूँ और मेरी चमड़ी उधेड़ी गयी है ॥६३॥

Innumerable times I have been slit, cut, mangled and skinned by sharp edged daggers, razors, scissors, knivers and shears. (63)

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहिओ बद्धरुद्धो अ, बहुसो चेव विवाइओ ॥६४॥

अवश बने मुझे अनेक बार पाशों-बन्धनों, कूट जालों से मृग के समान पकड़ा गया, बाँधा गया, रोका गया, और विनष्ट किया गया ॥६४॥

As a helpless deer, in dense snares and severe traps, I was caught, fastened, detained and destructed innumerable times. (64)

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणन्तसो ॥६५॥

मछली के गले में फँसाकर उसे पकड़ने वाले काँटों–गलों से, मगरों को पकड़ने वाले जालों से विवश हुए मुझे अनन्त बार पकड़ा गया, खींचा गया, फाड़ा गया और मारा गया ॥६५॥

Being helpless, I was caught with hooks (same as to catch a fish) and bow nets (same as to ensnare crocodiles), pulled, tomed and pierced infinite number of times. (65)

वीदंसएहि जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो बद्धो य, मारिओ य अणन्तसो ॥६६॥

पक्षियों को डस जाने वाले–भक्षण करने वाले बाज पक्षियों तथा चिपकाने वाले वज्रलेपों जालों के द्वारा मैं पक्षियों के समान अनंत बार पकड़ा गया, बाँधा गया, चिपकाया गया और मारा गया ॥६६॥

By huge vulture eagles, who eat the birds and fast stickers (adhesives) I was caught by snares as a bird, entrapped, bound and crushed infinite number of times. (66)

कुहाड–फरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणन्तसो ॥६७॥

जिस प्रकार बढ़ई वृक्ष को छीलते हैं उसी प्रकार मैं भी कुल्हाडी, फरसे आदि से अनन्त बार कूटा गया, चीरा गया, फाड़ा गया, छेदा गया और छीला गया हूँ ॥६७॥

As carpenters scratch a tree so have I also been by axes, hatchets etc., infinite times, scrached, felled, slit, sawn into planks and stripped off the bark. (67)

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं पिव ।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणन्तसो ॥६८॥

लुहार जिस तरह लोहपिंड को कूटता-पीटता है उसी तरह परमाधर्मी देवों द्वारा मैं चपतों–चाँटों–थप्पड़ों, मुक्कों द्वारा अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और चूर्ण बना दिया गया ॥६८॥

As a blacksmith macerate and gives stroke to a lump of iron by hammer so have I been by most irreligious deities by slaps, fists, beaten, macerated, torned and crushed infinite number of times. (68)

तत्ताइं तम्बलोहाइं, तउयाइं सीसयाणि य ।
पाइओ कलकलन्ताइं, आरसन्तो सुभेरवं ॥६९॥

भयंकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे कलकलाता–उबलता हुआ गर्मागर्म लोहा, ताँबा, रांगा और सीसा पिलाया गया ॥६९॥

Screaming enormously, even I forcibly made to drink boiling fluid iron, copper, tin and lead. (69)

तुहं पियाइं मंसाइं, खण्डाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णाइं णेगसो ॥७०॥

'तुझे खण्ड-खण्ड किया हुआ तथा शूल में पकाया हुआ मांस बहुत प्रिय था (परमाधर्मी असुरकुमारों द्वारा यह याद दिला-दिलाकर) मेरे अपने ही शरीर का मांस काटकर और उसे अग्नि में तपाकर लाल सुर्ख करके मुझे अनेक बार खिलाया गया ॥७०॥

'You were fond of meat minced or roasted' (memorizing me thus by most irreligious cruel deities) I have made to eat the flesh of my own body, cutting and making red hot. (70)

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।
पाइओ मि जलन्तीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥

'तुझे सुरा, सीधु, मैरेय और महुए आदि से निर्मित मद्य–मादक पदार्थ बहुत प्रिय थे–यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्बी और रक्त पिलाया गया ॥७१॥

Memorizing me that 'You were very fond of wine, liquor and different kinds of alcohols,' I forcibly made to drink burning fat and blood. (71)

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ॥७२॥

मैंने इस प्रकार अपने पूर्वजन्मों में सदा भयकारक, दुःखित, कष्ट्रित, पीड़ित और व्यथित होकर अत्यन्त दुःख वेदना का अनुभव किया है ॥७२॥

Thus I have experienced the most painy agonies, ever being frightened, trembling, distressed in my previous births. (72)

ILLUSTRATION NO. 46 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26

नारकीय वेदनाओं का सजीव वर्णन । अध्ययन १९ गाथा ४९ से ७० तक



चित्र क्रमांक ४६ | पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

तिव्व-चण्ड-प्पगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेइया मए ॥७३॥

मैंने नरकों में तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ़ और घोर अत्यन्त दुःसह, महा भयंकर और भयभीत करने वाली वेदनाएँ भोगी हैं ॥७३॥

I have experienced sharp, acute, horrible, severe, intolerable, dreadful agonies in hells. (73)

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसन्ति वेयणा ।
एत्तो अणन्तगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

पिताजी ! इस मनुष्य लोक में जैसी वेदनाएँ दिखाई देती हैं, उससे अनन्तगुणी दुःखपूर्ण वेदनाएँ-कष्ट-पीड़ाएँ नरकों में होती हैं ॥७४॥

Revered Father ! Infinitely more severe sufferings and torments are in hells than the sufferings of this human world. (74)

सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए ।
निमेसन्तरमित्तं पि, जं साया नत्थि वेयणा ॥७५॥

मैंने प्रायः सभी भवों-गतियों में असाता-दुःखरूप वेदना का ही अनुभव किया है। एक पल मात्र के लिए भी असाता-दुःख का अन्त नहीं आया। साता वेदना-सुख की अनुभूति नहीं हो सकी ॥७५॥

I have generally experienced sorrows and sufferings in all the existences. Sorrow never ended even for a moment. I could not experience happiness for awhile. (75)

तं बिंत ऽम्मापियरो, छन्देणं पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया ॥७६॥

(माता-पिता) माता-पिता ने तब मृगापुत्र से कहा-तुम अपनी इच्छा से प्रव्रज्या लेना चाहो तो ग्रहण कर लो; किन्तु विशेष बात यह है कि यदि श्रमण-जीवन में किसी कारण शरीर में रोग उत्पन्न हो जाय तो उसकी निष्प्रतिकर्मता-चिकित्सा नहीं कराई जाती-यह एक बड़ा दुःख है ॥७६॥

(Parents) Then mother and father said to Mṛgāputra–Son, if you want to be consecrated then accept it according to your wish. But you should know that by any cause the body of monk is caught by any kind of illness, then no remedy can be given for that disease. It is very painful. (76)

सो बिंत ऽम्मापियरो ! एवमेयं जहाफुडं ।
पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे मियपक्खिणं ? ॥७७॥

(मृगापुत्र) मृगापुत्र ने कहा-हे माताजी, पिताजी ! श्रमणमार्ग ऐसा ही है, जैसा आपने कहा है लेकिन जंगलों में मृग आदि पशु तथा पक्षियों की चिकित्सा कौन कराता है ?॥७७॥

(Mṛgāputra) Then Mṛgāputra said to his parents–Really the monk-order is the same, as you have told. But who gives treatment to the ailings of beasts and birds living in forests ? (77)

एगभूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥७८॥

जैसे वन में मृग अकेला ही विचरण करता है उसी प्रकार मैं तप-संयम से भावित होकर अकेला ही विचरण करूँगा ॥७८॥

As the deer (or wild animal) roams about itself in the forest, so I will roam alone practising restrain and penances. (78)

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई।
अच्छन्तं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई ? ॥७९॥

जब महा भयंकर गहन वन में मृग के शरीर में आतंक-शीघ्रघाती रोग उत्पन्न हो जाता है, तब वृक्ष के मूल में बैठे हुए उस मृग की चिकित्सा कौन कराता है ? ॥७९॥

When in the dreadful vast forest a prolonged disease is caused in the body of a deer, then he lays down at the root of a tree, who gives him treatment ? (79)

को वा से ओसधं देई ?, को वा से पुच्छइ सुहं ?।
को से भत्तं च पाणं च, आहरित्तु पणामए ? ॥८०॥

कौन उसे औषध देता है? कौन उसके सुख-स्वास्थ्य के विषय में पूछता है और कौन उसे आहार आदि लाकर देता है? ॥८०॥

Who gives him medicine and who inquires for his health and who feeds him with food and water ? (80)

जया य से सुही होइ, तया गच्छइ गोयरं।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

जब वह स्वयं ही सुखी और स्वस्थ हो जाता है तब वह स्वयं गोचर भूमि में जाता है और खाने-पीने के लिए लता निकुंजों, झाड़ियों तथा सरोवरों को खोजता है ॥८१॥

When he himself becomes happy and healthy (by nature cure) then he goes himself in pasture land and to lakes and searches himself the food and water. (81)

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि वा।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं ॥८२॥

लता कुंजों और सरोवरों से अपनी भूख-प्यास को मिटाकर स्वतंत्र विचरण करता हुआ वह मृगों की निवास भूमि में चला जाता है ॥८२॥

Pacifying his hunger and thirst by eating grass and drinking the lake-water. He goes freely roaming to his own herd, the residence of his troop. (82)

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगओ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥८३॥

उसी प्रकार संयम में समुत्थित भिक्षाजीवी साधु अनियतचारी होकर तथा मृगचर्या के सदृश आचरण करके ऊर्ध्व दिशा-मोक्ष की ओर गमन करता है ॥८३॥

In the same way indulged in restrainment the mendicant becoming unobstructed sage, roaming freely like a deer, goes to upper direction. i.e., attains abode of emacipateds. (83)

जहा मिगे एग अणेगचारी, अणेगवासे धुवगोयरे य ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो विय खिंसएज्जा ॥८४॥

जिस प्रकार मृग अकेला अनेक स्थानों पर विचरण करता है और अनेक स्थानों पर निवास करता है उसी प्रकार गोचरी के लिए गृहस्थों के घर में प्रविष्ट हुआ मुनि न तो किसी की हीलना करता है और न ही किसी की निन्दा करता है ॥८४॥

As a deer roams and resides, and takes food and water from many places, in the same way the mendicant on his begging tour, entering in the houses of householders, neither insults nor speaks ill about any body. (84)

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं ।
अम्मापिऊहिं अणुन्नाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥८५॥

मृगापुत्र ने कहा-माता-पिताजी ! मैं मृग के समान चर्या करूँगा। यह सुनकर माता-पिता ने कहा-पुत्र! जिसमें तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो। इस तरह माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके मृगापुत्र उपधि का त्याग करता है ॥८५॥

Mṛgāputra said-I will roam unrestricted like a deer practising sagehood. Hearing this parents told-Son ! Do as you like-you get happiness. Thus getting the permission of parents he abandons all his possessions. (85)

मियचारियं चरिस्सामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
तुब्भेहि अम्म ! ऽणुन्नाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥८६॥

(मृगापुत्र) माताजी ! आपकी आज्ञा पाकर मैं सभी दुःखों से मुक्त करने वाली मृगचर्या का आचरण करूँगा। इस पर माता ने कहा-हे पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो ॥८६॥

(Mṛgāputra) Revered mother ! Getting your permission I will practise the deer-order of life-meaning unrestricted practice of excellent monk-order, which is capable to rescue me from all the miseries of world. Mother said-Son ! Do the same by which you feel happiness. (86)

एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं ।
ममत्तं छिन्दई ताहे, महानागो व्व कंचुयं ॥८७॥

माता-पिता को अनेक प्रकार से समझाकर मृगापुत्र उसी प्रकार ममत्व को छोड़ देता है जैसे महानाग अपनी केंचुल को छोड़ देता है ॥८७॥

Making understand parents by several ways Mṛgāputra abandons all kind of affections (feelings of myness) as a snake casts off its slough. (87)

इड्ढिं वित्तं च मित्ते य, पुत्त-दारं च नायओ।
रेणुयं व पडे लग्गं, निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥८८॥

वस्त्र पर चिपकी हुई धूल के समान मृगापुत्र ने ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, स्त्री और ज्ञातिजनों के प्रति ममत्व को झटक दिया-त्याग दिया और संयम यात्रा के लिए निकल गया ॥८८॥

Mṛgāputra renounced all his fortunes, prosperity, wealth, friends, sons, women (wives) and affection to kins, like the dust stick on a cloth and went out on his tour of restrain. (88)

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य।
सब्भिन्तर - बाहिरओ, तवोकम्मंसि उज्जुओ ॥८९॥

अब वह पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, बाह्य और आभ्यन्तर तपों में तत्पर-॥८९॥

Now he became observer of five great vows, circumspect by five circumspections, latent with three (precautions) restraints, addicted to external and internal penances-(89)

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥

ममत्व रहित, निरहंकारी, आसक्ति से दूर, सुख-साता-ऋद्धि-इन तीन प्रकार के गौरवों का त्यागी, त्रस और स्थावर-सभी जीवों के प्रति समत्व भाव रखने वाला-॥९०॥

Free from affection and egoism, without attachment, renouncer of three kinds of grandeurs (prides of tastiness, prosperity and joys), even-minded (stoic) towards all the movable and immovable beings-(90)

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥

लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान-इन सभी स्थितियों में रागद्वेष न करने वाला समभावी साधक-॥९१॥

Indifferent to success (gain लाभ) unsuccess (अलाभ-failure), pleasure and pain, life and death, blames and praises, respect and disrespect (insult)-(91)

गारवेसु कसाएसु, दण्ड-सल्ल-भएसु य।
नियत्तो हास-सोगाओ, अनियाणो अबन्धणो ॥९२॥

गौरवों-गर्वों-अभिमानों, चारों कषायों, तीन प्रकार के दण्ड, तीन तरह के शल्य और सप्त प्रकार के भयों से, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान-काम-भोगों की इच्छा न करता हुआ, राग-द्वेष के बंधनों रहित-॥९२॥

Free from prides, four type of passions (anger, pride, deceit and greed), three types of daṇḍas (injurious activities of mind, speech and body), three types of spititual thorns (deceit, false belief, pleasure throughts), seven kinds of fear, feelings of joys and sorrows, volition

(strong desire for worldly amusements and rejoicings), bondages of attachment and aversion–(92)

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासीचन्दणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ॥९३॥

इस लोक तथा परलोक में भी प्रतिबद्धता रहित–अनासक्त, वसूले से काटने–छीलने अथवा गोशीर्ष चन्दन लगाये जाने पर भी समभाव रखने वाला तथा आहार मिलने अथवा न मिलने पर भी समत्व भाव रखने वाला–॥९३॥

Non-addicted to this and that world (लोक), peace-minded even, if his body is cut and scratched by axe or the best sandal-wood besmeared, eating food or on fast–(93)

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थ–दमसासणे ॥९४॥

अप्रशस्त द्वारों–पापकर्मों के आस्रवों के हेतुओं का सभी प्रकार से निरोध करके मृगापुत्र प्रशस्त संयम, इन्द्रिय दमन और साध्वाचार में, आध्यात्मिक ज्ञानयोग में लीन हो गया ॥९४॥

By obstructing all types of inflow of inauspicious–sinful karmas, Mṛgâputra completely engrossed in auspicious restrain, controlling senses, sage-order and sacred spiritual knowledge meditation. (64)

एव नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहि य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं ॥९५॥

इस प्रकार ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और विशुद्ध भावनाओं से अपनी आत्मा को सम्यक् रूप से भावित करते हुए–॥९५॥

Thus engrossing well his own soul in right knowledge-faith-conduct-penance and pure reflections (feelings)–(95)

बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥९६॥

बहुत वर्षों तक श्रमण धर्म का अनुपालन करते रहे, आयु के अन्त में एक मास का भक्त प्रत्याख्यान करके मृगापुत्र मुनि ने अनुत्तर गति–सिद्धि गति प्राप्त की ॥९६॥

Practising sage-order for many years and in the end of this life-duration observing one month's fast-penance (giving up food-water etc., all kinds of eatables till life.) sage Mṛgâputra attained liberation. (96)

एवं करन्ति संबुद्धा, पण्डिया पवियक्खणा।
विणियट्टन्ति भोगेसु, मियापुत्ते जहारिसी ॥९७॥

जैसे ऋषि मृगापुत्र युवावस्था में भोगों से विरक्त हुए उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी, पण्डित और विचक्षण व्यक्ति भी सांसारिक भोगों से निवृत्त होते हैं ॥९७॥

As sage Mṛgāputra renounced the worldly pleasures in young age, in the same way enlightened, awakened, wise and proficient persons abandon the amusements. (97)

महापभावस्स महाजसस्स, मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं ॥९८॥

मृगा रानी के महान प्रभावशाली तथा महायशस्वी पुत्र –ऋषि मृगापुत्र के तपोप्रधान त्रिलोक विश्रुत एवं मुक्तिरूपी प्रधान गति वाले उत्तम चरित्र के वर्णन को सुनकर–॥९८॥

The most glorious and magnanimous son of queen Mṛga, hearing the widely known in three worlds penanceful conduct of great sage Mṛgaputra and the excellent conduct capable to attain the supreme existence i.e., salvation–(98)

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं, ममत्तबंध च महब्भयावहं ।
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाणगुणावहं महं ॥९९॥

–त्ति बेमि ।

धन को दुःख बढ़ाने वाला और ममता के बंधन को महाभयंकर जानकर, निर्वाण के गुणों–मोक्ष को प्राप्त कराने वाली, अनन्त सुख को प्राप्त कराने वाली अनुत्तर धर्म की धुरा को धारण करो ॥९९॥

–ऐसा मैं कहता हूँ ।

Know the wealth as enhancer of agonies and the tie of mineness (affection–myness) as great ferocious; retain the axis of supreme religion which is capable to attain the salvation-virtues and endless supreme soul-bliss. (99) **–Such I speak.**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३-त्रायस्त्रिंश जाति के देवों को "दोगुन्दग देव" कहते हैं। ये जैन और बौद्ध परम्परा में बड़े ही महत्व के देव माने गये हैं। उन्हें सदा भोगपरायण कहा है।

गाथा ४-चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि मणि कहलाते हैं, और शेष गोमेदक आदि रत्न।

गाथा १७-"किम्पाक" एक विष वृक्ष होता है। उसके फल खाने में सुस्वादु होते हैं, किन्तु परिपाक में भयंकर कटु अर्थात् प्राणघातक। किंपाक का शब्दार्थ ही है-"किम्" अर्थात् कुत्सित-बुरा "पाक" अर्थात् विपाक-परिणाम है जिसका।

गाथा ३६-सामान्यतया जैन श्रमणों की भिक्षा के लिये गोचर (गोचरी) एवं मधुकरी शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ कापोती वृत्ति का उल्लेख है। कबूतर सशंक भाव से बड़ी सतर्कता के साथ एक-एक दाना चुगता है, इसी प्रकार एषणा के दोषों की शंका को ध्यान में रखते हुए भिक्षु भी थोड़ा-से-थोड़ा आहार अनेक घरों से ग्रहण करता है।

गाथा ४६-संसार रूपी अटवी के नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव-ये चार अन्त होते हैं, अतः आगमों में संसार को "चाउरंत" कहा गया है।

Salient Elucidations

Gāthā 3–The gods of *Trāyastriṁśa* class are said as *Dogundaga* gods. In Jain and Bauddha traditions these are supposed to be of great importance. These gods are fond of luxuries and comforts, pleasures and rejoicings.

Gāthā 4–Candrakānta and Sūryakānta etc., are called as gems and the remaining Gomedaka etc.. as jewels.

Gāthā 17–Kimpāka is a poisonous tree. Its fruits are very tasteful while eating. But the consequence is very punget-martial, destruction of vital energies, death.

Gāthā 36–Generally for alms taking or begging of Jain mendicants the words are used as Gocarī and Madhukarī. But here the word Kāpotīvṛttī (tendency of a pigeon) is mentioned. Pigeon takes grain one by one by his beak with suspicion and alertness. In the same way keeping the faults of Eṣaṇā (seeking circumspection) in mind mendicant also takes a little food from many houses.

Gāthā 46–There are four ends of worldly wood–hell, beasts (crooked motion beings), human and god. Hence in sacred scriptures the universe is called as Cāuranta (having for ends or existences).

卐

बीसवाँ अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थीय है। इसमें महानिर्ग्रन्थ की चर्या तथा मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है।

इससे पहले अध्ययन मृगापुत्र में मृगचरिया-मुनि की उत्कृष्ट चर्या के विषय में संकेतात्मक निर्देश किया गया था और इस अध्ययन में उसका विशदीकरण है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रारम्भ अनाथी मुनि और राजा श्रेणिक के वार्तालाप से होता है।

एक बार मगधेश श्रेणिक राजगृह के बाह्य भाग में अवस्थित मण्डिकुक्षि उद्यान में प्रातः भ्रमण के लिए गये। वहाँ उन्होंने एक तरुण निर्ग्रन्थ को ध्यान-लीन देखा। उनके अनुपम सौन्दर्य, सुकुमारता, रूप-लावण्यता आदि को देखकर राजा चकित रह गया। ध्यान पूरा होने पर जब मुनि ने आँखें खोलीं तो राजा ने कहा-

"आप श्रमण कैसे बन गये ? आपकी यह युवावस्था और कांतिमान शरीर तो भोग भोगने योग्य है। इस भोग की आयु में योग ग्रहण करने का क्या कारण है?"

मुनि ने संक्षिप्त उत्तर दिया-राजन् ! मैं अनाथ हूँ।

यद्यपि राजा श्रेणिक को मुनि के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि मुनि की भव्य आकृति उनके संभ्रान्त कुल का परिचय दे रही थी; सोचा-शायद, मुनि का कथन सत्य हो। वह बोला-

"मैं आपका नाथ बनता हूँ। आपको भोगों का आमन्त्रण देता हूँ। मैं आपके लिए सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ तथा भोग-सामग्री का प्रबन्ध करूँगा।"

मुनि ने कहा-राजन् ! तुम स्वयं अनाथ हो, मेरे नाथ कैसे बनोगे ?

राजा समझा कि मुनि ने उसे पहचाना नहीं है। उसने कहा-आप मुझे नहीं जानते, मैं मगध सम्राट श्रेणिक हूँ। मेरे पास चतुरंगिणी सेना, धन से भरा-पूरा कोश, विशाल साम्राज्य, अनेकों रानियाँ और हजारों दास-दासियाँ हैं। फिर भी आप मुझे अनाथ समझ रहे हैं। आपका यह कथन सत्य नहीं है।

मुनि ने कहा-राजन् ! जिस अभिप्राय से मैंने अनाथ शब्द कहा है, वह तुम नहीं समझे ।

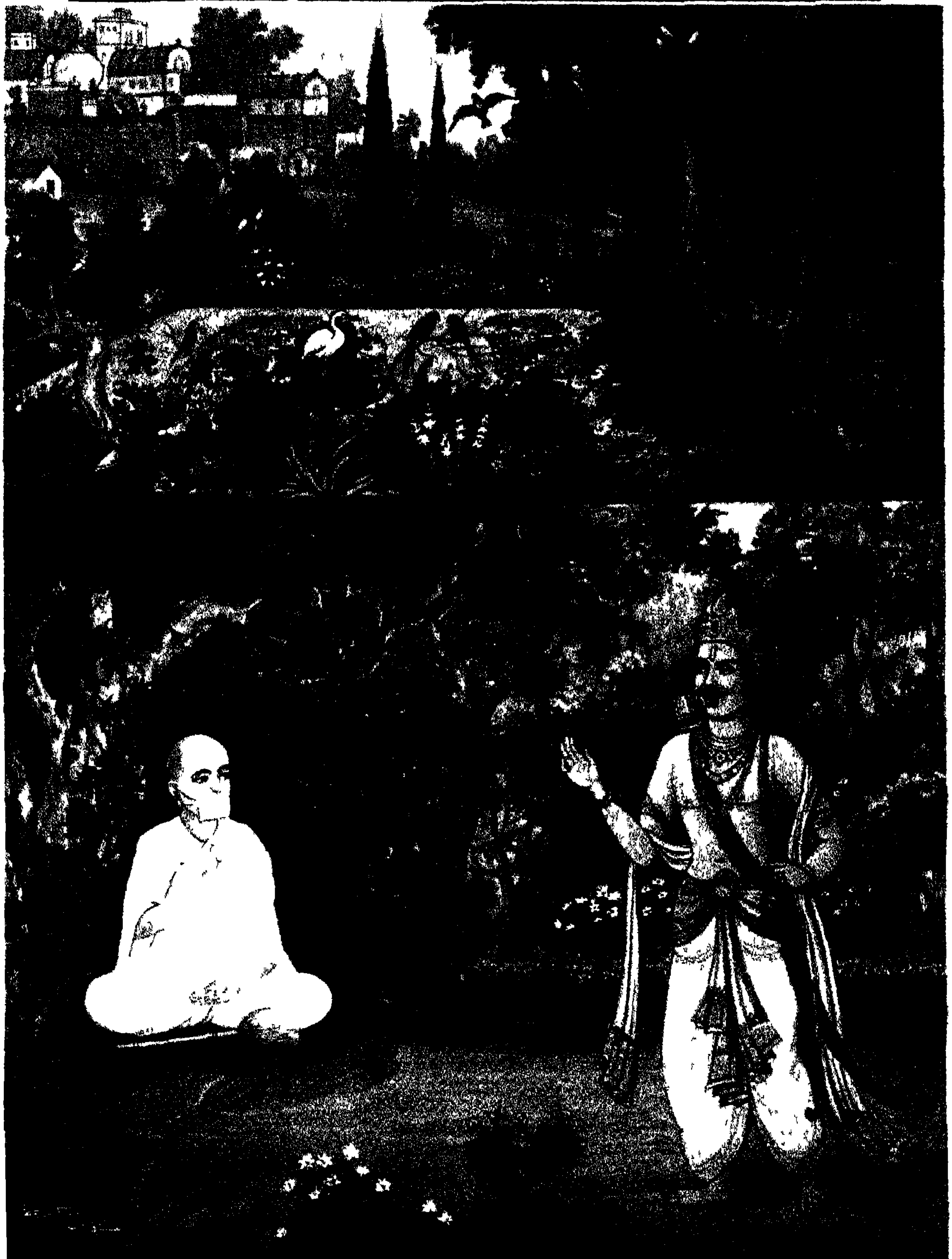
तब श्रेणिक की जिज्ञासा पर मुनि ने अपने जीवन में घटी घटना का उल्लेख करके समझाया-

राजन् ! मैं कौशाम्बी के इभ्य श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। बड़े लाड़-प्यार से मेरा पालन-पोषण हुआ। युवा होने पर विवाह हो गया।

एक बार मेरी आँखों में तीव्र वेदना हुई। मेरे पिता ने पानी की तरह धन बहाया। वैद्य, चिकित्सक, मंत्र-तंत्रवादियों ने उपचार किया लेकिन मेरी वेदना कम न कर सके। मेरी माता-पत्नी आँसू बहाती रहती थीं। छोटे-बड़े भाई-बहन, मित्र, सुहृद भी मेरी सेवा में लगे रहते थे; किन्तु मेरी वेदना कम न हो सकी।

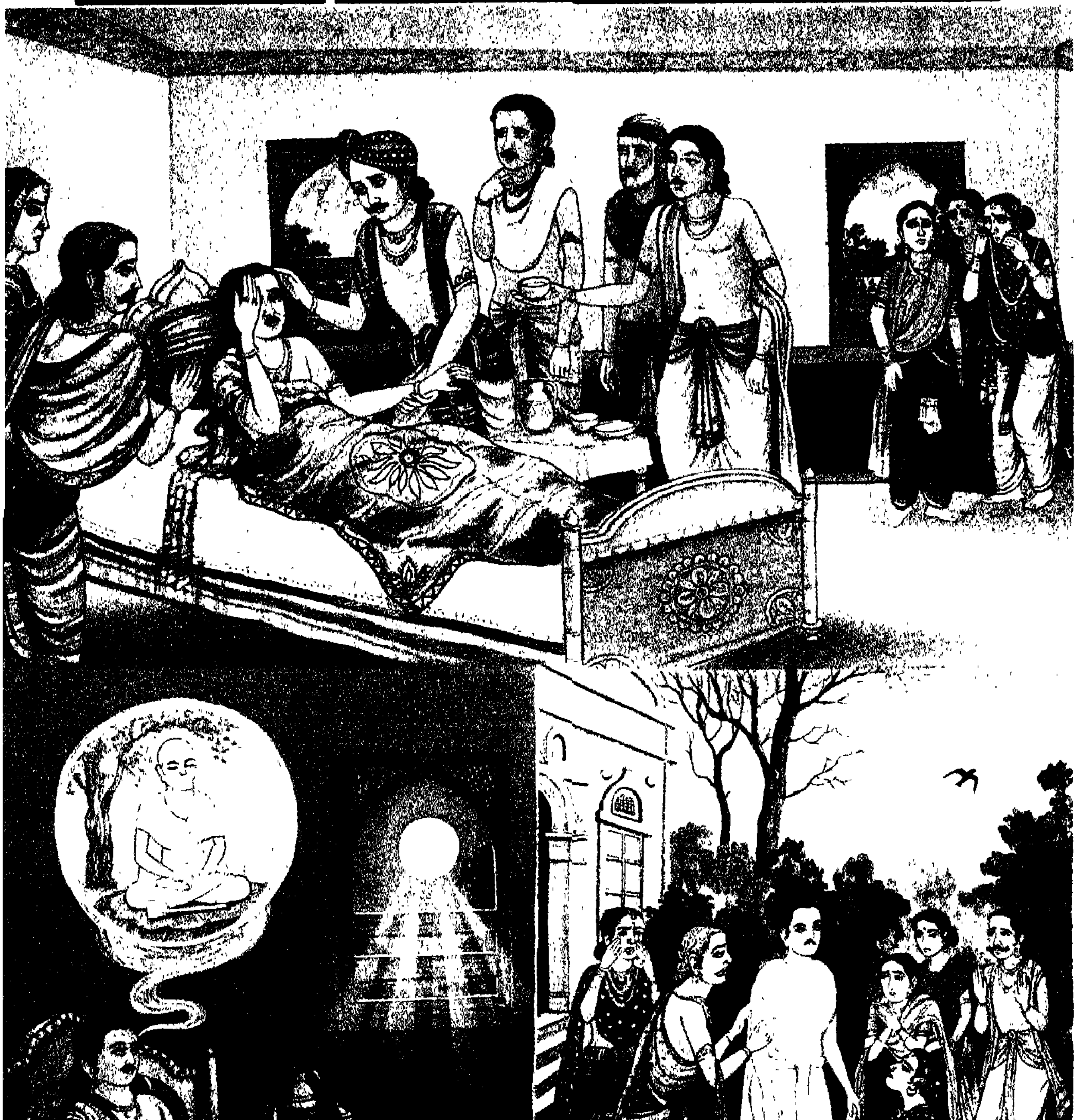
राजन् ! वह मेरी अनाथता थी।

ILLUSTRATION NO. 47 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४७ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 48 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४८ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

फिर एक रात मैंने स्वयं ही संकल्प किया–यदि मेरी अक्षिवेदना मिट जायेगी तो मैं श्रमण बन जाऊँगा। उस रात मुझे चैन से नींद आई, सुबह उठा तो वेदना भी मिट चुकी थी। मैं श्रमण बन गया।

तदुपरान्त अनाथी मुनि ने कहा–केवल श्रमण वेश धारण करने से ही सनाथता नहीं आती। जो राग-द्वेष, काम-भोगों की भावनाओं से ग्रसित होते हैं, वे श्रमण भी अनाथ ही होते हैं।

सनाथ तो केवल शुद्धाचारी श्रमण ही होते हैं।

राजा श्रेणिक ने सनाथ-अनाथ का यथार्थ अभिप्राय समझा और सम्यक्त्व ग्रहण किया।

सम्पूर्ण अध्ययन की भाषा ओजपूर्ण, रोचक और प्रेरक है। सूक्तियों और उपमाओं की प्रचुरता है। यह अध्ययन किसी भी व्यक्ति को अन्तर्मुखी और उसकी आत्मा को जागृत करने में सफल है।

प्रस्तुत अध्ययन में ६० गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 20
CONDUCT OF A GREAT KNOT-FREE MONK

Foreview

This chapter is entitled as 'Conduct of a great knot-free monk' Here are described the religious orders of a great knot-free monk and fundamental principles.

In the preceding ninteenth chapter 'Mṛgāputra' there were the hints about the excellent religious order of a monk and that was called as the behaviour of a deer; and in this chapter that monk order is described in full detail.

This chapter begins with the conversation between king Śreṇīka and knot-free monk named Anāthī.

Once monarch of Magadha kingdom king Śreṇka went for morning-walk in Maṇḍikukṣi garden, which was situated outside the city Rājagṛha, the capital of Magadha kingdom.

There king Śreṇika saw a young knot-free monk in deep meditation. King amazed to see monk's excellent beauty, tenderness etc. Completing the meditation when monk opened his eyes then king said to him–

"Why have you adopted sagehood ? This period of your age and your lustrous body is fit for enjoying pleasures of the world During the age of pleasures, you became an ascetic What is the cause of it ?"

Monk gave a short reply–King ! I was unprotected ?

Though king could not believe this reply of monk, because the grand figure of monk was proving his higher family; yet he thought-the expression of monk may be true. He said–

"I, myself become your protector and invite you to enjoy pleasures. I will manage for you, all types of pleasure–objects and comforts with luxury."

Monk said–King, you yourself are unprotected; how can you become my protector ?

King thought that monk could not recognise him. He said–

"You do not know me. I am king Śreṇika, the monarch of vast Magadha kingdom. I have fourfold army, treasure full of wealth, vast kingdom, many queens and thousands of men-slaves and slave-maidens and even then you are saying me protection-less. Your this expression is not true."

Monk said–

"King ! you could not understand my purpose with which I have used the word lack of protection for you."

Then, at the curiosity of king Śreṇika, monk expressed the event of his life.

King ! I am son of a very richman of Kauśāmbī city. I was grown up with love and affection. I have been married to a very beautiful and rich youth as I become young.

Once I was caught by severe eye-pain. My father lavishly expend the wealth. Physicians, mantrologists, tantrologists etc., gave the best treatment; but all of them could not even lessen my agony. My mother and wife always shed their trears, younger and elder brothers and sisters, friends etc., were always ready to serve me; but my eye-agony could not be lessened.

O king ! That was my unprotectedness.

Then one night I myself resolved–If my eye-agony completely pacified, I will become a sage. That night I slept a comfortable sleep, awoke in the morning then there was not a bit of eye-pain, I became a sage.

After this Anāthī monk said–protectionness cannot be acquired by only wearing the robe of a sage. Who are gripped by the feelings of attachment, aversion, pleasures and amusements, those sages are also unprotected.

Protectors are only the pious sages.

King Śreṇika understood the real meaning of with and without protection and adopted right faith.

The language of this chapter is inspirative, attractive, and full of splendour with abundance of sayings and similes.

This only chapter is capable to make a man introvert and awake his soul.

This chapter contains 60 couplets.

卐

विंसइमं अज्झयणं : महानियण्ठिज्जं
विंशति अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसट्ठिं सुणेह मे ॥१॥

सिद्धों तथा संयतों (आचार्य, उपाध्याय, साधु) को भाव सहित नमस्कार करके मैं अर्थ-(मोक्ष) और धर्म (रत्नत्रयरूप धर्म) का ज्ञान कराने वाली तथ्यपूर्ण शिक्षा का कथन करता हूँ, उसे मुझसे सुनो ॥१॥

Devotionally bowing to Emancipateds (Jinas) and restraineds (preceptors, preachers, and religious teachers) I express the instruction, which is capable to obtain the knowledge of liberation and religion (the religion of right knowledge-faith-conduct-रत्नत्रय धर्म) ; listen that from me. (1)

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥२॥

प्रचुर रत्नों का स्वामी, मगध देश का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि उद्यान में उद्यान-क्रीड़ा के लिए नगर से निकला ॥२॥

The owner of abundant jewels, monarch of Magadha kingdom, King Śreṇika went out of city for amusement in Maṇḍikukṣi garden. (2)

नाणादुमलयाइण्णं, नाणापक्खिनिसेवियं ।
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नन्दणोवमं ॥३॥

वह उद्यान नंदन वन के समान अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं से आच्छादित, विविध प्रकार के पक्षियों से आकीर्ण और विभिन्न प्रकार के पुष्पों से भरा हुआ था ॥३॥

That garden (Maṇdikukṣi) was adorned with several kinds of trees and tendrils, birds and full of flowers, like Nandanavana (the garden of gods and king of gods) (3)

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं ।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥४॥

उस उद्यान में राजा श्रेणिक ने एक वृक्ष के मूल में एक सुख-भोग के आयुष्य वाले, सुकुमार, सम्यक् समाधि युक्त संयत को ध्यानस्थ बैठे देखा ॥४॥

In that garden king Śreṇika saw a sage under a tree, who was young, tender, and of age of enjoying pleasures; but he was deep in contemplation (4)

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।
अच्चन्तपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥५॥

उस संयत के रूप को देखकर राजा के मन में उसके प्रति अत्यधिक अतुलनीय आश्चर्य हुआ ॥५॥

Seeing that sage king filled with great astonishment. (5)

अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो ! अज्जस्स सोमया ॥
अहो ! खंती, अहो ! मुत्ती, अहो ! भोगे असंगया ॥६॥

राजा श्रेणिक के हृदय में आश्चर्यकारी भाव उमड़े-अहो ! इस संयत का क्या वर्ण है? क्या रूप है? कैसी सौम्यता है? कितनी क्षमा है? कैसी निर्लोभता है? और भोगों के प्रति कितनी असंगतता है?॥६॥

Astonished feelings aroused in the heart of king–Oh what a complexion, figure, loveliness, tranquillity, forgiveness, ungreediness and disregard towards pleasures of this sage (6)

तस्स पाए उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई ॥७॥

उस साधु की प्रदक्षिणा तथा वन्दना करके न तो अधिक दूर और न अति समीप–योग्य स्थान पर खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर पूछने लगा–॥७॥

Circumambulating and bowing the sage, king stood at a proper place, which was neither too far nor too near, and began to ask by folding hands–(7)

तरुणोसि अज्ज ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया !
उवट्ठिओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणेमि ता ॥८॥

हे आर्य ! हे संयत ! आप भोग काल में–युवावय में प्रव्रजित हुए हो, श्रामण्य की परिपालना कर रहे हो। इसका क्या कारण है? मैं सुनना चाहता हूँ ॥८॥

O noble ! O restrained ! You are consercated in young age–which is called life-period of enjoyments, rejoicings and pleasures: and practising sagehood. What is the cause of it ? I want to listen–to know. (8)

अणाहो मि महाराय !, नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वावि, कंचि नाभिसमेमऽहं ॥९॥

(साधु) महाराज ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है। अनुकम्पा करने वाला कोई सुहृत मित्र भी मुझे न मिल पाया ॥९॥

(Monk) Monk told–King ! I was without protector, no body was to protect me, neither a friend nor a sympathiser. (9)

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई ? ॥१०॥

(श्रेणिक) यह सुनकर मगधपति राजा श्रेणिक जोर से हंसा और फिर बोला–तुम ऋद्धि संपन्न दिखाई देते हो, फिर भी तुम्हारा कोई नाथ कैसे नहीं है ?॥१०॥

(Śreṇika) Hearing this reply of sage, monarch of Magadha, king Śreṇika laughed with scream and smirch and then uttered–You seem wealthy and fortunate, even then how no body is your protector ? (10)

होमि नाहो भयन्ताणं, भोगे भुंजाहि संजया ।
मित्त–नाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

हे भदन्त ! मैं आपका नाथ बन जाता हूँ। हे संयत ! आप मित्र और ज्ञातिजनों के साथ भोगों को भोगो; क्योंकि मानव-जन्म की प्राप्ति अति दुर्लभ है ॥११॥

O religious person (भदन्त) ! I become your protector. O restrained ! You enjoy pleasures with your friends and relations ; for getting the human existence is very difficult. (11)

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया ! मगहाहिवा !
अप्पणा अणाहो सन्तो, कहं नाहो भविस्ससि ? ॥१२॥

(श्रमण) हे मगधाधीश राजा श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ हो तब मेरे नाथ कैसे बन सकते हो ?॥१२॥

O king Śreṇika, monarch of Magadha ! You yourself are without protector, then how you can be my protector ? (12)

एवं वुत्तो नरिन्दो सो, सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥

पहले से ही विस्मित राजा श्रेणिक मुनि के इन वचनों को सुनकर और भी विस्मित तथा संभ्रमित हो गया ॥१३॥

Hearing these words of the monk, the king who was previously amazed, struck with astonishment (13)

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

(श्रेणिक) मेरे पास घोड़े हैं, हाथी हैं, मनुष्य (सेवक) हैं, यह नगर मेरा है और मेरा अन्तःपुर भी है, मेरा ऐश्वर्य है तथा मेरी आज्ञा चलती है। मैं मनुष्य संबंधी सभी प्रकार के भोगों को भोग रहा हूँ–॥१४॥

(Śreṇika) I possess horses, elephants, men (servants), this town and seraglio, power, wealth, prosperity, command; and enjoying all the pleasures of human life. (14)

एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ ?, मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥१५॥

इस प्रकार की उत्तम संपदा के कारण मुझे सभी प्रकार के कामभोग सुलभ हैं; फिर मैं कैसे अनाथ हूँ? भंते ! आप असत्य भाषण न करें ॥१५॥

Due to such great wealth (power) all pleasures are feasible to me; even then how I am without protection. Being a religious person, you should not speak untruth. (15)

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं व पत्थिवा !
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा नराहिवा ? ॥१६॥

(श्रमण) हे पृथ्वीनाथ ! तुम अनाथ शब्द और उसके परमार्थ को नहीं जानते कि कोई व्यक्ति किस प्रकार अनाथ अथवा सनाथ होता है–॥१६॥

(Monk) O king ! You do not know the meaning and subtle truth of the word without protector (अनाथ) and how a person becomes with and without protection. (16)

सुणेह मे महाराय ! अवक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवई, जहा मे य पवत्तियं ॥१७॥

हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनो कि कोई व्यक्ति कैसे अनाथ होता है और मैंने जिस आशय से इस शब्द का प्रयोग किया है ॥१७॥

O king ! Listen with concentrated mind that how a man becomes without protection, and with what purpose I have uttered this word. (17)

कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूयधणसंचओ ॥१८॥

प्राचीन नगरों में अतिसुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ मेरे पिता निवास करते थे। उनके पास प्रचुर मात्रा में धन का संचय (संग्रह) था ॥१८॥

Among the ancient towns, there is a very beautiful city named Kauśāmbī In that town my father inherited He has abundant accumulation of wealth. (18)

पढमे वए महाराय ! अउला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वंगेसु य पत्थिवा ! ॥१९॥

महाराज ! प्रथम वय–युवावस्था में मेरी आँखों में अतुल-अत्यधिक तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। हे राजन् ! उसके कारण मेरे सभी अंगों में तीव्र दाह होने लगा ॥१९॥

O king ! In my prime of life–youth, I caught severe eye-pain. Due to that pain a severe burning aroused in my all parts of body. (19)

सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीरविवरन्तरे ।
पवेसेज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥२०॥

जैसे कोई क्रुद्ध शत्रु शरीर के मर्मस्थानों में परम तीक्ष्ण शस्त्र भौंक दे तब जैसी घोर पीड़ा होती है, वैसी तीव्र पीड़ा मेरी आँखों में हो रही थी ॥२०॥

My eyes ached as if any angry enemy penetrate a sharp tool in vital parts of my body. (20)

तियं मे अन्तरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई ।
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

इन्द्र के वज्र प्रहार से जैसी मर्मान्तक पीड़ा होती है, वैसी ही परम दारुण वेदना मेरे त्रिक–कटि प्रदेश, अन्तरेच्छ–हृदय और उत्तमांग–मस्तक में हो रही थी ॥२१॥

As the bitter poignant agony created by the stroke of thunderbolt of king of gods, the same bitter and acute agony was aching my waist, heart and head. (21)

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जा-मन्ततिगिच्छगा ।
अबीया सत्थकुसला, मन्त-मूलविसारया ॥२२॥

विद्या तथा मंत्रों से चिकित्सा करने वाले, मंत्र एवं जड़ी-बूटियों (मूल) द्वारा चिकित्सा में निपुण, शस्त्र (शल्य) चिकित्सा में अति कुशल, आयुर्वेद में निष्णात–सभी मेरा उपचार करने लगे ॥२२॥

Then the mantrologists, experts in treatment by roots–herbs, best surgeons and efficient in medical science began to give me treatments. (22)

ते मे तिगिच्छं कुव्वन्ति, चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२३॥

उन्होंने मेरे रोग की उपशान्ति के लिए चुतष्पाद–चिकित्सा (वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक) की; लेकिन वे मुझे पीड़ा से मुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता थी ॥२३॥

For pacifying disease they give me fourfold treatment (physician, patient, medicine nurses); but they could not make me free from pain. This was my unprotectedness. (23)

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

मेरे लिए मेरे पिता ने चिकित्सकों को अपनी सारभूत वस्तुएँ (धन, रत्न, मणि, माणिक्य आदि) दीं, फिर भी वे चिकित्सक मुझे वेदना-मुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता थी ॥२४॥

My father gave his valuable possessions to physicians, like-jewels, gems, gold etc., so that they can rescue me from pain; but those could not pacify my pains, hence I say I was without protection. (24)

माया य मे महाराय !, पुत्तसोगदुहट्टिया ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

महाराज ! मेरी माता, मेरे प्रति मोह के कारण पीड़ित रहती थी; लेकिन वह भी मुझे मेरे दुःख से मुक्त न कर सकी; यह मेरी अनाथता है ॥२५॥

O king ! My mother always was full of sorrow due to her affection to me; but she also could not make me free from my pains, hence I say I was without a protector. (25)

भायरो मे महाराय !, सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

महाराज ! मेरे सगे छोटे-बड़े भाई भी मुझे दुःख से छुटकारा न दिला सके; यह मेरी अनाथता है ॥२६॥

O king ! My own younger and elder brothers also could not make me get rid from pains. Hence I was without a protector. (26)

भइणीओ मे महाराय !, सगा जेट्ठ-कणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

महाराज ! मेरी छोटी-बड़ी सगी बहनें भी मुझे मेरे दुःख से त्राण न दिला सकीं; यह मेरी अनाथता है ॥२७॥

O king ! My own younger and elder sisters also could not make me free from my pains. So I was without a protector (27)

भारिया मे महाराय !, अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई ॥२८॥

महाराज ! मुझ में अनुरक्त, मेरी प्रतिव्रता पत्नी मेरे वक्षस्थल पर सिर रखकर आँसुओं से मेरे हृदय को भिगोती रहती थी-॥२८॥

O king ! My chaste and devoted wife, keeping her head on my chest moistened it by her sheding tears. (28)

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गन्ध-मल्ल-विलेवणं ।
मए नायमणायं वा, सा बाला नोवभुंजई ॥२९॥

मेरी वह नवयुवती पत्नी मेरी जानकारी में या परोक्ष में अन्न, पान, स्नान, विलेपन, गंध-माल्य आदि का प्रयोग (उपभोग) नहीं करती थी ॥२९॥

My young wife with or without my knowledge did not eat, drink, bathe nor use perfumes, wreaths and anointments. (29)

खणं पि मे महाराय !, पासाओ वि न फिट्टई ।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

वह एक क्षण के लिए भी मुझसे अलग नहीं होती थी। फिर भी हे महाराज ! वह मुझे मेरी वेदना से मुक्त न कर सकी, यही मेरी अनाथता है ॥३०॥

O king ! She did not leave my side even for an instant, but she could not rid me of my pains. Hence I was without a protector. (30)

तओ हं एवमाहंसु, दुक्खमाहु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणन्तए ॥३१॥

तब निराश होकर मैंने मन-ही-मन विचार किया-कि इस अनन्त संसार में प्राणी को बार-बार दुःसह दुःख भोगना पड़ता है ॥३१॥

Then being disappointed I thought in my mind that in this endless cycle of births deaths–the world; a living being is bound to suffer the dreadful pains–torments. (31)

सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वए अणगारियं ॥३२॥

यदि एक बार मैं इस घोर वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो क्षमावान, दमितेन्द्रिय, आरम्भत्यागी अनगार बन जाऊँगा ॥३२॥

If I once get rid of this acute rigorous pain, then I will become a forgiving, sense-subdued, houseless monk (32)

एवं च चिन्तइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा ।
परियट्टन्तीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥३३॥

हे नरेश ! इस प्रकार का चिन्तन (दृढ़ संकल्प) करके मैं सो गया और बीतती हुई रात्रि के साथ मेरी वेदना भी समाप्त हो गई ॥३३॥

O king ! with such firm resolve, I fell asleep and with the passing night my pains had also vanished. (33)

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बन्धवे ।
खन्तो, दन्तो, निरारम्भो, पव्वइओ ऽणगारियं ॥३४॥

तब सूर्योदय के साथ ही नीरोग होकर मैंने बन्धु-बान्धवों से पूछा–अनुमति ली और क्षमाशील, दमितेन्द्रिय, निरारम्भी अनगार बन गया ॥३४॥

Then as the sun arose I was totally free from disease, I took permission from my family members, brethren etc., and became a forgiving, sense-subdued, possessionless and quit-home sage. (34)

ततो हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य ॥३५॥

तदनन्तर मैं अपना और दूसरों का, त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ बन गया ॥३५॥

After that I became the protector of my ownself (soul) all others–the movable and immovable living beings. (35)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥३६॥

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, कामधेनु है और नन्दन वन है ॥३६॥

My own soul is Vaitaraṇī river, Kūta Śālmalī tree (hellish river and tree) Kāmadhenu (wish fulfilling cow) and Nandanavana (most pleasant place). (36)

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय–सुपट्ठिओ ॥३७॥

यह आत्मा ही अपने सुख-दुःखों का कर्ता है और भोक्ता भी यही है। शुभ प्रवृत्तियों में प्रवृत्त आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्तियों लीन आत्मा अपना ही शत्रु है ॥३७॥

The soul itself is the doer and undoer of joy and miseries. Indulged in auspicious tendencies it is its friend and becomes foe doing inauspicious deeds. (37)

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !, तमेगचित्तो निहुओ सुणेहिं ।
नियण्ठधम्मं लहियाण वी जहा, सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥३८॥

नरेश ! एक अन्य प्रकार की भी अनाथता है, उसे एकाग्र और शान्त हृदय से सुनो। बहुत से ऐसे भी कायर पुरुष होते हैं जो निर्ग्रन्थ धर्म को प्राप्त करके भी खिन्न हो जाते हैं–दुःख का अनुभव करते हैं ॥३८॥

O king ! There is another type of unprotectedness, listen that with peace-mind and attentively. There are some persons, those may easily be discouraged and go astray even adopting the order of knotless monk and become sorrowful. (38)

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं नो फासयई पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्दइ बन्धणं से ॥३९॥

जो प्रव्रजित होकर प्रमाद के कारण महाव्रतों का सम्यक् रूप से परिपालन नहीं करता, आत्मा और इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता, रसों–स्वादों में आसक्त रहता है वह बन्धनों का मूलोच्छेद नहीं कर सकता ॥३९॥

Who being consecrated, due to negligence does not properly practise the great vows, control his own soul, and senses, indulges to tastes; he cannot uproot the bondages. (39)

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ, इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाण-निक्खेव-दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

जिस साधक की ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उच्चार-प्रस्रवण (दुगंछण–जुगुप्सा उत्पन्न करने वाली) परिष्ठापनिका–इन पाँचों समितियों में यतना (–आइत्तया) नहीं है, वह उस मार्ग पर नहीं चल सकता है, जिस पर वीर पुरुष चलते हैं ॥४०॥

Who is not circumspect with five circumspections–(1) of movement, (2) of speaking (3) seeking for necessities, (4) take-put (5) about excretions of body; he cannot follow the path trod by braves. (40)

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तव-नियमेहि भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥४१॥

जो महाव्रतों के पालन में अस्थिर और तप-नियमों के आचरण से भ्रष्ट है, वह मुण्डित (मुण्डरुचि) (केशलोंच आदि द्वारा) दीर्घकाल तक शरीर को कष्ट देकर भी संसार से पार नहीं हो सकता है ॥४१॥

Who is not steady in observing the great vows, slipped in practising penances and regulations (codes) that having hairless head, mortifies his body for a long time by tonsure etc , but cannot cross the ocean of world. (41)

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे अयन्तिए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥४२॥

जिस प्रकार पोली (खाली) मुट्ठी, अयंत्रित-अप्रमाणित खोटा सिक्का और काच मणि, यद्यपि वैडूर्य मणि के समान चमकती है लेकिन जानकारों की दृष्टि में इनका कोई मूल्य नहीं होता (इसी प्रकार चारित्र-गुणों से शून्य मात्र वेशधारी मुण्डित भी निर्मूल्य होता है) ॥४२॥

As the empty like a clenched fist, invalid false coin and cultured jewel–the jewel of glass, though they glitters more; but in the view of wise men they bear no value. In the same way the shaven crown, but lacking conduct-virtues bears no value. (42)

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता ।
असंजए संजयलप्पमाणे, विणिघायमागच्छइ से चिरंपि ॥४३॥

इस जन्म में जो आचारहीनों का वेश (कुशील लिंग) तथा रजोहरण आदि श्रमण चिन्ह (इसिज्झय) धारण करके जीविका चलाता है तथा असंयत होकर भी अपने आपको संयत कहलाता है वह दीर्घकाल तक जन्म-मरण की परम्परा को प्राप्त होता है ॥४३॥

In this life who earns his livelihood by the robes of other creeds and tokens of Jain sages and being himself unrestrained pretends to be as restrained; he undergoes the cycle of births and deaths for a long time. (43)

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसे व धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥४४॥

जिस प्रकार पिया हुआ कालकूट विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित वैताल नाशकारी होते हैं, उसी प्रकार विषय-विकारों से युक्त धर्म भी साधक के लिए विनाशकारी होता है ॥४४॥

As drank dreadful poison (कालकूट विष), handled awkward weapon and uncontrolled demon of funeral abode are harmful or killers. In the same way the religious rituals–religion mixed with sensuality becomes harmful. (44)

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, निमित्त–कोऊहलसंपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥४५॥

जो लक्षण शास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्तशास्त्र, कौतुक–इन्द्रजाल आदि असत्य और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली विद्या (कुहेड) एवं आस्रवद्वारों में आसक्त होता है तथा इनके द्वारा अपनी जीविका चलाता है, उनके फल भोगते समय कोई भी उसका सहायक अथवा रक्षक नहीं होता ॥४५॥

Who indulges himself foretelling the good or bad effects by the signs of body, dreams, augury, superstitious rites, the cherishmas, untruth, magic tricks, spells, and the channels of inflow of karmas, lives by these ; at the time of retribution, none can be helper and refuge to him. (45)

तमंतमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ ।
संधावई नरगतिरिक्खजोणिं, मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे ॥४६॥

वह शील रहित साधु अपने घोर अज्ञानान्धकार के कारण (तमंतमेणेव) विपरीत दृष्टि वाला हो जाता है तथा असाधु प्रवृत्ति वाला वह साधु मुनि धर्म (मोणं) की विराधना करके, सदा दुःखी होकर नरक तिर्यंच गति में जन्म-मरण करता रहता है ॥४६॥

That sage devoid of good conduct, becomes of perverse thoughts, due to his own dense ignorance and that unsage doing the dis-propiliation of monk-order being always full of miseries transmigrates in hellish and beast existences. (46)

उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं ॥४७॥

जो औद्देशिक, खरीदा हुआ, नित्यपिंड आदि थोड़ा-सा भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता, अग्नि की भाँति सर्वभक्षी वह साधु पापकर्म करके यहाँ से मरण करके दुर्गति में जाता है ॥४७॥

Who accepts the food prepared for him, bought for his sake, and regular food-thus forbidden food, all-eater like fire; that sage due to his sinful deeds goes to ill-existences. (47)

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

उस साधु की दुष्प्रवृत्तिशील आत्मा जैसा अनर्थ करती है, वैसा तो गला काटने वाला शत्रु भी नहीं करता। दया-संयमविहीन वह साधु मृत्यु के मुख में पहुँचने पर पश्चात्ताप करता हुआ इस तथ्य को जान पाता है ॥४८॥

No cut-throat enemy harms, as his own soul indulged in bad tendencies. Devoid of compassion and restrain that can be aware of this fact at death hours with laments. (48)

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥४९॥

जिस साधक की मोक्ष रूप अर्थ में विपरीत दृष्टि होती है उसकी साधुत्व में रुचि (नग्गरुई) व्यर्थ है। उसके लिए न यह लोक है, न परलोक है; वह दोनों लोकों से भ्रष्ट हो जाता है ॥४९॥

Who has perverse thinking about salvation, his inclination towards sagehood is of no use. For that adept neither this world nor that, he is a loser of both the worlds. (49)

एमेवऽहाछन्द-कुसीलरूवे, मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परियावमेइ ॥५०॥

इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की विराधना करके तथा भोग और रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली गीध पक्षिणी के समान परिताप करता है ॥५०॥

In the same way the self-willed and bad monk dispropiliating the path prescribed by Jinas and being indulged in tastes etc., he laments like a she-vulture, who sorrows for nothing. (50)

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियण्ठाण वए पहेणं ॥५१॥

मेधावी साधक ज्ञानगुण से युक्त इस हितशिक्षा–सुभाषित को सुनकर कुशील–आचारभ्रष्ट सब साधुओं के मार्ग को छोड़कर महानिर्ग्रन्थों के पथ का अनुगमन करे॥५१॥

Having heard this beneficial instruction with knowledge-virtue; the wise adept leaving the path of all the bad and fallen sages from right conduct, follow the path of great knot-free monks. (51)

चरित्तमायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजम पालियाणं ।
निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥५२॥

चारित्र–आचार तथा ज्ञान आदि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निरास्रव होता है। वह उत्कृष्ट शुद्ध संयम का पालन कर तथा कर्मों का क्षय करके विपुल, उत्तम, ध्रुव स्थान–मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥५२॥

Opulent with the virtues of conduct and knowledge the knot-less monk is free from inflow of karmas. Practising the excellent pure restrain and destructing all the karmas he attains the greatest, best and eternal place–the salvation. (52)

एवुग्गदन्ते वि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ।
महानियण्ठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

इस प्रकार कर्मों का क्षय करने में उग्र, महा तपोधन, महाप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, महायशस्वी उन मुनि ने महानिर्ग्रन्थीय महाश्रुत का अति विस्तार पूर्वक कथन किया ॥५३॥

Thus much vigourous to destruct the karmas, great prenancer, steadily resolved, conqueror of senses (sensual pleasures) most glorious that monk (Anāthī knotless monk) described at large the esteemed dialect of great knot-free doctrine. (53)

तुट्ठो य सेणिओ राया, इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥५४॥

(श्रेणिक) तुष्ट हुए राजा श्रेणिक ने हाथ जोड़कर कहा–भगवन् ! आपने मुझे अनाथता का स्वरूप भली-भाँति समझाया है ॥५४॥

(Sreṇika) Contended king Śreṇika spoke with folded hands–Reverend sir ! You have very well expressed the meaning of unprotectedness. (54)

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी !
तुब्भे सणाहा य सबन्धवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥५५॥

हे महर्षि ! आपका मनुष्य जन्म वास्तव में सफल हुआ, आपकी लब्धियाँ सफल हुईं। आप ही सनाथ और सबान्धव हो क्योंकि आप जिनेश्वरों के मार्ग में स्थित हो ॥५५॥

O great sage ! Really your man-birth became successful. Your occult powers also became successful. You only are the protected and with the feelings of brother-hood (equanimous attitude); because you are firm on the path of Jinas. (55)

तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजया !
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउं ॥५६॥

हे संयत ! आप अनाथों के और सभी जीवों के नाथ हो। महाभाग ! मैं आप से क्षमा चाहता हूँ और अब मेरी इच्छा है कि आप मुझे हितशिक्षा दें ॥५६॥

O restrained saint ! You are the protector of unprotecteds, protector and saviour of all the living beings of universe. O great fortunate ! I beg pardon to you and I wish that you please bestow me the beneficial instructions. (56)

पुच्छिऊण मए तुब्भं, झाणविग्घो उ जो कओ ।
निमन्तिओ य भोगेहिं, तं सव्वं मरिसेहि मे ॥५७॥

मैंने प्रश्न पूछकर आपके ध्यान में विघ्न किया और भोगों का निमंत्रण दिया, उस सबके लिए आप मुझे क्षमा प्रदान करें ॥५७॥

I made a disturbance in your meditation and invited for worldly pleasures and rejoicings. Please forgive me for all this. (57)

एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो य सपरियणो य, धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥५८॥

इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा अनगार सिंह (अनाथी मुनि) की परमभक्तिपूर्वक स्तुति कर, निर्मल हृदय से अन्तःपुर (रानियों) तथा बान्धवों-परिजन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ॥५८॥

Thus the brave like a tiger among kings, the king Śreṇika appraising with devotion Anāthī monk, fear-free as lion, with pure heart and along with his queens, family members and brethren inclined to the true religion. (58)

ऊससिय-रोमकूवो, काऊण य पयाहिणं ।
अभिवन्दिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ॥५९॥

आनन्द से उल्लसित रोमकूप वाले राजा श्रेणिक ने मुनि की प्रदक्षिणा की, सिर झुकाकर वन्दना की और लौट गया ॥५९॥

The ruler of men, King Śreṇika, erected his hairs of body with joy, circumambulated the monk Anāthī, bowed down his head with devotion at his feet and returned to his palace. (59)

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥६०॥

—त्ति बेमि ।

साधु-गुणों से समृद्ध, तीन गुप्तियों से गुप्त, मन-वचन-काया के तीन दण्डों से विरत, पक्षी के समान सभी प्रतिबन्धों से विप्रमुक्त और मोहरहित होकर (अनाथी) मुनि पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥६०॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

Opulent with sage-virtues, vigilant with three restraints, disinclined to injurious attitude of mind speech and body, free from all obstacles like a bird, devoid of infatution; the great knot-free monk Anāthī began to wander on earth. (60) **–Such I speak.**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७–प्राचीन युग में सर्वप्रथम देव एवं पूज्य गुरुजनों को उनके चारों ओर घूमकर प्रदक्षिणा की जाती थी। दाहिनी ओर से घूमना शुरू करते थे, जैसा कि कहा है–"आयाहिण-पयाहिणं करेइ।" प्रदक्षिणा के अनन्तर वन्दन किया जाता है। प्रस्तुत में वन्दन पहले है, प्रदक्षिणा बाद में है। अतः पहले वन्दना करके फिर प्रदक्षिणा का उल्लेख है।

गाथा ९–अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है, और प्राप्त वस्तु का संरक्षण क्षेम है।

गाथा २३–चतुष्पाद-चिकित्सा के चार अंग हैं–वैद्य, औषधि, रोगी और रोगी की शुश्रूषा करने वाले। (बृहद् वृत्ति)

Salient Elucidations

Gāthā 7–In ancient ages first of all circumambulation was given by moving around the teachers and worshippable persons. Begin to move from right side as told–āyāhiṇaṁ–payāhiṇaṁ karei Bowing was done after cirumambulation. But here bowing is former and circumambulation after. Therefore formerly bowing and then circumambulation is ascribed.

Gāthā 9–Attainment of ungotten thing is yoga, and preservation of obtained thing is kṣema.

Gāthā 23–Fourfold treatment–There are four parts of treatment–(1) physician, (2) medicine (3) patient (4) male or female nurses, who serves the patient. (*V.V.*)

卐

इक्कीसवाँ अध्ययन : समुद्रपालीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम समुद्रपालीय है। इस नामकरण का कारण यह है कि इसमें समुद्रपाल के जन्म से लेकर उसके निर्वाण तक का सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन की विशिष्ट घटनाओं का चित्रण किया गया है।

भगवान महावीर का एक श्रावक-शिष्य था। उसका नाम पालित था। पालित निर्ग्रन्थ प्रवचन का विशिष्ट ज्ञाता था। वह अंगदेश की चम्पापुरी नगरी में निवास करता था।

पालित वणिक् था। वह समुद्र-व्यापारी था। जलयानों में अपने देश का माल भरकर विदेशों (समुद्र–जल मार्ग द्वारा समुद्र पार देशों) में ले जाता और वहाँ पैदा होने वाले माल को जलयानों में भरकर लाता। इस प्रकार उसका क्रय-विक्रय व्यापार (आयात-निर्यात व्यापार) अच्छा चलता था।

एक बार वह पिहुण्ड नगर (समुद्र का तटवर्ती नगर) में पहुँचा। व्यापार के कारण उसे वहाँ अधिक समय तक रुकना पड़ा। उसकी प्रामाणिकता, व्यापार कला और व्यवहार कुशलता आदि से संतुष्ट होकर पिहुण्ड नगर के एक श्रेष्ठी ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

अपनी नव-विवाहिता पत्नी को साथ लेकर जब वह सागर-मार्ग से चम्पानगरी को लौट रहा था, तब समुद्र में–जलयान में ही उसकी पत्नी ने एक सर्वांग सुन्दर तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। समुद्र में उत्पन्न होने के कारण पुत्र का नाम समुद्रपाल रखा गया।

कालक्रमानुसार समुद्रपाल युवा हुआ, ७२ कलाओं में निष्णात हुआ और पिता ने उसका विवाह रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ कर दिया। समुद्रपाल अपने भवन में रहता हुआ पत्नी के साथ दोगुन्दक देवों के समान क्रीड़ा करता हुआ, सुख भोगने लगा।

एक दिन अपने भवन के गवाक्ष में बैठा हुआ वह नगर की शोभा देख रहा था। तभी राजमार्ग पर जाते हुए एक पुरुष पर उसकी दृष्टि टिक गई।

वह वध्यपुरुष था। उसे राजा की ओर से मृत्युदण्ड मिला था। प्रचलित परम्परा के अनुसार उसे लाल कपड़े पहनाएँ गये थे, गले में लाल कनेर की माला थी, सम्पूर्ण शरीर पर रक्तचन्दन का लेप था तथा उसके अपराध की घोषणा करते हुए राज सेवक उसे वधस्थान की ओर ले जा रहे थे।

समुद्रपाल तुरन्त समझ गया कि यह व्यक्ति घोर अपराधी है और इसके अपराध का दण्ड इसे दिया जा रहा है। अपने दुष्कर्म का फल यह व्यक्ति भोग रहा है।

अपराध और दण्ड, कर्म और कर्मफल की प्रक्रिया पर समुद्रपाल का चिन्तन गहरा होता चला गया। वह कर्मों के बन्धन को काटने के लिए बेचैन हो उठा। उसने समझ लिया कि विषय-भोगों से तो कर्मबन्धन और भी अधिक सुदृढ़ होते चले जायेंगे। उसके हृदय में संवेग-निर्वेद की भावनाएँ उमड़ने लगीं। श्रमणधर्म-पालन का निर्णय कर लिया और माता-पिता से अनुमति लेकर प्रव्रजित हो गया। शुद्ध श्रमणाचार का पालन करके मुक्त हुआ।

श्रमणाचार के वर्णन से तथा धार्मिक दृष्टि से तो प्रस्तुत अध्ययन महत्वपूर्ण है ही; किन्तु तत्कालीन सामाजिक और प्रचलित परम्पराओं की झाँकी के कारण सामाजिक दृष्टि से भी इसका महत्व है।

इस अध्ययन में २४ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 21
SAMUDRAPĀLA

Foreview

The title of this chapter is Samudrapāla. The cause of this name is that in this chapter full life sketch and the main events of Samudrapāla are described.

There was a householder pupil (follower) named Pālita. He was well versed in Jainology, and an inhabitant of Campā city of Aṅga country.

Pālita was a sea-trader. He carried his own country's saleable goods to the other countries on the other shore of sea by loading in the ships and brought the goods of other countries. Thus his trade was flourishing and paying. He earned goot profits.

Once he reached to Pihuṇḍa, a city situated at the shore of sea. Due to trade he had to stay there for a long time. Impressed by his cleverness of trade, good behaviour and other qualities, a trader of Pihuṇḍa city married his daughter to him.

With newly wed wife Pālita was returning to his city by sea-route. During voyage in the ship his wife gave birth to a beautiful son. Son was born during voyage so he was named as Samudrapāla.

Samudrapāla became young and learnt all the 72 arts of man. His father married him to a beautiful young girl Rūpiṇī. Samudrapāla began to enjoy sensual pleasures with his wife and lead a luxurious life as Dogundaka gods.

Once he was sitting by the small window of his chamber and visualising the persons moving on road. At once his glance stuck on a person.

That was to be sentenced person. King of the city gave him capital punishment. According to the tradition of those times, that man was clad in red clothes, garland round the neck of oleander red flowers (लाल कनेर के पुष्प), red sandal besmeared on his body, and announcing about his offence government-servants were taking him to the killing-spot.

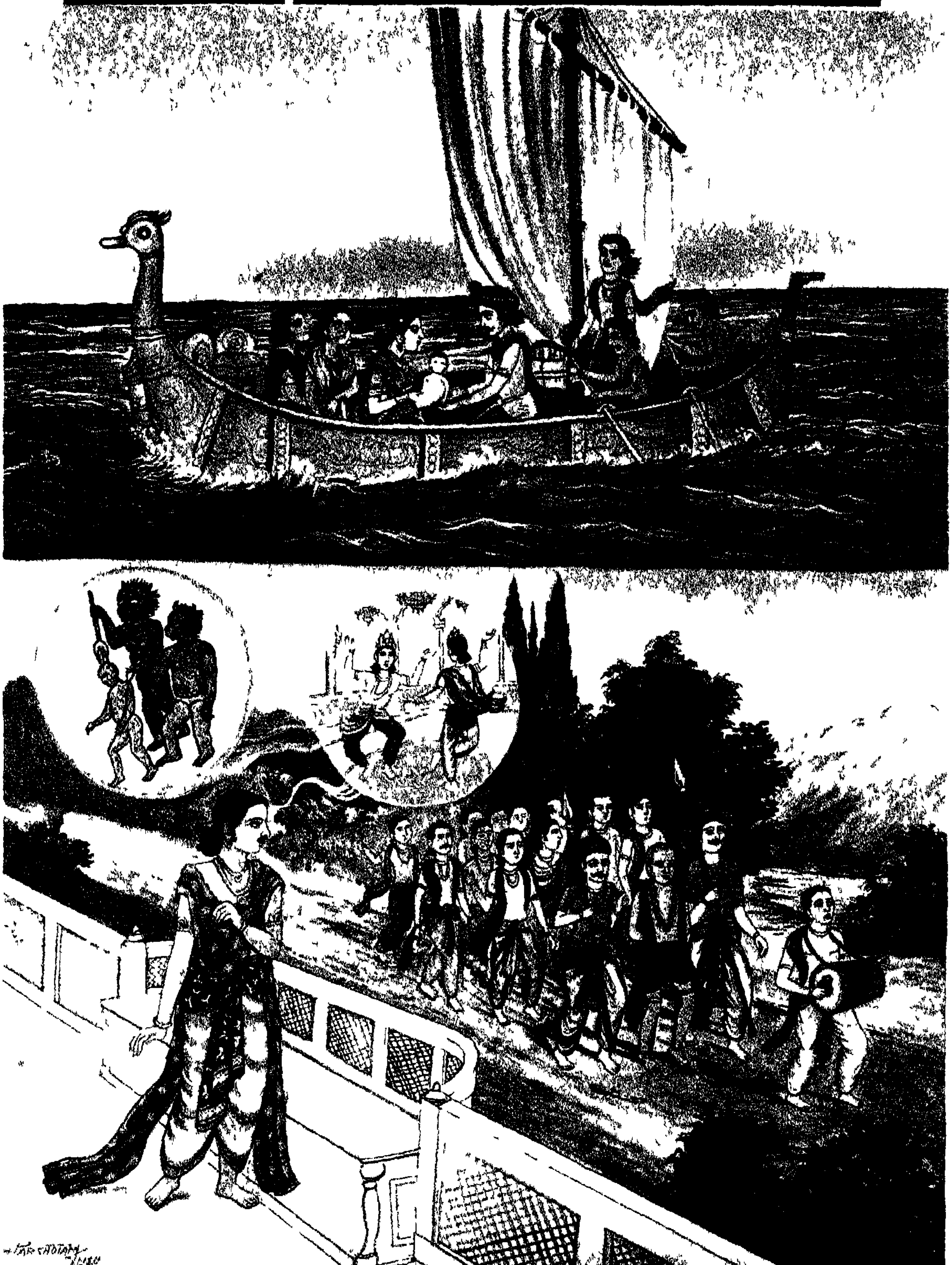
Samudrapāla understood in no time that this person is a meanest criminal and the punishment of his crime is given to him. He is exercising the consequences of his own ill-deads.

Thinking of Samudrapāla went on deeper and deeper at the procedures of faults-offences-crimes and punishment, and deeds (karmas) and their consequences. He became anxious to cut off karma-bondages. He became very well aware that due to pleasures the bondages will be more fastened. His heart filled with feelings of disgust towards world and he decided to practise sage-order. Taking permission from parents he accepted consecration and practising excellent sagehood obtained salvation.

This chapter is important by the description of sage-order and religious viewpoint; but more important by social viewpoint because the traditional tendencies of that time got plac in this chapter.

This chapter contains 24 couplets.

ILLUSTRATION NO. 49 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 26



चित्र क्रमांक ४९ पृष्ठ ३३ पर चित्र परिचय देखें

एगविंसइमं अज्झयणं : समुद्दपालीयं
एकविंश अध्ययन : समुद्रपालीय

चम्पाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

चम्पानगरी का निवासी पालित व्यवसायी श्रावक था और वह महापुरुष भगवान महावीर का शिष्य (अनुयायी) था ॥१॥

Inhabitant of Campā city, the trader Pālita was a householder and pupil (follower) of Bhagawāna Mahāvīra. (1)

निग्गन्थे पावयणे, सावए से विकोविए ।
पोएण ववहरन्ते, पिहुण्डं नगरमागए ॥२॥

वह पालित श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रवीण था। एक बार वह जलयान से व्यापार (समुद्री व्यापार) करता हुआ पिहुण्ड नगर में जा पहुँचा॥२॥

He was well versed in Jainology. Once trading by ship he approached Pihuṇḍa city. (2)

पिहुण्डे ववहरन्तस्स, वाणिओ देइ धूयरं ।
तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

पिहुण्ड नगर में जब वह व्यापार कर रहा था, उस समय किसी वणिक ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। अपनी उस गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित अपने देश को चल दिया ॥३॥

While he was doing business in Pihunda city, a merchant married his daughter to him. Pālita returned to his country with his pregnant wife. (3)

अह पालियस्स घरणी, समुद्दंमि पसवई ।
अह दारए तहिं जाए, 'समुद्दपालि' त्ति नामए ॥४॥

सागर यात्रा के दौरान पालित की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। चूँकि शिशु का जन्म सागर के बीच में हुआ था, इसलिए उस बालक का नाम समुद्रपाल रखा गया ॥४॥

During voyage his wife gave birth to a child in the ship, at sea. Being born at sea the child named as Samudrapāla. (4)

खेमेण आगए चम्पं, सावए वाणिए घरं ।
संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

वह वणिक श्रावक कुशलतापूर्वक चंपानगरी में अपने घर आ गया। वह बालक (समुद्रपाल) उसके घर में सुख से रहने लगा ॥५॥

That householder merchant (trader) reached safely to his home Campā city. That child grew up in his house surrounded by comforts. (5)

बावत्तरिं कलाओ य, सिक्खए नीइकोविए ।
जोव्वणेण य संपन्ने, सुरूवे पियदंसणे ॥६॥

उस (समुद्रपाल) ने बहत्तर कलाओं की शिक्षा प्राप्त की तथा नीति निपुण हो गया। युवा होने पर वह सबको सुरूप और प्रिय लगने लगा॥६॥

He learned the seventytwo arts (of man) and became expert in world behaviour. He was in the bloom of youth, with fine figure and good looks. (6)

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रूविणीं ।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुन्दओ जहा ॥७॥

उसके पिता (पालित व्यवसायी) ने रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। अव वह (समुद्रपाल) दोगुन्दक देवों के समान अपने सुन्दर प्रासाद (भवन) में पत्नी के साथ क्रीड़ा- मग्न हो गया ॥७॥

His father married him to a beautiful youth (maiden) Rūpiṇī, he began to enjoy pleasures with his wife like Dogundaka gods. (7)

अह अन्नया कयाई, पासायालोयणे ठिओ ।
वज्झमण्डणसोभागं, वज्झं पासइ वज्झगं ॥८॥

किसी समय वह अपने सुरम्य भवन के आलोकन (गवाक्ष) में बैठा था। उसने वध्यचिन्हों से युक्त एक पुरुष को नगरी से बाहर वध स्थान की ओर (राज सेवकों द्वारा) ले जाते हुए देखा ॥८॥

Once he was sitting by the small window of his chamber. He saw a man sentenced to death, with the tokens of to be killed, dressed for execution and taken by the king-servants to the place of punishment-killing. (8)

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी ।
अहोऽसुभाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं ॥९॥

उस पुरुष को देखकर संविग्न समुद्रपाल ने कहा–अहो ! यह अशुभ कर्मों का दुखदायी फल है ॥९॥

Agitated by this sight, Samudrapāla uttered–Oh ! it is the dreadful result of bad deeds. (9)

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परं संवेगमागओ ।
आपुच्छ ऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ॥१०॥

इस प्रकार संविग्न हुआ वह (समुद्रपाल) महात्मा (भगवं) सम्बुद्ध हो गया। माता-पिता से पूछकर, उनकी अनुमति प्राप्त करके उसने श्रमणत्व (अणगारियं) ग्रहण कर लिया ॥१०॥

Thus the noble soul Samudrapāla become enlightened and with the permission of his parents he accepted the quithome mendicant-order. (10)

जहित्तु संगं च महाकिलेसं, महन्तमोहं कसिणं भयावहं ।
परियायधम्मं चऽभिरोयएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥११॥

श्रमणत्व धारण करने के उपरान्त साधु महाक्लेशकारी, महामोह और भयकारी आसक्ति (संग) को त्यागकर साधुता (परियायधर्म) में, व्रत में, शील में और परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करने में अभिरुचि रखने वाला बने ॥११॥

After accepting sagehood the ascetic abandoning the worldly attachment which is the cause of great distress, great infatuation and full of dangers; he should be inclined to asceticism (परियाय धम्मं), vows, virtues and endurance of troubles with even mind. (11)

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बम्भं अपरिग्गहं च ।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ ॥१२॥

विद्वान साधु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह–इन पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म का आचरण करे ॥१२॥

Witty ascetic accepting the five great vows, (!) not to injure or non-violence, (2) truthfulness (3) non-stealing (4) celibacy and (5) non-possession; should follow the religious order prescribed by Jinendra Bhagawâna, (Jina) (21)

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकम्पी, खन्तिक्खमे संजय बम्भयारी ।
सावज्जजोगं परिवज्जयन्तो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइन्दिए ॥१३॥

भिक्षु सभी जीवों के प्रति दया-करुणा रखे, क्षमा से दुर्वचनों को सहन करे, संयत हो, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला हो, पापाचार (सावद्ययोग) का परित्याग करे और इन्द्रियों को भली-भाँति संवरण करके विचरण करे ॥१३॥

Mendicant should have compassion on all living beings, endure the ill-words by forgiveness, be restrained, observe celibacy fully, renounce all the sinful activities and completely subduing senses he should wander. (13)

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य ।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु ॥१४॥

अपने बलाबल–शक्ति को जानकर साधु समय के अनुसार राष्ट्रों में विहार करे। सिंह के समान भयभीत करने वाले शब्दों को सुनकर भी संत्रस्त न हो और दुर्वचन सुनकर भी असभ्य वचन न बोले ॥१४॥

Testing his own weakness and strength, i. e., knowing his power and capability ascetic should wander in several nations according to the time. Never be frightened by dreadful words like the roar of lion, and hearing the ill-words should not speak improper words. (14)

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा, पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थ ऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए ॥१५॥

संयत साधु प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ प्रिय और अप्रिय (अनुकूलता-प्रतिकूलता)–सब को सहन करे, सर्वत्र सब की (मनोज्ञ वस्तुओं की) इच्छा न करे और न ही पूजा तथा गर्हा की अभिलाषा करे ॥१५॥

The restrained ascetic diparaging adversities, endure all-favourable or disfavourable-dear or undear, not desire everywhere everything (the heart pleasing things) and nor care for respect or blame. (15)

अणेगछन्दा इह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।
भयभेरवा तत्थ उइन्ति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥१६॥

मानवों के अनेक प्रकार के अभिप्राय (छन्द) होते हैं। भिक्षु अपने मन में उन्हें सम्यक् प्रकार से ग्रहण करे, जाने तथा देवों, मानवों, तिर्यंचों कृत भयोत्पादक घोर उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करे ॥१६॥

There are innumerable types of intentions and purports of men. Mendicant should know and be aware of them in true light and should endure the fearful turbuleneces (उपसर्ग) caused by gods, deities, demons, spirits, man and brute beasts. (16)

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयन्ति जत्था बहुकायरानरा ।
ते तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया ॥१७॥

अनेक दुस्सह परीषह उपस्थित होने पर बहुत से कायर व्यक्ति खेद करते हैं किन्तु संग्राम में सबसे आगे रहने वाले हाथी के समान भिक्षु परीषहों से खेदित न हो ॥१७॥

Occuring many difficulties the discouraged persons become depressed but like a stately elephant at the head of battle ascetic should not be depressed if comes in contact with those troubles. (17)

सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसन्ति देहं ।
अकुक्कुओ तत्थ ऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥१८॥

शीत, उष्ण, दंश-मशक, तृण-स्पर्श तथा अन्य अनेक प्रकार के आतंक जब भिक्षु के शरीर को स्पर्श करें–पीड़ित-कष्टित करें तब वह कुत्सित शब्द न करके उन्हें समभाव से सहे तथा पूर्वकृत कर्मों को क्षीण करे ॥१८॥

Cold, heat, gnats and flies, pricks of straw and the other troubles when touch and afflict-cause pains and miseries; then the ascetic should endure them without flinching and with evenmind; and should destroy the karmas accumulated previously. (18)

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो ।
मेरु व्व वाएण अकम्पमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥१९॥

बुद्धिमान भिक्षु सदा ही राग-द्वेष और मोह का परित्याग करके, वायु (प्रभंजन) से अकम्पित मेरु (पर्वत) के समान आत्मगुप्त रहकर परीषहों को सहे ॥१९॥

Wise mendicant, renouncing attachment, detachment and infatuation should remain as steadfast as mountain Meru, which cannot be shaken by strongest storms, being fixed in his soul-virtues endure the troubles. (19)

अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए ।
स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥२०॥

पूजा और प्रतिष्ठा में गर्वित (उन्नत) और गर्हा में हीनभावना (अवनत) ग्रस्त न होने वाला महर्षि पूजा और गर्हा से अलिप्त रहे। वह विरत संयमी सरलता को स्वीकार करके निर्वाण मार्ग-मोक्ष मार्ग को प्राप्त करता है ॥२०॥

Ungripped by the feelings of superiority complex by respect and honour and by inferiority complex by blame, and should not care for both of these. That disinclined restrained accepting simplicity enters the path of salvation. (20)

अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं ।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

जो अरति और रति को सहता है, संसारी जनों से अति परिचय नहीं रखता है, विरक्त है, आत्म-कल्याण की साधना करता है, प्रधानवान है, शोक और ममत्व रहित है, अकिंचन है, वह सम्यग्ज्ञान आदि परमार्थ पदों में-मोक्ष प्राप्ति के साधनों में रत रहता है ॥२१॥

Who endures *rati* and *arati*–meaning neither pleasure nor grief by anything, cuts off link with worldly men (beings), disinclined, practises the benefits of soul, deprived of sorrow and myness, having nothing as his own; he strives for the highest good and its means–right knowledge-faith-conduct.(21)

विवित्तलयणाई भएज्ज ताई, निरोवलेवाइ असंथडाइं ।
इसीहि चिण्णाइ महायसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥२२॥

प्राणियों की रक्षा करनेवाला साधु महान यशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेप आदि कर्म से रहित, बीज आदि से रहित, एकान्त स्थानों का (विविक्त लयणाइ) सेवन करे और परीषहों को सहे ॥२२॥

Saviour of all living beings–the ascetic should take bed or lodging distant from others and that should also be granted or prescribed by the great glorious seers, devoid of liniment, seeds and in lonely places. (22)

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।
अणुत्तरेनाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए वऽन्तलिक्खे ॥२३॥

सद्ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करने वाला महर्षि, अनुत्तर धर्मसंचय का आचरण करके, अनुत्तर ज्ञानधारक यशस्वी धर्मसंघ में उसी प्रकार प्रकाशमान होता है जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य ॥२३॥

Acquirer of true and right knowledge the great sage, practising the accumulation of supreme religion, glorious with supreme knowledge lightens in the religious order, as the lustrous sun in sky. (23)

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं, निरंगणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोघं, समुद्दपाले अपुणागमं गए ॥२४॥

-त्ति बेमि ।

समुद्रपाल मुनि पुण्य और पाप-दोनों का क्षय करके निश्चल (निरंगन) और सभी तरह से विप्रमुक्त हो कर, संसार के विशाल प्रवाह को तैर कर मोक्ष (अपुणागम) में गये-मुक्त हो गये ॥२४॥

-ऐसा मैं कहता हूँ।

Destructing both merits and demerits monk Samudrapāla, being completely free, swimming the huge current of the ocean of universe, became emancipated. (24)

-Such I Speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ८-**वध्यजनोचितमण्डन**-प्राचीन काल में चोरी करने वाले को बहुत कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे वध (मृत्युदण्ड) का दण्ड दिया जाता उसके गले में लाल कणेर के फूलों की माला, शरीर पर लाल कपड़े पहनाये जाते थे और सारे नगर में घुमाते हुए उसके अपराध का उल्लेख करते हुए श्मशान की ओर ले जाया जाता था।

Salient Elucidations

Gāthā 8–Vadhyajanocita maṇḍana–Its Prākṛta form is vajjhamaṇḍaṇasobhāgaṁ. In the ancient times, the period when this scripture was scripturised, the thieves were rigorously punished, even sentenced to death.

They were differently dressed.

The thief sentenced to death. He was caused to wear the garland of oleander red flowers around his neck, red clothes on body and moving him in whole city with loud announcement of his crime, he was taken by the servants of king to the killing spot–may be called as funeral place.

बाईसवाँ अध्ययन : रथनेमीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन में यादवकुमार रथनेमि के वर्णन की प्रमुखता के कारण इसका नाम रथनेमीय रखा गया है।

रथनेमि से संबंधित घटना इस प्रकार है–

प्राचीन समय में ब्रजमण्डल के सोरियपुर (वर्तमान सौरीपुर–आगरा नगर के निकट) नगर में यदुवंशी राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये दस भाई थे, जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय और सबसे छोटे वसुदेव थे। परम पराक्रमी होने के कारण दसों भाई दशार्ह कहलाते थे।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उस समय सोरियपुर में द्वैध राज्य (दो राजाओं) की परम्परा थी। अन्धक और वृष्णि नामक दो शासक दल थे। समुद्रविजय अन्धकों के नेता थे और वसुदेव वृष्णियों के। इसलिए दोनों ही राजा कहलाते थे।

समुद्रविजय की पटरानी शिवादेवी थी। उसके चार पुत्र थे–अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढ़नेमि।

वसुदेव की दो रानियाँ थीं–रोहिणी और देवकी। रोहिणी के पुत्र बलराम थे और देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण।

श्रीकृष्ण ने मथुरा के राजा और प्रतिवासुदेव जरासन्ध के दामाद कंस का वध किया था। अपने दामाद की मृत्यु के कारण जरासन्ध बौखला उठा। उसने यादवों के मूलोच्छेद का निर्णय कर लिया। उसके आक्रमण के भय के कारण समुद्रविजय आदि सभी यादव ब्रजमण्डल को छोड़कर पश्चिमी तट पर पहुँचे। द्वारका नगरी बसाई और विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

समुद्रविजय के ज्येष्ठ पुत्र अरिष्टनेमि परम पराक्रमी, अतुल बली, अतिशय शोभा संपन्न, अति सुन्दर थे, किन्तु सांसारिक विषय-भोगों की ओर इनकी बिल्कुल भी रुचि न थी। लेकिन समुद्रविजय और उनकी रानी शिवादेवी अपने पुत्र को विवाहित देखना चाहते थे।

विवाह के लिए श्रीकृष्ण के अत्यधिक आग्रह पर अरिष्टनेमि मौन रह गये। 'मौनं सम्मति लक्षणं' के अनुसार श्रीकृष्ण ने उनके लिए भोजकुल की अत्यन्त सुन्दर कन्या राजीमती की खोज की और विशाल बारात सजाकर चल दिये।

विवाह स्थल से कुछ पहले दूल्हा बने, गजारूढ़ अरिष्टनेमि ने पशु-पक्षियों को एक बाड़े में बन्द देखा और उनका आर्तनाद सुना तो अपने सारथी से इसका कारण पूछा। सारथी ने बताया–आपकी बारात में आये हुए अनेक व्यक्ति मांसभोजी हैं। उनके भोजन के लिए बाड़े व पिंजरे में बन्द पशु-पक्षियों की हत्या की जायेगी। अपनी मृत्यु से भयभीत ये पशु-पक्षी आर्तनाद कर रहे हैं।

'मेरे विवाह के लिए हजारों मूक पशु-पक्षियों का वध किया जायेगा' इस विचार से ही अरिष्टनेमि का हृदय करुणा से द्रवित हो गया। उन्होंने पशुओं को तुरंत मुक्त करवाया और हाथी को वापस अपने निवास की ओर मोड़ने का आदेश दिया। इस अप्रत्याशित घटना से राजीमती शोक-विह्वल होकर मूर्च्छित हो गई।

अरिष्टनेमि ने श्रावण शुक्ला पंचमी के शुभ दिन में दीक्षा ग्रहण कर ली है–इस समाचार से राजीमती का दिल टूट गया। वह शोकमग्न हो गई। उसने अरिष्टनेमि के पथ पर चलने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

रथनेमि ने उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा तो उसने स्वयं को अरिष्टनेमि द्वारा त्यक्त बताकर रथनेमि को विरक्त कर दिया। निराश होकर रथनेमि ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। भगवान अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर राजीमती भी अनेक स्त्रियों के साथ प्रव्रजित हो गई।

एक बार अरिष्टनेमि रैवतक पर्वत पर विराजमान थे। राजीमती अन्य साध्वियों के साथ प्रभु-दर्शन की उत्कट कामना लिए जा रही थी। मार्ग में भयंकर आँधी-तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। सभी साध्वियाँ तितर-बितर हो गईं। काले कजराले बादलों के कारण दिन में भी अन्धकार छा गया।

राजीमती पूरी तरह भीग गई थी। आश्रय की खोज करते-करते उसे एक गुफा दिखाई दे गई। वह उसमें जा पहुँची। यद्यपि वहाँ साधु रथनेमि ध्यानस्थ खड़े थे किन्तु गहन अन्धकार के कारण वे उसे दिखाई न दिये। निपट एकान्त जानकर उसने अपने सभी गीले वस्त्र उतारकर निचोड़े और सूखने के लिए फैला दिये।

तभी कड़क के साथ बिजली चमकी। गुफा में प्रकाश हो गया। कड़क की आवाज के कारण रथनेमि का ध्यान टूट गया। उस क्षणिक प्रकाश में रथनेमि और राजीमती ने परस्पर एक दूसरे को देख लिया।

वस्त्र-रहित राजीमती को देखकर साधु रथनेमि का चित्त चंचल हो गया। राजीमती ने अपनी बाहों से अपना वक्षस्थल ढक लिया और अंग संकुचित करके बैठ गई।

चंचलचित्त रथनेमि ने राजीमती से भोग-याचना की और कहा–आयु ढलने पर हम प्रव्रजित होकर संयम साधना कर लेंगे।

लेकिन राजीमती ने कुल गौरव आदि का स्मरण कराया और विषयों के कटुफल बताए। मोहग्रस्त रथनेमि को ऐसी ओजस्वी फटकार लगाई कि रथनेमि का चित्त उसी प्रकार शांत हो गया जैसे अंकुश से मत्त गजराज शांत हो जाता है।

संयम साधना करके रथनेमि और राजीमती–दोनों ने मुक्ति प्राप्त की।

प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्रबिन्दु यही राजीमती का उद्बोधन है, जो अत्यधिक तेजस्वी वाणी में दिया गया है। इसकी यह विशेषता भी है कि इसमें नारी की तेजस्विता और दृढ़धर्मिता का पक्ष उजागर किया गया है।

यह उद्बोधन इतना महत्वपूर्ण है कि इसे दशवैकालिक सूत्र अध्ययन २ में भी संकलित किया गया है।

इस अध्ययन में ५१ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 22
RATHANEMI

Foreview

Being the primacy of the description of Rathanemi this chapter in named as Rathanemi.

The episode regarding Rathanemi is as follows–

The ages ago ruled over the city Soriyapura (in present days Saurīpura–near Agra city U. P.) in Braja circle, king Samudravijaya of Yadu lineage. They were ten brothers. Among them Samudravijaya was the eldest and Vasudeva was the youngest. All the ten brothers were valient, so they were called ten-adorables–(दशार्ह).

According to ancient scriptures at that time in Soriyapur there was prevailing the tradition of two rulers. There were two governing parties–(1) Andhaka and (2) Vṛṣṇi. Samudravijaya was the leader of Andhakas and Vasudeva was of Vṛṣṇis. So both were called as kings–rulers.

The chief queen of Samudravijaya was Śivādevī, who had four sons–(1) Ariṣṭanemi, (2) Rathanemi (3) Satyanemi and (4) Dṛḍhanemi.

There were two chief queens of Vasudeva–(1) Rohiṇī and (2) Devakī. The son of Rohiṇī was Balarāma and that of Devakī was Śrīkṛṣṇa.

Srīkṛṣṇa has murdered the ruler of Mathurā city, named Kaṅsa, who was also the son-in-law of anti-Vāsudeva (an epithet of ruler of three deccan regions of Bhāratavarṣa) named Jarāsandha. Due to the death of son-in-law Jarāsandha became angry. He decided to uproot all the Yādavas. Due to the fear of attack by Jarāsandha, all the Yādavas with Samudravijaya etc., left the Braja-circle and reached the western coast of ocean. There they populated Dvārakā city and established a vast kingdom.

The eldest son of Samudravijaya, was Ariṣṭanemi. He was most valient, supreme powerful, excellent beautiful; but had no interest towards the empirical pleasures. Still Samudravijaya and his queen Śivādevī were more eager to see their son married.

When Śrīkṛṣṇa insisted more for marriage then Ariṣṭanemi became silent. Taking his silence as acceptance, Śrīkṛṣṇa searched for him the most beautiful maiden (girl) Rājīmatī of Bhoja lineage and went out with a vast and adorned marriage procession.

Somewhat before the marriage spot, the groom Ariṣṭanemi, riding on elephant, saw innumerable animals and birds encaged in a vast enclosure. The poor beings were screaming and wailing. Ariṣṭanemi asked the cause of it to his charioteer (really the driver of his elephant).

Driver of elephant told–Among your marriage procession so many persons are meat-eaters. For their eating (food) these beings will be slaughtered. Frightened of their death these are screaming and wailing.

'These thousands of mum beings–beasts and birds–will be slaughtered for my marriage,' this thought trembled the compassionate heart of Ariṣṭanemi. He at once made free those

beings and ordered to turn the elephant to his inhabitance. Due to this unexpected event Rājimatī swooned on account great grief.

Ariṣṭanemi has accepted consecration at the auspicious fifth day of Śrāvaṇa the white lunar month (श्रावण शुक्ला पंचमी)–hearing this information the heart and the expectations of Rājimatī broken up, she became engulfed by grief. She firmly determined to move on the path trodden by Ariṣṭanemi.

Rathanemi put his proposal for marriage before Rājimatī, then she rejected it by giving cause 'I am deserted by Ariṣṭanemi' so made Rathanemi disinclined. Being disappointed Rathanemi accepted consecration. After becoming Ariṣṭanemi omniscient, Rājimatī also accepted consecration with many other women.

Once Ariṣṭanemi was staying at mountain Raivataka. Rājimatī was going with ultimate wish to adorable visit of Ariṣṭanemi with many other nuns. While all these were in path, it began to rain cats and dogs with tremendous wind and storm. All the nuns went hither and thither to safe themselves. Due to dense black clouds, darkness prevailed in the day time; because the sun was covered by the black clouds.

Rājimatī was drenched from top to toe. Her cloths were also filled with water. Water was oozing from them. Seeking for shelter, a cave came in her glance. She entered there. Though in that cave Rathanemi was standing in meditation but due to dense darkness she could not see him. Apprehending totally lonely place she put off all her wet cloths, ringed and spread for drying, became nude.

At the same time lightning take place with bolt, with that the cave filled by light. Due to the crack bolt of lightning the meditation of Rathanemi disrupted. In that momentary light Rathanemi and Rājimati both saw another.

Seeing Rājimatī without cloths the mind of Rathanemi disturbed. Rājimatī at once covered her breast by her both hands and sit down shrinking parts and portions of her body.

Giddy hearted Rathanemi begged Rājimatī for enjoying sensual pleasures and said that in decaying age we shall practise restrain.

But Rājimatī did not accord with ideas of Rathanemi. She memorised about the highest families and lineages to which both of them belong.

She scolded Rathanemi by such vigorous words that his passionate intentions vanished and subdued as an elephant is subjugated by hook.

She also described the pungent and bither fruits–consequences of passionate ideas and sensual pleasures.

By all these Rathanemi became calm.

Practising the excellent restrain–Rājimatī and Rathanemi both obtained salvation.

This vigorous inspirational dialect is the central theme of this chapter. Its another speciality that the radiance and firmness to religion of women is also elaborated.

The vigorous dialect of Rājimatī is of so much importance that it is also compiled in Daśavaikālika sūtra, chapter 2.

This chapter contains 51 couplets.

बाइसमं अज्झयणं : रहनेमिज्जं
द्वाविंश अध्ययन : रथनेमीय

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
वसुदेवे त्ति नामेणं, राय-लक्खण-संजुए ॥१॥

सोरियपुर में राज चिन्हों से युक्त तथा महान ऋद्धि से संपन्न वसुदेव नाम का राजा था ॥१॥

In Soriyapura city, there was king Vasudeva with great fortunes and tokens of a king. (1)

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा ।
तासिं दोण्हं पि दो पुत्ता, इट्ठा य राम-केसवा ॥२॥

उसकी दो पत्नियाँ थीं-रोहिणी और देवकी। उन दोनों के दो प्रिय पुत्र थे-राम (बलराम) और केशव (कृष्ण) ॥२॥

He had two chief queens-(1) Rohiṇī and (2) Devakī. Those two had two dear sons-(1) Rāma (Balarāma) and (2) Keśava (Śrīkṛṣṇa). (2)

सोरियपुरंमि नयरे, आसी राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजए नामं, राय-लक्खण-संजुए ॥३॥

सोरियपुर नगर में ही राज लक्षणों से संपन्न और महाऋद्धि से युक्त समद्रविजय नाम का राजा भी था ॥३॥

In the same Soriyapura there was another king Samudravijaya, who also had great fortunes, prosperity and tokens of a king. (3)

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

उसकी शिवा नाम की रानी थी, उसका पुत्र महायशस्वी, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, लोकनाथ, भगवान अरिष्टनेमि थे ॥४॥

His chief queen was Śivādevī and her son Ariṣṭanemi was most glorious, supreme among subduers of senses, venerable, saviour of the world and lord of ascetics. (4)

सोऽरिट्ठनेमि - नामो उ, लक्खणस्सर - संजुओ ।
अट्ठ सहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

वे अरिष्टनेमि शौर्य, गाम्भीर्य आदि गुणों (लक्षणों) और आदेय एवं आकर्षक स्वर (सुस्वर) से युक्त थे। उनके शरीर में एक हजार आठ शुभ लक्षण (शंख, चक्र आदि) थे। उनका गोत्र गौतम और शरीर श्यामवर्णी था ॥५॥

Ariṣṭanemi was gifted with the virtues of valour, soberness and with excellent and obeying voice. On his body there were one thousand eight auspicious signs like–conch, wheel etc. His lineage was Gautama and complexion was dark. (5)

वज्जरिसहसंघयणो, समचउरंसो झसोयरो ।
तस्स राईमई कन्नं, भज्जं जायइ केसवो ॥६॥

उनका वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान था। उनका उदर मछली के समान था। उसकी भार्या राजीमती कन्या बने, इसके लिए केशव (कृष्ण) ने (राजा उग्रसेन से) याचना की ॥६॥

His formation of bones was very strong vajra-ṛsabha-nārāca saṅhanana, and well fourfold equanimous body (समचतुस्र संस्थान) and stomach was beautiful and smooth like a fish. Keśava (Śrikṛṣṇa) asked from ruler Ugrasena, his daughter Rājīmatī as bride to him. (6)

अह सा रायवर-कन्ना, सुसीलाचारुपेहिणी ।
सव्वलक्खणसंपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा ॥७॥

वह (राजीमती) श्रेष्ठ राजा की पुत्री, सुशील, सुन्दर तथा सर्वशुभ लक्षण सम्पन्न थी तथा बिजली की प्रभा के समान उसके शरीर की कान्ति थी ॥७॥

Rājīmatī was the daughter of good king and she was well-natured, good-behavioured, virtuous, well looking and possessed all auspicious signs on her body and her complexion shone as the lightning. (7)

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं ।
इहागच्छऊ कुमारो, जा से कन्नं दलाम ऽहं ॥८॥

उस कन्या के पिता ने महाऋद्धिवान वासुदेव से कहा–यदि कुमार यहाँ आएँ तो मैं अपनी पुत्री उन्हें दे दूँगा ॥८॥

The father of this maiden said to Vāsudeva–'If prince comes here I will give him my daughter. (8)

सव्वोसहीहि ण्हविओ, कयकोउयमंगलो ।
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥९॥

(अरिष्टनेमि को) सभी प्रकार की औषधियों से मिश्रित जल से स्नान कराया गया, कौतुक मंगल किये गये, दिव्य युगल वस्त्रों का परिधान तथा आभूषणों से शृंगारित किया गया ॥९॥

He (Ariṣṭanemi) had taken bath by the water mixed with beneficial herbs, and had performed all customary ceremonies, he wore a suit of divine clothes and was adorned with ornaments. (9)

मत्तं च गन्धहत्थिं, वासुदेवस्स जेट्ठगं ।
आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणि जहा ॥१०॥

वासुदेव के सर्वश्रेष्ठ मत्त गंधहस्ती पर आरूढ़ हुए अरिष्टनेमि मस्तक पर चूड़ामणि के समान बहुत शोभायमान हो रहे थे ॥१०॥

Riding on the best mast elephant (गंध हस्ती–by the smell of this elephant other elephants are frightened) of Vāsudeva, Ariṣṭanemi looked beautiful as a jewel on the crest. (10)

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए ।
दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

दशार चक्र (दशों दशार्हों) से घिरे हुए (परिवृत) अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र और चामरों से शोभित थे ॥११॥

Ariṣṭanemi was adorned with umbrella etc., and the ten-adorables were surrounding him. (11)

चउरंगिणीए सेनाए, रइयाए जहक्कमं ।
तुरियाण सन्निनाएण, दिव्वेण गगणं फुसे ॥१२॥

यथाक्रम से चतुरंगिणी सेना सजाई गई थी तथा वाद्यों के दिव्य नाद-घोष से आकाश गूँज रहा था ॥१२॥

Fourfold army was adorned with weapons and sky was resounding by the sounds of divine musical instruments. (12)

एयारिसीए इड्ढीए, जुईए उत्तिमाए य ।
नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

इस प्रकार की उच्चकोटि की ऋद्धि (ठाठ-बाट) और द्युति (चमक-दमक-शान-शौकत) के साथ वृष्णिपुंगव (अरिष्टनेमि–इनका कुल वृष्णि था) अपने भवन से निकले ॥१३॥

Thus, with such a pomp and show and splendour best of Vṛṣṇis, Ariṣṭanemi started from his palace. (13)

अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

वहाँ से निकलने के उपरान्त उन्होंने (अरिष्टनेमि ने) बाड़ों और पिंजड़ों में बन्द किये गये भयग्रस्त और अति दुःखी प्राणियों (पशु-पक्षियों) को देखा ॥१४॥

In the way he saw birds and beasts in cages and enclosures, overcome by fear and misery. (14)

जीवियन्तं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासेत्ता से महापन्ने, सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

वे प्राणी जीवन की चरम स्थिति–मृत्यु के निकट थे, मांस के लिए (मांसभक्षियों द्वारा) भक्षण किये जाने वाले थे। उन्हें इस स्थिति में देखकर महाप्रज्ञ अरिष्टनेमि ने अपने सारथी (महावत) से कहा–॥१५॥

Those beings were near to death, to be killed for the food of meat-eaters. Seeing those beings in this state wise Ariṣṭanemi said to his charioteer (elephant driver)–(15)

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ॥१६॥

ये सभी सुख के इच्छुक प्राणी बाड़ों और पिंजड़ों में किस कारण रोके गये हैं ?॥१६॥

All these birds and animals, who are desirous of happiness, why these are kept in cages and enclosures. (16)

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झं विवाहकज्जंमि, भोयावेउं बहुं जणं ॥१७॥

तब सारथी ने कहा–ये सभी भद्र प्राणी आपके विवाह कार्य में आये हुए बहुत से लोगों (मांसभोजियों) को खिलाने के लिये पकड़े गये हैं ॥१७॥

Charioteer (elephant driver) said–All these gentle (innocent) beings are caught to be eaten by many flesh-eaters who are accompanied in your marriage procession. (17)

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणि–विणासणं ।
चिन्तेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिएहि उ ॥१८॥

बहुत से प्राणियों के विनाश संबंधी सारथी के कथन को सुनकर महाप्रज्ञ अरिष्टनेमि अपने मन में इस प्रकार विचार करते हैं– ॥१८॥

Having heard these words of charioteer (elephant driver) most wise Ariṣṭanemi thinks in his mind like thus–(18)

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ॥१९॥

यदि मेरे कारण इन बहुत से प्राणियों का वध किया जाता है तो यह मेरे लिए परलोक में श्रेयस्कर (उचित) नहीं होगा ॥१९॥

It will not be proper for my other world that these living beings are killed for my sake. (19)

सो कुण्डलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥२०॥

इसलिए उन महायशस्वी ने कुण्डल युगल, सूत्रक, तथा अन्य सभी आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये ॥२०॥

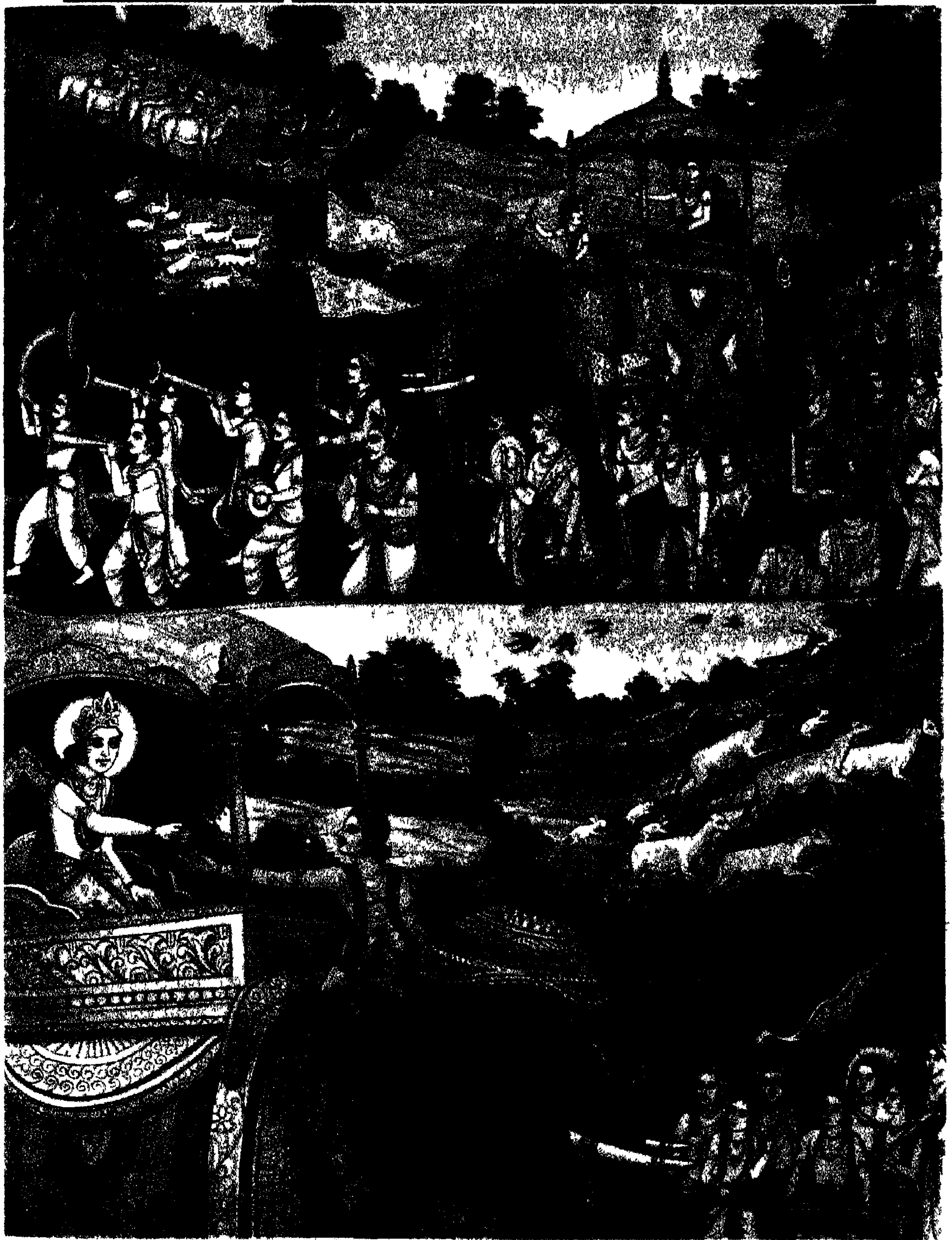
Then that most glorious (Ariṣṭanemi) put off all his ornaments–ear-rings, thread of waist etc., and gave to the charioteer–the elephant driver. (20)

मणपरिणामे य कए, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।
सव्वड्ढीए सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे ॥२१॥

हृदय में (दीक्षा के) परिणाम उत्पन्न होते ही उनके यथोचित अभिनिष्क्रमण के लिए देवतागण अपनी ऋद्धि और परिषद के साथ वहाँ उपस्थित हो गये ॥२१॥

As the firm resolution for consecration fill his head and heart, the gods descended from heaven, according the established custom, to celebrate, with great pomp together with their retinue, the event of his consecration. (21)

ILLUSTRATION NO. 50 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 27



चित्र क्रमांक ५० पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 51 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 27



चित्र क्रमांक ५१ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

देव-मणुस्सपरिवुडो, सीयारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय बारगाओ, रेवययंमि ट्ठिओ भगवं ॥२२॥

देवताओं और मनुष्यों से परिवृत भगवान अरिष्टनेमि अत्यन्त श्रेष्ठ शिविका रत्न पर आरूढ़ हुए तथा द्वारका से चलकर रैवतक गिरि (गिरनार पर्वत) पर अवस्थित हुए ॥२२॥

Surrounded by gods and men and sitting on an excellent palanquin, starting from Dvārakā city he assembled on the mountain Raivataka (Giranāra). (22)

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ ।
साहस्सीए परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं ॥२३॥

उद्यान में पहुँचे, शिविका से उतरे और एक हजार व्यक्तियों के साथ चित्रा नक्षत्र में भगवान ने निष्क्रमण किया ॥२३॥

Arrived at a garden, descended from his palanquin, and with one thousand other persons accepted consecration, while the moon was in conjunction of Citrā-star (23)

अह से सुगन्धगन्धिए, तुरियं मउयकुंचिए ।
सयमेव लुंचई केसे, पंचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

तब समाहित अरिष्टनेमि ने अपने सुगन्धित, घुँघराले और कोमल सिर के केशों का स्वयं अपने हाथ से पंचमुष्टि लोंच किया ॥२४॥

Consecrated Ariṣṭanemi, tonsured his curly, perfumed and soft hairs, by his own five handfuls. (24)

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं ।
इच्छियमणोरहे तुरियं, पावेसु तं दमीसरा ॥२५॥

वासुदेव कृष्ण ने केशविहीन और जितेन्द्रिय भगवान अरिष्टनेमि से कहा–हे दमीश्वर ! तुम अपने इच्छित मनोरथ को शीघ्र ही प्राप्त करो ॥२५॥

Vāsudeva said to reverend Ariṣṭanemi, who has plucked his hairs and was subduer of his senses, that–O lord of saints ! you may obtain your aim sooner. (25)

नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तहेव य ।
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षमा और निर्लोभता के साथ बढ़ते रहो ॥२६॥

Go ahead with right knowledge-faith-conduct, forgiveness and devoid of greed. (26)

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहू जणा ।
अरिट्ठणेमिं वन्दित्ता, अइगया बारगापुरिं ॥२७॥

इस तरह बलराम, कृष्ण, दशार्ह तथा अन्य बहुत से व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करके द्वारकापुरी को वापस लौट गये ॥२७॥

Thus Balarāma, Kṛṣṇa, ten-adorables and many men bowing to Bhagawāna Ariṣṭanemi returned to Dwārakā city. (27)

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।
नीहासा य निराणन्दा, सोगेण उ समुत्थया ॥२८॥

भगवान की प्रव्रज्या के विषय में सुनकर राजकन्या राजीमती का हँसना, प्रसन्नता, आनन्द-सब समाप्त हो गये। वह शोक की अधिकता से व्याप्त हो गई। उसे गहरा शोक हुआ ॥२८॥

Hearing the news of consecration of Ariṣṭanemi, the laughter, gaity, joy of princess Rājīmatī forsook her. She was engulfed in sorrow. She felt deep misery. (28)

राईमई विचिन्तेइ, धिरत्थु मम जीवियं।
जा ऽहं तेण परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥२९॥

राजीमती ने विचार किया-मेरे जीवन को धिक्कार है। चूँकि मैं उनकी परित्यक्ता हूँ, इसलिए मेरा प्रव्रजित होना ही उचित (श्रेष्ठ) है ॥२९॥

Rājimatī thought-shame upon my life. Because I am forsaken by him, therefore it is better for me to be consecrated. (29)

अह सा भमरसन्निभे, कुच्च-फणग-पसाहिए।
सयमेव लुंचई केसे, धिइमन्ता ववस्सिया ॥३०॥

अतः धैर्यशालिनी और दृढ़ निश्चयी राजीमती ने कूँची और कंघी से सँवारे हुए भ्रमर के समान काले केशों का अपने हाथ से लोंच किया ॥३०॥

Hence steady and firm determined Rājīmatī plucked her hairs which were black as bees and dressed with a comb and brush, by her own hands. (30)

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने! लहुं लहुं ॥३१॥

केशलोंच की हुई व जितेन्द्रिय राजीमती से कृष्ण ने कहा-हे कन्ये! इस घोर संसार सागर को शीघ्रातिशीघ्र पार करो ॥३१॥

Krisṇa said to Rājīmatī, who was hairless and had subdued her senses-O Girl! Cross this worldly ocean as soon as possible. (31)

सा पव्वइया सन्ती, पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव, सीलवन्ता बहुस्सुया ॥३२॥

शीलवती तथा बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित होकर अपने साथ बहुत से स्वजनों और परिजनों को दीक्षित (प्रव्रजित) कराया ॥३२॥

Chaste and learned Rājīmatī being consecrated herself caused her relations and family members (specially women) to accept consecration (32)

गिरिं रेवययं जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा ।
वासन्ते अन्धयारंमि, अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥३३॥

रैवतक गिरि पर जाती हुई वह (राजीमती) बीच में ही वर्षा से भीग गई, जोरदार वर्षा से अन्धकार छा जाने पर वह आश्रय के लिए एक गुफा के अन्दर प्रविष्ट होकर ठहर गई ॥३३॥

Assembling on mountain Raivataka she drenched by the rains. When darkness prevailed due to heavy rains, she entered in a cave for shelter and stayed there. (33)

चीवराइं विसारन्ती, जहा जाय त्ति पासिया ।
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥३४॥

अपने गीले वस्त्रों (चीवर) को सुखाने के लिए फैलाती हुई यथाजात (नग्न) रूप में राजीमती को देखकर रथनेमि का चित्त विचलित हो गया। फिर राजीमती ने भी उसे (रथनेमि को) देखा ॥३४॥

She took off her all cloths and spread them for drying up, thus became naked as she was born. Rathanemi (who was meditating in the interior part of that cave) when saw her naked then his peace of mind disturbed. And then Rājīmatī also saw him (Rathanemi). (34)

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगन्ते संजयं तयं ।
बाहाहिं काउं संगोफं, वेवमाणी निसीयई ॥३५॥

वहाँ उस गुफा के एकान्त में समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि को देखकर राजीमती भयभीत हो गई। भय से काँपती हुई वह अपनी दोनों बाहुओं से शरीर को संगोपन करके बैठ गई ॥३५॥

Rājimatī frightened by seeing Rathanemi, the son of Samudravijaya, in loneliness of that cave. Trembling with fear she sat covering her breast by her arms. (35)

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ ।
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कं उदाहरे ॥३६॥

तब समुद्रविजय के अंगजात (आत्मज) राजपुत्र (रथनेमि) ने भयभीत और काँपती हुई राजीमती को देखकर इस प्रकार का वचन कहा—॥३६॥

When Rathanemi, son of Samudravijaya, saw her trembling with fear, he spoke these words unto her—(36)

रहनेमी अहं भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणि ! ।
ममं भयाहि सुयणू ! न ते पीला भविस्सई ॥३७॥

(रथनेमि) हे भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ। हे सुरूपे ! हे मधुरभाषिणी ! हे सुतनु ! मुझे स्वीकार कर ले। तुझे किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं होगी ॥३७॥

(Rathanemi) O Gentle woman ! I am Rathanemi. O beautiful, sweetly speaking, tender bodied ! Accept me. No pain of any kind you would have to feel. (37)

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्समो ॥३८॥

आओ, पहले हम भोगों को भोग लें। मनुष्य जन्म निश्चय ही बहुत दुर्लभ है। भोगों को भोगने के बाद, भुक्तभोगी बनकर हम जिन-मार्ग का आचरण करेंगे ॥३८॥

Come, let us enjoy pleasures first. Because to be born as a human being is definitely very difficult. After enjoyed the pleasures we shall enter the order of Jinas. (38)

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोयपराइयं ।
राईमई असम्भन्ता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥३९॥

संयम के प्रति हीन-उत्साह और भोग-वासना से पराजित रथनेमि को देखकर राजीमती घबड़ाई नहीं (असम्भन्ता) उसने वस्त्रों से अपने शरीर को पुनः आवृत कर लिया ॥३९॥

Seeing Rathanemi without zeal for restrain and overwhelmed by passionate pleasures Rājīmatī did not perplex. She covered herself with her cloths. (39)

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया नियम-व्वए ।
जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

तत्पश्चात नियमों और व्रतों में सम्यक् प्रकार से अविचल (सुस्थित) उस श्रेष्ठ राजकन्या राजीमती ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा–॥४०॥

Then steady in her vows and rules that noble princess Rājimatī, saving clan, caste, lineage and chastity, said to Rathanemi–(40)

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो ।
तहा वि ते न इच्छामि, जई सि सक्खं पुरन्दरो ॥४१॥

(राजीमती) यदि तू रूप में वैश्रमण के समान है, ललित कलाओं में नलकूबर जैसा है, यहाँ तक कि तू साक्षात् इन्द्र है तो भी मैं तेरी इच्छा नहीं करती ॥४१॥

May you be as beautiful as Vaiśramaṇa Nalakūbara in fine arts, like king of gods himself, still I have no desire for you. (41)

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥४२॥

अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प धूम की ध्वजा वाली जलती हुई दुष्प्रवेश अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए अपने विष को पुनः पीना नहीं चाहते ॥४२॥

Serpents of agandhana class burn themselves in fire but do not drink again the vomitted poison. (42)

धिरत्थु ते ऽजसोकामी ! जो तं जीवियकारणा ।
वन्तं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥४३॥

हे अपयश की इच्छा करने वाले ! तुझे धिक्कार है कि तू भोगी जीवन के लिए वमित किये हुए भोगों को पुनः भोगना चाहता है। इससे तो तेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है ॥४३॥

Fie upon you, you desirous of disfame ! you wish to enjoy the vomitted pleasures. It would be better for you to die. (43)

अहं च भोयरायस्स, तं च सि अन्धगवण्हिणो ।
मा कुले गन्धणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥४४॥

मैं भोजराज (भोजवृष्णि) की पौत्री हूँ और तू अन्धकवृष्णि का पौत्र है। कुल में गन्धन सर्प के समान मत हो। स्थिर होकर संयम का आचरण कर ॥४४॥

I am grand daughter of Bhojagavṛṣṇi and you are grandson of Andhakavṛṣṇi. Do not be like a gandhana serpent (who sucks the vomitted poison from the wound)in your high family, remain steady in restrain. (44)

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

यदि तू जिन-जिन स्त्रियों को देखेगा और उन-उन के प्रति इसी प्रकार से रागभाव करेगा तो वायु से प्रेरित हड़ वनस्पति के समान अस्थिर-आत्मा हो जायेगा ॥४५॥

If you will be tempted to the women you see then you will be an unsteady soul like hada vegetable inspired by wind. (45)

गोवालो भण्डवालो वा, जहा तद्दव्वऽणिस्सरो ।
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥४६॥

जिस प्रकार गोपाल और भाण्डपाल उन गायों तथा किराने के सामान के स्वामी नहीं होते उसी प्रकार तू भी श्रामण्यभाव का स्वामी नहीं हो सकेगा ॥४६॥

As herdmen and keepers of goods are not the owners of those. In the same way, you could not truly own sagehood. (46)

कोहं माणं निगिण्हित्ता, मायं लोभं च सव्वसो ।
इन्दियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहरे ॥४७॥

तू क्रोध, मान, माया, लोभ–इन कषायों को पूर्णरूप से निग्रह करके, तथा इन्द्रियों को वश में करके अपनी आत्मा को असंयम से हटाकर संयम में स्थिर (उवसंहरे) उपसंहार कर ॥४७॥

Obstructing all the four passions–Anger, pride, deceit, greed and subduing the senses, remove your soul from unrestrainment, be steady in restrain. (47)

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥४८॥

उस संयता राजीमती के सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि सम्यक् प्रकार से धर्म में उसी तरह स्थिर हो गया जिस तरह हाथी अंकुश से वश में हो जाता है ॥४८॥

Having heard these well-said words of restrained Rājīmatī Rathanemi became steady in religion (restrainment) as elephant, subjugated by hook. (48)

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइन्दिओ ।
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४९॥

वह (रथनेमि) मन, वचन, काया से गुप्त और जितेन्द्रिय हो गया। दृढ़व्रती बनकर जीवन भर निश्चल रूप से श्रामण्य का पालन करता रहा ॥४९॥

Rathanemi became protected mind, speech and body and conqueror of senses. Becoming firm in vows practised sagehood till life. (49)

उग्गं तवं चरित्ताणं, जाया दोण्णि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥५०॥

उग्र तप का आचरण करके दोनों (रथनेमि और राजीमती) ने ही कैवल्य प्राप्त किया और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके अनुत्तर सिद्ध गति को प्राप्त हुए ॥५०॥

Practising severe penances both (Rājīmatī and Rathanemi) became omniscient and destructing all the karmas attained liberation. (50)

एवं करेन्ति संबुद्धा, पण्डिया पवियक्खणा ।
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा सो पुरिसोत्तमो ॥५१॥

–त्ति बेमि ।

सम्बुद्ध, तत्त्ववेत्ता पण्डित और विचक्षण व्यक्ति ऐसा ही करते हैं। पुरुषों में उत्तम रथनेमि के समान वे भोगो से निवृत्त हो जाते हैं। **–ऐसा मैं कहता हूँ ।**

Enlightened, wise, witty persons do like this. Like the noble man Rathanemi they turn from pleasures and amusements. (51) **–Such I speak.**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ५–लक्षण–प्रवचनसारोद्धार वृत्ति (पत्र ४१०-११) में बताया गया है कि "शरीर के साथ उत्पन्न होने वाले छत्र, चक्र, अकुश आदि रेखाजन्य चिह्न लक्षण कहे जाते हैं। साधारण मनुष्यो के शरीर में ३२, बलदेव-वासुदेव के १०८ और चक्रवर्ती तथा तीर्थंकर के शरीर पर १००८ शुभ लक्षण होते हैं।"

गुरुजनो के नाम से पूर्व १०८ या १००८ श्री का प्रयोग इन्हीं लक्षणों का सूचक है।

गाथा ६–सहनन का अर्थ है–बन्धन–हड्डियों के बन्धन। शरीर के सन्धि अंगों की दोनों हड्डियाँ परस्पर आंटी लगाये हुए हो, उन पर तीसरी हड्डी का वेष्टन–लपेट हो, और चौथी हड्डी की कील उन तीनों को भेद रही हो, इस प्रकार का वज्र जैसा सुदृढ़ अस्थिबन्धन "वज्र-ऋषभ-नाराच" संहनन है। संहनन के छह प्रकार हैं।

संस्थान–शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं। (प्रज्ञापना २३/२)

पालथी मार कर बैठने पर जिस व्यक्ति के चारों कोण सम हों, वह "समचतुरस्र" नामक सर्वश्रेष्ठ संस्थान है। संस्थान के छह प्रकार है। (प्रज्ञापना२३/२)

गाथा ९–कौतुक–मंगल–विवाह के पूर्व वर के ललाट पर मूशल का स्पर्श करवाना आदि कार्य कौतुक हैं। दही, अक्षत, दूध, चन्दन आदि द्रव्य मंगल कहलाते हैं। (वृ. वृ.)

दिव्य-युगल–प्राचीनकाल में अन्तरीय–नीचे पहनने के लिये धोती और उत्तरीय–ऊपर ओढ़ने के लिये चादर, ये दो ही वस्त्र पहने जाते थे। उसी का नाम दिव्य युगल है।

गाथा १०–गन्धहस्ती–सब हाथियों में श्रेष्ठ होता है। इसकी गन्ध से अन्य हाथी हतप्रभ हो जाते हैं, भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं।

गाथा ११–समुद्रविजय, अक्षोभ्य, वसुदेव आदि दस भाई थे। उनके समूह को "दसार चक्र" कहते थे।

गाथा १३–अन्धक और वृष्णि दो भाई थे। वृष्णि अरिष्टनेमि के पितामह अर्थात् दादा होते थे–इनसे "वृष्णिकुल" का प्रवर्तन हुआ। दशवैकालिक आदि के अनुसार दोनों भाइयों के नाम से "अन्धक वृष्णिकुल" भी प्रसिद्ध था।

Salient Elucidations

Gāthā 5–Lakṣaṇa (signs or marks). It is told in vṛtti of Pravacanasāroddhāra (patra 410-411) that originated with the origination of body constructed by the lines the marks like–umbrella, wheel, hook etc , are called signs. On the body of average man 32, Baldeva-Vāsudeva 108 and monarch and Tirthaṁkara there are 1008 signs.

Before the names of religious teachers and adorables to write 108 and 1008 denotes the same fact

Gāthā 6–Saṁhanan means the bondages of bones. Both the bones of joint limbs of body twistly entangled to each other, the third bone as a bandage around those both bones and the fourth bone fixes those three like a nail. Such a steady bondage of bones is the construction of Vajra-ṛṣabha naraca saṁhanana.

Saṁhananas are of six kinds.

The formation or figure of body is called saṁsthāna (Prajñāpanā 23/2).

Sitting by Pālathī posture, all the four angles (and the arms of opposite those angles) are the same–equal that is the best sama caturasra saṁsthāna. Saṁsthānas are also of six types. (Prajāpañaā 23/2)

Gāthā 9–Kautaka-maṅgala–Before starting for marriage to touch Mūśala etc., is kautaka. Curd, rice, milk, sandal woods etc., these things are called maṅgala. (*V.V.*)

Divya-yugala–Divine twin–In ancient ages two cloths were born–(1) (antarīya) dhoti–for wearing under the waist, it covers the legs and (2) a sheet (uttarīya) for covering the upper portion of body i e., chest etc

Gāthā 10–Gandha hasti–This elephant is best of all other elephants. By its very smell the other elephants being frightened run away.

Gāthā 11–Samudravijaya, Akṣobhya, Vasudeva etc., were ten brothers. The group of these ten was called as Dasāra cakra.

Gāthā 13–Andhaka and Vṛṣṇi were two brothers. Andhaka was the grandfather of Ariṣṭanemi. By Andhaka, Vṛṣṇikula prevailed. According to Daśavaikālika etc., Andhaka-Vṛṣṇi kula was also famous by the name of both brothers.

तेईसवाँ अध्ययन : केशी-गौतमीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम केशी-गौतमीय है। कुमारश्रमण केशी भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे और गौतम गणधर भगवान महावीर के पट्टशिष्य थे। दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान और विशिष्ट ज्ञानी थे। श्रावस्ती नगरी के तिन्दुक उद्यान में दोनों में जो तत्व चर्चा हुई उसका इस अध्ययन में रोचक व प्रेरक वर्णन है।

केशी कुमारश्रमण अपने संघ सहित, तिन्दुक उद्यान में ठहरे और गौतम गणधर अपने संघ सहित कोष्ठक उद्यान में ठहरे।

दोनों के शिष्य जब गोचरी आदि के लिए जाते तो परस्पर मिलते, विचार-विमर्श भी करते लेकिन दोनों के आचार में भेद होने के कारण दोनों के ही साधु संशय में पड़ गये। अपने-अपने गुरुओं से कहा–जब हमारा लक्ष्य एक है, मुक्ति-प्राप्ति है तो फिर यह भेद किस लिए है?

दोनों ने मिलकर इन भेदों को स्पष्ट करने का निर्णय किया। अपने से ज्येष्ठ मानकर विनय मर्यादा का पालन करते हुए गौतम गणधर अपने संघ सहित तिन्दुक उद्यान में पहुँचे। केशी कुमारश्रमण ने उनका यथोचित आदर किया और योग्य आसन दिया।

केशी कुमारश्रमण ने सचेल-अचेल, वेश-भूषा, चातुर्याम, पंचमहाव्रत आदि के संबंध में प्रश्न किये।

गौतम स्वामी ने बताया–वेश आदि तो लोक-प्रतीति आदि के लिए हैं; मुक्ति के वास्तविक कारण तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप हैं; जिसके विषय में दोनों ही एकमत हैं।

चातुर्याम तथा पंचमहाव्रत के विषय में बताया कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं और मध्यम २२ तीर्थंकरों के शिष्य ऋजुप्राज्ञ होते हैं; वे जल्दी ही सरलता पूर्वक तत्व को समझकर तदनुसार आचरण कर लेते हैं; लेकिन अन्तिम तीर्थंकर के शिष्य वक्रजड़ होते हैं। इसलिये भगवान महावीर ने नियमोपनियमों में युग के अनुरूप व्यावहारिक परिवर्तन किये हैं।

इसके उपरान्त केशी कुमारश्रमण द्वारा प्रस्तुत किये गये शत्रुओं, बन्धनों, लता, दुष्ट अश्व, मार्ग-कुमार्ग, महाद्वीप आदि प्रतीकात्मक प्रश्नों का भी गौतम स्वामी ने समुचित समाधान दिया। केशी कुमारश्रमण के सभी प्रश्न समाहित हो गये और उन्होंने अपने संघ सहित पंच महाव्रत धर्म स्वीकार किया तथा भगवान महावीर के संघ में सम्मिलित हो गये।

इस अध्ययन की सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरणा यह है कि जिज्ञासाओं और संशयों का निर्णय वार्तालाप द्वारा उदार बुद्धि से किया जाना चाहिए।

दूसरी विशेषता यह है कि मूल को ज्यों की त्यों रखते हुए देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार बाह्य परिवर्तनों को स्वीकार करने से धर्म में जीवन्तता बनी रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ८९ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 23
KEŚĪ AND GAUTAMA

Foreview

This chapter is named Keśī-Gautamīya. Kumāra-Śramaṇa Keśī was the fourth Paṭṭadhara of the tradition of Bhagawāna Pārśvnātha and Gautama Gaṇadhara was the chief disciple of Bhagawāna Mahāvīra. Both were most learned and having special knowledge. In Tinduka-park religious and dogmatic conversation took place between both of them that is related in this chapter in attractive and inspirative style.

Keśī Kumāra-Śramaṇa stayed at Tinduka park with his group of disciples and Gautama Gaṇadhara, with his disciples stayed at Koṣṭhaka park.

Disciples of both when wander for asking food etc., then meet and talk each other; but due to the difference in conduct both of them became suspicious. Both told to their teachers–while our aim to obtain salvation is one and the same then why this difference.

Both the teachers decided to clarify these differences. Thinking elder and practising humility Gautama Gaṇadhara, with his disciples reached Tinduka park. Keśī Kumāra-Śramaṇa gave him due respect and seats to sit.

Keśī Kumāraśramaṇa questioned about with cloths and without cloths, dress, four vows and five bows etc.

Gautama told–Dresses are only for the belief of people, the real causes of salvation are right knowledge-faith-conduct-penance, at this point both have the same opinion.

Regarding four vows and five vows Gautama explained the sages of first tīrthaṁkara are simple-imbecile, of 22 middle tīrthaṁkarassimple-wise, they easily understand and practise accordingly. But the disciples of last tīrthaṁkara are evasive-imbecile. Hence Bhagawāna Mahāvīra changed the rules and regulations according to the age, with behavioural point of view.

After this Keśī Kumāraśramaṇa put some symbolic questions before Gautama Gaṇadhara, like–enemy, bondage, untrained horse, right and wrong path, continent etc., and Gautama Gaṇadhara answered all the questions properly. Being satisfied Keśī Kumāraśramaṇa joined the order of Bhagawāna Mahāvīra, accepting the five-vow-conduct.

The most powerful inspiration of this chapter is–that all the problems should be pacified by conversation and open-mindedness.

The second inspiration is–that without touching the original maxims, accepting the changes according to country and time, this practice vitalizes the religion.

This chapter contains 89 couplets.

तेविंसइमं अज्झयणं : केसिगोयमिज्जं
त्रयोविंश अध्ययन : केशि-गौतमीय

जिणे पासे त्ति नामेण, अरहा लोगपूइओ ।
संबुद्धप्पा य सव्वन्नू, धम्मतित्थयरे जिणे ॥१॥

राग-द्वेष आदि आन्तरिक रिपुओं के विजेता, पार्श्व नाम के लोकपूजित अर्हन् जिन स्वतः सम्बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग और धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक थे ॥१॥

There was a Jina, named Pārśva, conqueror of all internal enemies, revered by all, enlightened himself, omniscient and prophet of religion. (1)

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।
केसीकुमार – समणे, विज्जा-चरण – पारगे ॥२॥

उन लोकप्रदीप भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशी कुमारश्रमण ज्ञान और चारित्र (विज्जाचरण) के पारगामी थे ॥२॥

His disciple was Keśī Kumāraśramaṇa, who has mastered the right knowledge and conduct. (2)

ओहिनाण-सुए बुद्धे, सीससंघ – समाउले ।
गामाणुगामं रीयन्ते, सावत्थिं नगरिमागए ॥३॥

वे अवधिज्ञान और श्रुतज्ञान से प्रबुद्ध (पदार्थों के स्वरूप के ज्ञाता) थे। अपने शिष्य संघ के साथ विहार करते हुए वे श्रावस्ती नगरी में आये ॥३॥

He was efficient with clairvoyance (अवधिज्ञान) and śruta-knowledge. He came to city Śravasti with his disciples. (3)

तिन्दुयं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमण्डले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥४॥

नगरी के समीप तिन्दुक नाम का उद्यान था। वहाँ प्रासुक (निर्दोष) शय्या-संस्तारक उपलब्ध था, अतः वहाँ ठहर गये ॥४॥

Near that city there was a park named Tinduka, he stayed in that park taking pure place for residing. (4)

अह तेणेव कालेणं, धम्मत्थियरे जिणे ।
भगवं वद्धमाणो त्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

उसी समय धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक, जिन, भगवान वर्द्धमान; जो सम्पूर्ण लोक में पूजित और विश्रुत थे ॥५॥

At the same time was Bhagawāna Mahāvīra, adored by all, famous and prophet of religion. (5)

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।
भगवं गोयमे नामं, विज्जा – चरणपारगे ॥६॥

उन लोक-प्रदीप वर्द्धमान के शिष्य भगवान गौतम ज्ञान चारित्र के पारगामी और महायशस्वी थे ॥६॥

The chief disciple of that light of the world Vardhamāna, was revered Gautama, who was famous and also well-versed in right knowledge and conduct. (6)

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघ-समाउले ।
गामाणुगामं रीयन्ते, से वि सावत्थिमागए ॥७॥

बारह अंगों के ज्ञाता प्रबुद्ध गौतम भी अपने शिष्य संघ सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में आये ॥७॥

Well versed in the knowledge of twelve aṅgas, enlightened Gautama, with his disciples came to Śrāvastī city wandering village to village. (7)

कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मी नयरमण्डले ।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

नगरी के निकट कोष्ठक नाम का उद्यान था, वहाँ प्रासुक शय्या संस्तारक आदि सुलभ थे, अतः वे वहाँ ठहर गये ॥८॥

He stayed at the Koṣṭhaka park, nearby city, taking pure place for residence. (8)

केसीकुमार – समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ वि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥९॥

आत्मलीन (अल्लीणा) और सम्यक् समाधि से युक्त कुमारश्रमण केशी और महान यशस्वी गौतम–दोनों ही वहाँ (नगरी में) विचरते थे ॥९॥

Fixed in his own soul and endowed with right contemplation Keśī Kumāraśramaṇa and most glorious Gautama–both were wandering in the city. (9)

उभओ सीससंघाणं, संजयाणं तवस्सिणं ।
तत्थ चिन्ता समुप्पन्ना, गुणवन्ताण ताइणं ॥१०॥

संयत, तपस्वी, गुणवान और छह काया के रक्षक दोनों ही शिष्य–संघों में यह चिन्तन समुत्पन्न हुआ–॥१०॥

Restrained, penancer, virtuous and saviours of all the six species the disciples of both engrossed by these thoughts–(10)

केरिसो वा इमो धम्मो ? इमो धम्मो व केरिसो ? ।
आयारधम्मपणिही, इमा वा सा व केरिसी ? ॥११॥

यह कैसा धर्म है? और यह कैसा धर्म है? आचारधर्म की व्यवस्था (पणिही) यह कैसी है? और यह कैसी है? ॥११॥

What type of religion in this (ours) and what type of those ? What type of system of conduct it is (ours) and what type of those ? (11)

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥१२॥

यह चातुर्याम धर्म है, इसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्वनाथ ने किया है और यह पंचशिक्षा रूप धर्म है, इसका उपदेश महामुनि वर्द्धमान ने किया है ॥१२॥

It is four-vowed religion precepted by Bhagawāna Pārśvanātha and it is five-vowed religion precepted by Bhagawāna Vardhamāna. (12)

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
एगकज्ज – पवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ? ॥१३॥

भगवान वर्द्धमान ने यह अचेलक धर्म (वस्त्र रहित व अल्प वस्त्र वाला) बताया है जबकि भगवान पार्श्वनाथ ने सान्तरोत्तर-(रंग बिरंगे व मूल्यवान वस्त्रों वाला) धर्म की प्ररूपणा की है। एक ही लक्ष्य के लिए प्रवृत्त साधकों में यह भेद क्यों है ?॥१३॥

Bhagawāna Vardhmāna prescribed the religion without or with few and simple cloths: while Bhagawāna Pārsvanātha precepted that śramaṇa can wear multi-coloured and costly cloths. Pursuing the same end, why this difference occurred for the sages. (13)

अह ते तत्थ सीसाणं, विन्नाय पवितक्कियं ।
समागमे कयमई, उभओ केसि-गोयमा ॥१४॥

शिष्यों के शंकायुक्त (पवितक्किय) विचार-विमर्श को जानकर केशी और गौतम–दोनों ने ही परस्पर मिलने की इच्छा की ॥१४॥

Knowing the doubtful thoughts of their disciples both–Keśī and Gautama made up their minds to meet each other. (14)

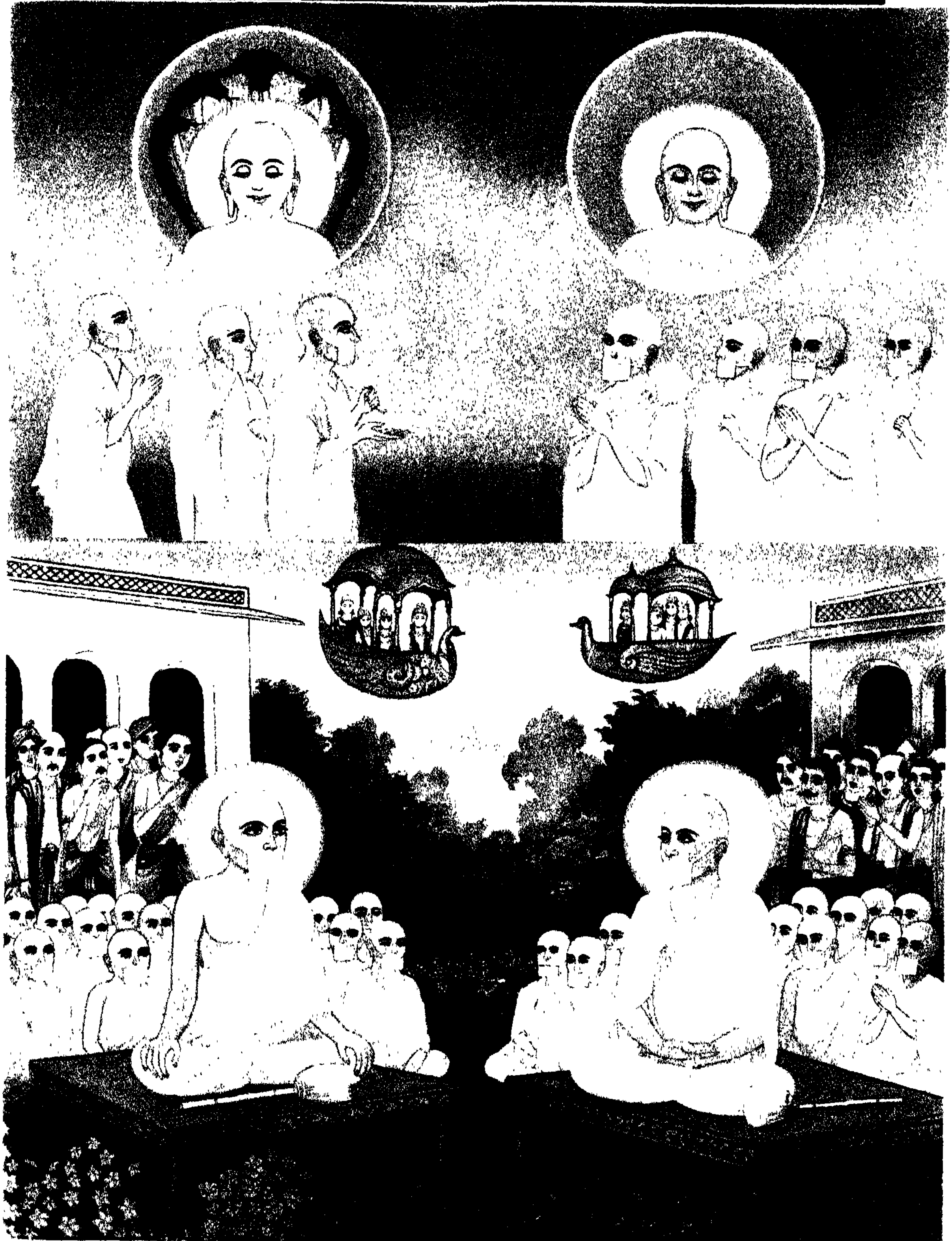
गोयमे पडिरूवन्नू, सीससंघ – समाउले ।
जेट्ठं कुलमवेक्खन्तो, तिन्दुयं वणमागओ ॥१५॥

यथोचित विनय व्यवहार के ज्ञाता गौतम केशी श्रमण के कुल को ज्येष्ठ कुल समझकर अपने शिष्य समूह के साथ तिन्दुक उद्यान में आये ॥१५॥

Well versed in courteous behaviour, knowing elder Keśī, Gautama went to Tinduka park with his disciples. (15)

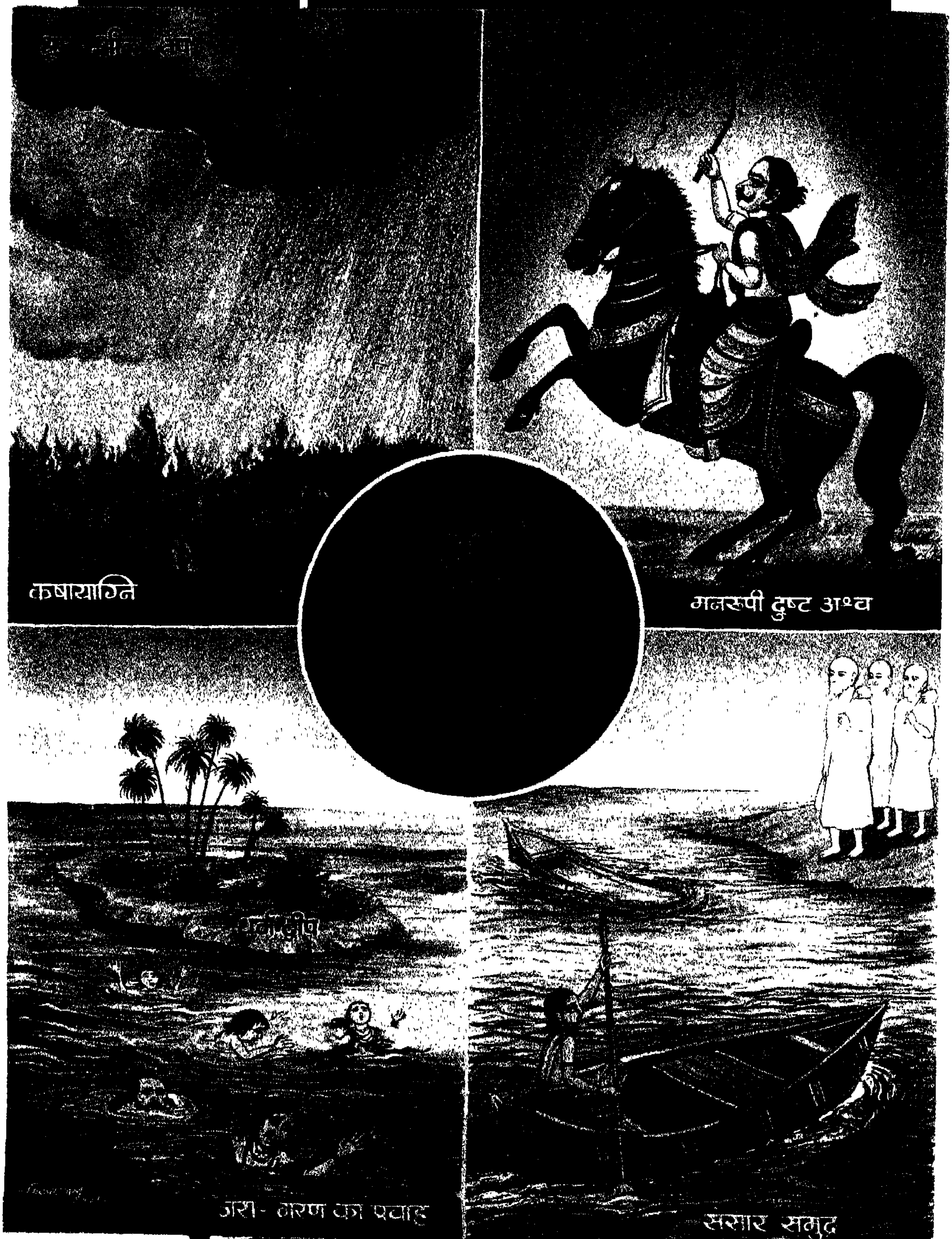
केसीकुमार – समणे, गोयमं दिस्समागयं ।
पडिरूवं पडिवत्तिं, सम्मं संपडिवज्जई ॥१६॥

ILLUSTRATION NO. 52 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 27



चित्र क्रमांक ५२ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 53 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 27



चित्र क्रमांक ५३ | पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

गौतम को आते हुए देखकर केशी कुमारश्रमण ने सम्यक् प्रकार से उनके अनुरूप आदर-सत्कार किया ॥१६॥

When Keśī saw Gautama coming, he respected him properly. (16)

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसेज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥१७॥

गौतम को बैठने के लिए शीघ्र ही उन्होंने प्रासुक पयाल (ब्रीहि आदि चार धानों के घास) और पाँचवाँ कुश-तृण दिया ॥१७॥

He at once offered Gautama the pure seats of four kinds of straw and hay to sit upon. (17)

केसीकुमार – समणे, गोयमे य महायसे ।
उभओ निसण्णा सोहन्ति, चन्द-सूर-समप्पभा ॥१८॥

वहाँ बैठे हुए केशी कुमारश्रमण और महायशस्वी गौतम–दोनों चन्द्र और सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

Keśī Kumāraśramaṇa and most famous Gautama sitting there, shone forth like the lustre of moon and sun. (18)

समागया बहू तत्थ, पासण्डा कोउगा मिगा ।
गिहत्थाणं अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥१९॥

कौतूहल की दृष्टि वाले अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक (पाषण्ड) तथा अनेक सहस्र श्रावक भी आ गये ॥१९॥

There assembled the hermitages of other creeds and thousands of laymen–house holders. (19)

देव-दाणव-गन्धव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा ।
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥२०॥

देव-दानव-गन्धर्व, यक्ष-राक्षस-किन्नर तथा अन्य अदृश्य भूतों का वहाँ मेला-सा लग गया था ॥२०॥

Deities (gods), demons, gandharvas, yakṣas, rākṣasas, kinnaras and other invisible ghosts assembled there in the sky. (20)

पुच्छामि ते महाभाग ! केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥२१॥

केशी ने गौतम से कहा–हे महाभाग ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। केशी के यह कहने पर गौतम ने कहा–॥२१॥

Keśī said to Gautama–O fortunate ! I want to ask something. Then Gautama said–(21)

पुच्छ भन्ते ! जहिच्छं ते, केसिं गोयममब्बवी ।
तओ केसी अणुन्नाए, गोयमं इणमब्बवी ॥२२॥

भंते ! आपकी जैसी इच्छा हो, पूछिए। तब अनुमति पाकर केशी ने गौतम से इस प्रकार कहा-॥२२॥

Revered sir ! ask whatever you like. Then getting the consent, Keśī said to Gautama-(22)

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२३॥

(केशी कुमारश्रमण) यह जो चातुर्याम धर्म है जिसका उपदेश भगवान पार्श्वनाथ ने दिया है और यह पंचशिक्षा (पंच महाव्रत) रूप धर्म भगवान वर्द्धमान द्वारा उपदिष्ट है ॥२३॥

(Keśī Kumāraśramaṇa) This four-vowed religion precepted by Bhagawāna Pārśvanātha and five-vowed religion instructed by Bhagawāna Mahāvīra. (23)

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ?
धम्मे दुविहे मेहावि !, कहं विप्पच्चओ न ते ? ॥२४॥

हे मेधावी ! एक ही कार्य-लक्ष्य में प्रवृत्त हुए हैं तो इस विशेषता-भिन्नता का क्या कारण है? इन दो प्रकार के धर्मों में आपको संदेह (विप्रत्यय) क्यों नहीं होता ? ॥२४॥

O wise ! While both religions (code of conduct) pursue the same end, why this difference ? Does these two types of code of conduct, not create any suspicion in your mind ? (24)

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छयं ॥२५॥

(गौतम गणधर) केशी के ऐसा कहने पर गौतम ने कहा-तत्त्व का विनिश्चय सम्यक् निर्णय करने वाली प्रज्ञा द्वारा ही धर्म तत्त्व की समीक्षा की जाती है ?॥२५॥

(Gautama Gaṇadhara) Hearing Keśī's these words Gautama expressed-Rules of religion are decided by pure reason and wisdom ascertains the doctrines of religion. (25)

पुरिमा उज्जुजडा उ, वंकजडा य पच्छिमा ।
मज्झिमा उज्जुपन्ना य, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

पूर्व-प्रथम तीर्थंकर के साधु सरल और दुर्बोध्य (ऋजु-जड़) होते हैं तथा पश्चिम (अन्तिम) तीर्थंकर के साधु असरल और दुर्बोध्य (वक्र जड़) होते हैं और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु सरल और प्राज्ञ (ऋजु प्राज्ञ) होते हैं। इस कारण धर्म के दो प्रकार किये गये हैं ॥२६॥

The sages of first tīrthaṁkara were simple but slow of understanding and those of last prevaricating and slow of understanding; while those of middle 22 tīrthaṁkaras were simple and wise. Hence there are two forms of code of conduct. (26)

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

प्रथम तीर्थंकर के साधुओं द्वारा आचार मर्यादा (कल्प) शुद्धरूप में ग्रहण करना (दुव्विसोज्झो) दुष्कर है तथा अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं द्वारा उसका निर्मल रूप से पालन करना कठिन है और मध्य के तीर्थंकरों के साधुओं के लिए आचार (कल्प) का ग्रहण करना और पालन करना सरल है ॥२७॥

For the sages of first tīrthaṁkara to understand the code of conduct in its pure form is difficult while for the last's to practise it in its pure form is difficult and for those of middle 22 tīrthaṁkaras it is easy to understand and practise. (27)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥

(केशी कुमारश्रमण) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय मिटा दिया। मेरा एक संशय और है। हे गौतम ! उसके विषय में मुझे कहें, (मेरा सन्देह दूर करें) ॥२८॥

(Keśī) Gautama ! Really your intelligence is good. You have removed my this doubt. I have another suspicion. Gautama ! please reconcile that also. (28)

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥२९॥

यह अचेलक धर्म वर्द्धमान द्वारा उपदिष्ट है और वर्ण आदि से युक्त तथा मूल्यवान वस्त्र वाला (संतरुत्तर) धर्म महायशस्वी पार्श्व ने बताया है ॥२९॥

Bhagawāna Mahāvīra forbade the clothes (for a monk) and Bhagawāna Pārśvanātha allowed multi-coloured costly clothes. (29)

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ? ।
लिंगे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ न ते ? ॥३०॥

एक ही कार्य-लक्ष्य में प्रवृत्त दोनों में इस विशेषता-भिन्नता का कारण क्या है? हे मेधावी ! इन दो प्रकार के लिंगों से क्या तुम्हें संशय नहीं होता ? ॥३०॥

Both pursuing for the same end, then why is this difference ? O wise ! these two types of code does not create any suspicion in your mind ? (30)

केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
विन्नाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥३१॥

(गौतम गणधर) केशी के यह कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-विज्ञान (विशिष्ट प्रकार के ज्ञान) से जानकर ही धर्म-साधनों की अनुज्ञा दी गई है ॥३१॥

(Gautama) To these words of Keśī, Gautama replied–Having known by super knowledge the means of religion (code) are allowed. (31)

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणविहविगप्पणं ।
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगप्पओयणं ॥३२॥

अनेक प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना लोगों की प्रतीति के लिए है। संयम यात्रा के निर्वाह हेतु और 'मैं साधु हूँ' इस प्रकार का बोध रहने के लिए लिंग का प्रयोजन है ॥३२॥

The various types of outward marks-appendages are for the belief of people. The reason is their usefulness to religious life and 'I am a sage' for continuous remembrance of this the outward tokens are apprehended. (32)

अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूयसाहणे ।
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव निच्छए ॥३३॥

यथार्थतः (दोनों तीर्थंकरों की) प्रतिज्ञा-सिद्धान्त एक ही है कि मोक्ष के सद्भूत निश्चित वास्तविक कारण तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही हैं ॥३३॥

The principle of both tīrthaṁkaras is one and the same that true causes of liberation are right knowledge-faith-conduct. (33)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥३४॥

(केशी कुमारश्रमण) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय तो समाप्त कर दिया। अब मेरा एक संशय और है। हे गौतम ! उस विषय में भी मुझे बताएं ॥३४॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is best. You have removed my this suspicion, I have another doubt. Please remove that also. (34)

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ! ।
ते य ते अहिगच्छन्ति, कहं ते निज्जिया तुमे ? ॥३५॥

हे गौतम ! तुम अनेक सहस्र शत्रुओं के बीच में खड़े हो और वे तुम्हें जीतने के लिए तुम्हारे सम्मुख आ रहे हैं। तुमने उन शत्रुओं को किस प्रकार विजित कर लिया है ? ॥३५॥

O Gautama ! You stand midst thousand enemies and they are coming to overpower you. How you have won them ? (35)

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥३६॥

(गौतम) एक को जीतने से पाँच जीत लिए गये और पाँच को जीतने से दस पर विजय प्राप्त हो गई। दसों को जीतकर मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया ॥३६॥

(Gautama) Winning one, five have been conquered and conquering five ten have been won. Winning ten, I have conquered all the foes. (36)

सत्तू य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

(केशी) केशी ने गौतम से कहा–वे शत्रु कौन से कहे जाते हैं ? केशी के यह कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा– ॥३७॥

(Keśī) Keśī said to Gautama–whom do you call foes ? Hearing these words of Keśī, Gautama replied–(37)

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ! ॥३८॥

(गौतम) हे मुने ! अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है। चार कषाय और पाँच इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं। इनको जीतकर मैं यथान्याय–नीति पूर्वक विचरण करता हूँ ॥३८॥

(Gautama) O monk ! Invincible own soul is the greatest foe.Four passions (anger, pride, deceit and greed) and five senses (of touch, taste, smell, sight and hearing) are also foes, winning all these I wander properly. (38)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥३९॥

(केशी) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। मेरा यह संशय मिट गया लेकिन मेरा एक संशय और भी है। हे गौतम ! मुझे उसके विषय में कहें–बतावें ॥३९॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is the best. My this doubt is removed; but I have another suspicion, remove also that. (39)

दीसन्ति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कह तं विहरसी मुणी ॥४०॥

इस लोक में बहुत से शरीरधारी जीव पाश से आबद्ध दिखाई देते हैं। हे मुने ! तुम किस प्रकार पाशबन्धन से मुक्त और लघुभूत–हलके होकर प्रतिबन्ध रहित विचरण करते हो ? ॥४०॥

Many corporeal beings are seen ensnared in this world. How you are free from snare and wander being light. (40)

ते पासे सव्वसो छित्ता, निहन्तूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ! ॥४१॥

(गौतम) हे मुनिवर ! विशिष्ट उपाय से उन सब पाश बन्धनों को सर्व प्रकार से काटकर तथा नष्टकर मैं पाशमुक्त और लघुभूत होकर विचरण करता हूँ ॥४१॥

(Gautama) O monk ! Breaking all those snare bondages by special measures, I wander freely. (41)

पासा य इइ के वुत्ता ?, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४२॥

(केशी) केशी ने गौतम से पूछा–हे गौतम ! वे बन्धन कौन से हैं? केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा–॥४२॥

(Keśī) Keśī asked Gautama–What are those snares ? Asking thus by Keśī, Gautama replied in these words–(47)

रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ।
ते छिन्दित्तु जहानायं, विहरामि जहक्कमं ॥४३॥

(गौतम) तीव्र राग-द्वेष और स्नेह भयंकर पाश बन्धन हैं। उन्हें काटकर न्याय-नीतिपूर्वक मैं विचरण करता हूँ ॥४३॥

(Gautama) Intense attachment-detachment and love are the ferocious bondage-snares. Breaking those snares I wander freely. (43)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥४४॥

(केशी) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय दूर कर दिया। मेरा एक और भी संशय है, उसके विषय में मुझे कहो-बताओ ॥४४॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is best. You have removed my this doubt. I have also another doubt. Please, remove that also. (44)

अन्तोहियय-संभूया, लया चिट्ठइ गोयमा ! ।
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं ? ॥४५॥

हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न एक लता रहती है, वह विष के समान फल देती है। उस विषलता को तुमने कैसे उखाड़ा ?॥४५॥

O Gautama ! A tendril grows up in the innermost heart, that brings forth poisonous fruits. How you have uprooted that tendril. (45)

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ।
विहरामि जहानायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥४६॥

(गौतम) मैंने उस लता को सर्वथा काटकर एवं मूल सहित उखाड़ कर फैंक दिया है। अतः मैं विषफलों से बचा रहकर यथान्याय विचरण करता हूँ ॥४६॥

(Gautama) I have thrown off that tendril torning it with its roots. So being safe from poisonous fruits, I wander freely. (46)

लया य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४७॥

(केशी) केशी ने गौतम से पूछा-वह लता कौन-सी कही गई है? केशी के यह पूछने पर गौतम ने बताया-॥४७॥

(Keśī) Keśī said to Gautama, what do you call that tendril ? This question of Keśī, Gautama replied thus-(47)

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया ।
तमुद्धरित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी ! ॥४८॥

(गौतम) हे महामुनि ! भवतृष्णा ही भयंकर लता है, उसमें भयानक परिपाक वाले फल लगते हैं। उसे जड़ से उखाड़ कर मैं न्याय-नीति से विचरण करता हूँ ॥४८॥

(Gautama) O great monk ! Eager desire of existence (life) is the name of that tendril, which brings forth the dreadful fruits. Clipping from root that tendril, I wander pleasantly. (48)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥४९॥

(केशी) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरे इस संशय का समाधान कर दिया। मेरा एक और भी संशय है। उसके सबंध में भी मुझे कहें ॥४९॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is excellent. You have removed my this doubt. I have one suspicion more, remove also that. (49)

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा ! ।
जे डहन्ति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ? ॥५०॥

हे गौतम ! घोर प्रचण्ड अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं जो शरीर में स्थित जीवों को जलाती हैं। तुमने उन अग्नियों को कैसे बुझाया ?॥५०॥

Gautama ! There are blazing up frightful fires, which burn the embodied beings. How you have quenched those fires ? (50)

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं ।
सिंचामि सययं देहं, सित्ता नो व डहन्ति मे ॥५१॥

(गौतम) महामेघ से उत्पन्न उत्तम जल लेकर मैं निरन्तर उन अग्नियों को सिंचित करता रहता हूँ। अतः सिंचित की हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं ॥५१॥

(Gautama) Taking excellent water, which is produced by great cloud, I always pour it on those fires, thus sprinkled fires do not burn me. (51)

अग्गी य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५२॥

(केशी) वे अग्नियाँ कौन-सी कही गई हैं? केशी ने गौतम से कहा। केशी के कहने (पूछने) पर गौतम ने इस प्रकार कहा-॥५२॥

(Keśī) What are those fires ? To these words of Keśī, Gautama said thus–(52)

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं ।
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे ॥५३॥

(गौतम) कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नियाँ कहा गया है तथा श्रुत, शील और तप उत्तम जल है। श्रुत-शील-तप की जल धारा से बुझी हुई तथा नष्ट हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती हैं ॥५३॥

(Gautama) Passions (anger, pride, deceit, greed) are fires and knowledge, virtuous life and penances are the excellent water. Sprinkled by this water, the fires of passions quenched and they do not burn me. (53)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥५४॥

(केशी) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक और संशय है। उसके विषय में भी मुझे कुछ कहें ॥५४॥

(Keśi) Gautam ! Your intelligence is excellent. You have removed my this doubt. But there is another doubt in my mind, remove also that. (54)

अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण न हीरसि ? ॥५५॥

यह साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व दौड़ रहा है। गौतम ! तुम उस पर सवार हो। वह तुम्हें उन्मार्ग पर कैसे नहीं ले जाता ? ॥५५॥

The unruly, dreadful and stupid horse is running. You are sitting on its back. Why it does not take you on uneaven path ? (55)

पधावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं ।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं व पडिवज्जई ॥५६॥

(गौतम) दौड़ते हुए घोड़े को मैं श्रुत रश्मि (श्रुतज्ञान की रस्सी–लगाम) से वश में रखता हूँ। अतः मेरे अधीन हुआ वह अश्व उन्मार्ग में नहीं जाता अपितु सन्मार्ग पर ही चलता है ॥५६॥

(Gautama) I control this running horse by the bridle of knowledge. Being controlled it does not go astray and moves on the right path. (56)

अस्से य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५७॥

(केशी) अश्व किसे कहा जाता है ? केशी ने गौतम से कहा–पूछा। केशी के यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा– ॥५७॥

(Keśi) Whom do you call the horse ? These words of Keśi answered by Gautama thus–(57)

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कन्थगं ॥५८॥

(गौतम) मन ही साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व है जो चारों ओर इधर-उधर दौड़ता रहता है। उसका मैं धर्मशिक्षा द्वारा भली-भाँति निग्रह करता हूँ। अतः वह उत्तम जाति का कन्थक अश्व बन गया है ॥५८॥

(Gautama) Mind is the unruly, dreadful and stupid horse, who runs hither and thither, all the directions. I control it by religious instructions, so it became well-trained Kanthaka horse. (58)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥५९॥

(केशी) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी मिटा दिया। मेरा एक और संशय है। उसके संबंध में भी मुझे कुछ कहें ॥५९॥

(Keśi) Gautama ! Your intelligence is excellent. You have removed my this doubt. I have another doubt, remove also that. (59)

कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं नासन्ति जंतवो ।
अद्धाणे कह वट्टन्ते, तं न नस्ससि ? गोयमा ! ॥६०॥

हे गौतम ! संसार में वहुत से कुमार्ग हैं, जिनके कारण जीव (सन्मार्ग से) भ्रष्ट हो जाते हैं, भटक जाते हैं। उस मार्ग पर चलते हुए तुम क्यों नहीं भटकते हो ? ॥६०॥

Gautama ! There are many bad paths (heretic creeds) in this world, which lead persons astray. Why you do not go astray moving on the path ? (60)

जे य मग्गेण गच्छन्ति, जे य उम्मग्गपट्ठिया ।
ते सव्वे विइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ! ॥६१॥

(गौतम) जो सन्मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्ग पर चलते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। इसी कारण हे मुने! मैं सन्मार्ग से नहीं भटकता हूँ ॥६१॥

(Gautama) I know all, those who moves on right path and wrong path. Thereby I do not go astray from right path. (61)

मग्गे य इइ के वुत्ता ?, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

(केशी) मार्ग किसे कहा जाता है? केशी ने गौतम से कहा। केशी के यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-॥६२॥

(Keśi) Which is called a path ? To these words of Keśi, Gautama replied thus-(62)

कुप्पवयण-पासण्डी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥६३॥

(गौतम) कुप्रवचन को मानने वाले सभी पाखंडी-व्रतधारी लोग उन्मार्ग पर प्रयाण करते हैं। सन्मार्ग तो जिनेन्द्र द्वारा कथित है और यही मार्ग उत्तम है ॥६३॥

(Gautama) All the heterodox and heretics have choosen the wrong path; the right path is taught by Jinas and this is the most excellent path. (63)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥६४॥

(केशी) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक और भी संशय है। उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहो ॥६४॥

(Keśi) Gautama ! Your intelligence is the best, you have removed my this doubt. But I have another doubt also, remove that. (64)

महाउदग-वेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं ।
सरणं गई पइट्ठा य, दीवं कं मन्नसी मुणी ? ॥६५॥

हे मुने ! महान जल प्रवाह के वेग में बहते-डूबते प्राणियों के लिए शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप तुम किसे मानते हो ?॥६५॥

Beings are carried away by the tremendous flood of water, what shelter, refuge, firm ground, island you suppose for them ? (65)

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥६६॥

(गौतम) जल के मध्य में एक विशाल महाद्वीप है। वहाँ महान जल प्रवाह के वेग की गति नहीं होती है–वहाँ जल नहीं पहुँचता ॥६६॥

(Gautama) There is a vast, great island amidst the water. That is not inundated by the hugest flood of water. (66)

दीवे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६७॥

(केशी) केशी ने गौतम से कहा–वह महाद्वीप कौन-सा कहा जाता है? केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा–॥६७॥

(Keśi) Which is that huge and great island ? The words of Keśi were answered by Gautama thus–(67)

जरा-मरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥६८॥

(गौतम) जरा (वृद्धावस्था) और मरण (मृत्यु) के महावेग से बहते-डूबते प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है ॥६८॥

(Gautama) By the fiercing velocity of oldage and death for sinking and flowing beings, religion is the only island, dry ground, safe place and best shelter. (68)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥६९॥

(केशी) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी छिन्न कर दिया। मेरा एक संशय और है। उसके बारे में भी मुझे कहो–बताओ ॥६९॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is best. You have removed my this doubt. Another suspicion is also in my mind, remove that also. (69)

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई ।
जंसि गोयममारूढो, कहं पारं गमिस्ससि ? ॥७०॥

महाप्रवाह वाले सागर में नौका (नाव) विपरीत रूप से इधर-उधर भाग रही है (विपरिधावई)। हे गौतम! तुम उसमें बैठे हो। किस प्रकार पार (सागर के तट तक) जा सकोगे ?॥७०॥

On the ocean with many huge currents there drifts a boat and you are on board of it, how could you reach the opposite coast ? (70)

जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

(गौतम) जो नौका छिद्रयुक्त होती है, वह पार ले जाने वाली नहीं होती अपितु जो नाव छिद्ररहित होती है, वही पार ले जाने वाली होती है ॥७१॥

(Gautama) A boat with holes cannot reach the opposite coast; but the holeless boat safely reaches the opposite shore. (71)

नावा य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७२॥

(केशी) वह नाव कौन-सी कही गई है? केशी ने गौतम से पूछा। केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा–॥७२॥

(Keśī) Keśī asked Gautama–which is that boat ? Gautama answered thus–(72)

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ॥७३॥

(गौतम) शरीर को नौका कहा गया है और जीव को नाविक (मल्लाह) कहा जाता है तथा संसार को समुद्र कहा गया है; जिसे महर्षि तैरकर पार कर जाते हैं ॥७३॥

(Gautama) Body is boat, soul is sailor, the world is ocean; which is crossed by great sages. (73)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७४॥

(केशी) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय मिटा दिया। मेरा और भी एक संशय है। हे गौतम ! उसके संबंध में भी मुझे कहो ॥७४॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is best, you have removed my this doubt. Another suspicion is also in my mind, remove that also. (74)

अन्धयारे तमे घोरे, चिट्ठन्ति पाणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगंमि पाणिणं ? ॥७५॥

भयंकर, घने अन्धकार में बहुत से प्राणी अवस्थित हैं, रह रहे हैं। सम्पूर्ण लोक के प्राणियों के लिए कौन उद्योत–प्रकाश करेगा ?॥७५॥

Many beings are living in dense darkness. Who will bring light to the beings of whole world. (75)

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोगप्पभंकरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगंमि पाणिणं ॥७६॥

(गौतम) सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाला निर्मल सूर्य उदित हो चुका है। वह लोक के सभी प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ॥७६॥

(Gautama) The spotless sun has risen, he will illuminate the whole world of beings. (76)

भाणू य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

(केशी) वह सूर्य कौन-सा कहा जाता है? केशी ने गौतम से कहा। केशी के पूछने पर गौतम ने कहा– ॥७७॥

(Keśī) Which is that sun ? asked Keśī, Gautama answered. (77)

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वन्नू जिणभक्खरो ।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयंमि पाणिणं ॥७८॥

(गौतम) जिसका संसार क्षीण हो चुका है, जो सर्वज्ञ है, ऐसा जिन-भास्कर उदित हो चुका है। वह सम्पूर्ण लोक में प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ॥७८॥

(Gautama) Whose circle of births and deaths came to end, who is omniscient, such Jina-sun has arisen. He will bring light to all the beings of world. (78)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥७९॥

(केशी) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक संशय और है। उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहो–बतलाओ ॥७९॥

(Keśī) Gautama ! Your intelligence is best, you have removed my this suspicious.I have another doubt also, please remove also that. (79)

सारीर-माणसे दुक्खे, बज्झमाणाण पाणिणं ।
खेमं सिवमणाबाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी ? ॥८०॥

हे मुने ! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेमंकर, शिवकर और बाधा रहित स्थान तुम किसे मानते हो ?॥८०॥

O monk ! What place you suppose safe, quiet and happy for the beings tormented by mental and bodily miseries. (80)

अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

(गौतम) लोक के अग्र भाग में एक ध्रुव-शाश्वत स्थान है; जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधियाँ तथा वेदनाएँ नहीं हैं किन्तु उस स्थान पर पहुँचना दुष्कर है ॥८१॥

(Gautama) In the highest part of upper world there is an eternal place; where old age, death, diseases, pains do not exist; but it is very difficult to reach that place. (81)

ठाणे य इइ के वुत्ते ?, केसी गोयममबब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

(केशी) वह स्थान कौन-सा है? केशी ने गौतम से पूछा। केशी के पूछने पर गौतम ने यह कहा-॥८२॥

(Keśī) Keśī asked–which is that place? Gautama answered–(82)

निव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरन्ति महेसिणो ॥८३॥

(गौतम) जिस स्थान को महर्षि प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है, अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है; क्षेम, शिव और अनाबाध है ॥८३॥

(Gautama) The great sages obtain, that place is salvation, without any hindrance, emancipation, uppermost part of Loka, safe, and obstacleless. (83)

तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति, भवोहन्तकरा मुणी ॥८४॥

भव-प्रवाह (जन्म-मरण) का अन्त करने वाले मुनि जिसे संप्राप्त करके शोक से मुक्त हो जाते हैं, वह स्थान लोक के अग्रभाग में शाश्वत निवास स्थान है; किन्तु वहाँ पहुँचना दुष्कर है ॥८४॥

Ending the circle of births and deaths, the great sage approaching that place becomes free from all miseries, that place is eternal; but to reach there is difficult. (84)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
नमो ते संसयाईय, सव्वसुत्तमहोयही ! ॥८५॥

(केशी) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। मेरा यह संशय भी नष्ट हो गया। हे संशयातीत! सर्वश्रुत के महासागर ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥८५॥

(Keśī) Gautama ! Your wisdom is best, you removed my this suspicion. O Doubtless, Ocean of whole śruta, I bow to you. (85)

एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे ।
अभिवन्दित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥

इस प्रकार सभी संशयों के नष्ट होने पर घोर पराक्रमी केशी ने महायशस्वी गौतम को शिर से वन्दना कर-सिर झुकाकर-॥८६॥

Thus pacified all the doubts the rigorous penancer Keśi bowing down his head to great famous Gautama-(86)

पंचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जइ भावओ ।
पुरिमस्स पच्छिमंमी, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

प्रथम और अन्तिम जिनों द्वारा उपदेशित एवं सुखकारी पंच महाव्रत रूप धर्म को भाव सहित स्वीकार किया ॥८७॥

Accepted with heart five-vows as precepted by first and last Jinas. (87)

केसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे ।
सुय-सीलसमुक्करिसो, महत्थऽत्थविणिच्छओ ॥८८॥

तिन्दुक उद्यान में केशी और गौतम-दोनों के सतत समागम (मिलन) में श्रुत और शील का उत्कर्ष तथा महान तत्त्वों का विनिश्चय हुआ ॥८८॥

In the meeting and conversation of Keśi and Gautama in Tinduka park many doctrines of knowledge and conduct decided. (88)

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया ।
संथुया ते पसीयन्तु, भयवं केसिगोयमे ॥८९॥

-त्ति बेमि ।

सम्पूर्ण परिषद प्रस्तुत धर्मचर्चा से सन्तुष्ट हुई और सन्मार्ग में समुद्यत हुई तथा सभी ने उन दोनों की स्तुति की कि केशी कुमारश्रमण और गणधर गौतम-दोनों हम पर प्रसन्न हों ॥८९॥ **-ऐसा मैं कहता हूँ ।**

Whole assembly satisfied with this religious conversation and prepared to accept the right path, praised both of them and wished that 'May the venerables Keśi and Gautama pleased to us.' **-Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १२–चातुर्याम–जैन परम्परा के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया था। दूसरे अजित जिन से लेकर तेईसवें पार्श्व जिन तक चातुर्याम धर्म का उपदेश रहा। इसमें ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को "बहिद्धादाणाओ वेरमणं"–बहिस्तात् आदानं विरमणं (बाह्य वस्तुओं के ग्रहण का त्याग) में समाहित कर दिया गया था।

प्रस्तुत अध्ययन में पार्श्वनाथ परम्परा के चार महाव्रतों को "याम" शब्द से और वर्धमान महावीर परम्परा के पाँच महाव्रतों को "शिक्षा" शब्द से सूचित किया है।

भगवान पार्श्वनाथ ने मैथुन को परिग्रह के अन्तर्गत माना था। स्त्री को परिगृहीत किये बिना मैथुन नहीं होगा। इसीलिये पत्नी के लिये "परिग्रह" शब्द भी प्रचलित रहा है।

गाथा १३–"अचेल" के दो अर्थ हैं–बिल्कुल ही वस्त्र न रखना, अथवा अल्प मूल्य वाले साधारण श्वेत वस्त्र रखना। "अ" का अभाव अर्थ भी है, और अल्प भी। (बृ. वृ.)

Salient Elucidations

Gāthā 12–Cāturyāma–According to Jain tradition, first tīrthaṁkara Bhgawāna Ṛṣbhadeva precepted five great vows (1) Non-violence (2) Truth (3) Non-stealing (4) Celibacy (5) Non-possession. From second, Ajita Jina to twentythird Pārśva Jina four vows were taught. In this preception celibacy and non-possession both were amalgamated in one i. e., bahiddhādāṇāo veramaṇaṁ. (renouncement of accepting the outward things)

In this chapter the four great vows of Pārśvanātha's tradition named as *Yāma* and five great vows of Bhagawāna Mahāvīra's tradition given the name *instruction.*

Bhagawāna Pārśvanātha gave the place to cohabitation among possession. Because sexual intercourse cannot be done without accepting woman. Due to this, the word possession prevailed for wife also.

Gāthā 13–There are two interpretations of the word 'Acela'–(1) totally without clothes and (2) a few and ordinary clothes. The word 'अ' bears both the meanings–(1) Totally absence and (2) a few. (V. V.)

चौबीसवाँ अध्ययन : प्रवचन-माता

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम प्रवचनमाता (पवयण-माया) है। समवायांग में इसका नाम 'समिइओ' समितियाँ दिया गया है। मूल में पाँच समितियों और तीन गुप्तियों को सम्मिलित रूप से आठ समितियाँ कहा है। अतः समितियाँ नाम भी अभीष्ट अर्थ को द्योतित करता है।

समिति-गुप्तियों को प्रवचनमाता कहने के दो कारण सम्भव हैं-(१) ऐसा माना जाता है कि समस्त प्रवचन (धर्म शासन) इन्हीं से उद्‌भूत हुआ है अथवा यह समस्त प्रवचन (द्वादशांग) का सार है। (२) समिति-गुप्तियाँ साधु के अहिंसा आदि महाव्रतों की माता के समान परिपालना-देखभाल करती हैं।

माता की इच्छा यही रहती है कि उसका पुत्र सन्मार्ग पर चले, उन्मार्ग को छोड़े। वह पुत्र के संरक्षण और चरित्र निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है।

इसी प्रकार ये आठों प्रवचनमाताएँ साधक को सम्यक् प्रवृत्ति की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं, उन्मार्ग पर जाने तथा दुष्प्रवृत्ति से रोकती हैं, उसके चारित्र धर्म का विकास करती हैं, शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति कराती हैं।

सम्यक् प्रवृत्ति समिति है और अशुभ से निवृत्ति गुप्ति है। संक्षेप में कहा जाय तो समिति प्रवृत्तिरूप है और गुप्ति निवृत्तिरूप है।

समिति पाँच हैं-(१) ईर्या (२) भाषा (३) एषणा (४) आदान-निक्षेपण और (५) परिष्ठापनिका।

चलने में, बोलने में, आहार-पानी तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की खोज तथा ग्रहण में, उपधियों को उठाने-रखने में, तथा त्याज्य वस्तुओं-मल-मूत्र आदि के विसर्जन में सदैव सावधानी, उपयोगयुक्तता, सम्यक्‌रूप से प्रवृत्ति करना समिति है।

मन, वचन, काय को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना गुप्ति है।

मन, वचन, काय योग के सत्य, असत्य, सत्यामृषा और असत्यामृषा (व्यवहार) ये चार-चार भेद करके समझाया है कि साधक केवल सत्य और व्यवहार भाषा का प्रयोग करे; असत्य और सत्यामृषा भाषा न बोले। इसी प्रकार मन के चिन्तन और काय-योग को भी नियंत्रित रखे।

इन समिति-गुप्तियों का मापदण्ड अहिंसा है। इसीलिए साधक सावद्यकारी कोई भी प्रवृत्ति न करे और न मन में ही ऐसा चिन्तन करे।

इस प्रकार आठों प्रवचनमाताओं का सर्वांग पूर्ण चिन्तन इस अध्ययन में हुआ है और दर्शाया है कि इनकी सम्यक् परिपालना से साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत अध्ययन में २७ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 24
MOTHERS OF RELIGIOUS ORDER

(Circumspections)

Foreview

This chapter named as Pravacana-mātā. Samvāyāṅga gives another name '*Samīïo*'–circumspections or vigilence. In the text, incorporating five vigilences and three restaints, eight vigilences are said (described). Therefore the name vigilences also denotes the same.

There are two causes to describe the vigilences and restraints as mother of Pravacana–(1) it is apprehended that all pravachana (religious order) originated from these or these are the substances of twelve aṅgas, (2) these vigilences and restraints take care of the great vows of a monk, like a mother.

The only desire of mother remains that her son should take right path and leave the wrong path. She always endeavours to protect and character-formation of her son.

In the same way these eight mothers of religious order inspire the adept to advance for good tendency, check from wrong path and ill-tendencies, develop his right conduct, obstruct from inauspicious and make him to practise auspicious.

Auspicious tendency is vigilence and to abstain from inauspcious is restraint.

Circumspections or vigilences are five–(1) of movement (2) language or speaking, (3) seeking for necessities (4) take and put (5) to throw the unnecessary things.

In movement, speaking, seeking for food and other necessities, taking and puting the things and things to be deserted like–stool, urine etc., in all activities carefulness and proper tendency is vigilence.

To check the mind, speech and body from inauspicious tendencies is restraint.

By the four divisions of mind, speech and body–(1)) truth (2) false (3) mixture of truth and untruth and (4) no truth and no untruth–only behaviour, it is explained that a monk speak true and behavioural language, he should never speak untruth and the mixture of truth and untruth, he should also control his mind and body.

The central orbit of these vigilences and restraints is non-violence. So adept should do nothing, which my be injurious and nor he should think like this even in his mind.

Thus the exhaustive description is produced in this chapter and made understood that who practises these properly he attains his goal.

This chapter contains only 27 couplets.

卐

चउविंसइमं अज्झयणं : पवयण-माया
चतुर्विंश अध्ययन : प्रवचन-माता

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य ।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया ॥१॥

समिति और गुप्ति-मिलकर आठ प्रवचनमाताएँ हैं। समितियाँ पाँच हैं और गुप्तियाँ तीन हैं ॥१॥

Vigilences and restraints are eight mother of religious order. Vigilences are five and restraints are three. (1)

इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपणा समिति, और उच्चार-प्रस्रवण (परिष्ठापनिका)-ये पाँच समिति तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और आठवीं कायगुप्ति है ॥२॥

(1) Of movement, (2) speaking (3) seeking for necessary things (4) take-put (5) deserting the stool and urine-these are five vigilences and controlling mind, language and body are three restraints. (2)

एयाओ अट्ठ समिईओ, समासेण वियाहिया ।
दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं ॥३॥

संक्षेप में ये आठ समितियाँ कही गई हैं। इनमें जिनेन्द्र-कथित द्वादशांगरूप समग्र प्रवचन समाहित हो जाता है ॥३॥

In short these eight vigilences are said. Among these all the preceptions given by Jinas, the twelve aṅgas, are incorporated. (3)

१-ईर्या समिति

आलम्बणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य ।
चउकारणपरिसुद्धं, संजए इरियं रिए ॥४॥
तत्थ आलंबणं नाणं, दंसणं चरणं तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥५॥
दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।
जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥६॥
दव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ ।
कालओ जाव रीएज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥७॥

इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए ॥८॥

संयत (संयमी साधक) आलम्बन से, काल से, मार्ग से और यतना से–इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या समिति से विचरण करे ॥४॥

ईर्या समिति का आलम्बन ज्ञान-दर्शन और चारित्र है। काल दिवस (दिन का समय) है।

मार्ग उत्पथ का वर्जन है ॥५॥

द्रव्यत: क्षेत्रत: काल और भाव की अपेक्षा से यतना चार प्रकार की कही गई है। उसे मैं कहता हूँ, सुनो ॥६॥

द्रव्य से–आँखों से देखे (देखकर चले)।

क्षेत्र से–युगमात्र (चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखे।

काल से–जब तक चलता रहे तब तक देखे।

भाव से–उपयोग सहित चले (गमन करे) ॥७॥

इन्द्रियों के पाँच प्रकार के विषय और पाँच प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मात्र गमन क्रिया में ही तन्मय हो और उसी को प्रधानता देकर उपयोग सहित गमन करे ॥८॥

Restrained adept should move with vigilence of movement purified by four causes–(1) base, (2) time, (3) path and (4) carefulness. (4)

The base of movement-vigilence is right knowledge-faith-conduct. Time is day-time. Path is to leave the uneven way. (5)

By substance, place, time and mind effort (anchoritical activity) is of four kinds. I tell you, listen to me. (6)

By substance, walk seeing with eyes.

By place, see the ground upto the length of 4 hands or 6 feet.

By time, see until walking

By mind, walk with attention. (7)

Leaving the objects of five senses and five types of study, he should walk with full attention. (8)

२–भाषा समिति

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए, विगहासु दहेव य ॥९॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए।
असावज्जं मियं काले, भासं भासेज्ज पन्नवं ॥१०॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता तथा विकथाओं में सतत उपयोगयुक्तता–॥९॥

प्रज्ञावान संयती साधक इन (उपर्युक्त) आठ स्थानों का परित्याग करके अवसर के अनुसार निरवद्य (दोषरहित) और परिमित भाषा बोले ॥१०॥

Anger, pride, deceit, greed, laughter, fear, talkativeness, ill-stories–(9)

Wise restrained adept should renounce, aforesaid eight and according to opportunity he should speak faultless and within limit. (10)

३–एषणा समिति

गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहि-सेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए ॥११॥
उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयंमि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥१२॥

गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा से आहार, उपधि और शैया–इन तीनों का परिशोधन करे ॥११॥

यतनाशील यति प्रथम एषणा (आहारादि की गवेषणा) में उद्गम और उत्पादन दोषों का शोधन करे। दूसरी ग्रहणैषणा में आहार आदि ग्रहण करने से सम्बन्धित दोषों का शोधन करे और तीसरी परिभोगैषणा में संयोजना आदि दोष चतुष्क का शोधन करे ॥१२॥

Care in search, acceptance and use–this three type of seeking-vigilence. He should watch that food, lodge, bed should be fault-free. (11)

Faults due to donor and to receiver, udgama and utpādana are contents of search and these faults he carefully weeds and fourfold fault in the use of offer. (12)

४–आदान-निक्षेपणा समिति–

ओहोवहोवग्गहियं, भण्डगं दुविहं मुणी ।
गिण्हन्तो निक्खिवन्तो य, पउंजेज्ज इमं विहिं ॥१३॥
चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई ।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया ॥१४॥

मुनि ओघ उपधि (सामान्य उपकरण) और औपग्रहिक उपधि (विशेष स्थिति के उपकरण)–दोनों प्रकार के भाण्डोपकरणों को ग्रहण करने, लेने-उठाने और रखने में इस विधि का प्रयोग करे ॥१३॥

यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला यति दोनों तरह के उपकरणों को आँखों से देखकर–प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके सदा समितियुक्त होकर ग्रहण करे–लेवे तथा रखे ॥१४॥

Monk should use this method in picking and putting his common and special things. (13)

Having observed with his eyes, cleaning bowls with proper care, in picking up and putting down, he practises vigilence in both the ways. (14)

५–परिष्ठापनिका समिति–

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण-जल्लियं ।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं वावि तहाविहं ॥१५॥
अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए ।
आवायमसंलोए, आवाए चेय संलोए ॥१६॥

अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए ।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयंमि य ॥१७॥

उच्चार–मल, प्रस्रवण–मूत्र, श्लेष्म–कफ, सिंघानक–नाक का मैल, जल्ल–शरीर का मैल, आहार, उपधि, शरीर तथा अन्य भी किसी विसर्जन योग्य वस्तु का विवेकपूर्वक स्थण्डिल भूमि में परिष्ठापन करे ॥१५॥

स्थण्डिल भूमि चार तरह की होती है–

(१) अनापात असंलोक–जहाँ लोग न आते-जाते हों और न दूर से ही दीखते हों।

(२) अनापात संलोक–लोग जहाँ आते-जाते तो न हों किन्तु दूर से दिखाई देते हों।

(३) आपात असंलोक–लोग आते-जाते हों किन्तु दूर से दीखते न हों।

(४) आपात संलोक–लोग आते-जाते भी हों और दिखाई भी देते हों ॥१६॥

जो भूमि अनापात-असंलोक हो, परोपघात से रहित हो, सम हो, पोली न हो, कुछ समय पहले ही अचित्त (निर्जीव) हुई हो–॥१७॥

Stool, urine, saliva, mucus, dirt from his own body, offals of food, waste things, even body (when he dies) and likewise every thing else. (15)

The place where the dirt of body may be deserted is of four kinds–

(1) Where people does not frequently move and not seen.

(2) Where man does not frequently move but seen from far.

(3) People move frequently but not seen.

(4) People frequently move and seen. (16)

That earth (place) should be free from movement and seen by, devoid of cause of injury to others, even (flat) and became free of beings before some time. (17)

वित्थिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए ।
तसपाण-बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥१८॥

विस्तृत हो, गाँव से दूर हो, बहुत नीचे तक अचित्त हो, बिल तथा त्रस प्राणी और बीजों से रहित हो–ऐसी भूमि में मल आदि का व्युत्सर्ग करना चाहिए ॥१८॥

Vast and far from village, free from beings upto sufficient deapth, no holes and without the moving beings and devoid of seeds–the sage should desert the dirt of body in such a land. (18)

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया ।
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥१९॥

ये पाँच समितियाँ संक्षेप में बताई गई हैं। अब यहाँ से आगे अनुक्रम से तीन गुप्तियाँ कहूँगा ॥१९॥

These five vigilences are described in short. Now I will tell about restraints. (19)

१–मनोगुप्ति–

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्चमोसा, मणगुत्ती चउव्विहा ॥२०॥

संरम्भ-समारम्भे, तु आरम्भे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु नियत्तेज्ज जयं जई ॥२१॥

(१) सत्या (सच) (२) मृष (झूठ) (३) सत्यामृषा (सत्य और झूठ मिश्रित) (४) असत्यामृषा (न सच, न झूठ-लोक व्यवहार) मनोगुप्ति के ये चार भेद हैं ॥२०॥

यतनायुक्त यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए मन का निवर्तन-निरोध करे ॥२१॥

(1) Truth (2) falsehood (3) truth and untruth mixed and (4) neither truth nor untruth–only behavioural–these are four kinds of mind-restraint. (20)

A zealous sage prevents his mind from wishing to cause misery, thought to cause misery and desire to cause destruction. (21)

२–वचन गुप्ति–

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा, वइगुत्ती चउव्विहा ॥२२॥
संरम्भ-समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२३॥

(१) सत्या (२) मृषा (३) सत्यामृषा (४) असत्यामृषा-वचनगुप्ति के ये चार प्रकार हैं ॥२२॥

यतनायुक्त यति संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए वचन का निवर्तन-निग्रह करे ॥२३॥

These four kinds of speaking restraint–(1) truth (2) falsehood (3) truth-untruth mixed and (4) neither truth nor untruth–only behavioural. (22)

A zealous monk prevents his words from wishing misery, meaning misery and destruction. (23)

३–कायगुप्ति

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।
उल्लंघण-पल्लंघणे, इन्दियाण य जुंजणे ॥२४॥
संरम्भ-समारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२५॥

खड़े रहने में, बैठने में, लेटने में या करवट बदलने में, गड्ढे आदि को लांघने में, साधाण रूप से चलने में और इन्द्रियों के प्रयोग में–॥२४॥

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ में प्रवृत्त होती हुई काया (शरीर) को यतना सम्पन्न यति यतनापूर्वक निवर्तमान-निवृत्त करे ॥२५॥

Standing, sitting, lieing, jump to cross a ditch, walk and utilizing the senses–(24)

A zealous monk prevents his body intended to be injurious, to be injurious and the cause of destruction for others. (25)

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

ये पाँच समितियाँ चारित्र में प्रवृत्ति के लिए और तीन गुप्तियां सभी अशुभ अर्थों–भावों–विषयों से सर्वथा निवृत्ति के लिए कही गई हैं ॥२६॥

These vigilences are helpful for right conduct and restraints prevents all the inauspicious thoughts and vices. (26)

एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डिए ॥२७॥

–त्ति बेमि ।

जो पण्डित (तत्ववेत्ता) मुनि इन प्रवचनमाताओं का सम्यक् रूप से आचरण करता है वह समस्त संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥२७॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

Who practises these mothers of religious order (Pravacana-mātā) he soon becomes liberated from this world. (27) *–Such I speak.*

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३–यहाँ पाँच समिति और तीन गुप्ति–इन आठों को ही समिति कहा है। प्रश्न है, ऐसा क्यों? शांत्याचार्य ने समाधान प्रस्तुत किया है कि गुप्तियाँ एकान्त निवृत्तिरूप ही नहीं, प्रवृत्तिरूप भी होती हैं, अतः प्रवृत्ति अंश की अपेक्षा से उन्हें भी समिति कह दिया है। समिति में नियमतः गुप्ति होती है, क्योंकि उसमें शुभ में प्रवृत्ति के साथ जो अशुभ से निवृत्तिरूप अंश है, वह नियमतः गुप्ति अंश ही है। गुप्ति में प्रवृत्तिप्रधान समिति की भजना है । (बृहद्वृत्ति)

Salient Elucidatons

Gāthā 3–Here the five vigilences and three restraints together called eight vigilences. Question is, why it is so ? Śāntyācārya presented the pacification that restraints are not only preventive but also are active, therefore these also called vigilence In vigilence the restraint also exists, because in vigilence activity towards auspicious on the other side denotes the prevention of inauspicious, this prevention is restraint; but in restraint the vigilence may or may not exist.

卐

पच्चीसवाँ अध्ययन : यज्ञीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम यज्ञीय है। इस अध्ययन में प्रमुख रूप से यज्ञों का वर्णन हुआ है।

भारत में ब्राह्मण अथवा वैदिक संस्कृति का प्रादुर्भाव ही बहुदेववाद तथा यज्ञों से हुआ है। अग्नि, यम, वरुण आदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तथा अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए यज्ञ किये जाते थे। पुत्रकामो यजेत, स्वर्गकामो यजेत आदि वैदिक परम्परानुयायी ऋषियों और ब्राह्मणों के उद्घोष थे।

भगवान महावीर के काल में इन यज्ञों का बोलबाला था। विशाल यज्ञ किये जाते थे और उनमें सैकड़ों हजारों मूक पशुओं को जीवित ही अग्नि की ज्वालाओं में स्वाहा कर दिया जाता था। ब्राह्मण यायाजी (यज्ञकर्ता) होने में गौरव अनुभव करते थे।

ऐसे ही यायाजी दो भाई वाणारसी में रहते थे। उनके नाम जयघोष तथा विजयघोष थे। दोनों भाई वेदों के विद्वान और यज्ञों के ज्ञाता-याज्ञिक थे।

एक बार जयघोष गंगा नदी में स्नान करने गया। गंगातट पर उसने बड़ा ही बीभत्स और कारुणिक दृश्य देखा। एक सर्प ने मुँह में एक मेढ़क को दबा रखा था, वह उसे निगलने की चेष्टा कर रहा था; और उस सर्प को एक कुरर पक्षी निगलने की चेष्टा में रत था। ज्यों-ज्यों कुरर सर्प को निगलता त्यों-त्यों सर्प के दवाब से मेढ़क की पीड़ा बढ़ती जाती, वह बुरी तरह तड़पता।

इस बीभत्स दृश्य से जयघोष के हृदय में करुणा की तरंगें तरंगित हो उठीं, उसे हिंसा से ग्लानि हो गई। साथ ही संसार में बड़ा जीव छोटे जीव का भोजन करता है, इस दृश्य से उसका मन उद्विग्न हो उठा। उसने किसी जैन श्रमण के पास जाकर श्रामणी दीक्षा ग्रहण करली। उग्र तप करने लगा। दीर्घकालीन तपस्या से उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जयघोष मुनि पुनः वाराणसी पधारे। उस समय विजयघोष एक विशाल यज्ञ कर रहा था। मासोपवासी मुनि भिक्षा हेतु उसकी यज्ञशाला में पहुँचे। विजयघोष उन्हें न पहचान सका और भिक्षा देने से साफ इन्कार कर दिया।

भिक्षा न मिलने से समभावी मुनि जयघोष को कोई विषाद नहीं हुआ; किन्तु विजयघोष को प्रतिबोध देने हेतु उससे पूछा-यज्ञ, नक्षत्र, धर्म का मुख क्या है? विजयघोष इन प्रश्नों का उत्तर न दे सका। जयघोष मुनि ने इनका यथार्थ स्वरूप बताया तथा ब्राह्मण आदि का स्वरूप भी बताया। मुनि, श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों का कारण तथा स्वरूप कहा।

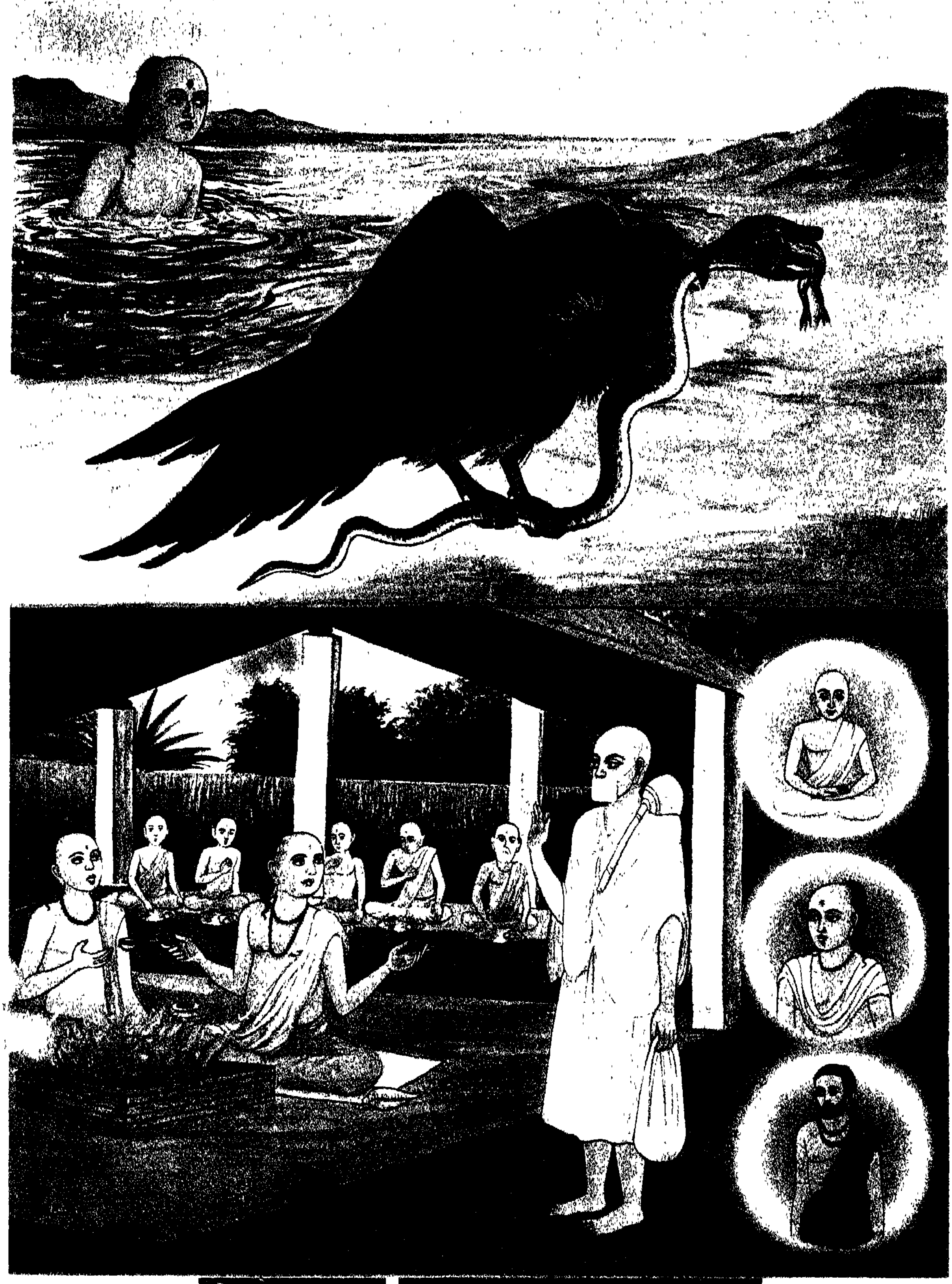
तदनन्तर उसे कर्मबन्धन से दूर रहने की प्रेरणा दी। वह भी प्रतिबुद्ध होकर श्रमण बन गया तथा जयघोष-विजयघोष-दोनों संयम साधना करके मुक्त हुए।

प्रस्तुत अध्ययन में यज्ञ, ब्राह्मण आदि का स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से वर्णित हुआ है, यही इसकी विशेषता है।

भगवान महावीर की तत्कालीन वाणी का प्रतिघोष इस अध्ययन में मुखरित हुआ है।

इस अध्ययन में ४५ गाथाएँ हैं।

ILLUSTRATION NO. 54 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 27



चित्र क्रमांक ५४ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

CHAPTER 25
THE TRUE SACRIFICE

Foreview

Caption of this chapter is the True Sacrifice. In the chapter, we get the description of sacrifices.

Brāhmaṇa or Vaidika culture in India originated with polygodism and sacrifices To appease the gods of Fire, Water, Death etc., and to fulfil own wishes the sacrifices were performed. Sacrifice for getting son, for attaining heaven etc., were the slogans of followers of Vaidika tradition–Brāhmaṇas and sages.

During the age of Bhagawāna Mahāvīra such sacrifices were frequent. Huge sacrifices were performed and thousands animals were burnt in sacrificial fire. Brāhmaṇas feel themselves proudy becoming sacrificer.

Such two brothers lived in Vāṇārasī. Their name were Jayaghoṣa and Vijayaghoṣa. Both were well-versed in Vedas and were sacrificers.

Once Jayaghoṣa went for bath to river Gangā. On the bank he saw a very pitiable scene. A snake has caught a frog in his mouth and trying to swallow it, and a kurara bird has caught that snake and also trying to swallow that snake. As kurara swallows the snake, the pain of frog increase due to the pressure of snake. Frog trembles due to agony.

Seeing this pathetic scene the waves of kindness filled his heart. He became full of hate towards violence. He became disturbed to see that strongs eat the weaks. He accepted Jain consecration from any Jain sage. Began to observe severe penances. Due to long time penances his body weakened.

Wandering village to village he reached Vāṇārasī. At that time Vijayaghoṣa was performing a great sacrifice. Sage Jayaghoṣa reached in the enclosure of sacrifice for getting alms. Vijayaghoṣa could not recognise him and outrightly refused to give any thing as alms.

One month's fast, equanimous sage feel no distress; but to enlighten Vijayaghoṣa, the sage Jayaghoṣa asked him–what is the mouth of sacrifice, stars, vedas and religion. Vijayaghoṣa could not reply these questions. Then Jayaghoṣa explained the real concept of these, along with the conception of Brāhmaṇas and monk, sage, kṣatriya and their castes.

Then inspired him to be free from karma-bondage. Being enlightened Vijayaghoṣa also become a sage. Both the brothers attained liberation.

The special feature of this chapter is that of sacrifice, Brāhmaṇa etc., the description is made by spiritual viewpoint.

The precepts of Bhagawāna Mahāvīra are elaborated in this chapter with reference to the circumstances of those time.

This chapter bears 45 couplets.

पंचविंसइमं अज्झयणं : जन्नइज्जं
पंचविंश अध्ययन : यज्ञीय

माहणकुलसंभूओ, आसि विप्पो महायसो ।
जायाई जमजन्नंमि, जयघोसे त्ति नामओ ॥१॥

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न जयघोष नाम का महायशस्वी विप्र था; जो हिंसक यज्ञ करने वाला यायाजी था ॥१॥

Born in Brāhmaṇa family there was a famous Brāhmaṇa named Jayaghoṣa. He was a performer of violent sacrifices. (1)

इन्दियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगामं रीयन्ते, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥२॥

वह इन्द्रियसमूह का निग्रह करने वाला, मार्गगामी महामुनि बन गया था। एक बार ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ, वाणारसी पहुँच गया ॥२॥

He became a great sage, moving on right path and subduer of senses. Wandering village to village once he approached Vāṇārasī. (2)

वाणारसीए बहिया, उज्जाणंमि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥३॥

वाणारसी के बाह्य भाग में एक मनोरम उद्यान था। वहाँ प्रासुक शैया, संस्तारक, पीठ, फलक, आसन आदि लेकर ठहर गया ॥३॥

In the outer part of city there was a beautiful park. He stayed there taking pure bed, lodge, seat, etc., (3)

अह तेणेव कालेणं, पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसे त्ति नामेण, जन्नं जयइ वेयवी ॥४॥

उसी समय वाणारसी पुरी-नगरी में वेदों का ज्ञाता विजयघोष नामक ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ॥४॥

At the same time, well-versed in Vedas a Brāhmaṇa named Vijayaghoṣa was performing a sacrifice. (4)

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नंमि, भिक्खस्सऽट्ठा उवट्ठिए ॥५॥

एक मास की तपस्या के पारणे हेतु जयघोष अनगार, भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ में उपस्थित हुआ-पहुँचा ॥५॥

For breaking one month's fast penance houseless mendicant Jayaghoṣa reached to that sacrifice place. (5)

समुवट्ठियं तहिं सन्तं, जायगो पडिसेहए ।
न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू ! जायाहि अन्नओ ॥६॥

(विजयघोष) आये हुए संत (जयघोष मुनि) को देखकर यज्ञकर्ता (विजयघोष) ने उसे निषेध किया और कहा–हे भिक्षु ! मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा, तुम किसी अन्य स्थान पर जाकर याचना करो ॥६॥

(Vijayaghoṣa) Seeing the mendicant (sage Jayaghoṣa) the sacrificer (Vijayaghoṣa) gave a refusal and said–O mendicant ! I shall not give you alms, seek any other place. (6)

जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नट्ठा य जे दिया ।
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥७॥

जो वेदों के ज्ञाता विप्र हैं, यज्ञ करने वाले द्विज (ब्राह्मण) हैं, ज्योतिष के अंगों (वेदों में वर्णित ज्योतिषांग) के ज्ञाता हैं तथा जो धर्म (धर्मशास्त्रों) के पारगामी हैं–॥७॥

Those who are Brāhmaṇas well versed in Vedas, sacrifices, astronomy and religious scriptures–(7)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ।
तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू ! सव्वकामियं ॥८॥

–जो स्वयं अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं। हे भिक्षु ! यह सभी रसों से युक्त (सर्वकामिक) भोजन (अन्न) उन्हीं को देना है ॥८॥

Who are capable to uplift their own and souls of others. O mendicant ! this food with all condiments reserved for them. (8)

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।
न वि रुट्ठो न वि तुट्ठो, उत्तमट्ठ–गवेसओ ॥९॥

इस प्रकार यज्ञकर्ता द्वारा प्रतिषेध–इन्कार किये जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला महामुनि (जयघोष) न रुष्ट हुआ और न तुष्ट–प्रसन्न हुआ ॥९॥

Thus refused by the priest (sacrificer) the great sage neither become angry nor pleased, as he always strove for the ultimate good. (9)

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा, न वि निव्वाहणाय वा ।
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, इमं वयणमब्बवी ॥१०॥

मुनि ने इस प्रकार के वचन–न तो अन्न (भोजन) के लिए, न पान (जल) के लिए और न जीवन-निर्वाह के लिए अपितु उन (यज्ञकर्ताओं) की मुक्ति (विमोक्षण) के लिए कहे ॥१०॥

Neither for food nor for water, but to save them, sage said these words–(10)

न वि जाणासि वेयमुहं, न वि जन्नाण जं मुहं ।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥११॥

(जयघोष मुनि) तुम वेद के मुख (प्रधान तत्त्व) को नहीं जानते और यज्ञों का जो मुख (उपाय) है, उसे भी नहीं जानते। नक्षत्रों का जो मुख (प्रधान) है, उसे भी नहीं जानते और जो धर्मों का मुख (उपाय) है, उसे भी नहीं जानते ॥११॥

(Jayaghoṣa sage) You do not know what is the chief factor of Vedas, nor in sacrifices, nor in planets (stars) and nor in religion. (11)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१२॥

जो अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी तुम नहीं जानते। यदि जानते हो तो बताओ ॥१२॥

Even you not know those who are capable to save themselves and others; but if you do; you tell me. (12)

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च, अचयन्तो तहिं दिओ।
सपरिसो पंजली होउं, पुच्छई तं महामुणिं ॥१३॥

उसके (जयघोष मुनि के) आक्षेपों-प्रश्नों के उत्तर (प्रमोक्ष) देने में असमर्थ उस ब्राह्मण (विजयघोष) ने अपनी सम्पूर्ण परिषद के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से पूछा-॥१३॥

Those sacrificers could not reply these questions. Then he and all there assembled with folding hands asked the sage-(13)

वेयाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥१४॥

(विजयघोष) आप ही बताइये-वेदों का मुख क्या है? यज्ञों का जो मुख है, वह भी कहो। नक्षत्रों का जो मुख है, वह भी कहिए और धर्मों का जो मुख है, वह भी बताइये ॥१४॥

(Vijayaghoṣa) Then you please tell us the chief factor of Vedas, sacrifices, stars and religion. (14)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।
एयं मे संसयं सव्वं, साहू ! कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी बताइये। ये सब मेरे संशय हैं। हे साधु ! मैं आप से पूछता हूँ, आप बताइये ॥१५॥

Also tell who are capable to save themselves and others. All these are my doubts. O sage ! kindly pacify these. (15)

अग्गिहोत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसां मुहं।
नक्खत्ताण मुहं चन्दो, धम्माणं कासवो मुहं ॥१६॥

(जयघोष मुनि) वेदों का मुख अग्निहोत्र (अग्निकारिका अध्यात्म) है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी (बहिर्मुख इन्द्रियों और मन को संयम में केन्द्रित करने वाला आत्मसाधक) है, नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव) है ॥१६॥

(Jayaghoṣa) The chief factor or essential subject of Vedas is Agnihotra (spiritual feeling, which purifies soul, like fire), of sacrifices the sacrificer–spiritual adept who fixes the mind and senses in self-control, of stars is the moon and of religion is Kāśyapa– Bhagawāna Ṛṣabhadeva, by him all the religions originated. (16)

जहा चंदं गहाईया, चिट्ठन्ती पंजलीउडा ।
वन्दमाणा नमंसन्ता, उत्तमं मणहारिणो ॥१७॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख मनोहर ग्रहादि हाथ जोड़े हुए वन्दना-नमस्कार करते हुए रहते हैं उसी प्रकार देवता, इन्द्र आदि उत्तम पुरुष भगवान ऋषभदेव के सम्मुख रहते हैं ॥१७॥

As all the stars and planets bow to moon, so all the gods, king of gods worship and bow to Ṛṣabhadeva. (17)

अजाणगा जन्नवाई, विज्जा माहणसंपया ।
गूढा सज्झायतवसा, भासच्छन्ना इवऽग्गिणो ॥१८॥

ब्राह्मण की संपदा विद्या है लेकिन यज्ञवादी इससे अनभिज्ञ हैं। वे बाहर में स्वाध्याय और तप से उसी प्रकार ढँके हुए हैं जिस प्रकार राख से अग्नि आच्छादित रहती है ॥१८॥

The wealth of a Brāhmaṇa is learning but sacrificers are ignorant of it, they shroud themselves by study and penance as the fire covered by ashes. (18)

जे लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गी वा महिओ जहा ।
सया कुसलसंदिट्ठं, तं वयं बूम माहणं ॥१९॥

जिसे संसार में कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है तथा जो अग्नि के समान पूजित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥१९॥

Who is called Brāhmaṇa by wise persons and to be worshipped like fire, we call that Brāhmana. (19)

जो न सज्जइ आगन्तुं, पव्वयन्तो न सोयई ।
रमए अज्जवयणंमि, तं वयं बूम माहणं ॥२०॥

जो स्वजन आदि प्रियजनों के आने पर आसक्त (प्रसन्न) नहीं होता और उनके चले जाने पर शोक नहीं करता, आर्य वचनों में (अर्हद्वाणी में) रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२०॥

Who does not appease by coming his dears and family members and nor repents if they go; and takes delight in noble words (of Arhatas), we call him a Brāhmaṇa. (20)

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धन्तमलपावगं ।
राग-द्दोस-भयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥२१॥

कसौटी पर कसे हुए और अग्नि में तपाकर शुद्ध किये हुए स्वर्ण के समान जो निर्मल और तेजस्वी है तथा राग, द्वेष और भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२१॥

Who is pure and lustrous like the gold tested by touchstone and purified by fire; and far away from attachment, detachment and fear, we call him a Brāhmaṇa. (21)

तवस्सियं किसं दन्तं, अवचियमंस-सोणियं ।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥२२॥

जो तपस्वी होने से कृश है, जितेन्द्रिय है, जिसके शरीर का रक्त और मांस तपस्या के कारण कम हो गया है, जो सुव्रती है, शांत है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२२॥

Who is lean by penances, subduer of senses, whose flesh and blood reduced due to austerities, observer of virtuous vows and calm; we call him a Brāhmaṇa. (22)

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥२३॥

जो त्रस और स्थावर प्राणियों को भली प्रकार जानकर मन-वचन-काय से उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२३॥

Who does not hurt the movable and immovable beings knowingly by mind, words and body; we call him a Brāhmaṇa. (23)

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥२४॥

जो क्रोध से, हास्य से, लोभ से अथवा भय से मृषा (झूठ) नहीं बोलता, उसे हम बाह्मण कहते हैं ॥२४॥

Who does not tell a lie due to anger, laughter, greed and fear; we call him a Brāhmaṇa (24)

चित्तमन्तमचित्तं वा, अप्पं वा जई वा बहुं ।
न गेण्हइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥२५॥

जो सचित्त या अचित्त, थोड़ा अथवा बहुत कोई भी पदार्थ बिना दिये नहीं लेता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२५॥

Who does not take any thing without given by its owner, may it be sensient or insensient, more or less; we call him a Brāhmaṇa. (25)

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं॥२६॥

जो देव, मनुष्य, तिर्यञ्च संबंधी मैथुन (अब्रह्मचर्य) का मन, वचन, काय से सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२६॥

Who has no carnal fascination for a deity (god), man or beast, in thoughts, words or body; we call him a Brāhmaṇa. (26)

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तो कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२७॥

जैसे जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२७॥

As a lotus though blossoms in water yet not defiled by that, in the same way who is not defiled by sensual pleasures; we call him a Brāhmaṇa. (27)

अलोलुयं मुहाजीवी, अणगारं अकिंचणं ।
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥२८॥

जो रस आदि में लोलुप नहीं है, स्वादविजयी है, मुधाजीवी–निर्दोष भिक्षा से जीवन-निर्वाह करता है, गृहत्यागी-अनगार है, अकिंचन है, गृहस्थों से अधिक परिचय नहीं रखता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२८॥

Who is not covetuous in tastes–overpowered them, accepts faultless alms, houseless mendicant, having nothing his own, not freely acquainted with householders; we call him a Brāhmaṇa. (28)

जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बन्धवे ।
जो न सज्जइ एएहिं, तं वयं बूम माहणं ॥२९॥

जो पूर्व संयोगों को, ज्ञातिजनों और बन्धुजनों को छोड़कर फिर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥२९॥

Renouncing previous relations, brethrens and caste-persons does not again desire them; we call such person a Brāhmaṇa. (29)

पसुबन्धा सव्ववेया, जट्ठं च पावकम्मुणा ।
न तं तायन्ति दुस्सीलं, कम्माणि बलवन्ति ह ॥३०॥

पशुबन्ध (यज्ञ में आहुति देने के लिए पशुओं को बाँधना) के हेतु, सभी वेद और पापकर्मों से किये गये यज्ञ, उस दुःशील की रक्षा नहीं कर सकते–क्योंकि कर्म बलवान हैं ॥३०॥

The binding of beasts to the sacrifice pole, all the Vedas and the sinful sacrifices cannot protect that sinner because the karmas (sinful deeds) are more powerful. (30)

न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥

केवल सिर मुँड़ा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, ॐ का जप करने से ब्राह्मण नहीं होता, वन में रहने से मुनि नहीं होता और कुश निर्मित चीवर (वस्त्र) धारण करने मात्र से कोई तपस्वी नहीं हो जाता ॥३१॥

No one can become a sage (Śramaṇa) by tonsure, nor a Brāhmaṇa by repeating the syallable 'Oṁ', nor a monk residing in forest and nor a hermitage by wearing robes of kuṣa-grass. (31)

समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

समभाव रखने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है और तप करने से तपस्वी होता है ॥३२॥

One becomes a sage by equanimity, Brāhmaṇa by celibacy, monk by knowledge and penancer by austerities. (32)

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइस्से कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है ॥३३॥

By activities one becomes Brāḥmaṇa, Vaiśya, Kṣatriya and Śūdra (33)

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविनिम्मुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥३४॥

इन तत्त्वों का प्ररूपण अर्हत् ने किया है। इनके द्वारा जो साधक स्नातक-पूर्ण होता है, सर्व कर्मों से मुक्त-विनिमुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥३४॥

Enlighteneds (Arhatas) declared these virtues. By pursuing these the adept who makes him perfect, he becomes free from all karma-bondages; we call him a Brāhmana. (34)

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा ।
ते समत्था उ उद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ॥३५॥

जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम-उत्तम ब्राह्मण होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ होते हैं ॥३५॥

The virtuous twice-born-excellent Brāhmanas are capable to save themselves and others. (35)

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य माहणे ।
समुदाय तयं तं तु, जयघोसं महामुणिं ॥३६॥

इस तरह संशय दूर हो जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष के वचनों को सम्यक्रूप से स्वीकार किया ॥३६॥

When all the doubts removed, Brāhmana Vijayaghoṣa accepted the words of sage Jayaghoṣa thoroughly. (36)

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥३७॥

संतुष्ट हुए विजयघोष ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा-आपने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही सुन्दर उपदेश दिया है ॥३७॥

Satisfied Vijayaghoṣa uttered with folded hands–You hve bestowed me the beautiful precept about the real Brāhamaṇa. (37)

तुब्भे जइया जन्नाणं, तुब्भे वेयविऊ विऊ ।
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

(विजयघोष ब्राह्मण) आप यज्ञों के यष्टा-यज्ञकर्ता हो, वेदों के ज्ञाता विद्वान हो, आप ही ज्योतिष के अंगों के जानकार और धर्मों के पारगामी हो ॥३८॥

(Vijayaghoṣa) You are a real sacrificer of sacrifices, most learned of Vedas and astronomy as described in Vedas and well versed in religions. (38)

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ।
तमणुग्गहं करेहऽम्हं, भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥३९॥

आप ही अपने और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो। इसलिए हे उत्तम भिक्षु ! भिक्षा स्वीकार करके हम पर अनुग्रह करो ॥३९॥

Only you are capable to save yourself and others. So O mendicant ! Be kind enough to accept alms. (39)

न कज्जं मज्झ भिक्खेण, खिप्पं निक्खमसू दिया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसारसागरे ॥४०॥

(जयघोष मुनि) मुझे भिक्षा से कोई कार्य (प्रयोजन) नहीं है। लेकिन हे द्विज ! तुम शीघ्र ही अभिनिष्क्रमण करो यानी श्रमण दीक्षा स्वीकार करो; जिससे कि तुम्हें भव के आवर्तों वाले इस घोर संसार सागर में भ्रमण न करना पड़े ॥४०॥

(Jayaghoṣa sage) I have no purpose of alms. But you soon accept Jain consecration so that you many not drift on the dreadful ocean of world, whose eddies are dangers. (40)

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१॥

भोगों से कर्मों का उपलेप होता है, अभोगी कर्मों से लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है, अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ॥४१॥

The worldly life gives a coat of karmas, but who keeps apart is not soiled. The enjoyer glides back and forth, but the renouncer cuts asunder the cycle of births and deaths. (41)

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सो तत्थ लग्गई ॥४२॥

गीले और सूखे मिट्टी के दो गोले फेंके गये। वे दोनों ही दीवार पर गिरे। गीला गोला वहीं (दीवार पर) चिपक गया ॥४२॥

Wet and dry two clods thrown on a wall. They hit the wall. The wet clod stick with the wall. (42)

एवं लग्गन्ति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गन्ति, जहा सुक्को उ गोलओ ॥४३॥

इसी तरह जो मनुष्य दुर्बुद्धि हैं और काम-भोगों की लालसा से युक्त हैं वे विषयों में चिपक जाते हैं तथा जो काम-भोगों से विरक्त हैं वे सूखे गोले के समान नहीं चिपकते ॥४३॥

In the same way, fools addict and stick to world; and who are indifferent do not stick like a dry clod. (43)

एवं से विजयघोसे, जयघोसस्स अन्तिए ।
अणगारस्स निक्खन्तो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ॥४४॥

इस प्रकार विजयघोष ब्राह्मण जयघोष अनगार से अनुत्तर धर्म को सुनकर दीक्षित हो गया ॥४४॥

Thus Brāhamaṇa Vijayaghoṣa hearing the supreme religion from sage Jayaghoṣa became consecrated. (44)

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
जयघोस-विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥

—त्ति बेमि ।

जयघोष और विजयघोष-दोनों ने तप और संयम के द्वारा पूर्वसंचित कर्मों को सर्वथा क्षय करके सिद्धि प्राप्त की ॥४५॥ —ऐसा मैं कहता हूँ ।

Exhausting all the karmas by self-control and austerities both Jayaghoṣa and Vijayaghoṣa obtained liberation. (45) —**Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १६—पूछे गये चार प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) वेदों का मुख अर्थात् प्रधान तत्व सारभूत क्या है? इसका उत्तर जयघोष ने दिया है-अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र का हवन आदि प्रचलित अर्थ तो विजयघोष जानता ही था। किन्तु वह जयघोष मुनि से मालूम करना चाहता था, कि उनके मत में अग्निहोत्र क्या है? मुनि का अग्निहोत्र एक अध्यात्म भाव है, जिसमें तप, संयम, स्वाध्याय, धृति, सत्य और अहिंसा आदि दस प्रकार के मुनिधर्म का समावेश होता है। यह 'भाव अग्निहोत्र' ही जयघोष मुनि ने विजयघोष को समझाया है। इसी अग्निहोत्र (आत्म-यज्ञ) में मन के विकार स्वाहा होते हैं।

(२) दूसरा प्रश्न है-यज्ञ का मुख-उपाय (प्रवृत्ति हेतु) क्या है? इसके उत्तर में यज्ञ का मुख अर्थात् उपाय यज्ञार्थी बताया है। मुनि ने आत्मयज्ञ के सन्दर्भ में अपने बहिर्मुख इन्द्रिय और मन को असंयम से हटाकर संयम में केन्द्रित करने वाले आत्मसाधक को ही सच्चा यज्ञार्थी (याजक) बताया है।

(३) तीसरा प्रश्न कालज्ञान से सम्बन्धित है। स्वाध्याय आदि समयोचित कर्त्तव्य के लिये काल का ज्ञान उस समय में आवश्यक था। और वह ज्ञान स्पष्टतः नक्षत्रों की गति-गणना से होता था। चन्द्र की हानि-वृद्धि से तिथियों का बोध अच्छी तरह हो जाता था। इस दृष्टि से ही मुनि ने उत्तर दिया है कि नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा है। इस उत्तर की तुलना गीता (१०/२१) से की जा सकती है-"नक्षत्राणामहं शशी।"

(४) चौथा प्रश्न था-धर्मों का मुख अर्थात् उपाय (आदि कारण) क्या है? धर्म का प्रकाश किससे हुआ? उत्तर में जयघोष मुनि ने कहा है-धर्मों का मुख (आदि कारण) काश्यप है। वर्तमान कालचक्र में आदि काश्यप ऋषभदेव ही धर्म के

आदि प्ररूपक, आदि उपदेष्टा हैं। सूत्रकृतांग (१/२/३/२) में तो स्पष्ट ही कहा है, कि सब तीर्थंकर काश्यप के द्वारा प्ररूपित धर्म का ही अनुसरण करते रहे हैं–"कासवस्स अणुधम्मचारिणो।" (शान्त्याचार्य बृहद्वृत्ति)

Salient Elucidations

Gāthā 16–Answers of four questions are as following–

(1) What is the chief factor–essential subject of Vedas ? Jayaghoṣa answered–Agnihotra. Though VIjayaghoṣa was aware of the meaning–fire sacrifice, oblation, prevailing at that time; but he want to know from Jayaghoṣa monk the meaning of Agnihotra according to his opinion. Agnihotra of monk is a spiritual thought which accommodates ten virtues–truth, penance, content, patience, right conduct, simplicity, faith, constancy, non-violence and checking the in-coming karmas–thus amulgmating monk order. This inner Agnihotra is described by monk Jayaghoṣa to Vijayaghoṣa. By this inner Agnihotra (self-sacrifice) the vices of mind destroyed.

(2) Second question–What is the cause of sacrifice ? The sacrificer is the cause of sacrifice. Monk has ascertained that checking the extrovert mind and senses, who centres them in restrain such self-seeker is the real sacrificer.

(3) Third question is related to time-knowledge. Knowledge of time was very necessary for all timely duties, like-study, and that was clearly understood by the motions of planets. By decreasing and increasing moon the tithis (lunar days) could be known easily. By this point of view monk answered–moon is chief among stars. This reply can be compared to Gītā (10/21) Nakṣtrāṇāmahaṁ śaśī.

(4) Fourth question–What is the origination of religions ? Who gave the light of religion first of all ? Monk Jayaghoṣa told–the original cause of religions is Kāśyapa. In the present time-wheel Bhagawāna Ṛṣabhadeva is the originator and preceptor of religion. Clearly mentioned in Sūtrakṛtāṅga (1/2/3/2) that all the Tīrthaṁkaras have been following the religion precepted by Kāśyapa–Kāsavassa aṇudhammacāriṇo. (*Śāntyācārya Vṛihad vṛtti*)

卐

छब्बीसवाँ अध्ययन : सामाचारी-सामायारी

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सामाचारी है। सामाचारी का अर्थ होता है–'सम्यक् आचार व्यवस्था' अर्थात् साधु के समस्त आचार, पारस्परिक कर्तव्य और व्यवहार। इनसे संबंधित नियमोपनियमों का–व्यवस्थाओं का प्रस्तुत अध्ययन में वर्णन हुआ है।

संघ को सुव्यवस्थित रखने के लिए समुचित व्यवहार होना आवश्यक है। न तो दूसरों के प्रति उदासीनता, रूक्षता, उपेक्षा, अनुत्तरदायिता ही होनी चाहिए और न अत्यधिक आसक्ति ही। किसी के प्रति लगाव और किसी के प्रति लापरवाही भी विखण्डन का कारण बन सकती है। उच्छृंखलता, निष्प्रयोजन आवागमन, हठाग्रह आदि भी संघ व्यवस्था को विशृंखलित करते हैं।

इन्हीं कारणों से श्रमण के आचार के दो रूप बताये गये हैं–व्रतात्मक आचार और व्यवहारात्मक आचार।

सामाचारी के भी दो प्रकार हैं–(१) ओघसामाचारी (२) पद-विभाग सामाचारी।

प्रस्तुत अध्ययन में दोनों प्रकार की सामाचारी का वर्णन है।

सामाचारी के दस भेद हैं–(१) आवश्यकी (२) नैषेधिकी (३) आपृच्छना (४) प्रतिपृच्छना (५) छन्दना (६) इच्छाकार (७) मिथ्याकार (८) तथाकार (९) अभ्युत्थान और (१०) उपसम्पदा। इसे आसेवना-शिक्षा भी कहते हैं।

इन सभी का सर्वांगपूर्ण वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

तदुपरान्त दिन और रात की औत्सर्गिक चर्या का वर्णन है।

दिन और रात्रि के आठ प्रहर होते हैं। दिन के चार प्रहर और रात्रि के भी चार प्रहर।

दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचर्या और चौथे में स्वाध्याय।

इसी प्रकार रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में शयन–निद्रा और चौथे में स्वाध्याय।

इस प्रकार दिन-रात के आठ प्रहरों में चार प्रहर स्वाध्याय के लिए, दो प्रहर ध्यान के लिए, एक प्रहर भिक्षाचर्या आदि शारीरिक कार्यों के लिए तथा एक प्रहर निद्रा के लिए नियत है।

सामाचारी की यह विशेषता है कि यह सामाजिक तथा पारिवारिक बंधनों के समान नहीं है अपितु इसका स्वेच्छया स्वीकरण होता है। यह तो अन्तर्हृदय का वह उत्स है जो सहजतया प्रवाहित होकर साधक-जीवन की आध्यात्मिक प्रगति में सहायक बनता है। साथ ही उसकी व्यवहार कुशलता भी बढ़ाता है। साधक के जीवन को संपूर्णता, सरलता, सहजता प्रदान करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ५३ गाथाएँ हैं।

卐

CHAPTER 26
CORRECT SYSTEM OF BEHAVIOUR

Foreview

The name of this chapter is Correct System of Behaviour or Sāmācārī-Sāmāyārī. Behaviour is here two-fold–internal and external. Thus Sāmācārī deals with whole conduct and character of the sage along with his duties and behaviour.

For keeping the saṅgha (group of sages) well organised the proper behaviour is but essential. There should be neither harshness, indifference, carelessness, irresponsibity nor more afftection towards others. Carelessness to one and affection of other may cause disintegration. Impertinence, purposeless moving and haughtiness may also disrupt the saṅgha organisation.

Keeping all these causes in mind the conduct of a sage narrated twicely (1) conduct regarding vows and (2) behavioural conduct.

Likewise Sāmācārī also has two divisions–(1) Ogha Sāmācārī and (2) Padavibhāga sāmācārī.

Both types of sāmācārī has been described in this chapter.

Ten types of Sāmācārī are–(1) Āvaśyakī (2) Naiṣedhikī (3) Āpṛcchanā (4) Pratipṛacchnā, (5) Chandanā (6) Icchākāra (7) Mithyākāra (8) Tathākāra (9) Abhyutthāna (10) Upsampadā. This last is also called Āsevanā Śikṣā.

Detailed description of all these, we get, in this chpater.

After it the autsargika caryā of day and night described.

There are eight prahara of a day and night. Four praharas of day and four of night.

In the first prahara of day sudy, in second meditation, in the third seeking necessities and other bodily activities and in the fourth study.

In the same way first prahara of night determined for study, second for meditation, third for sleep and fourth for study.

Thus among the eight praharas of day and night–four praharas are fixed for study, two for meditation, one for bodily necessities-seeking alms etc., and one for rest–sleep.

The special characterstic of sāmācārī is–that it is not like social and family bindings; but it is accepted wilfully. It is that zeal of core of the heart, flowing cognately becomes helpful in the spiritual progress of adept–life; and increases his behaviour-prudentiality. It manifests the ascetic life with completeness, simplicity and docileness.

This chapter consists 53 couplets.

卐

छब्बीसइमं अज्झयणं : सामायारी
षड्विंश अध्ययन : सामाचारी

सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
जं चरित्ताणं निग्गन्था, तिण्णा संसारसागरं ॥१॥

मैं उस सामाचारी का कथन करता हूँ जो सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली है और जिसका आचरण करके अनेक निर्ग्रन्थ संसार सागर को तैर गये हैं ॥१॥

I express correct system of behaviour (of a monk) which is the cause of freedom of all miseries and practising it innumerable knot-less monks crossed the ocean of world. (1)

पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥
पंचमा छन्दणा नाम, इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो ॥३॥
अब्भुट्ठाणं नवमं, दसमा उवसंपदा ।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥४॥

दश सामाचारी

(१) आवश्यकी, (२) नैषेधिकी (३) आपृच्छना (४) प्रतिपृच्छना ॥२॥ (५) छन्दना (६) इच्छाकार (७) मिथ्याकार (८) तथाकार ॥३॥ (९) अभ्युत्थान (१०) उपसम्पदा।

इस प्रकार यह दश अंगों वाली साधुओं की सामाचारी प्रतिपादित की गई है ॥४॥

TEN SĀMĀCĀRĪ

(1) Āvaśyakī (2) Naiṣedhikī (3) Āpṛcchanā (4) Pratipracchnā–(2)

(5) Chandanā (6) Icchākārā (7) Mithyākāra (8) Tathākāra–(3)

(9) Abhyutthāna and (10) Upsampadā–this ten-limbed correct system of behaviour has been prescribed for sages. (4)

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा निसीहियं ।
आपुच्छणा सयंकरणे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥

(१) उपाश्रय अथवा अपने स्थान से बाहर निकलते-जाते समय **'आवस्सिय'** का उच्चारण करना **आवश्यकी** सामाचारी है।

(२) उपाश्रय में प्रवेश करते समय **'निसीहियं'** शब्द का उच्चारण करना **नैषेधिकी** सामाचारी है।

(३) अपने कार्य के लिए गुरु से आज्ञा लेना **आपृच्छना** सामाचारी है।

(४) दूसरों के कार्य के लिए गुरु से आज्ञा लेना **प्रतिपृच्छना** सामाचारी है ॥५॥

(1) To utter word 'Āvassiya' while going out of the room–(the lodging place) is *Āvaśyakī* sāmācārī.

(2) To speak word 'Nisīhiyaṁ' while entering the lodging place is *Naiṣedhikī* sāmācarī.

(3) To take permission of preceptor etc., for his own work is *Āpṛcchana* sāmācārī.

(4) To take permission of preceptors etc., for the work of others is *Pratipṛcchanā* sāmācārī. (5)

छन्दणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे ।
मिच्छाकारो य निन्दाए, तहक्कारो य पडिस्सुए ॥६॥

(५) पूर्व में ग्रहण किये हुए द्रव्यों के लिए गुरु आदि को आमन्त्रित करना, **छन्दना** सामाचारी है।

(६) दूसरों का कार्य अपनी सहज रुचि से करना तथा अपना कार्य करने के लिए अन्यों को उनकी इच्छानुसार नम्र निवेदन करना (सारणा) **इच्छाकार** सामाचारी है।

(७) दोष की निवृत्ति के लिए आत्म-निन्दा, गर्हा करना **मिथ्याकार** सामाचारी है।

(८) गुरुजनों के उपदेश को तथारूप में स्वीकार करना **तथाकार** सामाचारी है ॥६॥

(5) To invite teachers etc., for acquired things is *Chandanā* sāmācārī.

(6) To do others' work with own wish and for own work to pray in modest words to others according to their will is *Icchākāra* sāmācārī.

(7) For eradicating the slips or faults (committed) to blemish himself is *Mithyākāra* sāmācārī.

(8) To accept the preachings of preceptors etc., as they have said is *Tathākāra* sāmācārī. (6)

अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा ।
एवं दु-पंच-संजुत्ता, सामायारी पवेइया ॥७॥

(९) गुरुजनों के सत्कार के लिए अपने आसन से उठकर खड़े हो जाना **अभ्युत्थान** सामाचारी है।

(१०) किसी विशेष प्रयोजन से किसी अन्य आचार्य के पास रहना **उपसम्पदा** सामाचारी है।

इस तरह दश प्रकार की सामाचारी का प्रतिपादन किया गया है ॥७॥

(9) For respect of preceptors etc., to stand up from own seat is *Abhyutthāna* sāmācārī.

(10) Placing himself with other preceptor for some special purpose is Upsampadā sāmācārī.

Thus ten-typed correct system of behaviour (sāmācārī) is described. (7)

पुव्विल्लंमि चउब्भाए, आइच्चंमि समुट्ठिए ।
भण्डयं पडिलेहित्ता, वन्दित्ता य तओ गुरुं ॥८॥

औत्सर्गिक दिनकृत्य–ओघ सामाचारी

सूर्य के ऊपर उठने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भण्डोपकरणों की प्रतिलेखना करे और उसके पश्चात् गुरु को वन्दन करके–॥८॥

As the sun rises, in the first quarter of first prahara of the day inspect and clean the things and then bowing down to teachers etc.,–(8)

पुच्छेज्जा पंजलिउडो, किं कायव्वं मए इहं ?
इच्छं निओइउं भन्ते !, वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

हाथ जोड़कर पूछे कि–भगवन् ! मुझे इस समय क्या करना चाहिए? मेरी इच्छा है कि आप मुझे स्वाध्याय में नियुक्त करें अथवा वैयावृत्य में ॥९॥

Ask with the folding hands–Reverend sir ! what should I do now ? I wish, either you appoint me in studies or in service. (9)

वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ ।
सज्झाए वा निउत्तेणं, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥१०॥

वैयावृत्य में नियुक्त कर दिये जाने पर अग्लान होकर सेवा करे अथवा सर्वदुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किये जाने पर प्रसन्न मन से स्वाध्याय करे ॥१०॥

If appointed in service (of other sages) then should serve without untiring and with whole mind and if to studying then study, which is the cause of ending all miseries. (10)

दिवसस्स चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥११॥

विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे। तत्पश्चात इन चार भागों में उत्तरगुणों की विधिवत् आराधना करे ॥११॥

Wise mendicant divide the day in four parts and propiliate the side-virtues all the time. (11)

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीए सज्झायं ॥१२॥

प्रथम पौरुषी (प्रहर) में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और पुनः चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥१२॥

Study in first prahara (pauruṣī) (approximately three hour's time), meditation in second, seeking necessities in third and study in fourth. (12)

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया ।
चित्तासोएसु मासेसु, तिपया हवइ पोरिसी ॥१३॥

पौरुषी परिज्ञान

आषाढ़ मास में दो पैर (द्विपदा) पौरुषी होती है। पौष मास में चतुष्पदा तथा चैत्र और आश्विन मास में त्रिपदा पौरुषी होती है ॥१३॥

Knowedge of pauruṣī

In the lumar month of Āṣāḍha pauruṣī of two pādas, in Pauṣa month of four pādas and in Caitra and Āświna months of three pādas. (13)

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेण य दुअंगुलं।
वड्ढए हायए वावी, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

सात अहोरात्र में एक अंगुल, एक पक्ष (पन्द्रह दिन-रात) में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल (प्रमाण छाया दक्षिणायन में श्रावण से पौष मास तक) बढ़ती है और (उत्तरायण में माघ मास से आषाढ़ मास तक) घटती है ॥१४॥

In seven day-nights one aṅgula (width of a finger), in a fortnight two aṅgula and in a lunar month four aṅgula (shadow–when the sun in deccan semi-circle–from lunar months Śrāvaṇa to Pauṣa) increases and (when the sun in northern semi circle–from the lunar months Māgha to Āṣāḍha) decreases. (14)

आसाढबहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण–वइसाहेसु य, नायव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में एक-एक अहोरात्र की न्यूनता जाननी चाहिए। यानी १४ दिन का पक्ष होता है ॥१५॥

The black fortnights of lunar months–Āṣāḍha, Bhādrapada, Kārtika, Pauṣa, Fālguna and Vaiśākha–know the decrease of one day-night (in every black fortnight) i.e., the fortnights are of fourteen days only. (15)

जेट्ठामूले आसाढ-सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बीय-तियंमी, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण–इस प्रथम त्रिक में छह अंगुल; भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक–इस द्वितीय त्रिक में आठ अंगुल; मृगशिर, पौष और माघ–इस तृतीय त्रिक में दस अंगुल; फाल्गुन, चैत्र और वैशाख इस चतुर्थ त्रिक में आठ अंगुल की वृद्धि करने से प्रतिलेखन का पौरुषी समय होता है ॥१६॥

By increasing shadow six aṅgulas in first trio of the lunar months Jyeṣṭha, Aṣāḍha and Śrāvaṇa; eight aṅgulas in the second trio of months Bhādrapada, Āświna and Kārtika; ten aṅgulas in the third trio of months Mṛgaśira, Pauṣa and Māgha and eight aṅgulas in the months of Fālguna, Caitra and Vaiśākha–this increasement of aṅgulas' shadow makes the due period to inspect and clean the things. (16)

रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभाएसु चउसु वि ॥१७॥

औत्सर्गिक रात्रि कृत्य

विचक्षण–मेधावी भिक्षु रात्रि के भी चार विभाग करे तथा उसके पश्चात् रात्रि के चारों ही विभागों में उत्तरगुणों की आराधना करे ॥१७॥

Wise mendicant divide the night in four parts and propiliate the side-virtues during the whole time. (17)

पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥१८॥

प्रथम पहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान करे, तीसरे प्रहर में निद्रा ले और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे ॥१८॥

Study in first prahara, in second meditation, third for sleep and in fourth study again. (18)

जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तंमि नहचउब्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायं पओसकालम्मि ॥१९॥

जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति करता हो, वह जब आकाश के प्रथम चतुर्थ भाग में आ जाता है यानी रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होता है तब वह प्रदोषकाल होता है, उस काल में स्वाध्याय से निवृत्त हो जाय ॥१९॥

The nakṣatra (star) that leads the night when has it reached the first quarter of sky–meaning the end of first prahara of the night then it becomes the pradoṣa period, in this time finish the study. (19)

तम्मेव य नक्खत्ते, गयणचउब्भागसावसेसंमि ।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

वही नक्षत्र जब आकाश के अन्तिम चतुर्थ भाग में आ जाता है–रात्रि का अन्तिम चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ हो जाता है तब उसे वैरात्रिक काल समझ कर मुनि स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रवृत्त हो जाय ॥२०॥

When the same nakṣatra reaches the last quarter of sky, last prahara of night begins, knowing that vairātrika period monk, should begin to practise the necessary activities like study etc. (20)

पुव्विल्लंमि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भण्डयं ।
गुरुं वन्दित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं ॥२१॥

विशेष दिनकृत्य

दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भण्डोपकरणों की प्रतिलेखना करे, तदुपरान्त गुरु को वन्दना करके सभी दुःखों से मुक्त कराने वाला स्वाध्याय करे ॥२१॥

In the first quarter of first prahara of day he should inspect the things he holds, then bowing down to the teacher should study which is the cause of ending all calamities. (21)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

तदनन्तर प्रथम पौरुषी का चतुर्थ भाग शेष रहे यानी पौन ३/४ पौरुषी व्यतीत हो जाय तब गुरु को वन्दन करके और काल का प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) किये बिना ही पात्र (भाजन) आदि की प्रतिलेखना करे ॥२२॥

After that in the last quarter of first pauruṣī then bowing down to teachers, inspect the utensils etc., without exculpation of time. (22)

मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं ।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

प्रतिलेखना की विधि

मुँहपत्ति (मुखवस्त्रिका) की प्रतिलेखना करके गोच्छग का प्रतिलेखन करे। अंगुलियों से गोच्छग को पकड़कर वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥२३॥

Method of inspection

First all inspecting mouth-cloth, then his broom (गोच्छग). Picking the broom by fingers inspect the cloths. (23)

उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जेज्जा ॥२४॥

प्रथमतः उकडू आसन से बैठे, वस्त्र को ऊँचा व स्थिर रखे और शीघ्रता न करते हुए उसका प्रतिलेखन करे-आँखों से देखे। दूसरे में यतना से वस्त्र को धीरे से झटकावे-प्रस्फोटना करे। तीसरे में पुनः प्रमार्जना करे ॥२४॥

Firstly sit by utkaṭuka posture, keep the cloth some high and stable and without hurry inspect it with eyes. Secondly, gently shake. Thirdly wipe it. (24)

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबन्धिं अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा नव खोडा, पाणीपाणविसोहणं ॥२५॥

प्रतिलेखना के दोष

प्रतिलेखना करते समय शरीर को या वस्त्र को नचावे नहीं (१), या वस्त्र को मरोड़े (मोड़े) नहीं (२), वस्त्र को दृष्टि से अलक्षित न करे (३), दीवार आदि से वस्त्र का स्पर्श न होने दे (४)। वस्त्र के छह पूर्व और नौ खोटक (प्रस्फोट) करे (५)। यदि कोई प्राणी (वस्त्र पर) हो तो उसका विशोधन करे(६) ॥२५॥

While inspecting neither he himself–his body nor the cloth should dangle, nor fold the cloth and does not oversight the cloth, let not touch with wall etc., give six fold in breadth and nine lengthwise, if there is any insect on the cloth then gently put it at a safe place. (25)

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइया ।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥२६॥

१. आरभटा-निर्दिष्ट विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का पूरी तरह प्रतिलेखन किये बिना ही दूसरे वस्त्र का प्रतिलेखन करने लग जाना।

२. सम्मर्दा-वस्त्रों को जोर से दबाकर मसल देना अथवा वस्त्रादि उपधि पर बैठ जाना।

३. मोसली-वस्त्र को ऊपर-नीचे, इधर-उधर किसी अन्य वस्त्र अथवा वस्तु से संघट्टित करते रहना।

४. प्रस्फोटना-धूल-धूसरित वस्त्र को जोर से झटकना।

५. विक्षिप्ता-वस्त्रों को इधर-उधर फैला देना अथवा प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों में मिला देना।

६. वेदिका–प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या बीच में दोनों हाथ रखना या दोनों भुजाओं के बीच में घुटनों को रखना अथवा एक घुटना भुजाओं में और दूसरा बाहर रखना ॥२६॥

Faults of Inspection

(1) *Ārbhaṭā*–To inspect the cloth, contrary to the prescribed method.

(2) *Sammardā*–Pressing with force to crush the cloths or to sit upon them.

(3) *Mosalī*–To touch the cloth by any other thing high or low, this side and that side.

(4) *Prasfoṭanā*–To powerfully jerk the cloth full of dirt.

(5) *Vikṣiptā*–Scattering the cloths hither and thither or to keep the inspected cloths among uninspected.

(6) *Vedikā*–While inspecting, to keep both the hands over, under and middle of knees or keep both the arms around the knees or one knee around the arms and one out of arms. (26)

पसिढिल-पलम्ब-लोला, एगामोसा अणेगरूवधुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिए गणणोवगं कुज्जा ॥२७॥

७. प्रशिथिल–वस्त्र को ढीला पकड़ना।

८. प्रलम्ब–वस्त्र को इस तरह पकड़ना कि उसके कोने नीचे लटकते रहें।

९. लोल–प्रतिलेखित किये जा रहे वस्त्र का भूमि या हाथ से संघर्षण करना।

१०. एकामर्शा–वस्त्र को बीच से पकड़कर एक दृष्टि से ही पूरे वस्त्र को देख जाना।

११. अनेकरूप धुनना–अनेक तरह से अथवा अनेक बार (तीन बार से अधिक) वस्त्र को धुनना, हिलाना या झटकना। अथवा कई वस्त्रों को एक साथ एक बार ही झटकना।

१२. प्रमाण-प्रमाद–प्रस्फोटन और प्रमार्जन का प्रमाण जो नौ-नौ बार बताया है उसमें प्रमाद करना।

१३. गणनोपगणना में शंका–प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण में शंका होने पर हाथ की अंगुलियों के पोरुओं (पर्व रेखाओं) से गणना करना ॥२७॥

(7) *Praśithila*–To pick up the cloth loosely.

(8) *Pralamba*–To hold the cloth in the manner so that its corners dangle and swing.

(9) *Lola*–The cloth which is under the process of inspection, to rub it with hands or ground.

(10) *Ekāmarśā*–Holding the cloth at the middle to see the cloth in one sight

(11) *Anekarūpa dhunanā*–By many ways or many times (more than three times) to shake and jerk the cloth or to jerk many cloths together.

(12) *Pramāṇa Pramāda*–To mistake in the number of jerks and wipes.

(13) *Doubt in counting*–To count on the fingers if doubt arouses in the number of jerks and wipes. (27)

अणूणाइरित्तपडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाइं ॥२८॥

प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण से (क) अन्यून (कम नहीं) (ख) अनतिरिक्त (न कम, न ज्यादा) तथा (ग) अविपरीत प्रतिलेखना ही शुद्ध होती है। उक्त तीन विकल्पों के आठ भेद होते हैं, उनमें से प्रथम भेद (अन्यून-अनतिरिक्त-अविपरीत) ही शुद्ध है और शेष भेद अशुद्ध हैं ॥२८॥

The jerks and shakes should be (a) neither less, (b) nor more or less (c) uncontrary to the quantity of inspection, is pure. Threre are eight divisions of these three parts, among them the first division (neither less, nor more, not contrary) is pure and the remaining divisions are impure. (28)

पडिलेहणं कुणन्तो, मिहोकहं कुणइ जणवयकहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥२९॥

प्रतिलेखन करता हुआ जो परस्पर वार्तालाप करता है, जनपद की कथा करता है, किसी को प्रत्याख्यान देता है, वाचना देता है, स्वयं किसी से वाचना लेता है-॥२९॥

While inspecting, who talks each other, tells the stories about people and populated places, formal renunciation to any, imparts or takes lesson-(29)

पुढवीआउक्काए, तेऊवाऊवणस्सइतसाण ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥३०॥

ऐसा प्रतिलेखना में प्रमाद करने वाला साधक पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय-इन छहों कायों के जीवों का विराधक होता है ॥३०॥

Such careless adept about inspection hurts six kinds of species-earth-fire-water-air-bodied, flora and mobiles. (30)

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।
पडिलेहणआउत्तो, छण्हं आराहओ होइ ॥३१॥

प्रतिलेखना में उपयोगयुक्त साधक पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय-इन छहों कायों के जीवों का संरक्षक होता है ॥३१॥

Careful about inspection the adept becomes saviour of six kinds of species-earth-water-fire-air-bodied, flora and mobiles. (31)

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।
छण्हं अन्नयरागम्मि, कारणंमि समुट्ठिए ॥३२॥

तृतीय पौरुषी के दिन कृत्य

छह कारणों में से किसी एक कारण के समुपस्थित होने पर साधक दिन के तीसरे प्रहर (पौरुषी) में भक्त-पान की गवेषणा-अन्वेषणा करे ॥३२॥

Being necessary among six causes, even for one cause adept may go for seeking alms (food and water) in the third prahara (paurușī) of day. (32)

वेयण-वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिन्ताए ॥३३॥

वे छह कारण हैं–(१) क्षुधावेदना की शांति के लिए (२) वैयावृत्य के लिए (३) ईर्या समिति के पालन के लिए, (४) संयम पालन के लिए, (५) प्राणों की रक्षा के लिए और (६) धर्मचिन्तन के लिए ॥३३॥

These six causes are–(1) To pacify agony of hunger (2) To serve the teachers (3) for practising properly the movement-circumspection (4) for observing self control (5) to save his own life and (6) for deep thinking of religion. (33)

निग्गन्थो धिइमन्तो, निग्गन्थी वि न करेज्ज छहिं चेव ।
ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणा य से होइ ॥३४॥

धृतिमान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी इन (आगे कहे जाने वाले) छह कारणों से (आहार पानी की गवेषणा) न करे तो ही (संयम का) अतिक्रमण नहीं होता ॥३४॥

Steady monk and nun if does not seek for food and water due to the six causes (said in couplet 35), then it will not be the transgression of restrain. (34)

आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं, सरीर–वोच्छेयणट्ठाए ॥३५॥

(१) आतंक रोग उत्पन्न होने पर (२) उपसर्ग आने पर (३) ब्रह्मचर्य गुप्ति की रक्षा के लिए (४) प्राणियों की दया के लिए (५) तप के लिए और (६) शरीर-व्युच्छेद के लिए। (इन कारणों के समुपस्थित होने पर साधु-साध्वीवर्ग भक्त-पान की गवेषणा न करे।) ॥३५॥

(1) Illness (2) disaster (3) to preserve chastity (4) compassion for living beings (5) for penance and (6) to discard this mortal frame. (35)

अवसेसं भण्डगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी ॥३६॥

सभी उपकरणों का आँखों से प्रतिलेखन करे और यदि आवश्यक हो तो उन्हें लेकर मुनि अधिक से अधिक आधे योजन (दो कोस–तीन माइल–पाँच किलोमीटर) की दूरी तक भिक्षा हेतु जाए ॥३६॥

Inspect his whole outfits by his own eyes and go for seeking food and water upto half yojana (five killometers) with whole his outfits, if necessary. (36)

चउत्थीए पोरिसीए, निक्खिवित्ताण भायणं ।
सज्झायं तओ कुज्जा, सव्वभावविभावणं ॥३७॥

चतुर्थ पौरुषी

दिन के चतुर्थ पहर में भली-भाँति प्रतिलेखना कर सभी पात्रों को बाँधकर रख दे। तदुपरान्त सभी भावों–तत्त्वों का प्रकाशक स्वाध्याय करे ॥३७॥

In the fourth prahara of day bind up and keep aside whole the outfits duly inspected and then settle to study which throws light on all the things. (37)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

पौरुषी के चतुर्थ भाग में गुरु को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) कर शैया का प्रतिलेखन करे ॥३८॥

In the last quarter of fourth paurisī of day and observing exculpation of time, inspect the bed. (38)

पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥३९॥

दैवसिक प्रतिक्रमण

यतनाशील यति प्रस्रवण और उच्चार भूमि का प्रतिलेखन करे। तदुपरान्त सर्व दुःखों का अन्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥३९॥

A zealous monk should inspect the spot where the excreta and urine he has to discharge and then go through meditation which ends all pains. (39)

देसियं च अईयारं, चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणे य दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥४०॥

(कायोत्सर्ग में) ज्ञान-दर्शन-चारित्र में लगे दिवस-सम्बन्धी अतिचारों का चिन्तन करे ॥४०॥

During meditation–Kāyotsarga he should reflect the transgressions committed in the day pertaining to knowledge-faith-conduct respectively. (40)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
देसियं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४१॥

कायोत्सर्ग को पूर्ण कर गुरु को वन्दन करे। तदुपरान्त दिवस सम्बन्धी अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥४१॥

Completing the Kāyotsarga meditation, bow down to teacher. Then criticize the transgressions of day respectively. (41)

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४२॥

प्रतिक्रमण करके, शल्यरहित होकर गुरु को वन्दन करे तत्पश्चात सभी दुःखों से मुक्त कराने वाला कायोत्सर्ग करे ॥४२॥

Observing expiation, becoming free from internal thorns, pay respect to teacher and observe Kāyotsarga meditation which is annihilator of all miseries. (42)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।
थुइमंगलं च काउण, कालं संपडिलेहए ॥४३॥

कायोत्सर्ग को पारित (पूर्ण) करके फिर गुरु को वन्दन करे तथा स्तुति-मंगल (सिद्धस्तव) करके काल की सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखना करे ॥४३॥

Completing Kāyotsarga meditation again pay respect to teacher and then singing the praise of perfected souls inspect the time well. (43)

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए ॥४४॥

रात्रिक कृत्य एवं प्रतिक्रमण

(रात्रि की) प्रथम पौरुषी-प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान करे, तीसरे प्रहर में शयन करे-निद्रा ले और चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥४४॥

Study in first pauruṣī of night, meditate in second, take sleep in third and again study in fourth. (44)

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया ।
सज्झायं तओ कुज्जा, अबोहेन्तो असंजए ॥४५॥

किन्तु चौथी पौरुषी-प्रहर में काल की प्रतिलेखना करके तदनन्तर असंयमी लोगों को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे ॥४५॥

But in fourth pauruṣī, inspecting time, he should study without awaking non-restrained persons. (45)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दिऊण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

चतुर्थ पौरुषी के चौथे भाग में गुरु को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण करके काल का प्रतिलेखन करे ॥४६॥

In the fourth quarter of fourth pauruṣī, bowing down to teacher, expiating time should exculpate time. (46)

आगए कायवोस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले कायोत्सर्ग का समय आने पर सब दुःखों से मुक्त कराने वाला कायोत्सर्ग करे ॥४७॥

As the time reaches for Kāyotsarga meditation, he should observe that, which annihilates all pains. (47)

राइयं च अईयारं, चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणंमि दंसणंमी, चरित्तंमि तवंमि य ॥४८॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र से सम्बन्धित रात्रि सम्बन्धी अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे ॥४८॥

Reflect the transgressions committed in night pertaining to knowledge-faith-conduct in due order. (48)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।
राइयं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

कायोत्सर्ग को पूर्ण करके फिर गुरु को वन्दना कर रात्रि-सम्बन्धी अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥४९॥

Completing Kāyotsarga and paying respect to teacher, criticize the transgressions comitted during night, in due order. (49)

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

इसके पश्चात् प्रतिक्रमण करके, शल्यरहित होकर, गुरु को वन्दना करके सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥५०॥

After it, observing exculpation, becoming free from internal thorns, paying respect to teacher, observe Kāyotsarga which is the destructor of all pains. (50)

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिन्तए।
काउस्सग्गं तु पारित्ता, वन्दई य तओ गुरुं ॥५१॥

उस कायोत्सर्ग में चिन्तन करे कि आज मैं किस तप का आचरण करूँ ? कायोत्सर्ग को पारित कर गुरु को वन्दन करे ॥५१॥

During that Kāyotsarga, ponder that what penance should I observe today. Completing Kāyotsarga pay respect to teacher. (51)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।
तवं संपडिवज्जेत्ता, करेज्ज सिद्धाण संथवं ॥५२॥

कायोत्सर्ग पूरा होने पर गुरु को वन्दना करे। उसके उपरान्त यथोचित तप को स्वीकार कर सिद्धों की स्तुति-संस्तव करे ॥५२॥

On completion of Kāyotsarga, pay respect to teacher. After that accepting the proper penance, sing the praise of perfected souls. (52)

एसा सामायारी, समासेण वियाहिया।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥५३॥

—त्ति बेमि।

यह सामाचारी संक्षेप में कही गई है। इसका आचरण कर बहुत से जीव संसार-सागर को तैर गये हैं ॥५३॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

This sāmācārī is described in short. Practising it many souls crossed worldly ocean.

–Such I speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १३-१६-पुरुष शब्द से "पौरुषी" शब्द का निर्माण हुआ। पुरुष के द्वारा जिस काल का माप हो, वह पौरुषी, अर्थात् प्रहर है। पुरुष शब्द के दो अर्थ हैं-पुरुष शरीर-और शंकु। शंकु २४ अंगुल प्रमाण एक नाप होता है। पैर से जानु (घुटने) तक का प्रमाण भी २४ अंगुल ही होता है। जिस दिन किसी भी वस्तु की छाया वस्तु के प्रमाण के अनुसार होती है, वह दिन दक्षिणायन का प्रथम दिन होता है, युग के प्रथम वर्ष (सूर्यवर्ष) के श्रावण कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को शंकु एवं जानु की छाया अपने ही प्रमाण के अनुसार २४ अंगुल पड़ती है। १२ अंगुल का एक पाद-पैर होने से शंकु एवं जानु की २४ अंगुल छाया को दो पाद माना है।

एक वर्ष में दो अयन होते हैं। दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन श्रावण मास में प्रारम्भ होता है और उत्तरायण माघ मास में। दक्षिणायन में छाया बढ़ती है और उत्तरायण में घटती है।

गाथा १९-२०-रात्रि के चार भाग होते हैं-(१) प्रादोषिक अर्थात् रात्रि का मुख भाग, (२) अर्धरात्रिक (३) वैरात्रिक और (४) प्राभातिक। प्रादोषिक और प्राभातिक इन दो प्रहरों में स्वाध्याय किया जाता है। अर्धरात्रि में ध्यान और वैरात्रिक में शयनक्रिया-निद्रा। (ओघ नि. गा. ६५८)

Salient Elucidations

Gāthā 13-16–The word paurușī is formed from purușa–the man. The time which is measured by the shadow of purușa, that is paurușī–meaning prahara. The word purușa has two meanings–the body of a man and (2) śaṅku Śaṅku is a measurement of 24 aṅgulas–fingers (breadth of fingers). Measurement from foot to knee is also of 24 fingers. On the day the shadow is equal to the thing, that day is called the first day of deccan semi circle. On the first year of yuga (solar year) the first day of lunar month Śrāvaṇa of black fortnight, at that day the shadow of Śaṅku and Jānu is of 24 fingers The foot, being of 12 fingers the shadow of Jānu and Śaṅku is supposed to be of two foots (pādas)

There are two ayanas in a year–deccan and northern. Deccan begins from Śrāvaṇa and northern from Māgha month. The shadow increases in deccan and decreases in northern ayana.

Gāthā 19-20–There are four parts of night–(1) Prādoșika–the beginning part of night (2) midnight (3) Vairātrika and (4) Prābhātika. Studies are practised in two parts (praharas) Prādoșika and Prābhātika, meditation in midnight and sleep in Vairatrika. (*Ogha Niryukti*, couplet 658)

卐

सत्ताईसवाँ अध्ययन : खलुंकीय

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम खलुंकीय है। खलुंक शब्द का अर्थ–दुष्ट बैल, दंशमशक (कष्ट दायक), जलौका (गुरु-दोषदर्शी), वृश्चिक (बिच्छू वचन रूपी डंक से पीडित करने वाले) आदि हैं।

शारपेन्टियर के मतानुसार यह शब्द (खलुंक) खल से सम्बन्धित रहा हो, खल का अर्थ ही वक्र और दुष्ट है।

खल का यह अर्थ आज भी प्रचलित है।

अनुमानतः यह शब्द (खलुंक) खलौक्ष का निकटवर्ती रहा है। जैसे खल विहग दुष्ट पक्षी के लिए प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार खल-उक्ष दुष्ट बैल के लिए प्रयुक्त हुआ हो।

प्रस्तुत अध्ययन में खलुंक शब्द दुष्ट बैल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा उसकी उपमा उद्दण्ड और अविनीत शिष्य से दी गई है। साथ ही ऐसे शिष्य की दुर्विनीतता, वक्रता, उच्छृंखलता और उद्दण्डता का चित्रण किया गया है।

साधक जीवन के दो महत्वपूर्ण अनिवार्य अंग हैं–विनय और अनुशासन। जिस साधक के जीवन में ये दोनों अथवा दोनों में से एक भी नहीं होता; वह स्वच्छन्द होकर साधक-जीवन से भ्रष्ट हो जाता है।

जिस प्रकार दुष्ट बैल शकट (गाड़ी), जूआ तथा समिला को तोड़कर मालिक (गाड़ीवान) को दुःखी और पीड़ित करता है, उसी प्रकार दुष्ट शिष्य धर्मशकट (धर्मसंघ) को तोड़कर आचार्य–अनुशास्ता को दुःखी व पीड़ित करता है, उनकी चित्त समाधि और शांति को भंग कर देता है।

शिष्य और सहयोगियों का कर्त्तव्य होता है कि वे सुख-सात' पहुँचायें, धर्म साधना में सहयोगी बनें; किन्तु घोर स्वार्थी और धृष्ट एवं दुष्ट प्रकृति वाले मानव एवं शिष्य इसके विपरीत ही आचरण ही करते हैं; वे चित्त-पीड़क एवं दुःखदायक होते हैं।

गार्ग्याचार्य अपने समय के विशिष्ट तत्त्ववेत्ता थे। वे स्थविर और अनुपम ज्ञान के धारक थे। वे संयम के गुणों से विभूषित थे। किन्तु, दुर्भाग्य से उनके सभी शिष्य उद्दण्ड, अविनीत, उच्छृंखल और अनुशासन-विहीन थे। आचार्य ने उनको सुधारने का बहुत प्रयास किया; बहुत समय तक उनकी उद्दण्डताओं को सहन किया; किन्तु उनके सुधार की जब कोई आशा शेष न रही तब एक दिन आत्मभाव से प्रेरित हो, वे अपने सभी शिष्यों को छोड़कर अकेले ही चल दिये।

आत्म-समाधि के इच्छुक श्रमण का यही कर्त्तव्य है कि यदि समूह (शिष्य-वर्ग, साथी श्रमण, भक्त-श्रावकों, दुष्ट व्यक्तियों आदि) से आत्मसाधना–समाधि भंग होती हो और यदि कोई निपुण प्रज्ञावान साथी या सहायक न मिले तो संयम की रक्षा करता हुआ मुनि एकाकी रहकर धर्म-साधना करे।

यही गार्ग्याचार्य ने किया। और यही इस अध्ययन की प्रेरणा है।

प्रस्तुत अध्ययन में १७ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 27
WICKED BULLOCKS

Foreview

The title of this chapter is Wicked Bullocks, Khaluṅkijjaṁ–saṅskṛta form–Khaluṅkīya. There are many meanings of word khaluṅka, like–Wicked bullocks, drains and mosquitoes–insects (painy creatures), leech (fault-finder of teacher), scorpion (pain givers by the stings of words etc., etc.)

According to Charpentier–may this word khaluṅka, be related to khala. The very meanings of khala is stupid, evasive, fraudulent etc.

These meanings are still prevailing and known to every body.

Also be estimated that the word khaluṅka may be connected the word khalaukṣa. As this word is used for a stupid bird, so the word khaluṅka is used for wicked bullocks.

In the present chapter the khaluṅka is used for wicked bullocks and it is resembled to impertinent and undisciplined disciples. Unmodesty, fraudulence, crookedness is described in detail.

There are two compulsory and important behavioural virtues of adept-life–(1) Humility and (2) Discipline. Devoid of both or even one the adept falls from his life-order.

As wicked bullock causes pains and sufferings to cartman by breaking yoke, cart etc., in the same way the evasive disciple causes pains, sufferings, miseries to his preceptor by breaking the religious-order–the chariot of religion. He disturbs his (preceptor's) mental peace and contemplation of heart.

It is the duty of disciples and other companions to cause calm and peace to the preceptor, they should be helpful to his religious practices; but extraordinary selfish, arrogant and stupid persons–companions and disciples act contrary to this, they cause miseries to mind.

Gārgyācārya was a very witty, wise and specialist of the knowledge of fundamental elements of his time. He was old-experienced and was deep in scriptural knowledge. He was adorned with the virtues of restrain and self control. But unfortunately, all of his disciples were fraudulent, uncourteous and devoid of discipline.

Gārgyācārya tried utmost to reform them, tolerated their mischiefs for a long time, but in the end all hopes of their reform futiled; then one day leaving his all disciples, he went out alone.

It is the duty of a self-well-wisher sage that the group (disciples, companion sages, devotees etc.) if against his self contemplation and his mental peace is disturbed, and could not get a good companion sage then he should practise his religious rituals protecting restrain.

This is done by Gārgyācārya and this is the very inspiration of this chapter.

Present chapter contains only 17 couplets.

सत्तावीसइमं अज्झयणं : खलुंकिज्जं
सप्तविंश अध्ययन : खलुंकीय

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए ।
आइण्णे गणिभावम्मि, समाहिं पडिसंधए ॥१॥

स्थविर, गणधर (गच्छाचार्य) गर्ग गोत्रीय गार्ग्य मुनि शास्त्र विशारद थे। वे आचार्य के गुणों से ओत-प्रोत, गणिभावों में स्थित और समाधि में स्वयं को जोड़े हुए थे ॥१॥

Experienced sage, the head of group (of his disciples) of Garga lineage monk Gārgya was expert in holy scriptures. He was opulent with the virtues of preceptor, fixed in gaṇi-sentiments and related himself to contemplation. (1)

वहणे वहमाणस्स, कन्तारं अइवत्तई ।
जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तई ॥२॥

शकट आदि वाहन में जोता हुआ अच्छा बैल जैसे महावन से सुखपूर्वक पार हो जाता है उसी प्रकार संयम-योग में भली-भाँति प्रवृत्त साधक भी संसार से (सुखपूर्वक) पार हो जाता है ॥२॥

Who yokes a good bull to a cart he crosses the vast forest happily, likewise the adept practising zealously the contemplation easily crosses the worldly ocean. (2)

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई ।
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ य से भज्जई ॥३॥

जो दुष्ट बैलों (खलुंक) को (वाहन में) जोतता है, वह उन्हें मारता हुआ स्वयं क्लेश पाता है, असमाधि का अनुभव करता है और अन्ततः उसका चाबुक भी टूट जाता है ॥३॥

Who yokes bad bullocks in a cart has excessive strains, beating them and in the end his whip also broken up. (3)

एगं डसइ पुच्छंमि, एगं विन्धइऽभिक्खणं ।
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठिओ ॥४॥

क्षुब्ध हुआ वाहक (गाड़ीवान) किसी (बैल) की पूंछ में दंश देता है तो किसी एक को लगातार बींधता है और (उन दुष्ट बैलों में से) कोई एक जूए की कील को तोड़ देता है तो कोई एक उन्मार्ग पर चल पड़ता है ॥४॥

Distressed cartman some time bites the tail of a bull and wounds the other. Among these bulls one breaks the yoke and the other goes on an uneven path. (4)

एगो पडइ पासेणं, निवेसइ निवज्जई ।
उक्कुद्दइ उप्फिडई, सढे बालगवी वए ॥५॥

कोई मार्ग के एक ओर पार्श्व में गिर जाता है तो कोई बैठ जाता है और कोई लम्बा लेट जाता है। कोई कूदता है, कोई उछलता है तो कोई तरुण गाय (बालगवी) के पीछे भाग जाता है ॥५॥

Any falls on its side, the other sits and another lies, and jumps or crapes and another runs after a young cow. (5)

माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं ।
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई ॥६॥

कोई मायावी (धूर्त बैल) सिर को निढाल बना कर–सिर के बल भूमि पर लुढ़क–गिर जाता है। कोई क्रोधित होकर उन्मार्ग (प्रतिपथ) में अथवा उलटे पैरों पीछे की ओर चल पड़ता है। कोई मृतक के समान पड़ा रहता है तो कोई वेग से दौड़ने लगता है ॥६॥

Any drops with stretched head, the other goes the wrong way angrily or returns. Any falls flat as dead and any dashes headlong at top speed. (6)

छिन्नाले छिन्दई सेल्लिं, दुद्दन्तो भंजए जुगं ।
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जाहित्ता पलायए ॥७॥

कोई दुष्ट बैल (छिन्नाल) रास (रस्सी) को छिन्न-भिन्न कर देता है, तोड़ देता है, दुर्दान्त होकर जूए को तोड़ देता है और सूं सूं की ध्वनि निकालता हुआ वाहन को छोड़कर पलायन कर जाता है ॥७॥

Any bull breaks up the rope and yoke, making sound with nostrils runs away leaving the cart. (7)

खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जन्ति धिइदुब्बला ॥८॥

जैसे वाहन में जोते हुए दुष्ट बैल वाहन को तोड़ देते हैं उसी प्रकार धृति-दुर्बल (धैर्य में कमजोर) शिष्यों को धर्मयान में जोतने पर वे भी उसे तोड़ देते हैं ॥८॥

As the stupid bulls yoked in a cart break it up, so the fraudulent disciples, due to lack of perseverence break up the chariot of religion. (8)

इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे ।
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥९॥

(उन शिष्यों में) कोई ऋद्धि-ऐश्वर्य का गौरव (अहंकार) करता है, कोई रस का गौरव करता है, कोई साता-सुख का गौरव करता है तो कोई दीर्घकाल तक क्रोध करता रहता है ॥९॥

Among those disciples any becomes the poudy of prosperity, any of taste and any other of pleasures and some one else revel in anger upto long time. (9)

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए थद्धे ।
एगं च अणुसासम्मी, हेऊहिं कारणेहिं य ॥१०॥

कोई भिक्षाचरी में (भिक्षा हेतु जाने में) आलस्य करता है, तो कोई अपमान से डरता है तो कोई स्तब्ध ढीठ होता है। हेतु और कारणों से गुरु किसी को अनुशासित करते हैं तो–॥१०॥

Some one is averse to seeking alms, the other fears the insult, the other is obstinate. If teacher disciplines them with causes and arguments then–(10)

सो वि अन्तरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई ।
आयरियाणं तं वयणं, पडिकूलेइ अभिक्खणं ॥११॥

वह बीच में ही बोलने लगता है। गुरु (आचार्य) के वचनों में दोष निकालने लगता है। इतना ही नहीं, बार-बार आचार्य के वचन के प्रतिकूल आचरण करता है ॥११॥

Make objections and point out the fault of teacher. Not only this, they frequently act in opposition to the instructions of teacher. (11)

न सा ममं वियाणाइ, न वि सा मज्झ दाहिई ।
निग्गया होहिई मन्ने, साहू अन्नोऽत्थ वच्चउ ॥१२॥

भिक्षा लाने के समय कोई शिष्य गृहस्वामिनी के सम्बन्ध में कहता है–वह मुझे नहीं जानती है, वह मुझे कुछ नहीं देगी। मैं समझता हूँ, वह घर से बाहर निकल गई होगी। अतः इसके लिए अच्छा होगा कि कोई दूसरा साधु चला जाये ॥१२॥

In reference to begging, he makes lame and imaginary pretensions–she does not know me, she will give me nothing, I suppose she will be gone out of her home. So it is better that any other ascetic go for begging. (12)

पेसिया पलिउंचन्ति, ते परियन्ति समन्तओ ।
रायवेट्ठिं व मन्नन्ता, करेन्ति भिउडिं मुहे ॥१३॥

किसी कार्य से भेजने पर बिना कार्य किये लौट आते हैं और अपलाप करते हैं। इधर-उधर घूमते हैं। गुरु की आज्ञा को राजा द्वारा ली जाने वाली बेगार (वेट्ठि-वेष्टि) मान कर मुँह पर भृकुटि चढ़ा लेते हैं ॥१३॥

If sent for any work, return without doing that, stroll about according to their wish and deport themselves. They treat the order of teacher like the forced task of a ruler and knit their brows. (13)

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणे य पोसिया ।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमन्ति दिसोदिसिं ॥१४॥

जैसे पंख आने पर हंस दशों दिशाओं–विभिन्न दिशाओं में उड़ जाते हैं उसी प्रकार शिक्षित-दीक्षित एवं भक्त-पान से पोषित किये गये कुशिष्य भी स्वेच्छाचारी बनकर इधर-उधर घूमते हैं ॥१४॥

As the geese, when their wings grown up, flew up in various directions, so the bad disciples, being instructed, took to order (consecrated), nourished with food and drink, they move hither and thither according to their own will. (14)

अह सारही विचिन्तेइ, खलुंकेहिं समागओ ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई ॥१५॥

अविनीत शिष्यों से खिन्न होकर धर्मयान के सारथी गार्ग्याचार्य सोचते हैं–मुझे इन दुष्ट शिष्यों से क्या लाभ है? इनसे तो मेरी आत्मा अवसन्न–व्याकुल ही होती है ॥१५॥

Distressed by bad disciples, the driver of religious chariot, Gāryācārya thinks–What I have to do with such bad disciples? Only I am disheartened and distressed. (15)

ज़ारिसा मम सीसाउ, तारिसा गलिगद्दहा ।
गलिगद्दहे चइत्ताणं, दढं परिगिण्हइ तवं ॥१६॥

जैसे गलि गर्दभ आलसी निकम्मे गधे होते हैं, वैसे ही ये मेरे शिष्य हैं। यह सोचकर गार्ग्याचार्य ने उन गलि-गर्दभरूप शिष्यों को छोड़ दिया और दृढ़ तपश्चरण स्वीकार किया ॥१६॥

As the donkeys of street are lazy and of no use, so are these my disciples. Thinking thus Gārgyācārya left his all disciples and going away accepted severe penances. (16)

मिउ – मद्दवसंपन्ने, गम्भीरे सुसमाहिए ।
विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ॥१७॥

–त्ति बेमि ।

मृदु और मार्दव गुण से संपन्न, गम्भीर, सम्यक् समाधि में लीन अपने चारित्रमय आत्मा से युक्त होकर वे महात्मा गार्ग्याचार्य पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥१७॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

Opulent with virtues of unproudiness, grave, indulged in deep contemplation Gārgyācārya began to wander on this earth with his soul fixed in right conduct. (17)

–Such I speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–"गणधर" शब्द के अर्थ दो होते हैं–(१) तीर्थंकर भगवान् के प्रमुख शिष्य, जैसे कि भगवान् महावीर के गौतम आदि गणधर। (२) अनुपम ज्ञान आदि गुणों के धारक आचार्य। यहाँ पर दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है। (वृ. बृ. शान्त्याचार्य)

कर्मोदय से अथवा शिष्यों द्वारा तोड़ी गई ज्ञानादि रूप भावसमाधि का पुनः अपने आप में जोड़ना, प्रतिसन्धान है। (बृहद्वृत्ति)

Salient Elucidations

Gāthā 1–There are two meanings of word Gaṇadhara–(1) Chief disciple of tīrthaṁkara, e. g., Gautama etc., gaṇadharas of Bhagawāna Mahāvīra. (2) The preceptor who possesses the extra-ordinary knowledge. Here this second interpretation is fit. *(V. V. Śāntyācārya)*

Pratisandhāna is to join the internal contemplation again, which has been broken up by karmas or bad disciples.

अट्ठाईसवाँ अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम मोक्ष-मार्ग-गति है।

निर्ग्रन्थ श्रमण के लिए मोक्ष साध्य है–प्राप्य है; उस प्राप्य की प्राप्ति के लिए सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप समन्वित रूप से मार्ग–उपाय है और साध्य की ओर गति साधक का पुरुषार्थ–पराक्रम है।

साध्य की प्राप्ति के लिए साधनों का आलम्बन अनिवार्य है। साध्य अथवा प्राप्तव्य को जान लिया जाये किन्तु उसकी प्राप्ति के साधनों का अवलम्बन न लिया जाय तो साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। साधन भी उपलब्ध हो जायँ फिर भी साध्य की ओर साधक गति न करे, परिश्रम व पुरुषार्थ न करे तो भी उसके लिए साध्य की प्राप्ति असम्भव ही है। इसलिए मोक्ष-प्राप्ति हेतु साधन और उन साधनों में पराक्रम आवश्यक है।

मोक्ष-प्राप्ति के चार साधन हैं–ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इनमें प्रथम साधन ज्ञान–सम्यक्ज्ञान है। ज्ञान से ही आत्मा जिनकथित तत्त्वों–पुद्‌गल कर्म तथा आत्मा को जानता है, छह द्रव्यों के स्वरूप से परिचित होता है, उन्हें समझता है।

दर्शन से ज्ञान द्वारा जाने हुए नौ तत्त्वों–(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आस्रव, (६) सवर (७) बन्ध (८) निर्जरा और (९) मोक्ष–इन पर श्रद्धा–अटूट और निश्चल विश्वास करता है।

श्रद्धा की सहयोगिनी दश प्रकार की रुचियाँ हैं, जो सम्यक्त्व–सम्यग्दर्शन को पुष्ट करती हैं।

रागादि विभावों, विषयों, कषायों का निग्रह सम्यक्चारित्र है जो कर्मों से आत्मा को रिक्त करता है। चयरित्तकरं चारित्तं।

आत्मोन्मुखी तपनरूप क्रिया तप है जो पूर्व संचित कर्मों को जलाकर एकदेश से भस्म कर देता है। करोड़ों जन्मों के संचित कर्म समूह की निर्जरा कर देता है।

सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने पर साधक को मुक्ति प्राप्त होती है और तब उसके समस्त आत्मगुणों का पूर्ण विकास (निर्वाण) होता है।

इस सम्पूर्ण निरूपण का आधार व्यवहार की अपेक्षा से है। निश्चय अथवा वास्तविक दृष्टि से विचार करने पर तो आत्मा के शुद्ध स्वभाव की दृढ़ प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है, आत्मा के शुद्ध-स्वरूप का बोध ही सम्यक्ज्ञान है और आत्मस्वरूप में लीनता ही सम्यक्चारित्र है और यही मोक्ष-मार्ग-गति है।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम १४ गाथाओं में सम्यक्ज्ञान का, १५ से ३१ गाथाओं में सम्यक्दर्शन का, ३२-३३ दो गाथाओं में सम्यक्चारित्र का, ३४वीं गाथा में सम्यक्तप का और ३५वीं गाथा में चारों ही साधनों की उपयोगिता का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार इस अध्ययन में साधक को मोक्ष प्राप्ति की प्रक्रिया बताई गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३६ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 28
ROAD TO FINAL DELIVERANCE

Foreview

The name of this chapter according to Jacobi is–Road to Final Deliverance.

For knotless monk liberation is his goal–to be attained. For attaining that which is to be attained the means are–right knowledge-faith-conduct-penance, all the four in co-ordination; and to move steadily towards the definite aim is the endeavour of adept–practiser.

For obtaining the goal, the support of means is but necessary. If the aim is known, but the support of means, which is necessary for obtaining it, not taken then the goal can not be attained. And if the means are in hand, still he who does not endeavour to attain his aim then the goal is also impossible for him to attain. Hence, it is very necessary to utilize means and to endeavour for attainment of end.

For attaining the aim of liberation the means are four–right knowledge-faith-conduct and penance. Among these the first and chief means is knowledge. The soul cognises the Jina-prescribed elements–soul, karmas etc., by knowledge only, understands the conception of six substances.

Known by knowledge the nine elements–(1) soul (2) non-soul (3) merit (4) demerit (5) inflow of karmas (6) check of inflow (7) bondage (8) annihilation and (9) salvation–he fixes his unwavering faith in all these elements.

There are ten interests, which nourish the right faith.

Right conduct is to obstruct the feelings of attachment, sensualities, passions etc. It makes empty the soul from karmas.

Penance is the activity which purifies soul and turn to ashes by burning the formerly accumulated karmas partially. It sheds off the karmas of millions of years.

By destruction of all the karmas the practiser attains liberation and then the whole virtues of his soul develop to extremity.

All this description is according to behavioural viewpoint. Thinking according to real viewpoint the firm belief in pure soul-virtues is right faith, cognition of pure soul is right knowledge and to be absorbed in soul-virtues is right conduct and this is only the path of salvation.

Right knowledge in previous 14 couplets, right faith from 15 to 31, right conduct in 32-33, right penance in 34 and in 35th couplet the ulitiy of all the four means is described of this chapter.

Thus the method of performance of attaining salvation is described in this chapter.

Present chapter bears 36 couplets.

ILLUSTRATION NO. 55 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 28



चित्र क्रमांक ५५ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

अट्ठावीसइमं अज्झयणं : मोक्खमग्गगई
अष्टाविंश अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं, नाण-दंसणलक्खणं ॥१॥

ज्ञान आदि चार कारणों से संयुक्त, ज्ञान-दर्शन लक्षण-स्वरूप, जिनभाषित तथ्यपरक यथार्थ सम्यक् मोक्ष-मार्ग की गति को सुनो ॥१॥

United with knowledge etc., four causes, with the conception of knowledge and faith, preseribed by Jinas, listen to me the true method of performance leading to the salvation. (1)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥२॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप (ये चारों मिलकर) मोक्ष मार्ग हैं, ऐसा केवलज्ञानी-केवलदर्शी-सर्वज्ञ जिनेन्द्र देवों ने बताया है ॥२॥

The process to attain liberation are the four causes–knowledge-faith-conduct-penance united, thus has been said by the reverends possessing supreme knowledge and perception. (2)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥३॥

ज्ञान-दर्शन तथा इसी प्रकार चारित्र और तप–इस कारण-चतुष्टय युक्त मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव सद्गति को जाते हैं–प्राप्त करते हैं ॥३॥

By practising all the four causes of salvation–knowledge-faith-conduct-penance, the soul attains best existence. (4)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहीनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं ॥४॥

सम्यग्ज्ञान

उन चारों में ज्ञान पाँच प्रकार है–(१) श्रुतज्ञान (२) आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, (३) अवधिज्ञान (४) मनःज्ञान (मनःपर्यवज्ञान) और (५) केवलज्ञान ॥४॥

Right knowledge

Among all these four, the knowledge is of five kinds–(1) Śruta knowledge (it is derived from sacred scriptures) (2) Ābhinibodhika knowledge (it takes place from mind and senses) (3) clairvoyance (4) Manaḥ-paryava knowledge (capable to know directly without any external support the modifications of other's mind may he be billion miles afar) and (5) supreme knowledge–omniscience. (4)

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाणं च सव्वेसिं, नाणं नाणीहि देसियं ॥५॥

यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्व द्रव्य, गुण, पर्यायों का अवबोधक है-जानने वाला है-ऐसा ज्ञानियों ने कहा है ॥५॥

Learneds have told that this five-fold knowledge cognises all the attributes, modifications and substances. (5)

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥६॥

गुणों का आश्रय-आधार द्रव्य है। द्रव्य के आश्रित रहने वाले गुण हैं। द्रव्य और गुण-दोनों के आश्रित रहना, पर्यायों का लक्षण है ॥६॥

Substance is the substrate of attributes; the attributes are inherent in a substance, the characteristic of modifications is that they inhere in either. (6)

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जन्तवो।
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७॥

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्‌गल और जीव-ये छह द्रव्य हैं, इनसे युक्त द्रव्यात्मक लोक है-ऐसा वरदर्शी-प्रत्यक्षदर्शी जिनवरों ने कहा है ॥७॥

Dharma, Adharma, Space, Time, Matter and Soul–these are six substances; they make up this world–universe, it is taught by Jinas–the omniscients. (7)

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।
अणन्ताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जन्तवो ॥८॥

धर्म, अधर्म और आकाश-ये तीनों द्रव्य संख्या में एक-एक हैं। काल, पुद्‌गल और जीव-ये तीनों द्रव्य संख्या में अनन्त-अनन्त हैं ॥८॥

Dharma, Adharma and Space–these three are each one substance in number while Time, Matter and Souls–these three are each infinite substances in number. (8)

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं ॥९॥

गति (गमन क्रिया में उदासीन हेतुता) धर्म द्रव्य का लक्षण है, स्थिति (ठहरने में उदासीन हेतुत्व) अधर्म द्रव्य का लक्षण है, सभी द्रव्यों का आधार (भाजन) बनना-अवगाह देना आकाश द्रव्य का लक्षण है ॥९॥

The characterstic of Dharma substance is motion (fulcrum of motion) of Adharma substance is rest–static (fulcrum of rest) and that of Space to make room for every thing. (9)

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥

वर्तना (परिवर्तन) काल द्रव्य का लक्षण है। उपयोग (चेतना) जीव द्रव्य का लक्षण है जो ज्ञान (विशेष अवबोध), दर्शन (सामान्य अवबोध) तथा सुख और दुःख की अनुभूति से पहचाना जाता है ॥१०॥

The characterstic of Time is change (duration) and that of Soul is consciousness which is recognised by cognition, conation and feelings of pleasure and pain. (10)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥११॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग–ये जीव के लक्षण हैं ॥११॥

Knowledge, faith, conduct, penance, energy and consciousness are the characterstics of soul. (11)

सद्दऽन्धयार-उज्जोओ, पहा छायाऽऽतवे इ वा।
वण्ण-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१२॥

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप आदि तथा वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श–ये पुद्गल के लक्षण हैं ॥१२॥

The characterstics of Matter are–sound, darkness, lustre (of jewels etc.,) light, shade, heat etc., and colour, taste, smell and touch. (12)

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥१३॥

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान–आकार, संयोग और विभाग–ये सब पर्यायों के लक्षण हैं ॥१३॥

The characterstics of modifications are–unitedness, separatedness, number, form, conjunction and disjunctions. (13)

जीवाजीवा य बन्धो य, पुण्णं पावासवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव ॥१४॥

जीव, अजीव, बन्ध (जीव और कर्मों का एकक्षेत्रावगाह), पुण्य (शुभत्व), पाप (अशुभत्व), आस्रव (शुभाशुभ कर्मबन्ध के हेतु राग-द्वेष आदि), संवर (आस्रवनिरोध), निर्जरा (पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश क्षय) और मोक्ष (कर्मों का सम्पूर्ण क्षय)–ये नौ तत्त्व हैं ॥१४॥

Soul, non-soul, bondage, merit, demerit, influx of karmas (attachment-detachment–the causes of bondage of meritorious and sinful karmas) check of karma-influx, annihilation (partial shedding off formerly accumulated karmas) and salvation (fully exhaustion of karmas)–these are nine elements. (14)

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥१५॥

सम्यग्दर्शन

इन तथ्यभूत भावों के सद्भाव (अस्तित्व) के उपदेश–निरूपण में जो भावपूर्वक श्रद्धा होती है, उसे सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन कहा गया है ॥१५॥

Right Faith

Who verily believes the existence of these fundamental truths as taught and precepted, that is called right faith. (15)

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुइमेव ।
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥१६॥

(रुचि की अपेक्षा वह सम्यक्त्व दस प्रकार का है) १. निसर्ग रुचि २. उपदेश रुचि ३. आज्ञा रुचि ४. सूत्र रुचि ५. बीज रुचि ६. अभिगम रुचि ७. विस्तार रुचि ८. क्रिया रुचि ९. संक्षेप रुचि और १०. धर्म रुचि ॥१६॥

(That right faith is ten-fold with the viewpoint of interests.) (1) nature, (2) instruction (3) command (4) study of sacred scriptures (5) seed (suggestion) (6) comprehension of the meaning of sacred texts (7) complete course of study (8) religious rituals–exercises (9) brief exposition and (10) the religion. (16)

भूयत्थेणाहिगया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।
सहसम्मुइयासवसंवरो य, रोएइ उ निसग्गो ॥१७॥

१. निसर्ग रुचि–किसी अन्य के उपदेश बिना स्वयं अपनी ही मति से हुए यथार्थ बोध से अवगत जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर आदि तत्वों के प्रति जो सहज-नैसर्गिक रुचि होती है, वह निसर्ग रुचि है ॥१७॥

(1) Interest by nature–Who inherently (without the instruction of others) comprehends soul, matter, virtue, vice, influx of karmas and stoppage etc., is called interest by nature. (17)

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव नऽन्नह त्ति य, निसग्गरुई त्ति नायव्वो ॥१८॥

जिनेन्द्र भगवान द्वारा देखे गये और उपदेश दिये गये भावों में तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से विशिष्ट पदार्थों के विषय में कि यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है, इस प्रकार की जो स्वतः स्फूर्त श्रद्धा है, उसे निसर्ग रुचि जानना चाहिए ॥१८॥

Seen and instructed the fundamentals by Jinas and by substance-space-time-reflections the special things, the inherent belief in all these, it is interest by nature. (18)

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

२. उपदेश रुचि–जो जिनेन्द्र भगवान अथवा अन्य छद्मस्थों के उपदेश से जीवादि भावों में श्रद्धा करता है, वह उपदेश रुचि जाननी चाहिए ॥१९॥

(2) Interest to instructions–Who believes on the instructions of Jinas and their learned followers, that should be understood as interest in instructions. (19)

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

३. आज्ञा रुचि-जिसके राग, द्वेष, मोह और अज्ञान नष्ट हो गये हैं, उसकी आज्ञा में रुचि रखना, आज्ञा रुचि है ॥२०॥

(3) **Command interest**–To be interested to the command of those whose attachment, detachment, delusion and ignorance are destructed, is the command interest. (20)

जो सुत्तमहिज्जन्तो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

४. सूत्र रुचि-जो अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करता हुआ, श्रुत द्वारा सम्यक्त्व का उपार्जन करता है, वह सूत्र रुचि है ॥२१॥

(4) **Scriptural interest**–By study of Aṅga-praviṣṭa and aṅga–bāhya canonical literature, who earns right faith, is called scriptural interest. (21)

एगेण अणेगाइं, पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।
उदए व्व तेल्लबिन्दू, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥२२॥

५. बीज रुचि-जिस प्रकार पानी में तेल की बूँद फैल जाती है, उसी प्रकार जो सम्यक्त्व एक पद से अनेक पदों में प्रसरित होता है,वह बीजरुचि है ॥२२॥

(5) **Seed interest**–As the drop of oil spreads over the surface of water, in the same way the belief spreads from one line to many lines, is called seed interest. (22)

सो होइ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

६. अभिगम रुचि-जिसने ११ अंग, प्रकीर्णक, दृष्टिवाद आदि श्रुतज्ञान अर्थसहित प्राप्त किया है, वह अभिगम रुचि है ॥२३॥

(6) **Grasp Interest**–Who has grasped the śruta knowledge with meaning, of 11 aṅgas, prakirṇakas and dṛṣṭivāda, that is grasp interest. (23)

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहि नयविहीहि य, वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥२४॥

७. विस्तार रुचि-सभी प्रमाणों और सभी नयविधियों से द्रव्यों के सभी भाव जिसे उपलब्ध-ज्ञात हो गये हैं, उसे विस्तार रुचि जानना चाहिए ॥२४॥

(7) **Complete Course interest**–Who has known all the modifications by all pramāṇas and nayas, that is complete course interest. (24)

दंसण-नाण-चरित्ते, तव-विणए सच्च-समिइ-गुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥२५॥

८. क्रिया रुचि–दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति तथा गुप्तियों में जो क्रियाभाव रुचि है, वह निश्चय ही क्रिया रुचि है ॥२५॥

(8) Interest to religious activities–The interest in practising of faith, knowledge, conduct, penance, modesty, circumspections etc., that is interest to religious activities. (25)

अणभिग्गहिय–कुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो ।
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥२६॥

९. संक्षेप रुचि–जो वीतराग-प्रवचन में विशारद नहीं है और शेष अन्य मतों पर भी जिसकी गृहीत बुद्धि नहीं है, जिसने कुदृष्टि भी ग्रहण नहीं की है, वह संक्षेप रुचि होता है, ऐसा समझना चाहिए ॥२६॥

(9) Brief interest–Who is not well-versed in sacred doctrines of Jinas, and has not intellect to adopt other creeds, neither he belonged to wrong beliefs, that should be known having brief interest. (26)

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च ।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥२७॥

१०. धर्मरुचि–जो जिनेन्द्र-कथित अस्तिकाय धर्म, श्रुतधर्म और चारित्रधर्म पर श्रद्धान करता है, वह निश्चय ही धर्मरुचि होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥२७॥

(10) Religious interest–Who believes the truths explained by Jinas about fundamentals, elements, śruta and conduct order, he is of religious interest, it should be known. (27)

परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२८॥

१. परमार्थ को जानना, उसका चिन्तन करना, २. सुदृष्टिवान परमार्थ के तत्वद्रष्टाओं के गुणगान तथा उनकी सेवा करना ३. सम्यक्त्वभ्रष्ट और कुदर्शनी (मिथ्यात्वी) का वर्जन करना, उनसे दूर रहना, यह सम्यक्त्व का श्रद्धान है। (इन तीन गुणों से सम्यक्त्वी पहचाना जा सकता है) ॥२८॥

To know the ultimate truth and pondering over it, devotion, servitude and appraisal of wise and fix in right faith, avoiding of schismatical and heretic tenets, it is right belief. (By these three qualities right-faithed person can be recognised.) (28)

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्त-चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥

सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं होता किन्तु सम्यक्त्व बिना चारित्र के हो सकता है। सम्यक्त्व और चारित्र एक साथ (युगपत्) भी हो सकते हैं। किन्तु चारित्र से पहले सम्यक्त्व होना अनिवार्य है ॥२९॥

Right conduct cannot be without right belief but right belief may be without right conduct. Faith and conduct may originate altogether, but right conduct must precede right faith. (29)

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥३०॥

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र गुण नहीं होता, चारित्र गुण के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण (अनन्त चिदानन्द) नहीं होता ॥३०॥

Right knowledge cannot be without right faith and without right knowledge right conduct may not take place, without right conduct salvation cannot be obtained and without salvation there cannot exist the eternal bliss. (30)

निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥३१॥

१. निःशंका २. निष्कांक्षा ३. निर्विचिकित्सा (धर्म फल के प्रति सन्देह न होना) ४. अमूढ़दृष्टि ५. उपबृंहण (गुणीजनों की प्रशंसा से गुणों का वर्धन करना) ६. स्थिरीकरण ७. वात्सल्य और ८. प्रभावना–ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ॥३१॥

There are eight essentials of right faith (1) doubtlessness (about tenets) (2) desirelessness (of heretic creeds) (3) No suspicion about the fruits of religious activities (4) undelusioned belief (5) Appraisal of wises (6) to make others stable in religion (7) affection to co-religious persons and (8) propagating the religion. (31)

सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठाणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥

सम्यक्चारित्र

चारित्र पाँच प्रकार का है–१. सामायिक २. छेदोपस्थापनीय ३. परिहारविशुद्धि ४. सूक्ष्मसंपराय और–॥३२॥

Right Conduct

Conduct is five fold –(1) Sāmāyika (2) Chedopasthāpanīya (3) Parihāraviśuddhi (4) Sūkṣma-samparāya and (5) Yathākhyata. (32)

अकसायं अहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा ।
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥३३॥

५. यथाख्यात चारित्र, यह सर्वथा कषाय रहित होता है तथा यह छद्मस्थ और केवली–दोनों को होता है। ये चारित्र कर्म के संचय को रिक्त (खाली) करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र कहा गया है ॥३३॥

The fifth conduct is perfectly devoid of passions. It is to Kevalins and great monks. These conducts exhaust the accumulation of karmas, hence these are called conducts. (33)

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरऽब्भन्तरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो ॥३४॥

सम्यक्तप–

तप दो प्रकार का कहा गया है–१. बाह्य और २. आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है और आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का ही है ॥३४॥

Right Penance

Penance is said of two kinds–(1) external and (2) internal. External penance is of six types and so the internal penance is also of six types. (34)

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥३५॥

आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से कर्म-आस्रवों का निरोध करता है और तप से परिशुद्ध होता है ॥३५॥

Soul cognises fundamental elements like soul, non-soul etc., by knowledge, believes by faith, checks inflow of karmas by conduct and purifies itself by penances. (35)

खवेत्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमन्ति महेसिणो ॥३६॥

–त्ति बेमि ।

सभी दुःखों से मुक्त होने के लिए महर्षि संयम और तप के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करते हैं ॥३६॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

For being free from all pains and miseries, great sages destructing previous accumulated karmas by restrain and penance, obtain liberation–the final deliverance. (36)

–Such I Speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–मोक्ष का मार्ग (उपाय, साधन, कारण) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप हैं। उससे सिद्धि-गमन रूप जो गति है, वह मोक्ष मार्ग गति है ।

गाथा २–प्रस्तुत में ज्ञान को पहले रखा है, दर्शन को बाद में। लगता है, यह व्यवहार में अध्ययन, जानकारी आदि से सम्बन्धित ज्ञान है, जो सम्यग्दर्शन से पूर्व वास्तव में अज्ञान ही रहता है। सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन के उपसंहार (गा. ३०) में "**नादंसणिस्स नाणं**" कहा है।

यहाँ दर्शन से सम्यग्दर्शन अभिप्रेत है, सामान्य बोधरूप चक्षु-अचक्षु आदि दर्शन नहीं। तप भी चारित्र का ही एक रूप है।

सम्यग्ज्ञान आदि तीनों या चारों सम्मिलित रूप से मोक्ष के कारण–साधन हैं, पृथक्-पृथक् नहीं हैं। अतः "**एव मग्गमणुपत्ता**" में मार्ग के लिये एक वचन प्रयुक्त है।

गाथा ४–प्रस्तुत में श्रुतज्ञान का पहले उल्लेख है। टीकाकारों की दृष्टि में यह इसलिये है कि मति आदि अन्य सभी ज्ञानों का स्वरूपज्ञान श्रुतज्ञान से होता है। अतः व्यवहार में श्रुत की प्रधानता है।

"**आभिनिबोधिक**" मति ज्ञान का ही दूसरा नाम है। इन्द्रिय और मन का अपने-अपने शब्दादि विषयों का बोध अभिमुखतारूप से नियत होने के कारण इसे आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं।

गाथा ६–गुणों का आश्रय–आधार द्रव्य है। जीव में ज्ञानादि अनन्त गुण हैं। अजीव पुद्गल में रूप, रस आदि अनन्त गुण हैं। धर्मास्तिकाय आदि में भी गतिहेतुता आदि अनन्त गुण हैं। द्रव्य का लक्षण सत् है। सत् का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य है। पर्याय दृष्टि से द्रव्य प्रतिक्षण उत्पन्न विनष्ट होता रहता है, और ध्रौव्यत्व गुण की दृष्टि से वह मूल स्वरूपतः त्रिकालावस्थायी है, शाश्वत है।

एक द्रव्य के आश्रित गुण होते हैं। अर्थात् जो द्रव्य के सम्पूर्ण भावों में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं में अनादि अनन्त प से सदा काल रहते हैं, वे गुण हैं। द्रव्य कभी निर्गुण नहीं होता। गुण स्वयं निर्गुण होते हैं। अर्थात् गुणों में अन्य गुण नहीं ते।

गुणों के दो भेद हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व और अगुरुलघुत्व ये छह सामान्य गुण हैं, जो सामान्य प से प्रत्येक जीव-अजीव द्रव्यों में पाये जाते हैं। जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि विशेष गुण हैं, जो अजीव द्रव्य नहीं होते। पुद्गल अजीव में रूप, रस, गन्ध आदि विशेष गुण हैं, जो जीव द्रव्य में नहीं होते। प्रतिनियत गुण विशेष होते -जिसके १६ भेद हैं।

सहभावी गुण होते हैं, और क्रमभावी पर्याय। एक समय में एक गुण की एक पर्याय ही होती है। एक साथ अनेक पर्याय भी नहीं होतीं। वैसे अनन्त गुणों की दृष्टि से एक-एक पर्याय मिलकर एक साथ अनन्त पर्याय हो सकती हैं। क्रमभाविता क गुण की अपेक्षा से है।

पर्याय के मुख्यरूप से दो भेद हैं। व्यंजन पर्याय (द्रव्य के प्रदेशत्व गुण का परिणमन, विशेष कार्य) और अर्थपर्याय देशत्व गुण के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण गुणों का परिणमन)। इनके दो भेद हैं-स्वभाव और विभाव। पर के निमित्त के बिना परिणमन होता है वह स्वभाव पर्याय है। और पर के निमित्त से जो होता है, वह विभाव पर्याय है।

गाथा १०-काल का लक्षण वर्तना है। जीव और अजीव सभी द्रव्यों में जो परिणमन होता है उसका उपादान स्वयं वे व्य होते हैं और उनका निमित्त कारण काल को माना है। काल के अपने परिणमन में भी स्वयं काल ही निमित्त है।

काल द्रव्य है, अस्तिकाय नहीं है; चूँकि वह एक समय रूप है; प्रदेशों का समूह रूप नहीं है। भगवती सूत्र (१३/१४) में ल को जीव-अजीव की पर्याय कहा है। काल के समय (अविभाज्य रूप सर्वाधिक सूक्ष्म अंश) अनन्त हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार दिन, रात्रि आदि रूप व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्र (ढाईद्वीप) प्रमाण है। दिगम्बर परम्परा के नुसार काल लोकव्यापी तथा अणुरूप है। रत्नों की राशि के रूप में लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है।

गाथा ३२-३३-कर्मों के आश्रव को रोकना संवररूप चारित्र है। कर्मों के पूर्वबद्ध चय को तप से रिक्त करना, क्षय रना निर्जरारूप चारित्र है। प्रस्तुत अध्ययन में चारित्र की उक्त दोनों व्याख्यायें हैं। एक है "**चयरित्तकरं चारित्तं**-(गाथा-३३) ौर दूसरी है-**चरित्तेण निगिण्हाई तवेण परिसुज्झइ** (गाथा-३५)। अन्तिम शुद्धि तपरूप चारित्र से ही होती है।

Salient Elucidations

Gāthā 1–The path (means, cause) of salvation is knowledge, faith, conduct, penance. The rocess to move on this path, that is way or movement to the path of liberation.

Gāthā 2–Here the knowledge is placed first and faith after that. It seems that knowledge here imply meant for study in behaviour and awareness, which really remains merely knowledge (may it e called as ignorance of truth and untruth) before the attainment of right faith. Only by right faith the nowledge turns to right knowledge. That is why it is said in the 30th couplet of this hapter–**Nādaṁsaṇissa Nāṇaṁ**–meaning without right faith the right knowledge is not possible.

Here the right faith is intended by the word darśana (दर्शन) not perception–the undiffentiating nowledge by eyes, mind and other senses.

Penance is also a form of conduct.

Right knowledge etc., three or four causes are unitedly means of salvation, separately none of hem can accomplish the aim. Hence singular number is used for path in **eya maggamaṇupattā.**

Gāthā 4–Here the śruta-knowledge enumarated first. In the opinion of commentators the cause f this is–conception of all the other kinds of knowledges–mati knowledge etc.,–can be obtained by ruta knowledge only. So in practical affairs or practically śruta knowledge is foremost.

Ābhinibodhika is the other name of mati-knowledge. The knowledge-incliningness of mind and senses being definite of their subjects, it is called Ābhinibodhika knowledge.

Gāthā 6–Substance substrates attributes. Soul has infinite attributes like knowledge etc. Matter also has infinite attributes like colour, taste etc. Likewise Dharmāstikāya also has infinite attributes, as–fulcrum of motion. The characterstic of substance is to be permanent-existence–to be. The characterstic of permanency–existence is, origination, destruction and stableness. According to the viewpoint of modifications the substance destructs every moment and by the viewpoint of attribute of stability it is eternal and exists in all the three periods of time–past, present, future.

Substance is the substratum of attributes. It means, the attributes remains in all the conditions of substance from beginningless to endless times. Substance can never be without attributes; but attributes have no other attributes inherit them.

Attributes are of two types–(1) general or common and (2) special or characterstical. Astitva, Vastutva, Dravyatva, Prameyatva, Pradeśatva and Agurulaghutva–these six are common attributes which are found in all the substances–soul, non-soul–alike. Soul has special attributes–knowledge, faith, conduct, bliss etc., which have no existence in non-soul substances. The special attributes of Matter are–form, colour, taste, smell etc., which are not found in soul substance. Assigned attributes to a substance are called special attributes and they are of sixteen kinds.

Attributes remain together and modification in due order. Only one modification of one attribute may occur in a moment, many modifications at a time can never take place. But regarding infinite attributes, taking one modification of every attribute, thus modifications may be infinite togetherly at a moment. Due order of modifications is settled taking one attribute in view.

There are two kinds of modifications in chief. Vyañjana modification (changes or special work of pradeśatva attribute of substance) and Artha modification (changes of all other attributes of substance except pradeśatva attribute). These also have two divisions–natural and unnatural. The changes without other external causes are natural modifications and the un-natural modications occur due to the other external causes.

Gāthā 10–The characterstics of Time is change (duration). The changes take place in other substances like soul, non-soul etc., the eminent causes for these changes are the substances themselves; but the efficient cause is Time. Time itself is the efficient and eminent cause of its own changes

Kāla (Time) is a substance; but not an Astikāya, because it is not a group of pradeśas. Time is described as a modification of soul and non-soul substances in Bhagavatī sūtra (13/14). The samayas (undivisible smallest particles) of Time are infinite in number.

According to the Śwetāmbara tradition the practical time which is behavioural like day, night etc., is limited to men's abode, i.e., two and a half great islands. According to Digambara tradition it is wide-spread upto loka–the whole universe. Like the heap of jewels each Kālāṇu is set on each pradeśa of lokākāśa.

Gāthā 32-33–To obstruct the inflow of karmas is stoppage conduct. Shedding off the formerly accumulation of heap of karmas is annihilation conduct. Both the treatises of conduct are found in this chapter. One is–**Cayarittakaraṁ cārittaṁ;** (Gāthā 33); and the second is–**carittena nigiṇhāi taveṇa parisujjhai** (gāthā 35).The ultimate purification is done by penance only.

卐

उन्तीसवाँ अध्ययन : सम्यक्त्व पराक्रम

र्गलोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सम्यक्त्व पराक्रम है। इस अध्ययन द्वारा सम्यक्त्व में पराक्रम करने के लिए ꣿ दिशा प्राप्त होती है। कुछ आचार्यों ने इस अध्ययन का नाम 'अप्रमादश्रुत' दिया है तो कुछ ने ीतरागश्रुत'। लेकिन प्रस्तुत अध्ययन की विषयवस्तु पर गंभीर विचार करने से 'सम्यक्त्व पराक्रम' नाम ही धिक उचित प्रतीत होता है।

पिछले मोक्ष-मार्ग-गति अध्ययन में मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये गये थे। उनमें से एक दर्शन– यग्दर्शन–अथवा सम्यक्त्व भी था तथा इसमें पराक्रम करने की प्रेरणा भी दी गई थी।

प्रस्तुत अध्ययन 'सम्यक्त्व पराक्रम' में एक दिशा–निर्देश किया गया है कि सम्यक्त्व में पराक्रम किस ार किया जाय।

साधक के मन-मस्तिष्क में ये प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं कि संवेग, निर्वेद, श्रद्धा (धर्मश्रद्धा), शुश्रूषा– ा, वैयावृत्य, आलोचना, निन्दा, गर्हा तथा अन्य ऐसी विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो साधक जीवन में जाती हैं–करने का निर्देश गुरुजनों द्वारा दिया जाता है, उन क्रियाओं का कुछ फल होता भी है या ं? और यदि होता है तो क्या और किस रूप में होता है, साधक की आत्मा को क्या लाभ होता है–क्या ेशिष्ट उपलब्धि होती है इनसे ?

इस अध्ययन में ऐसे ही ७३ प्रश्न संकलित हैं और उनके समाधान दिये गये हैं।

प्रश्न छोटे-छोटे हैं और उत्तर भी संक्षिप्त हैं; किन्तु संक्षिप्त उत्तरों में गहरा रहस्य भरा है।

हम पहले ही प्रश्न संवेग को लें। इसके उत्तर में धर्म श्रद्धा से लेकर तीसरे जन्म में मोक्ष प्राप्ति तक का ा बताया गया है।

इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के उत्तर भी हैं।

छोटे प्रश्नों के समाधान में भी परिपूर्णता दृष्टिगोचर होती है।

प्रश्न और उनके उत्तरों का क्रम सर्वथा व्यवस्थित है। प्रश्नों का प्रारम्भ संवेग–मोक्षाभिलाषा से होता है ी प्रथम प्रश्न में मोक्ष की अभिलाषा है और अन्तिम प्रश्न में अकर्मता सिद्धि (मुक्ति) की प्ररूपणा है।

साधक जीवन का प्रारम्भ भी मोक्षाभिरुचि–मोक्षाभिलाषा से होता है और उसका चरम लक्ष्य सिद्धि ही

यह अध्ययन प्रश्नोत्तर शैली में रचित है। संपूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र में जितने विषयों का वर्णन हुआ है, सबसे संबंधित प्रश्नों का इस अध्ययन में समाधान प्रस्तुत हुआ है। इसी कारण इस अध्ययन को सम्पूर्ण ाराध्ययन सूत्र का हार्द कहा गया है।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर साधक की समस्त आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत ययन में सम्प्राप्त है।

प्रस्तुत अध्ययन में ७३ प्रश्न और उनके समाधान तथा ७४ सूत्र हैं।

CHAPTER 29
EXERTION IN RIGHT FAITH

Foreview

This chapter is named as Exertion in Right Faith. By this chapter we get a directive line for exertion in right faith. Some preceptors called it by name Apramādaśruta ànd some entitled it as Vītarāgaśruta. But thinking deeply at the subject matter of this chapter the name Samyaktva Parākrama or Exertion in Right Faith seems more correct.

In the previous twentyeighth chapter four causes for obtaining liberation were described. Among them one was right faith and inspiration was also made to exert in it.

In this chapter a directive line is set that how to exert in right faith.

It is quite natural that the heart and head of an adept may be engrossed by some questions, like–longing for salvation, disgust to worldly object, faith in religion, servitude, rendering service, confession of slips, blemishness and other such activities which are done in adept's life-order–and ordered by preceptors-preachers to do. Those activities bear any fruits or not ? And if any fruits occur then what and in which form ? What benefits get the soul of adept ? What special exalts he attain by these activities ?

In this chapter 73 questions of this type are compiled and answered with due course.

Questions are short structured and the answers are also brief; but in these short answers the great secret is filled.

We may take the first question for example. It is–longing for salvation? In its reply beginning from faith in religion to obtain liberation in third life (existence)–this benefit is described.

Such are the answers of other questions.

Completeness may be visualised in the pacification of short questions.

The order of questions and answers is totally in accordance. The questions begin with desire of liberation and end in the process of liberation.

Adept's life also begins with inclination and desire of salvation and his ultimate aim is emancipation.

This chapter is constructed in question-answer style. The subjects described in whole Uttarādhyayana sūtra, all the questions regarding them have been pacified in this chapter. That is why, it is called as the core of whole Uttarādhyayana sūtra.

Thinking with keen and subtle view point, all the spiritual querries have been pacified here.

In the present chapter there are 73 questions and their answers and 74 maxims.

एगुणतीसइमं अज्झयणं : सम्मत्तपरक्कमे
एकोनत्रिंश अध्ययन : सम्यक्त्व-पराक्रम

सूत्र १–सुयं मे आउसं ! तेण भगवया एवमक्खायं–इह खलु सम्मत्तपरक्कमे नाम अज्झयणे मणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्दहित्ता, पत्तियाइत्ता, रोयइत्ता, फासइत्ता, लइत्ता, तीरइत्ता, किट्टइत्ता, सोहइत्ता, आराहइत्ता, आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा ज्झन्ति, बुज्झन्ति, मुच्चन्ति, परिनिव्वायन्ति, सव्वदुक्खाणमन्तं करेन्ति ।

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ,

तं जहा–

१. संवेगे
२. निव्वेए
३. धम्मसद्धा
४. गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया
५. आलोयणया
६. निन्दणया
७. गरहणया
८. सामाइए
९. चउव्वीसत्थए
१०. वन्दणए
११. पडिक्कमणे
१२. काउस्सग्गे
१३. पच्चक्खाणे
१४. थवथुइमंगले
१५. कालपडिलेहणया
१६. पायच्छित्तकरणे
१७. खमावणया
१८. सज्झाए
१९. वायणया
२०. पडिपुच्छणया
२१. परियट्टणया
२२. अणुप्पेहा
२३. धम्मकहा
२४. सुयस्स आराहणया
२५. एगग्गमणसंनिवेसणया
२६. संजमे
२७. तवे
२८. वोदाणे
२९. सुहसाए
३०. अप्पडिबद्धया
३१. विवित्तसयणासणसेवणया
३२. विणियट्टणया
३३. संभोगपच्चक्खाणे
३४. उवहिपच्चक्खाणे
३५. आहारपच्चक्खाणे
३६. कसायपच्चक्खाणे
३७. जोगपच्चक्खाणे
३८. सरीरपच्चक्खाणे
३९. सहायपच्चक्खाणे
४०. भत्तपच्चक्खाणे
४१. सब्भावपच्चक्खाणे
४२. पडिरूवया

४३. वेयावच्चे
४४. सव्वगुणसंपण्णया
४५. वीयरागया
४६. खन्ती
४७. मुत्ती
४८. अज्जवे
४९. मद्दवे
५०. भावसच्चे
५१. करणसच्चे
५२. जोगसच्चे
५३. मणगुत्तया
५४. वयगुत्तया
५५. कायगुत्तया
५६. मणसमाधारणया
५७. वयसमाधारणया
५८. कायसमाधारणया
५९. नाणसंपन्नया
६०. दंसणसंपन्नया
६१. चरित्तसंपन्नया
६२. सोइन्दियनिग्गहे
६३. चक्खिन्दियनिग्गहे
६४. घाणिन्दियनिग्गहे
६५. जिब्भिन्दियनिग्गहे
६६. फासिन्दियनिग्गहे
६७. कोहविजए
६८. माणविजए
६९. मायाविजए
७०. लोहविजए
७१. पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए
७२. सेलेसी
७३. अकम्मया

सूत्र १–हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान ने इस प्रकार कहा है–

इसी जिन प्रवचन में काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का प्रतिपादन किया है, जिसका सम्यक् श्रद्धान करके, प्रतीति करके, रुचि करके, स्पर्श करके, पालन करके, पार करके, कीर्तन करके, शुद्ध करके, आराधना करके, गुरु-आज्ञा के अनुसार अनुपालन करके बहुत से जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करते हैं।

उसका यह अर्थ है जो इस प्रकार कहा जाता है। जैसे कि–

१. संवेग
२. निर्वेद
३. धर्मश्रद्धा
४. गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा
५. आलोचना
६. निन्दा (निन्दना)
७. गर्हा (गर्हणा)
८. सामायिक
९. चतुर्विंशति स्तव
१०. वन्दना
११. प्रतिक्रमण
१२. कायोत्सर्ग
१३. प्रत्याख्यान
१४. स्तव-स्तुति मंगल
१५. काल प्रतिलेखना
१६. प्रायश्चित्त
१७. क्षामणा-क्षमापना
१८. स्वाध्याय

१९. वाचना
२०. प्रतिप्रच्छना
२१. परावर्तना
२२. अनुप्रेक्षा
२३. धर्मकथा
२४. श्रुताराधना
२५. मन की एकाग्रता
२६. संयम
२७. तप
२८. व्यवदान-विशुद्धि
२९. सुखशात
३०. अप्रतिबद्धता
३१. विविक्त शयनासन सेवन
३२. विनिवर्तना
३३. संभोग-प्रत्याख्यान
३४. उपधि-प्रत्याख्यान
३५. आहार-प्रत्याख्यान
३६. कषाय-प्रत्याख्यान
३७. योग-प्रत्याख्यान
३८. शरीर-प्रत्याख्यान
३९. सहाय-प्रत्याख्यान
४०. भक्त-प्रत्याख्यान
४१. सद्भाव-प्रत्याख्यान
४२. प्रतिरूपता
४३. वैयावृत्य
४४. सर्वगुणसंपन्नता
४५. वीतरागता
४६. क्षान्ति (क्षमा)
४७. निर्लोभता
४८. आर्जव-ऋजुता
४९. मार्दव-मृदुता
५०. भावसत्य
५१. करण-सत्य
५२. योग-सत्य
५३. मनोगुप्ति
५४. वचनगुप्ति
५५. कायगुप्ति
५६. मनःसमाधारणता
५७. वाक्-समाधारणता
५८. काय-समाधारणता
५९. ज्ञानसंपन्नता
६०. दर्शनसंपन्नता
६१. चारित्रसंपन्नता
६२. श्रोत्र-इन्द्रिय-निग्रह
६३. चक्षु-इन्द्रिय-निग्रह
६४. घ्राण-इन्द्रिय-निग्रह
६५. जिह्वा-इन्द्रिय-निग्रह
६६. स्पर्श-इन्द्रिय-निग्रह
६७. क्रोधविजय
६८. मानविजय
६९. मायाविजय
७०. लोभविजय
७१. प्रेय-द्वेष-मिथ्यादर्शन विजय
७२. शैलेशी
७३. अकर्मता

Maxim 1–O Long-lived (Jambūswāmī) I (Sudharmā) myself heard, that reverend agawāna said thus–

In this very Jina-dialect Śramaṇa Bhagawāna Mahāvīra of Kāśyapa lineage, has :cepted the chapter named Exertion in Right Faith. By fixing due faith in it, giving :dence to it, believing it, afflicting to it, practising it, complying with it, studying it, derstanding it, propiliating it and duly practising it according to the ordain of preceptor iny souls (persons) obtain enlightenment, perfection, liberation, final liverance–beatitude and end all miseries.

Its meaning and import have been elaborated thus–

1. Longing for salvation
2. Disgust for worldly objects
3. Faith in the religion
4. Servitude to preachers and co-religionists
5. Confession of slips (sins) before teacher
6. Self-repentance of sins
7. Repentance-decrial of sins before teacher
8. Moral and intellectual purity of soul–practice of equanimity
9. Singing praise of 24 tīrthaṁkaras.
10. Paying reverence (to bow down with devotion) to the preceptors, preachers and teachers
11. Expiation for slips or sins
12. Lack of affection towards the body
13. Formal renunciation
14. Praises and hymns
15. Inspection of time–to keep right time
16. Exculpation
17. Begging forgiveness
18. Study (of holy scriptures)
19. Teaching of sacred scriptures
20. Questioning to the teacher
21. Repetition of learnt knowledge
22. Pondering over learnt knowledge
23. Giving religious discourse
24. Propiliation of sacred texts
25. Concentration of mind at one object
26. Restrain
27. Penance
28. Cutting off accumulated karmas–purification
29. Happiness due to renunciation of pleasures
30. Non-attachment
31. Utilisation of unfrequented lodging and bed
32. Turning from the empirical objects
33. Renunciation of co-enjoyments
34. Renouncing the things of use
35. Renunciation of food
36. Renouncement of passions
37. Renunciation of mental, vocal and bodily activities
38. Renouncing the body
39. Abandoning the help (company)
40. Abandonment of all kinds of foods, drinks–water
41. Perfect renunciation
42. Conforming to the standard
43. Rendering service to others
44. Acquistion of all virtues
45. Freedom from attachment– conquering attachment
46. Forgiveness–tolerance–patience
47. Greedlessness
48. Simplicity
49. Humility–modesty
50. Truthfulness of thoughts
51. Truthfulness of means, activities, deeds
52. Truthfulness of mind, speech and body
53. Restraint of mind
54. Restraint of speech
55. Restraint of body
56. Mind discipline
57. Speech discipline
58. Body discipline
59. Accomplishment of knowledge
60. Accomplishent of faith
61. Accomplishment of conduct
62. Subduing the sense of hearing (ear)
63. Subduing the sense of sight (eye)
64. Subduing the sense of smell (nose)

65. Subduing the sense of taste (tongue)
66. Subduing the sense of touch (body)
67. Conquering anger
68. Conquering pride
69. Conquering deceit
70. Conquering greed
71. Conquering affection-aversion-wrong belief
72. Steadfastness like rock– stability
73. Freedom from karmas

सूत्र २–संवेगेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । गन्ताणुबन्धिकोह-माण-माया-लोभे खवेइ । नवं च कम्मं न बन्धइ । तप्पच्चइयं च णं च्छत्त-विसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव ग्गहणेणं सिज्झइ । सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥

सूत्र २–(प्रश्न) भगवन् ! संवेग (मोक्षाभिरुचि–मोक्षाभिलाषा) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) संवेग से जीव अनुत्तर धर्मश्रद्धा प्राप्त करता है। अनुत्तर धर्मश्रद्धा से संवेग शीघ्र ही आता है। न्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है। नये कर्मों (मिथ्यात्व जनित कर्मों) का बन्ध नहीं ा। उस (अनन्तानुबन्धी कषाय–क्षय) के निमित्त से मिथ्यात्व विशुद्धि करके दर्शन का आराधक हो जाता दर्शन-विशुद्धि से विशुद्ध होकर कितने ही (जिन्होंने उत्कृष्ट दर्शन-विशुद्धि की है। जीव उसी भव (जन्म) सिद्ध हो जाते हैं और कितने ही जीव दर्शन-विशुद्धि से विशुद्धि होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं ते। (तीसरे जन्म में तो निश्चित ही सिद्ध हो जाते हैं)।

Maxim 2. (Q). Reverend sir (Bhagawan) ! What does the soul attain by longing for vation ?

(A). By longing for salvation soul obtains extreme faith in religion. By extreme faith he quires longing for liberation quickly. He destroys beginningless-bound anger, pride, eit-greed. He does not bind new karmas, which are produced by wrong belief. By tructing infinitely-bound karmas, purifying the wrong belief, he becomes the practiser of ht-faith. Purified by the purification of faith many souls (who extremely purified the faith) ome liberated by the same birth and many souls becoming purified by faith-purification, not cross third life, meaning they definitely obtain salvation by third birth.

सूत्र ३–निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निव्वेएणं दिव्व-माणुस-तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ । सव्वविसएसु ज्जइ । सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भ-परिच्चायं करेइ । आरम्भपरिच्चायं करेमाणे ारमग्गं वोच्छिन्दइ, सिद्धिमग्गे पडिवन्ने य भवइ ॥

सूत्र ३–(प्रश्न) भगवन् ! निर्वेद (भव वैराग्य) से जीव को क्या प्राप्ति होती है?

(उत्तर) निर्वेद से जीव देव-मनुष्य-तिर्यंच सम्बन्धी कामभोगों से शीघ्र वैराग्य–विरक्ति (निर्वेद) को प्राप्त ता है। सभी प्रकार के विषयों से विरक्त होता है। सभी विषयों से विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग ता है। आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है तथा सिद्धि-मार्ग को प्राप्त ता है।

Maxim 3–(Q). Bhagawan ! What does the soul get by disgust towards worldly objects?

(A). By disgust towards worldly objects soul soon becomes apathetic to the pleasures pertaining god-men-animals. Disinclined to all amusements. Thereby he ceases to engage in any undertaking. Renouncing the undertakings he discards the path of world and takes the path of salvation.

सूत्र ४–धम्मसद्धाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ । अगारधम्मं च णं चयइ । अणगारे णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयण-भेयण-संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं निव्वेत्तइ ॥

सूत्र ४–(प्रश्न) भगवन् ! धर्मश्रद्धा से जीव को क्या उपलब्ध होता है?

(उत्तर) धर्मश्रद्धा से जीव (साता वेदनीय कर्म से प्राप्त) साता-सुखों की आसक्ति से विरक्त होता है। अगार धर्म (गृहस्थ धर्म) का त्याग करता है। अनगार बनकर जीव छेदन-भेदन आदि शारीरिक तथा संयोग आदि मानसिक दुःखों का विच्छेद (विनाश) कर देता है और अव्याबाध सुख को प्राप्त करता है।

Maxim 4. (Q). Bhagawan ! By putting faith in religion, what does the soul obtain?

(A). By putting faith in religion, soul becomes indifferent to the pleasures produced by auspicious emotion evoking karmas. Renounces the religion of a householder. Becoming quit-home mendicant he puts an end to bodily agonies of cutting-piercing and mental sufferings of painy unions and attains unrestricted beatitude.

सूत्र ५–गुरु-साहम्मियसुस्सूसणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गुरु-साहम्मियसुस्सूसणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ । विणयपडिवन्ने य णं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देव-दोग्गईओ निरुम्भइ । वण्ण-संजलण भत्ति-बहुमाणयाए मणुस्स-देवसोग्गईओ निबन्धइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ ।

पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ । अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता भवइ ॥

सूत्र ५–(प्रश्न) भगवन् ! गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा से जीव क्या (फल) प्राप्त करता है?

(उत्तर) गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा (सेवा) करने से जीव विनय प्रतिपत्ति को प्राप्त करता है। विनयप्रतिपन्न व्यक्ति गुरु की परिवाद आदि रूप आशातना नहीं करता। इससे वह नरक, तिर्यंच योनि, और देव-मनुष्य संबंधी दुर्गति का निरोध कर देता है। वर्ण (श्लाघा), संज्वलन (गुणों का प्रकाशन), भक्ति और बहुमान से मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगति का बन्ध करता है और श्रेष्ठ गति स्वरूप सिद्धि को विशुद्ध करता है। विनयमूलक सभी प्रशस्त (उत्तम) कार्यों को साधता (करता) है। बहुत से अन्य जीवों को भी विनयवान बनाने वाला होता है।

Maxim 5. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by servitude to preachers and co-religionists ?

(A). By servitude to preachers and co-religionists the soul obtains discipline. Being disciplined he shows no disrespect to teachers. Therely be checks the ill-existences of deities (gods), men, animal and hell. He binds the good existences of man and gods by zealous

aise, putting forth virtues, devotion and respect of teachers, he purifies the extreme istence of liberation. He does all the acts of humility and makes other many to be sciplined.

सूत्र ६–आलोयणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

आलोयणाए णं माया-नियाण-मिच्छादंसणसल्लाणं मोक्खमग्गविग्घाणं अणन्त संसारवद्धणाणं द्धरणं करेई । उज्जुभावं च जणयइ । उज्जुभावपडिवन्ने य णं जीवे अमाई इत्थीवेय-नपुंसगवेयं न बन्धइ । पुव्वबद्धं च णं निज्जरेइ ॥

सूत्र ६–(प्रश्न) भगवन् ! आलोचना (गुरुजनों के समक्ष अपने दोष स्पष्ट स्वर में व्यक्त करना) से जीव क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) आलोचना से मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले तथा अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले माया ल-कपट), निदान (तप आदि की विषय भोग सम्बन्धी फल भोगाकांक्षा) और मिथ्यादर्शन शल्य (कांटों) निकाल कर फैंक देता है (उखाड़ देता है)। ऋजुभाव (सरलता) को प्राप्त होता है। ऋजुभाव प्रतिपन्न व माया रहित होता है। वह स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का बन्ध नहीं करता और पूर्वबद्ध की निर्जरा करता

Maxim 6. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by confession of his own slips ns) before teacher in clear words ?

(A). By confession his own slips (sins) before teacher in clear words, he uproots the iritual thorns, which enhance the world and obstruct way of salvation–the deceit, volition esire of worldly pleasures as a fruit of penance etc.,) and wrong faith. Attains simplicity. / simplicity he becomes devoid of deceit. Whereby he does not accumulate the karmas ich are responsible to take birth as a woman or an eunuch and annihilates if these are und formerly.

सूत्र ७–निन्दणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निन्दणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ । पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढिं पडिवज्जइ। रणगुणसेढिं पडिवन्ने य णं अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ ॥

सूत्र ७–(प्रश्न) भगवन् ! निन्दना (स्वयं के दोषों का पश्चात्ताप) से जीव को क्या (फल) प्राप्त होता है?

(उत्तर) निन्दना (निन्दा) से पश्चात्ताप होता है और पश्चात्ताप द्वारा होने वाली विरक्ति से रण-गुणश्रेणि प्राप्त करता है। करण-गुणश्रेणि प्राप्त अनगार (साधु) मोहनीय कर्म को नष्ट करता है।

Maxim 7. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by self repentance of his own ns?

(A). By repenting for his sins the soul obtains remorse and through remorse he attains e ladder of spiritual thoughts, which is virtuous. The mendicant opulent with virtuous iritual current destroys the infatuation karma.

सूत्र ८–गरहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गरहणयाए णं अपुरक्कारं जणयइ । अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो यत्तेइ । पसत्थजोग-पडिवन्ने य णं अणगारे अणन्तघाइपज्जवे खवेइ ॥

सूत्र ८–(प्रश्न) भगवन् ! गर्हा–गर्हणा (दूसरे के सामने दोषों का प्रकाशन) से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) गर्हा (गर्हणा) से जीव को अपुरस्कार (गौरव का अभाव) प्राप्त होता है। अपुरस्कृत होने से जीव अप्रशस्त योगों (कार्यों) से निवृत्त होता है (प्रशस्त योगों–कार्यों से युक्त होता है।) प्रशस्त योगों से प्रतिपन्न अनगार आत्मा के गुणों का घात करने वाले (ज्ञानावरण, मोहनीय आदि) कर्मों की अनन्त पर्यायों को क्षय करता है।

Maxim 8. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by decrial his sins, before others ?

(A). By decrial of his sins soul attains humility. Being humble he keeps off from demeritorious deeds and involves himself in meritorious deeds. Being opulent with auspicious deeds and energies destroys infinite modifications of vitiating karmas–like knowledge-obstructing karma, infatuation or delusion karma etc., which injures the virtues of soul.

सूत्र ९–सामाइए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ॥

सूत्र ९–(प्रश्न) भगवन् ! सामायिक (समभाव) से जीव को क्या उपलब्धि प्राप्त होती है?

(उत्तर) सामायिक द्वारा जीव सावद्ययोगों (पापकारी प्रवृत्तियों) से विरति को प्राप्त करता है।

Maxim 9. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by practice of equanimity ?

(A). By practice of equanimity soul attains disinclination from sinful activities.

सूत्र १०–चउव्वीसत्थएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ॥

सूत्र १०–(प्रश्न) भगवन् ! चतुर्विंशति-स्तव से जीव को क्या (लाभ) प्राप्त होता है?

(उत्तर) चतुर्विंशति-स्तव (चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति-स्तवन) से जीव दर्शनविशुद्धि प्राप्त करता है।

Maxim 10. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by singing praise of 24 tīrthaṁkaras ?

(A). By singing praise of 24 tīrthaṁkaras the soul attains purity of faith

सूत्र ११–वन्दणएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वन्दणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ । उच्चागोयं निबन्धइ । सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ ॥

सूत्र ११–(प्रश्न) भगवन् ! वन्दना से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) वन्दना से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है। उच्च गोत्र कर्म का बन्ध करता है। अप्रतिहत सौभाग्य को प्राप्त कर सर्वजनप्रिय होता है। उसकी आज्ञा सर्वत्र स्वीकार की जाती है। वह लोगों से दाक्षिण्य–लोकप्रियता प्राप्त करता है।

Maxim 11. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by paying reverence (bowing down with devotion) to preceptors, preachers and teachers ?

(*A*). By reverence to teachers etc., the soul destructs the karma of low lineage and umulates the karma of high lineage. He acquires wide fortuness and becomes dear to all. authority everywhere accepted and he attains general goodwill.

सूत्र १२–पडिक्कमणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिक्कमणेणं वयछिद्दाइं पिहेइ । पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे, असबलचरित्ते, अट्ठसु ग़णमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ॥

सूत्र १२–(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिक्रमण से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) प्रतिक्रमण से जीव अपने ग्रहण किये हुए व्रतों के छिद्रों (स्खलनाओं-दोषों-अतिचारों) को बन्द देता है। व्रतों के छिद्रों को बन्द करने वाला जीव आस्रवों का निरोध कर देता है, निर्दोष (अशबल) त्र का पालन करता है, समिति-गुप्तिरूप आठ प्रवचन-माताओं के पालन में सदा उपयोगयुक्त रहता है। त्र में एकरूप (अपुहत्त) होकर संयम में सम्यक्रूप से प्रणिहित–समाहित-चित्त होकर विचरण करता है।

Maxim 12. (*Q*). Bhagawan ! What does the soul obtain by expiation of sins ?

(*A*). By expiation of sins the soul obviates the transgressions of the vows he has epted; thereby he stops the karma-influx, practises pure conduct, always remains attentive ractise eight pravacana-mātā, united in conduct and restrain lives rooted in the right path.

सूत्र १३–काउस्सग्गेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

काउस्सग्गेणं ऽतीय-पडुप्पन्नं पायछित्तं विसोहेइ । विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए रियभारो व्व भारवहे, पसत्थज्झाणोवगए, सुहंसुहेणं विहरइ ॥

सूत्र १३–(प्रश्न) भगवन् ! कायोत्सर्ग (शरीर के प्रति ममत्व त्याग) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) कायोत्सर्ग से जीव अतीत (भूतकाल) और वर्तमान के प्रायश्चित्त योग्य अतिचारों का विशोधन ा है और प्रायश्चित्त से विशुद्ध हुआ जीव भार को उतार (हटा) देने वाले भारवाहक के समान शान्त– ामुक्त होकर प्रशस्त (शुभ) ध्यान में लीन हो जाता है तथा सुखपूर्वक विचरण करता है।

Maxim 13. (*Q*). Bhagawan ! What does the soul get by lack of affection towards body yotsarga) ?

(*A*). By lack of affection towards body the soul rectifies atonable transgressions of past present. Thus purified soul becomes light like a porter who has taken off his load, and s on happily concentrated in auspicious meditation.

सूत्र १४–पच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुम्भइ ।

सूत्र १४–(प्रश्न) भगवन् ! प्रत्याख्यान (संसार संबंधी विषयों के त्याग) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) प्रत्याख्यान से जीव आस्रवद्वारों (कर्मबन्ध के हेतुओं) का निरोध कर देता है।

Maxim 14. (*Q*). Bhagawan ! What does the soul obtain by formal renunciation tyākhyāna) ?

(*A*). By formal renunciation the soul shuts up the channels of karma-influx.

सूत्र १५–थव-थुइमंगलेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

थवथुइमंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त बोहिलाभं जणयइ । नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अन्तकिरियं कप्पविमाणोववत्तिगं आराहणं आराहेइ ॥

सूत्र १५–(प्रश्न) भगवन् ! स्तव-स्तुति-मंगल से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) स्तव-स्तुति-मंगल से जीव को ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधि (रत्नत्रय) की प्राप्ति होती है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधिलाभ संपन्न जीव अन्तक्रिया (मुक्ति) अथवा कल्पविमानों (वैमानिक देवों) में उत्पन्न होने के योग्य आराधना का आराधन करता है।

Maxim 15. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain from praises and hymns ?

(A). By praises and hymns the soul obtains wisdom consisting right knowledge-faith-conduct. Thereby the soul practises such propiliations which enable him either to attain salvation or to take birth in higher heavens as a god with great fortuness.

सूत्र १६–कालपडिलेहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कालपडिलेहणयाए णं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र १६–(प्रश्न) भगवन् ! काल की प्रतिलेखना (निरीक्षण) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) काल की प्रतिलेखना से (स्वाध्याय आदि धर्मक्रियाओं के लिए उपयुक्त समय का ध्यान रखने से) जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

Maxim 16. (Q). Bhagawan ! What does the soul get by inspection of time ?

(A). By inspection of time (keeping the remembrance of proper time for religious activities like study etc.,) the soul destructs knowledge obscuring karma.

सूत्र १७–पायच्छित्तकरणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ । सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ । आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥

सूत्र १७–(प्रश्न) भगवन् ! प्रायश्चित्त (पापों का विशोधन) करने से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रायश्चित्त करने से जीव पापकर्मों का विशोधन करके निरतिचार बनाता है। सम्यक्‌रूप से प्रायश्चित्त को स्वीकार करता हुआ साधक मार्ग (सम्यग्दर्शन) और मार्गफल (सम्यग्ज्ञान) को विशुद्ध करता है तथा आचार (चारित्र) और आचार फल (मोक्ष) की आराधना करता है।

Maxim 17. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by exculpation ?

(A). By exculpation the soul purifying the sinful deeds becomes faultless. Thereby he rectifies the path (right faith) and fruit of path (right knowledge) and propiliates the conduct and the fruit of conduct–liberation.

सूत्र १८–खमावणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ । पल्हायणभावमुवगए य सव्वपाण-भूय-जीवसत्तेसु मित्तीभावमुप्पाएइ । मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काउण निब्भए भवइ ॥

सूत्र १८–(प्रश्न) भगवन् ! क्षमापना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) क्षमापना से जीव को प्रह्लाद भाव (चित्त की प्रसन्नता) प्राप्त होता है। प्रह्लाद भाव को प्राप्त जीव प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति मैत्रीभाव उत्पन्न करता है। मैत्रीभाव को प्राप्त जीव (अपने) भावों विशुद्धि करके निर्भय हो जाता है।

Maxim 18. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by forgiveness ?

(A). By forgiveness, the soul begets the happiness of head and heart, By this happiness produces feelings of friendship towards all the living beings of world. By feelings of ndship he purifies his thoughts and becomes free from fear.

सूत्र १९–सज्झाएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र १९–(प्रश्न) भगवन् ! स्वाध्याय से जीव को क्या (लाभ) प्राप्त होता है?

(उत्तर) स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

Maxim 19. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by study of holy scriptures ?

(A). By study soul destructs the knowledge obscuring karma.

सूत्र २०–वायणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वायणाए णं निज्जरं जणयइ । सुयस्स य अणासायणाए वट्टए । सुयस्स अणासायणाए णाणे तित्थधम्मं अवलम्बइ । तित्थधम्मं अवलम्बमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥

सूत्र २०–(प्रश्न) भगवन् ! वाचना से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) वाचना से जीव कर्मों की निर्जरा करता है। श्रुत के अनुवर्तन (सतत पठन-पाठन) से (श्रुत की) शातना में प्रवर्तमान जीव तीर्थधर्म का अवलंबन (आश्रय) लेता है। तीर्थधर्म का अवलंबन लेता हुआ क कर्मों की महानिर्जरा और महापर्यवसान (कर्मों का सर्वथा अन्त करने वाला) होता है।

Maxim 20. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by teaching of sacred ptures ?

(A). By teaching the sacred scriptures soul annihilates the karmas. By ever reading and ce to read others, defiles not the scriptural knowledge. He takes the support of esteemed gion. By taking support of tīrthaṁkara's religion he thoroughly annihilates and npletely destroys karmas.

सूत्र २१–पडिपुच्छणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिपुच्छणयाए णं सुत्तऽत्थ-तदुभयाइं विसोहेइ । कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिन्दइ ॥

सूत्र २१–(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिप्रच्छना (पूर्व पठित शास्त्र के विषय में शंका निवारण के लिए प्रश्न ना) से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) प्रतिप्रच्छना से जीव सूत्र, अर्थ और तदुभय (दोनों के तात्पर्य) को विशुद्ध कर लेता है तथा -मोहनीय कर्म को विच्छिन्न कर देता है।

Maxim 21. (Q). Bhagawan ! What fruit does a soul get by questioning (to remove the ıbts in read scriptures) to the teacher ?

(A). By questioning, the soul obtains the correct comprehension of scriptures and their meanings-both and destroys the desire evoking infatuation karma.

सूत्र २२–परियट्टणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

परियट्टणाए णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥

सूत्र २२–(प्रश्न) भगवन् ! परावर्तना (पठित पाठ का पुनरावर्तन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) परावर्तना से जीव व्यंजन (शब्द पाठ) को प्राप्त कर व्यंजन लब्धि–पदानुसारिणी आदि लब्धि को प्राप्त कर लेता है।

Maxim 22. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul achieve by repetition of learnt knowledge ?

(A). By repetition of learnt knowledge, soul becoming master of consonants achieves the exalt of words i.e., he can recite the full line by hearing one word only.

सूत्र २३–अणुप्पेहाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ घणियबन्धणबद्धाओ सिढिलबन्धणबद्धाओ पकरेइ । दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ । तिव्वाणुभावाओ मन्दाणुभावाओ पकरेइ। बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ । आउयं च णं कम्मं सिय बन्धइ, सिय नो बन्धइ । असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ । अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तं संसारकन्तारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥

सूत्र २३–(प्रश्न) भगवन् ! अनुप्रेक्षा (सूत्र और उसके चिन्तन मनन) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) अनुप्रेक्षा से जीव आयु कर्म को छोड़कर (शेष) सात कर्म प्रकृतियों के प्रगाढ़ बन्धन को शिथिल बन्धन में परिणत कर देता है–शिथिल करता है। उनकी दीर्घकालीन स्थिति को अल्पकालीन कर देता है। तीव्र अनुभाव (अनुभाग) को मन्द अनुभाव कर देता है। बहुत प्रदेशाग्रों को अल्पप्रदेशाग्रों में परिणत करता है। आयु कर्म का कदाचित् बन्ध करता है, कदाचित् बन्ध नहीं भी करता है। असाता वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता। अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गतिरूप संसाररूपी वन को शीघ्र ही पार (वीयवयइ–व्यतिक्रम) कर लेता है।

Maxim 23. *(Q)*. Bhagawan ! What gain does the soul get by pondering over the learnt knowledge ?

(A). By pondering deeply over learnt knowledge, the soul loosens the rigid bondage of seven karmas (except age duration karma), he diminishes their (of seven karmas) long duration to short duration, mitigates intense fruition to dim, diminishes their huge mass (प्रदेशाग्र) to a few, binds age duration karma and even not binds–both are possible, does not accumulate inauspicious emotion evoking karma again and again, he crosses quickly the worldly forest of four existences, which is very long.

सूत्र २४–धम्मकहाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ । धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ । पवयणपभावे णं जीवे आगमिस्स भद्दत्ताए कम्मं निबन्धइ ॥

सूत्र २४-(प्रश्न) भगवन् ! धर्मकथा से जीव को क्या प्राप्त होता है?
(उत्तर) धर्मकथा (धर्मोपदेश) से जीव कर्मों की निर्जरा करता है तथा प्रवचन (शासन तथा सिद्धान्त) प्रभावना करता है। प्रवचन-प्रभावना से जीव भविष्य में शुभफल प्रदान करने वाले कर्मों का बन्ध करता

Maxim 24. (Q). Bhagawan ! What does the soul achieve by religious discourse ?
(A). By religious discourse the soul annihilates the karmas and spreads the influence of gious order and dogmas. By spreading religion he binds the karmas which bestow good ts in future.

सूत्र २५-सुयस्स आराहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ, न य संकिलिस्सइ ॥

सूत्र २५-(प्रश्न) भगवन् ! श्रुत (सूत्र-सिद्धान्त) की आराधना से जीव को क्या उपलब्धि होती है?
(उत्तर) श्रुत की आराधना-सम्यक् आसेवना से जीव अज्ञान (ज्ञान की न्यूनता अथवा मिथ्याज्ञान) का (क्षय) करता है तथा संक्लेश नहीं पाता।

Maxim 25. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by propiliating the sacred texts ?
(A). By propiliating the sacred texts the soul destroys the ignorance (lack of knowledge vrong knowledge) and experiences no miseries.

सूत्र २६-एगग्गमणसंनिवेसणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
एगग्गमणसंनिवेसणाए णं चित्तनिरोहं करेइ ॥

सूत्र २६-(प्रश्न) भगवन् ! मन को एकाग्रता में संनिवेश (स्थापित-स्थिर) करने से जीव क्या प्राप्त ता है?
(उत्तर) मन को एकाग्रता में संनिवेश करने से चित्त (वृत्तियों) का निरोध करता है।

Maxim 26. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by concentration of mind at one ect ?
(A). By concentration of mind at one object the soul checks up the activities of mind.

सूत्र २७-संजमेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ ॥

सूत्र २७-(प्रश्न) भगवन् ! संयम से जीव को क्या प्राप्त होता है?
(उत्तर) संयम (पालन करने) से जीव अनास्रवत्व (आते हुए नवीन कर्मों के निरोध) को प्राप्त करता है।

Maxim 27. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by restrain ?
(A). By practising restrain the soul stops the inflow of new karmas.

सूत्र २८-तवेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?
तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

सूत्र २८-(प्रश्न) भगवन् ! तप से जीव क्या प्राप्त करता है?
(उत्तर) तप से जीव (पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा करके) व्यवदान (विशुद्धि) को प्राप्त करता है।

Maxim 28. (Q). Bhagawan ! What does the soul achieve by penance ?

(A). By penance, annihilating the formerly accumulated karmas, the soul obtains purification.

सूत्र २९–वोदाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वोदाणेणं अकिरियं जणयइ । अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र २९–(प्रश्न) भगवन् ! व्यवदान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) व्यवदान से जीव को अक्रियता (मन-वचन-काय योगों की प्रवृत्ति से रहितता) प्राप्त होती है। अक्रियता होने के उपरान्त वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण दुःखों का अन्त (विनाश) कर देता है।

Maxim 29. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by purification (वोदाण) ?

(A). By purification the soul obtains freedom from activities of mind, speech and body. Thereby he becomes liberated, enlightened, emancipated, finally deliberated and puts an end to all miseries.

सूत्र ३०–सुहसाएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ । अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकम्पए, अणुब्भडे, विगयसोगे, चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र ३०–(प्रश्न) भगवन् ! सुख-शात से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) सुख-शात (वैषयिक सुखों की स्पृहा के शातन–निवारण–उपशान्तता) से (विषयों के प्रति–) अनुत्सुकता होती है, अनुत्सुकता से जीव अनुकम्पाशील, अनुद्धत (अणुब्भड) तथा विगतशोक–शोकरहित होकर चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय करता है।

Maxim 30. (Q). Bhagawan ! What does the soul get from the subduing of worldly pleasures ?

(A). By subduing the wishes of sensual pleasures the soul obtains non-eagerness towards sensual amusements. Thereby he becomes compassionate, proudless and devoid of sorrow and then destroys the conduct-obstructing infatuation karma.

सूत्र ३१–अप्पडिबद्धयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं जणयइ । निस्संगत्तेणं जीवे एगे, एगग्गचित्ते, दिया य राओ य असज्जमाणे, अप्पडिबद्धे यावि विहरइ ॥

सूत्र ३१–(प्रश्न) भगवन् ! अप्रतिबद्धता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) अप्रतिबद्धता (आसक्ति रहितता) से जीव निस्संग होता है। निस्संगता से वह एकाकी–अकेला (आत्मनिष्ठ) एकाग्र चित्तवाला होकर दिन और रात–सदा सर्वत्र विरक्त और अप्रतिबद्ध होकर विचरण करता है।

Maxim 31. (Q). Bhagawan ! What does the soul achieve by non-attachment ?

(*A*). By non-attachment the soul becomes company-less or devoid of company. Then he being alone (fixed in his soul), with mind fixed on an object, day and night–ever and always, everywhere, becoming indifferent and non-attached wanders.

सूत्र ३२–विवित्तसयणासणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विवित्तसयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ । चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे, दढचरित्ते, एगन्तरए, मोक्खभावपडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ ॥

सूत्र ३२–(प्रश्न) भगवन् ! विविक्त शयनासन से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) विविक्त शयनासन (जन कोलाहल तथा स्त्री-पशु-नपुंसक से असंसक्त, एकान्त, शान्त स्थान) के सेवन से जीव चारित्र गुप्ति–चारित्र की रक्षा करता है। चारित्र की रक्षा करने वाला विविक्ताहारी (पौष्टिक भोजन का त्याग करने वाला) दृढ़ चारित्री, एकान्तप्रिय, मोक्षभाव-प्रतिपन्न जीव आठ प्रकार के कर्मों की ग्रन्थि की निर्जरा करता है।

Maxim 32. (*Q*). Bhagawan ! What does the soul attain by using unfrequented bed and lodge ?

(*A*). By using unfrequented bed and lodge (noise of men and untouched by women, eunuch and beast, lonely, peaceful place) soul protects the incognitoes of conduct. Protector of conduct, discarder of nourishing food, steady in conduct, fond of loneliness, filled with feelings of liberation annihilates eight type of karmas.

सूत्र ३३–विणियट्टणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विणियट्टणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ । पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरन्तं संसारकन्तारं वीइवयइ ॥

सूत्र ३३–(प्रश्न) भगवन् ! विनिवर्तना (मन और इन्द्रियों की विषय वासना से निवृत्ति पराङ्मुखता) से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) विनिवर्तना से जीव पापकर्मों को न करने के लिये उद्यत रहता है और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करके कर्मों से निवृत्त हो जाता है। तदुपरान्त चतुर्गतिरूप संसार वन का अतिक्रमण–(पार) कर जाता है।

Maxim 33. (*Q*). Bhagawan ! What does the soul attain by turning from the pleasures of mind and senses ?

(*A*). By turning from the pleasures of mind and senses, the soul acquires the alertness to desist from sinful deeds and becomes free from karmas by exhausting them, he crosses the wilderness of world which is of four existences.

सूत्र ३४–संभोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संभोग पच्चक्खाणेणं आलम्बणाइं खवेइ । निरालम्बणस्स य आययट्ठिया जोगा भवन्ति । सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसाएइ, नो तक्केइ, नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिलसइ । परलाभं अणासायमाणे, अतक्केमाणे, अपीहेमाणे, अपत्थेमाणे, अणभिलसमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

सूत्र ३४–(प्रश्न) भगवन् ! संभोग-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) सम्भोग (परस्पर सहभोजन–मण्डली भोजन आदि सम्पर्क) प्रत्याख्यान (त्याग) से जीव परावलम्बन को समाप्त करके निरावलम्बन (स्वावलम्बन) को प्राप्त करता है। निरावलम्बन (स्वावलम्बी होने) से उसके सम्पूर्ण योग (मन-वचन-काया के योग-प्रयत्न) आत्मस्थित आयतार्थ (मोक्षार्थ) हो जाते हैं। वह स्वयं के (अपने) लाभ से संतुष्ट रहता है, दूसरे के लाभ का आस्वादन (उपभोग) नहीं करता, तकता (कल्पना भी) नहीं, उसकी स्पृहा (इच्छा) भी नहीं करता, प्रार्थना (याचना) भी नहीं करता, अभिलाषा भी नहीं करता। दूसरों के लाभ का आस्वादन, कल्पना, स्पृहा, प्रार्थना तथा अभिलाषा न करता हुआ साधक दूसरी सुख शैया को प्राप्त करके विचरण करता है।

Maxim 34. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by renunciation of co-enjoyments ?

(A). By renunciation of co-enjoyments (the contact of common meals, company-meals etc.,) the soul ending interdependence obtains independence. Being independent all his efforts (of mind, speech, body) are directed to attain salvation. He remains contented by what he gets, does not even wish, expect, beg and desire to share what other (sages) have, and thus he wanders attaining second happy lodge.

सूत्र ३५–उवहिपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उवहिपच्चक्खाणेणं अपलिमन्थं जणयइ । निरुवहिए णं जीवे निक्कंखे, उवहिमन्तरेण य न संकिलिस्सई ।

सूत्र ३५–(प्रश्न) भगवन् ! उपधि (उपकरणों) के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) उपधि के प्रत्याख्यान से जीव अपरिमन्थ–स्वाध्याय-ध्यान में निर्विघ्नता प्राप्त करता है। उपधिरहित जीव आकांक्षा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में संक्लेश नहीं पाता है।

Maxim 35. (Q). Bhagawan ! What does the soul get renouncing the articles of use ?

(A). By renouncing the articles of use the soul acquires unobstructedness in study and meditation. Thereby, being exempt of desire does not feel himself miserable for want of articles of use.

सूत्र ३६–आहारपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

आहारपच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दइ । जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दित्ता जीवे आहारमन्तरेणं न संकिलिस्सइ ॥

सूत्र ३६–(प्रश्न) भगवन् ! आहार के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) आहार के प्रत्याख्यान से जीव जीवित रहने की लालसा को विच्छिन्न कर देता है। जीवन की आशंसा (कामना) को तोड़ देने से वह आहार के अभाव में भी संक्लेशित नहीं होता।

Maxim 36. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by giving up food ?

(A). By giving up food the soul cuts off the lust of life. Breaking up the covetuousness of life, he does not feel miserable for want of food.

सूत्र ३७–कसायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कसायपच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ । वीयरागभावपडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥

सूत्र ३७–(प्रश्न) भगवन् ! कषाय के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) कषाय के प्रत्याख्यान से जीव को वीतरागभाव की प्राप्ति होती है। वीतराग भाव से संपन्न जीव सुख-दु:ख में सम–समभाव वाला हो जाता है।

Maxim 37. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by renunciation of passions ?

(A). By renunciation of pasions, the soul attains the state of non-attachment. Thereby he remains even-minded or equanimous to pleasures and pains.

सूत्र ३८–जोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ । अजोगी णं जीवे नवं कम्मं न बन्धइ, पुव्ववद्धं च निज्जरेइ ।

सूत्र ३८–(प्रश्न) भगवन् ! योग के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) योग (मन-वचन-काय योगों के व्यापारों) के प्रत्याख्यान से अयोगत्व की प्राप्ति होती है। अयोगी जीव नए कर्मों का बन्धन नहीं करता, पूर्व में बंधे हुए कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 38. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by renunciation of activities ?

(A). By renunciation of the activities (the activities of mind, speech and body) the soul becomes devoid of activities. By ceasing to act he acquires no new karmas and annihilates the formerly accumulated karmas.

सूत्र ३९–सरीरपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सरीरपच्चक्खाणेणं सिद्धाइसयगुणत्तणं निव्वत्तेइ । सिद्धाइसयगुणसंपन्ने य णं जीवे लोगग्गमुवगए परमसुही भवइ ॥

सूत्र ३९–(प्रश्न) भगवन् ! शरीर-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) शरीर के प्रत्याख्यान से जीव सिद्धों के अतिशय गुणत्व (गुणों) को प्राप्त कर लेता है। सिद्धों के अतिशय गुणों से संपन्न जीव लोक के अग्रभाव में पहुँचकर परम सुखी हो जाता है।

Maxim 39. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by quitting the body ?

(A). By quitting the body, the soul acquires the virtues of emancipateds, by possession of those virtues, reaching the highest region of loka, he becomes happiest.

सूत्र ४०–सहायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ । एगीभावभूए वि य णं जीवे एगग्गं भावेमाणे अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पकलहे, अप्पकसाए, अप्पतुमंतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिए यावि भवइ ॥

सूत्र ४०–(प्रश्न) भगवन् ! सहाय (सहायक तथा सहायता के) प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) सहाय-प्रत्याख्यान से जीव एकीभाव को प्राप्त करता है। एकीभाव को प्राप्त साधक एकत्व की भावना करता हुआ अल्पशब्द वाला, वाक्कलह से रहित, झगड़े टंटे से दूर, अल्प कषाय वाला, अल्प तू-तू, मैं-मैं वाला होकर संवर-बहुल, संयम-बहुल, तथा समाधियुक्त होता है।

Maxim 40. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by renouncing the assistant and assistance ?

(A). By renouncing the assistant and assistance, the soul acquires feelings of one-ness. Thereby reflecting oneness he speaks a little, avoids disputes, quarrels, passions and censoriousness; and then he becomes abundant with stoppage of karmas, restraint and deep in contemplation.

सूत्र ४१–भत्तपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

भत्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुम्भइ ।

सूत्र ४१–(प्रश्न) भगवन् ! भक्त-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) भक्त प्रत्याख्यान (भक्त परिज्ञा रूप आमरण अनशन-संथारा) से जीव अनेकों भवों को रोक देता है।

Maxim 41. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by renouncing all kinds of food ?

(A). By renouncing all kinds of food (giving up all kinds of food till death–the practice of saṁthārā at the end of life) obstructs his innumerable births.

सूत्र ४२–सब्भावपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सब्भावपच्चक्खाणेणं अनियट्टिं जणयइ । अनियट्टिपडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तं जहा–वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र ४२–(प्रश्न) भगवन् ! सद्भाव (सर्व संवररूप शैलेशी भाव) प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) सद्भाव प्रत्याख्यान से जीव अनिवृत्ति (शुक्लध्यान का चतुर्थ–अन्तिम भेद) को प्राप्त करता है। अनिवृत्ति–प्रतिपन्न अनगार केवली कर्मांश (केवली के शेष रहे हुए) वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्मों के अंशों (इन भवोपग्राही कर्मों) का क्षय करता है। तत्पश्चात वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सभी दुःखों का अन्त करता है।

Maxim 42. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by perfect renunciation ?

(A). By perfect renunciation the soul attains anivṛtti (the fourth stage of whitest meditation–śukladhyāna). Thereby he exhaustively destroys the remnants of karmas lingering to kevalin, the karmas pertaining to life-duration, emotion evoking, form determining, family or lineage determining. Then he becomes emancipated, enlightened, liberated, finally deliverated and puts an end to all miseries.

सूत्र ४३–पडिरूवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ । लहुभूए णं जीवे अप्पमत्ते, पागडलिंगे, पसत्थलिंगे, विसुद्धसम्मत्ते, सत्तसमिइसमत्ते, सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेहे, जिइन्दिए, विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ ॥

सूत्र ४३–(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिरूपता (जिनकल्प जैसे आचार-पालन) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) प्रतिरूपता से जीव लघुता प्राप्त करता है। लघुभूत होकर जीव प्रमाद रहित, प्रकट लिंग (वेष) वाला, प्रशस्त लिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्वी, धैर्य (सत्त्व) और समितियों से परिपूर्ण, सभी प्राण-भूत-जीव-सत्त्वों के लिए विश्वसनीय, अल्प प्रतिलेखना वाला, जितेन्द्रिय, विपुल तप और समितियों से सम्पन्न होता है।

Maxim 43. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul obtain conforming to standard (practising the conduct like Jinakalpa) ?

(A). By conforming to standard (practising the rigorous conduct as Jinakalpa) the soul becomes light–at ease. Thereby he becomes non-negligent, apparent apparelled, auspicious apparelled, pure right faithed, steady, strong vigilent, trustworthy for the living beings of all six species, a few inspection, conqueror of senses, opulent with great penances and circumspections.

सूत्र ४४–वेयावच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबन्धइ ॥

सूत्र ४४–(प्रश्न) भगवन् ! वैयावृत्य से जीव को क्या उपलब्ध होता है?

(उत्तर) वैयावृत्य से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म का बन्धन (उपार्जन) करता है।

Maxim 44. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul obtain by rendering service to teachers and fellow monks etc. ?

(A). By rendering service the soul accumulates tīrthaṁkara Nāma-Gotra karmas.

सूत्र ४५–सव्वगुणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सव्वगुणसंपन्नयाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ । अपुणरावत्तिं पत्तए य णं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ ॥

सूत्र ४५–(प्रश्न) भगवन् ! सर्वगुणसम्पन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) सर्वगुणसम्पन्नता से जीव अपुनरावृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। अपुनरावृत्ति को प्राप्त जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता।

Maxim 45. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul attain by acquisition of all virtues ?

(A). By acquisition of all virtues, the soul obtains salvation and then the mental and bodily miseries do not even touch him.

सूत्र ४६–वीयरागयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वीयरागयाए णं नेहाणुबन्धणाणि, तण्हाणुबन्धणाणि य वोच्छिन्दइ । मणुन्नेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गन्धेसु चेव विरज्जइ ।

सूत्र ४६–(प्रश्न) भगवन् ! वीतरागता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) वीतरागता से जीव स्नेह और तृष्णा के अनुबन्धनों को तोड़ देता है–विच्छिन्न कर देता है। मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से भी विरक्त हो जाता है।

Maxim 46. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul attain by freedom of attachment ?

(A). By freedom of attachment, the soul breaks up the ties of love (affection) and desires and becomes indifferent towards pleasant words, touches, tastes, forms (shapes) and smell.

सूत्र ४७–खन्तीए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

खन्तीए णं परीसहे जिणइ ।

सूत्र ४७–(प्रश्न) भगवन् ! क्षान्ति (क्षमा) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) क्षान्ति (क्षमा-तितिक्षा) से जीव परीषहों को जीतता है।

Maxim 47. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul get by forgiveness ?

(A). By forgiveness, the soul conquers troubles.

सूत्र ४८–मुत्तीए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ । अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं अपत्थणिज्जो भवइ ॥

सूत्र ४८–(प्रश्न) भगवन् ! मुक्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) मुक्ति (निर्लोभता) से जीव अकिंचनता (निष्परिग्रहता) को प्राप्त करता है। अकिंचन जीव अर्थलोलुपी व्यक्तियों के द्वारा अप्रार्थनीय हो जाता है।

Maxim 48. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul attain by ungreediness ?

(A). By ungreediness, the soul attains non-possessionness. Non-possessioned person becomes unfit to be requested by the persons who are desirous of wealth.

सूत्र ४९–अज्जवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अज्जवयाए णं काउज्जुययं, भावुज्जुययं, भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ । अविसंवायण-संपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥

सूत्र ४९–(प्रश्न) भगवन् ! ऋजुता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) ऋजुता (सरलता) से जीव काय की सरलता, भाव (मन) की सरलता, भाषा की सरलता और अविसंवाद (अवंचकता) को प्राप्त होता है। अविसंवाद-सम्पन्न जीव धर्म का आराधक होता है।

Maxim 49. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul obtain by simplicity ?

(A). By simplicity, the soul attains the uprightness of mind, speech and body and becomes veracious. Thereby he becomes the propiliator of religion–religious order.

सूत्र ५०–मद्दवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ । अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयट्ठाणाइं निट्ठवेइ ।

सूत्र ५०–(प्रश्न) भगवन् ! मृदुता से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) मृदुता से जीव अनुद्धत भाव (निरभिमानता) को प्राप्त करता है। अनुद्धत जीव मृदु-मार्दवभाव से संपन्न होता है तथा आठ मदस्थानों को विनष्ट कर देता है।

Maxim 50. *(Q)*. Bhagawan ! What does the soul attain by modesty–humility ?

(A). By modesty, the soul obtains freedom from proud. Unproudy soul becomes opulent with humility and he casts off asunder eight kinds of prides.

सूत्र ५१–भावसच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ । भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्टेइ । अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग-धम्मस्स आराहए हवइ ॥

सूत्र ५१–(प्रश्न) भगवन् ! भाव-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) भाव-सत्य (अन्तरात्मा की सत्यता) से जीव भाव-विशुद्धि को प्राप्त करता है। भावशुद्धि में प्रवर्तमान जीव अरिहन्तप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत होता है। अरिहन्तप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत व्यक्ति परलोक धर्म का भी आराधक होता है।

Maxim 51. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by truthfulness of thoughts ?

(A). By truthfulness of thoughts, i.e., truthfulness of inner conscience, the soul acquires purification of thoughts. Thereby he exerts himself to propiliate the religious order as prescribed by arihantas–the omniscients. Such person propiliates the same religious order in his next life also.

सूत्र ५२–करणसच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ । करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ ॥

सूत्र ५२–(प्रश्न) भगवन् ! करण-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) करण सत्य (कार्य अथवा क्रिया की सत्यता) से जीव को कार्य शक्ति (प्राप्त कार्य को भली-भाँति सपन्न करने की क्षमता) प्राप्त होती है। करण सत्य में प्रवर्तमान जीव यथावादी तथाकारी (जैसा कहना, वैसा करना) होता है।

Maxim 52. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by truthfulness of means ?

(A). By truthfulness of means (truthfulness of deeds and activities) the soul attains strength for doing deeds (proficiency to do the deeds). Thereby the soul acts as he speaks or acts upto his words i. e., his actions and words become uncontrary.

सूत्र ५३–जोगसच्चेणं भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?

जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ ॥

सूत्र ५३–(प्रश्न) भगवन् ! योग-सत्य (योगों की सत्यता) से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) योग-सत्य (मन-वचन-काया के योगों की सत्यता) से जीव योगों को विशुद्ध कर लेता है।

Maxim 53. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by truthfulness of yogas ?

(A). By truthfulness of yogas–the activities or energies of mind, speech and body, the soul purifies all of them (these).

सूत्र ५४–मणगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणयइ । एगग्गचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥

सूत्र ५४–(प्रश्न) भगवन् ! मनोगुप्ति से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता प्राप्त करता है। एकाग्रचित्त वाला जीव अशुभ विकल्पों से मन की रक्षा करता हुआ संयम का आराधक होता है।

Maxim 54. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by restraint or incognito of mind ?

(A). By restraint of mind, the soul obtains concentration (of mind). Concentrated soul protecting his mind from inauspicious thoughts, propiliates the restrain.

सूत्र ५५–वयगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वयगुत्तयाए णं निव्वियारं जणयइ । निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोगज्झाणगुत्ते यावि भवइ ॥

सूत्र ५५–(प्रश्न) भगवन् ! वचनगुप्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) वचनगुप्ति से जीव निर्विकार (अथवा निर्विचार) भाव को प्राप्त करता है। निर्विकार (अथवा निर्विचार) जीव वचन से गुप्त (मौन) रहकर अध्यात्म योग के साधनभूत ध्यान से भी युक्त हो जाता है।

Maxim 55. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by restraint of speech ?

(A). By restraint of speech the soul attains the state of immutability(thoughtlessness). Such soul becoming silent by words enables himself to the meditation which is the cause of spiritual yoga.

सूत्र ५६–कायगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ । संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥

सूत्र ५६–(प्रश्न) भगवन् ! कायगुप्ति से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) कायगुप्ति से जीव आस्रवनिरोधरूप संवर को प्राप्त करता है। संवर के द्वारा काय-गुप्त साधक फिर से होने वाले (पुणो) पापास्रव का निरोध कर देता है।

Maxim 56. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by body-restraint ?

(A). By body-restraint, the soul stops the inflow of karmas. Thereby the practiser of body-restraint stops the inflow of sinful karmas.

सूत्र ५७–मणसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ । एगग्गं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ । नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ५७–(प्रश्न) भगवन् ! मन की समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) मनःसमाधारणता (मन को आगमोक्त विधि के अनुसार समाधि में अथवा आगम-भावों के चिन्तन-मनन में संलग्न रखना) से जीव एकाग्रता को प्राप्त करता है। एकाग्रता को प्राप्त करके ज्ञानपर्यवों–ज्ञान के विविध तत्त्वबोध प्रकारों को प्राप्त करता है। ज्ञान पर्यवों को प्राप्त करके सम्यक्त्व को विशुद्ध करता है और मिथ्यात्व की निर्जरा करता है।

Maxim 57. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by mind-discipline ?

(A). By mind-discipline (to align the soul in contemplation or pondering over the words and their meanings of sacred texts), the soul attains concentration. Concentrated soul

understands the various types of modes of knowledge. Thereby he purifies his right faith and annihilates wrong faith.

सूत्र ५८–वयसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वयसमाहारणयाए णं वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेइ । वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेत्ता सुलहबोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लहबोहियत्तं निज्जरेइ ॥

सूत्र ५८–(प्रश्न) भगवन् ! वचन (वाक्) समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) वचन समाधारणता (वाणी को सम्यक् प्रकार से सतत स्वाधाय में लगाये रखना) से जीव वाणी के विषयभूत साधारण दर्शन (सम्यक्त्व) पर्यवों को विशुद्ध करता है। वाणी के विषयभूत (कथन योग्य) साधारण दर्शन (सम्यक्त्व) पर्यवों को विशुद्ध करके वह सुलभबोधिता को प्राप्त करता है और दुर्लभबोधिता की निर्जरा करता है।

Maxim 58. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by speech-discipline ?

(A). By speech-discipline (continuously engage the speech in study of scriptures), the soul purifies the modifications of faith. Thereby purifying the modifications of right faith, which can be told by language he attains enlightenment and annihilates non-enlightenment.

सूत्र ५९–कायसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ । चरित्तपज्जवे विसोहेत्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ । अहक्खायचरित्तं विसोहेत्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र ५९–(प्रश्न) भगवन् ! काय समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) काय समाधारणता (संयम की शुभ प्रवृत्तियों में काया को भली-भाँति संलग्न रखना) से जीव चारित्र के पर्यवों (विविध प्रकारों) को विशुद्ध करता है। चारित्र के पर्यवों को विशुद्ध करके यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करता है। यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करके केवली कर्मांशों–वेदनीय आदि कर्मों का क्षय करता है। तत्पश्चात सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सभी दुःखों का अन्त करता है।

Maxim 59. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by body-discipline ?

(A). By body–discipline (to engage the body properly in auspicious tendencies of restrain), the soul purifies the different modification of conduct. Purifying the conduct-modifications, he purifies yathākhyāta conduct (the conduct of passion-free monks and arihantas) and then destructs the remnants of karmas lingering to Kevalins-like emotion evoking karma etc. After that he becomes emancipated, enlightened, perfected, deliberated; and ends all miseries.

सूत्र ६०–नाणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ । नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकन्तारे न विणस्सइ ॥

जहा सूई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ ॥

नाण-विणय-तव-चरित्तजोगे संपाउणइ, ससमय-परसमयसंघायणिज्जे भवइ ॥

सूत्र ६०–(प्रश्न) भगवन् ! ज्ञान संपन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) ज्ञान संपन्नता से जीव सब भावों को जानता है। ज्ञान सम्पन्न जीव चतुर्गति रूप संसार-वन में विनष्ट नहीं होता–रुलता नहीं।

जिस प्रकार धागा सहित सुई गिर जाने पर भी विनष्ट–गुम नहीं होती उसी प्रकार श्रुत ज्ञान संपन्न जीव भी संसार में विनष्ट नहीं होता–भ्रमण नहीं करता।

ज्ञान-विनय-तप-चारित्र के योगों को प्राप्त करके जीव स्व-समय–पर-समय (स्वमत-परमत) की विवेचना में प्रामाणिक (संघातनीय) माना जाता है।

Maxim 60. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by accomplishment of knowledge ?

(A). By accomplishment of knowledge, the soul comes to know all substances and elements. Knowledge-accomplished does not rotate–transmigrates in this world.

As a needle with thread in its pore does not lost, so knowledge-accomplished soul also does not lost in the world.

Acquiring the knowledge-discipline (modesty), penance and conduct the soul is regarded as an authority in the analysis of his own religion (doctrines) and the doctrines of other creeds–sects.

सूत्र ६१–दंसणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

दसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त-छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ । अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे, सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥

सूत्र ६१–(प्रश्न) भगवन् ! दर्शन संपन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) दर्शन (सम्यग्दर्शन) सम्पन्नता से जीव संसार के कारण मिथ्यात्व का छेदन करता है। उसके बाद (सम्यक्त्व का प्रकाश) बुझता नहीं। फिर वह अनुत्तर (श्रेष्ठ) ज्ञान-दर्शन से आत्मा को संयोजित करता हुआ और सम्यक्‌रूप से भावित करता हुआ विचरण करता है।

Maxim 61. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by accomplishment of faith ?
(A). By faith-accomplishment, the soul destructs the wrong belief which is the cause of births and deaths. After that light of right faith never extinguishes. Then he wanders properly enjoining and enlightening his soul with excellent knowledge and faith.

सूत्र ६२–चरित्तसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चरित्तसंपन्नयाए णं सेलेसीभावं जणयइ । सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ॥

सूत्र ६२–(प्रश्न) भगवन् ! चारित्र-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) चारित्र संपन्नता से जीव शैलेशी भाव (मेरु के समान सर्वथा निष्कम्प दशा) को प्राप्त करता है। शैलेशी दशा को प्राप्त अनगार केवली में रहने वाले चार अघाती कर्मांशों का क्षय कर देता है। तदनन्तर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सर्वदुःखों का अन्त कर देता है।

Maxim 62. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by accomplishment of conduct ?

(A). By conduct-accomplishment, the soul attains the state of non-quivering stability like mountain Meru (Śaileśī Bhāva). Thereby the houseless monk destructs the four remnants of non-vitiating karmas lingering to kevalin. After that he obtains perfection, enlightenment, deliverance and final beatitude, and ends all miseries.

सूत्र ६३–सोइन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सोइन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६३–(प्रश्न) भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ (कर्णप्रिय) अमनोज्ञ (कर्ण कटु) शब्दों पर राग-द्वेष का निग्रह कर लेता है। फिर वह तन्निमित्तक-शब्दों से होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं करता अपितु पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 63. (Q). Bhagawan ! What does the soul get subduing the sense of hearing (ears) ?

(A). By subduing the sense of hearing, the soul controls the attachment and aversion to pleasant and non-pleasant voices. Then he checks the bondages of karmas which occur by these and annihilates formerly accumulated karmas.

सूत्र ६४–चक्खिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चक्खिन्दिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६४–(प्रश्न) भगवन् ! चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) चक्षु इन्द्रिह के निग्रह (निरोध) से जीव के मनोज्ञ और अमनोज्ञ (सुन्दर और असुन्दर) रूपों के प्रति होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है। और वह तन्निमित्तक कर्म-रूपों से होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं करता अपितु पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 64. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by subduing the sense of sight (eyes) ?

(A). By subduing the sense of sight, the soul checks up the attachment and detachment to pleasant and unpleasant sights and shapes and does not bind the karmas generated by those sights and annihilates the formerly bound karmas by these.

सूत्र ६५–घाणिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

घाणिन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गन्धेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६५–(प्रश्न) भगवन् ! घ्राण इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) घ्राण इन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों (सुगन्ध और दुर्गन्ध) पर होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है और फिर वह तन्निमित्तक (गंध से होने वाले) कर्मों को नहीं बाँधता, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 65. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by subduing the sense of smell (nose) ?

(A). By subduing the sense of smell, the soul obstructs the feelings of attachment and detachment to pleasant and unpleasant smells, does not bind the karmas produced thereby and destructs the karmas accumulated formerly.

सूत्र ६६–जिब्भिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जिब्भिन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६७–(प्रश्न) भगवन् ! जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है और फिर वह तन्निमित्तक (रसों के प्रति होने वाले राग-द्वेष के कारण) कर्मों का बन्ध नहीं करता तथा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 66. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by subduing the sense of taste (tongue) ?

(A). By suduing sense of taste, the soul checks up the attachment and detachment towards the pleasant and unpleasant tastes, so does not bind the karmas relating these and annihilates the formerly acquired karmas.

सूत्र ६७–फासिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

फासिन्दियनिग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६७–(प्रश्न) भगवन् ! स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) स्पर्शेन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ और अमनोज्ञ (सुखद और दुःखद) स्पर्शों पर होने वाले राग-द्वेष का निग्रह होता है। और फिर वह तन्निमित्तक कर्मों का बन्धन नहीं करता; पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 67. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by subduing sense of touch ?

(A). By subduing sense of touch, the soul becomes indifferent towards the happy and unhappy touches, does not bind new karmas thereby and annihilates the karmas formerly bound by these.

सूत्र ६८–कोहविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कोहविजएणं खन्तिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६८-(प्रश्न) भगवन् ! क्रोधविजय से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) क्रोध-विजय से जीव को क्षान्ति (क्षमाभाव) की प्राप्ति होती है। क्रोध-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा हो जाती है।

Maxim 68. (Q). Bhagawan ! What does the soul acquire by conquering anger ?

(A). By conquering anger the soul attains forgiveness, does not bind new karmas due to anger and annihilates formerly accumulated karmas thereby.

सूत्र ६९-माणविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

माणविजएणं मद्दवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६९-(प्रश्न) भगवन् ! मान-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) मान-विजय से जीव मृदुता (कोमलता-नम्रता) को प्राप्त करता है। मान-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

Maxim 69. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by conquering pride.

(A). Conquer of pride begets modesty to soul, new karmas due to pride are not bound and formerly acquired karmas annihilated generated by pride.

सूत्र ७०-मायाविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मायाविजएणं उज्जुभावं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ७०-(प्रश्न) भगवन् ! माया-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) माया-विजय से जीव को ऋजुभाव (सरलता) की प्राप्ति होती है। माया-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

Maxim 70. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by conquering deceit ?

(A). By conquering deceit, the soul attains simplicity, does not bind deceit-fruitive new karmas and annihilates such karmas as acquired before.

सूत्र ७१-लोभविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

लोभविजएणं संतोसीभावं जणयइ, लोभवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ७१-(प्रश्न) भगवन् ! लोभ-विजय से जीव क्या प्राप्त करता है?

(उत्तर) लोभ-विजय से जीव को संतोष-भाव प्राप्त होता है। लोभ-वेदनीय कर्म नहीं बँधता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

Maxim 71. (Q). Bhagawan ! What does the soul obtain by conquering greed ?

(A). By conquering greed, the soul obtains contentment, does not bind greed-effected new karmas, annihilates such karmas formerly accumulated.

सूत्र ७२-पेज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पेज्ज-दोस-मिच्छादंसणविजएणं नाण-दंसण-चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ । अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठिविमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्विं अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं

नाणावरणिज्जं, नवविहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अन्तरायं-एए तिन्नि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ। तओ पच्छा अणुत्तरं, अणंतं, कसिणं, पडिपुण्णं, निरावरणं, वितिमिरं, विसुद्धं, लोगालोगप्पभावगं, केवल-वरनाणदंसणं समुप्पाडेइ।

जाव सजोगी भवइ ताव य इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहफरिसं, दुसमयठिइयं। तं पढमसमए बद्धं, बिइयसमए वेइयं, तइयसमए निज्जिण्णं।

तं बद्धं, पुट्ठं, उदीरियं, वेइयं, निज्जिण्णं सेयाले य अकम्मं चावि भवइ ॥

सूत्र ७२-(प्रश्न) भगवन् ! प्रेय (राग), द्वेष और मिथ्यादर्शन पर विजय पाने से जीव को क्या प्राप्त होता है?

(उत्तर) प्रेय, द्वेष और मिथ्यादर्शन पर विजय प्राप्त करने से जीव ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है। आठ प्रकार के कर्मों की कर्मग्रन्थी को खोलने (विमोचन करने) के लिए उनमें से सर्वप्रथम अनुक्रम से अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म का घात (क्षय) करता है एवं पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म का, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय कर्म का, पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म का-इन तीनों कर्मों के अंश (कर्मांशों) का एक साथ (युगपत्) क्षय कर देता है। तदनन्तर अनुत्तर (प्रधान-सर्वश्रेष्ठ), अनन्त, सर्ववस्तु को विषय करने वाला संपूर्ण (कसिणं), प्रतिपूर्ण, निरावरण (आवरण रहित), अन्धकार (अज्ञान अन्धकार) से रहित (वितिमिरं) विशुद्ध, लोकालोक प्रकाशक केवल (सहायरहित) एवं श्रेष्ठ (वर) ज्ञानदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जब तक वह सयोगी (मन-वचन-काय योग सहित) रहता है तब तक ईर्यापथिक कर्म-क्रिया का बन्ध करता है (परन्तु उस कर्मबन्ध का) स्पर्श सुख (सातावेदनीय रूप शुभ कर्म) रूप होता है, उसकी स्थिति दो समय की होती है। वह प्रथम समय में बँधता है, द्वितीय समय में वेदन किया जाता है-उसका उदय होता है और तृतीय समय में उसकी निर्जरा हो जाती है।

वह कर्म (क्रमशः) बद्ध होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है, वेदन किया (भोगा) जाता है और निर्जरित हो जाता है फिर आगामी काल में (अन्त में) अकर्म हो जाता है।

Maxim 72. (Q). Bhagawan ! What does the soul attain by conquering affection, aversion and wrong belief ?

(A). By conquering affection, aversion and wrong belief, the soul exerts for propiliating right knowledge-faith-conduct. To untie the knot of eight types of karmas, first of all he destroys twenty eight divisions of infatuation karma; and then five types of knowledge-obstructing karma, nine types of perception obstructing karma, five types of energy-obstructing karma-the remnants of these three karmas destroys altogether in one and the same moment. After that he attains the supreme knowledge and perception which is infinite, knower of all substances and modifications, complete, exhaustive, without any covering, completely devoid of darkness, ultimately pure, revealing whole world and outer space, only-i.e., does not need any assistance. In one word he becomes omniscient.

Till he remains with the activities of mind, speech and body (*sayogī*) he binds the karmas by passion-free activities (*īryāpathika kriyā*) but the touch of that bound karma is happy and auspicious, with the duration of two moments (*samaya*-the indivisible shortest

period of time). It binds in first moment, experienced in the second and in the third moment it exhausts.

This type of karma enjoined, touched, arose, experienced, exhausted; and then in the further moment turn to no karma i.e., it becomes akarma.

सूत्र ७३–अहाउयं पालइत्ता अन्तो-मुहुत्तद्धावसेसाउए जोगनिरोहं करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइ सुक्कज्झाणं झायमाणे, तप्पढमयाए मणजोगं निरुम्भइ, मणजोगं निरुम्भइत्ता वइजोगं निरुम्भइ, वइजोगं निरुम्भइत्ता कायजोगं निरुम्भइ, कायजोगं निरुम्भित्ता आणापाणुनिरोहं करेइ, आणापाणुनिरोहं करेइत्ता ईसि पंचरहस्सक्खरुच्चारद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टिसुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोत्तं च एए चत्तारि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ ॥

सूत्र ७३–केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद शेष आयु को भोगता हुआ (केवली अनगार) जब अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहती है तब वह योगों का निरोध करता है। तब सूक्ष्म-क्रिय-अप्रतिपाती नाम के शुक्लध्यान के तृतीय भेद को ध्याता हुआ प्रथम मनोयोग का निरोध करता है। मनोयोग का निरोध करके वचन योग का निरोध करता है। वचन योग का निरोध करके काययोग का निरोध करता है। काययोग का निरोध करके आनापान (आण-प्राण-श्वासोच्छ्वास) का निरोध करता है। आनापान का निरोध करके पंच ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के मध्यम गति से उच्चारण काल तक वह अनगार (केवली) शुक्लध्यान के चतुर्थ भेद समुच्छिन्न क्रिय-अनिवृत्ति को ध्याता हुआ वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र–इन चार कर्मांशों का एक ही साथ क्षय कर देता है।

Maxim 73. After becoming omniscient, the monk begins the process of obstructing activities of mind-speech-body when his life-duration remains less than 48 minutes (antarmuhūrta) period of time. Then he controls activities of mind meditating the third division of white–purest meditation–named non-relapsed subtle activity (sūkṣma-kriya-apratipātī). Stopping mental activity obstructs vocal activity. Obstructing vocal activity checks up bodily activity. Checking up bodily activity stops respiration–exhaling and inhaling breathes. Stopping respiration that omniscient (monk) meditates fourth division of purest meditation named *samucchinna-kriya-anivṛtti* till the time the five small vowels–अ, इ, उ, ऋ, लृ can be vocated with medium speed. During this period he simultaneously exhausts the remnants of emotion-evoking, age determining, form determining and family or lineage determining karmas.

सूत्र ७४–तओ ओरालियकम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते, अफुसमाणगई, उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गन्ता, सागारोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

एस खलु सम्मत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए, पन्नविए, परूविए, दंसिए, उवदंसिए ॥ –त्ति बेमि।

सूत्र ७४–तब (तओ) वह औदारिक (तैजस शरीर भी) और कार्मण शरीर को सर्व प्रकार से–सदा के लिए सर्वथा छोड़कर ऋजुश्रेणी को प्राप्त हुआ अस्पृशद् रूप, ऊर्ध्व, अविग्रह (बिना मोड़वाली) गति (गमन

क्रिया-वेग) से एक समय में लोकाग्र में जाकर साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग अथवा अपने शरीर की अवगाहना के २/३-दो तिहाई परिमाण आकाश प्रदेशों में) ज्ञानोपयोग से सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सभी दुःखों का अन्त करता है।

यह निश्चय रूप से सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन का अर्थ श्रमण भगवान महावीर ने आख्यायित-प्रतिपादित किया है, प्रज्ञापित किया है, प्ररूपित किया है, दिखलाया है, दृष्टान्त के द्वारा वर्णित किया है, उपदेश दिया है। **-ऐसा मैं कहता हूँ।**

Maxim 74. Then that (the omniscient soul) quitting by all methods and for ever this gross, electric (lightening) and Kārmaṇa-all the kinds of bodies, takes straight line, touches nothing, goes upward, without any curve, taking no space, with the fastest velocity of motion reaching the uppermost region of world (loka) with form-conscience (knowledge conscience or in the two-third space-points of the quitted body) or knowledge-conscience he obtains perfection, enlightenment, deliverance and final beatitude; and exhaustively ends all the miseries and sufferings.

Definitely such indeed meaning of this chapter, entitled 'Exertion in Right Faith' which Śramaṇa Bhagawāna Mahāvira has delivered, told, declared, explained, proved and demonstrated well. **-Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

सूत्र ७-में "करणगुणश्रेणि" एक आध्यात्मिक विकास का दिग्दर्शक शब्द है। अपूर्वकरण से होने वाली गुणहेतुक कर्मनिर्जरा की श्रेणि को "करण गुण श्रेणि" कहते हैं। करण का अर्थ आत्मा का विशुद्ध परिणाम है। अध्यात्म विकास की आठवीं भूमिका (गुणस्थान) का नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है। यहाँ परिणामों की धारा इतनी विशुद्ध होती है, जो पहले कभी नहीं होने के कारण अपूर्व कहलाती है। आगामी क्षणों में उदित होने वाले मोहनीय कर्म के अनन्त प्रदेशी दलिकों को उदयकालीन प्राथमिक क्षण में लाकर क्षय कर देना, भाव विशुद्धि की एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। प्रथम समय से दूसरे क्षण में असंख्यात गुण अधिक कर्मपुद्‌गलों का क्षय होता है, दूसरे से तीसरे में असंख्यात गुण अधिक और तीसरे से चौथे में असंख्यात गुण अधिक। इस प्रकार कर्मनिर्जरा की यह तीव्रगति प्रत्येक समय से अगले समय में असंख्यात गुण अधिक होती जाती है, और यह कर्मनिर्जरा की धारा असंख्यात समयात्मक एक मुहूर्त तक चलती है।

इसे क्षपक श्रेणी भी कहते हैं। क्षपक श्रेणी आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ होती है।

मोहनाश की दो प्रक्रियायें हैं। जिसमें मोह का क्रम से उपशम होते-होते अन्त में वह सर्वथा उपशान्त हो जाता है, अन्तर्मुहूर्त के लिये उसका उदय में आना बंद हो जाता है, उसे उपशम श्रेणि कहते हैं। और जिसमें मोह क्षीण होते-होते अन्त में सर्वथा क्षीण हो जाता है, मोह का एक दलिक भी आत्मा पर शेष नहीं रहता, वह क्षपकश्रेणि है। क्षपक श्रेणी से ही कैवल्य प्राप्त होता है।

संक्षेप में आठवें गुणस्थान से जो क्षपक-श्रेणि प्राप्त होती है, उसे ही लक्ष्य करके करण गुण श्रेणि कहा है।

सूत्र १५-एक, दो या तीन श्लोक से होने वाली गुणकीर्तना स्तुति होती है और तीन से अधिक श्लोकों वाली स्तुति को स्तव कहते हैं। वैसे दोनों का भावार्थ एक ही है-भक्तिपूर्वक-गुणकीर्तन।

सूत्र ७१-कषाय भाव में ही कर्म का स्थितिबन्ध होता है। केवल मन, वचन, काय के कषायरहित व्यापार रूप योग से तो दीवार पर लगे सूखे गोले की तरह ज्योंही कर्म लगता है, लगते ही झड़ जाता है। क्योंकि उसमें राग द्वेषजन्य स्निग्धता नहीं है। केवलज्ञानी को भी जब तक वह सयोगी रहते हैं, चलते-फिरते, उठते-बैठते हर क्षण योगनिमित्तक दो समय की स्थिति का सुखस्पर्शरूप कर्म बँधता रहता है। अयोगी होने पर वह भी नहीं।

सूत्र ७१–अ इ उ ऋ लृ–ये पाँच ह्रस्व अक्षर हैं। इतना काल १४वें अयोगी गुणस्थान की भूमिका का होता है। तदनन्तर आत्मा देहमुक्त होकर सिद्ध हो जाता है।

शुक्ल ध्यान का अर्थ है–समुच्छिन्न क्रिया वाला एवं पूर्ण कर्म क्षय करने से पहले निवृत्त नहीं होने वाला पूर्ण निर्मल शुक्ल ध्यान। यह शैलेशी–अर्थात् शैलेश मेरु पर्वत के समान सर्वथा अकम्प, अचल आत्मस्थिति है। इसे समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति शुक्ल ध्यान कहते हैं।

सूत्र ७४–गति दो प्रकार की होती है–१. ऋजु गति, २. वक्र गति।

मुक्त आत्मा का ऊर्ध्वगमन ऋजु श्रेणी अर्थात् समश्रेणी से होता है। यह एक समय में सम्पन्न होती है।

गति के अनेक भेद हैं। स्पृशद्गति, अस्पृशद् गति आदि। जीव जब परमाणु पुद्गलों व स्कन्धों को स्पर्श करता हुआ गति करता है, उस गति को स्पृशद् गति कहते हैं।

मुक्त जीव अस्पृशद् गति के ऊपर जाते हैं।

अस्पृशद् गति के अनेक अर्थ हैं–

वृहद्वृत्ति के अनुसार अर्थ है–"जितने आकाश प्रदेशों को जीव यहाँ अवगाहित किये रहता है, उतने ही प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ गति करता है, उसके अतिरिक्त एक भी आकाश प्रदेश को नहीं छूता है। अस्पृशद् गति का यह अर्थ नहीं कि मुक्त आत्मा आकाश प्रदेशों को स्पर्श ही नहीं करता।

आचार्य अभयदेव के (औपपातिक वृत्ति) अनुसार अस्पृशद्गति का अर्थ है–"अन्तरालवर्ती आकाश प्रदेशों का स्पर्श किये बिना यहाँ से ऊर्ध्व मोक्ष स्थान तक पहुँचना। उनका कहना है कि मुक्त जीव आकाश के प्रदेशों का स्पर्श किये बिना ही ऊपर चला जाता है। यदि वह अन्तरालवर्ती आकाश प्रदेशों को स्पर्श करता जाये तो एक समय जैसे अल्पकाल में मोक्ष तक कैसे पहुँच सकता है? नहीं पहुँच सकता।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार अस्पृशद्गति का अर्थ है–मुक्त जीव एक समय में ही मोक्ष में पहुँच जाता है। वह अपने ऊर्ध्व गमन काल में दूसरे समय को स्पर्श नहीं करता। मुक्तात्मा की यह समश्रेणि रूप सहज गति है। इसमें मोड़ नहीं लेना होता। अतः दूसरे समय की अपेक्षा नहीं है।

(उत्तराध्ययन सूत्र टिप्पण; साध्वी चन्दना जी)

Salient Elucidations

Maxim 7–Ladder of spiritual virtuous thought current (*karaṇa-guṇa-śreṇiṁ*)–This word denotes the spiritual development, meaning annihilation of karmas beginning from the state of *apūrvakaraṇa*. *Karaṇa* is pure thoughts of soul. Eighth soul purification stage is *apūrvakaraṇa*. At this stage the thoughts of soul are so much pure, as never has been before so it is called *apūrvakaraṇa*. The infinite microparticled infatuation karma-substance, which to rise in further moments, bring them to present moment to destroy is the spiritual process of thought-purification. In the first moment innumerable-time more micro-particles of infatuation karmas are destructed, in the second moment innumerable-time micro-particles of infatuation karmas are destructed than that of first moment; and this process goes on with its full velocity from first moment to the time period of 48 minutes (*one muhūrta*). Here the moment meant infinite part of second which is indivisible.

Ladder of spiritual-virtuous thought current is also called ladder of spiritual thought current perfectly capable to finally exhaust the vitiating karmas (*kṣapaka śreṇi*), It begins from eighth soul purication stage (*guṇasthāna*).

There are two processes for destructation of infatuation karma. By which the infatuation karma subdues by and by and completely subdues for the time less than 48 minutes, that is called still ladder (*upśama śreṇi*) and in which the infatuation karma destructing by and by and totally exhausts, it is destructing ladder (*kṣapaka śreṇi*), thereby (by this ladder) omniscience is obtained.

In short, from the eighth stage of soul purification the soul attains infatuation karma destructing thought current ladder (*kṣapaka śreṇi)* aiming only this the word ladder of spiritual virtuous thought current is used.

Maxim 15–Appraisal of virtues by one, two, three couplets (ślokas) is called stuti and by more than three couplets–stanzas (ślokas) is called *stotra*. Both bears the same meaning–appraisal of virtues with devotion.

Maxim 71–The duration karma bondage occurs only by passions. By the passionless activities of mind, speech and body as it takes place it sheds off like the lump of clay thrown on the wall; because it is not greasy by attachments and detachment. Even to omniscient, till he remains with yogas by the activities of movement sitting-standing etc., the pleasant touching bondage takes place only with duration of two moments and when the omniscient becomes ayogi by ceasing the activities of *yogas*, then no bondage occurs.

Maxim 73–a, i, u, ṛ, ḷ (अ, इ, उ, ऋ, लृ) these are five small letters. Speaking these letters by medium speed takes as much time the same period is of fourteenth soul purification stage (a*yogī kevalī guṇasthāna)*. After it the soul attains salvation quitting all types of bodies.

Purest meditation here means the obsolutely pure meditation of *samucchinna kriya*, which totally exhausts the karmas. This is state of soul stability like mountain Meru. It is called *samucchinna kriya-anivṛtti* purest meditation.

Maxim 74–Motion is of two kinds–(1) straight motion and (2) curved motion.

The upward motion of karma-free and quit-bodied soul takes place straight and even ladder and completes within only one moment (infinite part of a second which is indivisible.)

There are many kinds of motion like touching the space-points, without touching the space-points etc.

When soul moves touching the atoms and molecules of matter, that is called touching movement or motion.

The karma-free or perfect soul goes upward with touch-free motion.

There are many interpretations of without touching motion–

According to Vṛhad Vṛtti meaning is– the soul exists here occupying as much space-points moves upward touching only that much space-points, except these he does not touch even a single space-point. Without touching movement does not mean that salvated soul even not touch the space-points.

According to Ācārya Abhayadeva (Aupapātika Vṛtti) the meaning of untouching movement is like this–without touching in between space-points starting from here and straightly reaching the highest salvation abode. He says that salvated soul goes upward without touching in between space-points at all. Here the logic is–if the salvated soul moves touching in between space-points then how he can reach the salvation abode within the shortest span of time–one *samaya* ? He cannot reach there at any cost.

According to Āvaśyaka Cūrṇi–without touching movement or motion means–the salvated soul reaches the liberation abode within the shortest span of time–one *samaya*. It does not take second *samaya* in going upward. It is the natural speed of salvated soul going straight. No curve is to be taken, therefore it need not second *samaya*.

–(Courtesy–Uttarā. Comments-*Sādhvī Candnājī*)

तीसवाँ अध्ययन : तपोमार्गगति

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम तपोमार्ग गति है। इस अध्ययन का वर्ण्यविषय है–तप के मार्ग की ओर गति–पुरुषार्थ करना।

तप कर्मनिर्जरा, आत्मविशुद्धि और मोक्ष प्राप्ति का अमोघ साधन है। यह एक ऐसा विशिष्ट रसायन है जो शरीर और आत्मा के एकात्मभाव–देहासक्ति को समाप्त कर आत्मा को अपने निज स्वभाव में स्थापित करता है, उसके स्वभाव को प्रगट करता है। कर्म-मल को तपाकर आत्मा को विशुद्ध करता है।

लेकिन यह आवश्यक है कि तप, मात्र तप होना चाहिए, इसका ध्येय कर्म-निर्जरा और आत्म-विशुद्धि होना आवश्यक है। यही सम्यक् तप है।

इसके विपरीत यदि तप के साथ सांसारिक विषय-भोगों की इच्छा, नामना, कामना, प्रसिद्धि, यश आदि का संयोग हो गया तो वह मिथ्यातप अथवा बाल-तप हो जाता है, जो देह दण्ड से अधिक कुछ नहीं होता। ऐसा तप, 'तप' न रहकर 'ताप' बन जाता है, जो आत्मा के संताप का ही कारण बनता है। ऐसा तप कर्मों को नहीं तपाता अपितु आत्मा को ही तपाता है, चतुर्गतिक संसार में आत्मा के भ्रमण का हेतु बनता है।

अतः आत्महित की दृष्टि से तप सम्यक् ही होना चाहिए।

पिछले २८वें अध्ययन में मोक्ष प्राप्ति के चार कारण बताये थे, उनमें तप अन्तिम और अमोघ साधन है। किन्तु वहाँ तपों का नामोल्लेख मात्र किया गया था; जबकि इस अध्ययन में विस्तृत विवेचन किया गया है।

तप के प्रमुख दो भेद हैं–(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। पुनः प्रत्येक के छह-छह भेद किये गये हैं।

बाह्य तप के भेद हैं–(१) अनशन (२) अवमौदर्य (ऊनोदरी) (३) रस-परित्याग (४) भिक्षाचर्या (वृत्ति परिसंख्यान) (५) कायक्लेश और (६) प्रतिसंलीनता।

अनशन आदि के अवान्तर भेद भी अनेक हैं।

बाह्य तप का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके आचरण से देहासक्ति, स्वाद-लोलुपता, खान-पान की लालसा, सुखसीलियापन आदि छूट जाते हैं।

लेकिन बाह्य तपों के लिए आवश्यक है कि वे आभ्यन्तर तपों के सहायक बनें।

आभ्यन्तर तप हैं–(१) प्रायश्चित्त (२) विनय (३) वैयावृत्त्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग।

प्रायश्चित्त से दोषों का परिमार्जन, विनय से नम्रता, वैयावृत्त्य से सेवाभाव, स्वाध्याय से ज्ञानोपार्जन, ध्यान से एकाग्रचित्तता और व्युत्सर्ग से ममत्व त्याग–इन तपों के ये विशिष्ट लाभ हैं और सबसे बड़ा लाभ है–मुक्ति प्राप्ति।

यह सम्पूर्ण विषय प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से विवेचित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३७ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 30
ENDEAVOUR TO THE PATH OF PENANCE

Foreview

The caption of this chapter is 'Endeavour to the Path of Penance'. The subject matter is to move and endeavour to penance.

Penance is panacea for annihilating karmas, purification of soul and attaining salvation. It is such a special chemical which distorts the feeling of oneness of soul and body and thereby establishes soul in its natural state and manifests its inherent natural virtues by giving heat to karma filth purifies the soul.

But it is essential that penance must be penance only. It is necessary that its aim should be annihilation of karmas and purification of soul. Only such penance is right penance.

Contrary to this, if desire of empirical pleasures, name, fame, glory etc., are enjoined then it becomes wrong penance or ignorant penance which is nothing but punishing the body. Such penance becomes heat only, which torments and burns the soul. Such penance does not burn the karmas but only distresses the soul and becomes the cause of transmigrating the soul in this world of four existences.

Therefore by the viewpoint of soul benefit penance ought to be right penance only.

In the preceding twentyeighth chapter the four causes were described for attaining liberation, among them penance was the last and infallible cause; but there only hints were made and only the names were given; while in this chapter subject matter of penances described and analysed in detail.

Primarily the penances are of two kinds–(1) external and (2) internal.

External penances are divided into six types–(1) Fast, (2) Abstinence–Eating less than full meal, (3) renouncement of tastes (dainty food) (4) seeking alms (5) mortification of body and (6) lodging and bed in lonely place.

There are many other sub-divisions too of fast penances etc.

The greatest benefit of external penances is, that by practising these penances, the penancer gets rid of addictment to body, lust of tastes and eating (meals) and comfort-wishingness.

But it is necessary for external penances that they should be helpful to internal penances.

Internal penances are also of six types–(1) expiation (2) humility or politeness (3) servitude (4) study (5) meditation (6) abandoning affection or myness to body etc.

Cleansing of faults by expiation, humility by politeness or modesty, service by servitude, obtaining knowledge by study, concentration of mind by meditation, renunciation of myness by vyutsarga, the soul attains. These are the special benefits of internal penances and the greatest benefit is attainment of salvation.

Whole this subject matter is analysed in detail.

This chapter contains 37 couplets.

तीसइमं अज्झयणं : तवमग्गगई
त्रिंश अध्ययन : तपो-मार्ग-गति

जहा उ पावगं कम्मं, राग-दोससमज्जियं ।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण ॥१॥

राग और द्वेष से अर्जित पाप कर्मों का भिक्षु जिस प्रकार क्षय करता है, उसे (उस प्रक्रिया को) एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥१॥

Listen the process by which a mendicant destructs the karmas, he has acquired by attachment and detachment. (1)

पाणवह-मुसावाया, अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ ।
राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो ॥२॥

प्राणि-वध (हिंसा), मृषावाद (असत्य), अदत्त (अदत्तादान–स्तेय), मैथुन (अब्रह्मचर्य), परिग्रह और रात्रि भोजन की विरति से जीव अनास्रव (आस्रव रहित) होता है ॥२॥

By abstaining from (1) violence (2) falsehood (3) stealing (4) non-celibacy (5) non-possessing anythihing and eating-drinking any thing in night; the soul becomes free from in-flow of karmas. (2)

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइन्दिओ ।
अगारवो य निस्सल्लो, जीवो होइ अणासवो ॥३॥

पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त, कषाय रहित, जितेन्द्रिय, गौरव–गर्व से रहित और निःशल्य जीव अनास्रव (आस्रवरहित) होता है ॥३॥

Circumspect by five circumspections, latent by three incognitoes, passionless, subduer of senses, prideless and free from internal thorns; such soul becomes free from in-flow of karmas. (3)

एएसिं तु विवच्चासे, राग-द्दोससमज्जियं ।
जहा खवयइ भिक्खू, तं मे एगमणो सुण ॥४॥

पूर्वोक्त गुणों (धर्म साधना) से विपर्यास (विपरीत आचरण करने) पर रागद्वेष से अर्जित कर्मों को भिक्षु जिस प्रकार क्षय करता है वह एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनो ॥४॥

Hear attentively with concentrated mind how a mendicant destroys the karmas acquired by attachment and detachment and practising contrary to above mentioned virtues. (4)

जहा महातलायस्स, सन्निरुद्धे जलागमे ।
उस्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥५॥

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे ।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥६॥

जिस प्रकार कोई महा सरोवर के जल आने के मार्गों को रोक देने और पूर्व संचित जल को उलीचने तथा सूर्य ताप के कारण से सूख जाता है- ॥५॥

उसी प्रकार संयत के भी पापकर्मों को निरास्रव (नये कर्मों का आगमन द्वार बन्द) कर देने से करोड़ों जन्मों के संचित कर्म तप से निर्जरित (नष्ट) हो जाते हैं ॥६॥

As any great pond dries up by checking ways of supplying, and throwing off water and by the rays of sun-(5)

In the same way stopping the in-flow of karmas, the accumulated karmas of krores of lives are destroyed by penance of restrained mendicant. (6)

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भन्तरो तहा ।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो ॥७॥

वह तप दो प्रकार का कहा गया है-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है। इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का ही है ॥७॥

That penance is of two kinds-(1) external and (2) internal. External penance is of six types and the internal penance is also of six types. (7)

अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ॥८॥

(१) अनशन (२) ऊनोदरी (३) भिक्षाचर्या (४) रस परित्याग (५) कायक्लेश और (६) संलीनता-ये छह बाह्य तप हैं ॥८॥

(1) Fast (2) Abstinence or Eating less than full diet (3) seeking alms (4) renunciation of tastes (5) mortification of body and (6) bed and lodging at unfrequented place-these are six external penances. (8)

इत्तरिया मरणकाले, दुविहा अणसणा भवे ।
इत्तरिया सावकंखा, निरवकंखा बिइज्जिया ॥९॥

(१) इत्वरिक और (२) मरण काल-ये अनशन तप के दो प्रकार हैं। इत्वरिक तप सावकांक्ष (अनशन के निर्धारित समय के बाद भोजन की आकांक्षा सहित) होता है और मरणकाल अनशन निरवकांक्ष (भोजन की आकांक्षा (इच्छा) से सर्वथा रहित) होता है ॥९॥

Fast penance is of two types-(1) for a short period and (2) till death. Short-period fast penance is with desire of food and till death fast penance is desire-free. (9)

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो ।
सेढितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥१०॥

संक्षेप से इत्वरिक तप छह प्रकार का है-

(१) श्रेणि तप (२) प्रतर तप (३) घन तप (४) वर्ग तप (५) वर्ग-वर्गतप और (६) प्रकीर्ण तप ॥१०॥

In short, short time fast penance is of six kinds–(1) in the form of series or chain (2) rejoined the various types of chain fast penance (*pratara tapa*). (3) in the form of cube (4) square (5) square-square and (6) of any arrangement. (10)

तत्तो य वग्गवग्गो उ, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो ।
मणइच्छिय-चित्तत्थो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥११॥

इस प्रकार मनवांछित विचित्र (स्वर्ग-अपवर्ग आदि अनेक) प्रकार के फल देने वाला इत्वरिक (अनशन) तप होता है, यह जानना चाहिए ॥११॥

Thus wish-fulfilling and bestower of various good results like–heaven and liberation, is short time fast penance, it should be known. (11)

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया ।
सवियार-अवियारा, कायचिट्ठं पई भवे ॥१२॥

जो मृत्यु समय में अनशन होता है, वह कायचेष्टा के आधार पर दो प्रकार का कहा गया है–(१) सविचार (करवट बदलने आदि काय चेष्टाओं सहित) और (२) अविचार (कायचेष्टा रहित) ॥१२॥

Till death fast penance is of two kinds with respect of body-motions–(1) with change of positions of body (*savicāra)* and without change (*avicāra*). (12)

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ।
नीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ य दोसु वि ॥१३॥

अथवा मरणकाल अनशन के (१) सपरिकर्म और (२) अपरिकर्म–ये दो भेद हैं।

अविचार अनशन के (१) निर्हारी और (२) अनिर्हारी–ये दो भेद भी होते हैं। लेकिन इन दोनों में ही आहार का त्याग होता है ॥१३॥

And again till-death fast penance is twofold–(1) admitting relief by taking service etc., from others (saparikarma) and (2) without relief (aparikarma). Without body-motion fast penance is also of two kinds–(1) may change the place (nirhārī) and(2) may not change the place (anirhārī). But in both the cases food can not be taken. (13)

ओमोयरियं पंचहा, समासेण वियाहियं ।
दव्वओ खेत्त-कालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥१४॥

अवमौदर्य (ऊनोदरी) संक्षेप में पाँच प्रकार का बताया गया है। (यह) (१) द्रव्य (२) क्षेत्र (३) काल (४) भाव (५) पर्यायों की अपेक्षा से पाँच प्रकार का है ॥१४॥

Abstinence or eating less than full meal penance is fivefold with regard to–(1) substance (2) place (3) time (4) state of mind and (5) developments. (14)

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे ।
जहन्नेणेगसित्थाई, एवं दव्वेण ऊ भवे ॥१५॥

जिसका जितना आहार है; उससे कम-से-कम (जघन्य) एक सिक्थ (एक कण अथवा एक ग्रास) कम भोजन करना, द्रव्य से अवमौदर्य–ऊनोदरी तप है ॥१५॥

To take even a morsel less than full meal is less eating penance by substance. (15)

गामे नगरे तह रायहाणि, निगमे य आगरे पल्ली ।
खेडे कब्बड–दोणमुह, पट्टण-मडम्ब–संबाहे ॥१६॥
आसमपए विहारे, सन्निवेसे समाय–घोसे य ।
थलि–सेणाखन्धारे, सत्थे संवट्ट कोट्टे य ॥१७॥
वाडेसु व रच्छासु व, घरेसु वा एवमित्तियं खेत्तं ।
कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण ऊ भवे ॥१८॥

ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेड, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, मडंब (मण्डप) संबाध–॥१६॥

आश्रम पद, विहार, सन्निवेश, समाज, घोष, स्थली, सेना का शिविर, सार्थ, संवर्त, कोट–॥१७॥

वाड, रथ्या (गली) और घर–इन क्षेत्रों में तथा इस प्रकार के दूसरे क्षेत्रों में निर्धारित (कल्पित) क्षेत्र प्रमाण के अनुसार भिक्षा के लिए जाना क्षेत्र से 'ऊनोदरी' तप होता है ॥१८॥

Village, scot-free town, capital, camp of merchants, mine, settlement of wild tribes or ordinary men, a place with clay-wall, poor town, town with harbour, large town, isolated town, open town–(16)

Hermitage, temple or living place of ascetics (vihāra), halting place for processions, resting place for travellers, station for herdsmen, camp on high ground or camp of army, carvans camp, fortified place of refuge-(17)

Gardens, lanes, houses–these all are meant as place. A mendicant can wander in these and other such places for seeking alms according to his resolution of place. This is abstinence (less eating penance) regarding place. (18)

पेडा य अद्धपेडा, गोमुत्ति पयंगवीहिया चेव ।
सम्बुक्कावट्टा ऽऽ ययगन्तुं, पच्चागया छट्ठा ॥१९॥

अथवा (१) पेटा (२) अर्द्धपेटा (३) गोमूत्रिका (४) पतंगवीथिका (५) शम्बूकावर्ता और (६) आयतंगत्वा–(प्रत्यागता)–यह छह प्रकार का क्षेत्र से ऊनोदरी तप है ॥१९॥

And again these six kinds–(1) Peṭā (2) ardhapeṭā (3) gomūtrikā (4) pataṅgavīthikā (5) śambūkāvartā and (6) āyataṁgatvā (pratyāgatā)–is abstinence or less eating penance with regard to place. (19)

दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।
एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वो ॥२०॥

दिन की चार पौरुषियों (प्रहरों) में से जितना काल (समय) (अभिग्रह रूप में) रखा हो, उसी काल (समय) में भिक्षा के लिए विचरण करना अवश्य ही काल संबंधी उनोदरी तप है, ऐसा जानना चाहिए ॥२०॥

Abstinence with regard to time is observed by the mendicant who wanders for seeking food in that time of the four paurusis (praharas) of day, it should be known. (20)

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसन्तो ।
चउभागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे ॥२१॥

अथवा तीसरी पौरुषी (प्रहर) में कुछ कम या चतुर्थ भाग कम में भिक्षा की गवेषणा करना, काल संबंधी ऊनोदरी तप होता है ॥२१॥

Again, seeking food in a part of third pauruṣī of the day or in the last quarter of it, he observes abstinence penance with regard to time. (21)

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।
अन्नयरवयत्थो वा, अन्नयरेणं व वत्थेणं ॥२२॥

स्त्री अथवा पुरुष, अलंकृत (अलंकारयुक्त) या अनलंकृत (अलंकार रहित) हो अथवा अमुक आयु अथवा अमुक वस्त्र वाले (धारण किये हुए) हों-॥२२॥

Woman or man, adorned or unadorned, of any age or any dress-(22)

अन्नेण विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयन्ते उ ।
एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वो ॥२३॥

अथवा अमुक विशिष्ट वर्ण या भाव (हर्षादि हार्दिक भावों) से युक्त दाता से भिक्षा लूँगा (इस प्रकार के अभिग्रह से युक्त) भिक्षा के लिए विचरण करते हुए साधु को भाव से ऊनोदरी तप मानना चाहिए ॥२३॥

Of any colour or temper-feeling of joy etc.,-with the firm determination like this, wandering mendicant for seeking alms, he should be known as observing abstinence penance by state of mind (23)

दव्वे खेत्ते काले, भावम्मि य आहिया उ जे भावा ।
एएहि ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥२४॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में जो भाव (पर्याय) कहे गये हैं, उन सब भावों (पर्यायों) से भिक्षाचर्या करने वाले भिक्षु के पर्याय ऊनोदरी तप (पज्जवचर) होता है ॥२४॥

In substance, place, time, state of mind the developments which are said, by all these developments seeking alms-such mendicant is known as abstemious regarding development. (24)

अट्ठविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा ।
अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरियमाहिया ॥२५॥

आठ प्रकार के गोचराग्र, सात प्रकार की एषणाएँ तथा अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह भिक्षाचर्या तप कहे गये हैं ॥२५॥

Regarding seeking alms there are eight principal ways (*gocarāgra*) how to collect or seek them; and seven types of modes of seeking (eṣaṇās) and other self resolves are seeking food penance. (25)

खीर–दहि–सप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं ।
परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥२६॥

दूध, दही, घी, तथा प्रणीत (पौष्टिक) पान-भोजन (आहार) एवं रसों का वर्जन (परित्याग) रस-परित्याग तप कहा गया है ॥२६॥

Renouncement of milk, curd, ghee, and nourishing food and dainties is taste renunciation penance. (26)

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।
उग्गा जहा धरिज्जन्ति, कायकिलेसं तमाहियं ॥२७॥

आत्मा के लिए सुखकारी वीरासन आदि उग्र आसनों को धारण करने को–अभ्यास करने को काय क्लेश तप कहा गया है ॥२७॥

Beneficial for soul to practise different postures, like–Vīrāsana etc., is body-mortification penance. (27)

एगन्तमणावाए, इत्थी पसुविवज्जिए ।
सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ॥२८॥

एकान्त, अनापात (लोगों के आवागमन से रहित) और स्त्री तथा पशु (नपुंसक भी) आदि से विवर्जित (रहित) शयन एवं आसन का आसेवन (ग्रहण) करना, विविक्त शयन-आसन (प्रतिसंलीनता) तप है ॥२८॥

Using lonely, unfrequented by men, women, eunuch and cattles–beds and lodgings is *pratisaṁlīnatā* or separate lodgings, beds penance. (28)

एसो बाहिरंग तवो, समासेण वियाहिओ ।
अब्भिन्तरं तवं एत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥२९॥

संक्षेप में बहिरंग (बाह्य) तपों को कहा गया है।
अब क्रमशः आभ्यन्तर तपों को कहूँगा ॥२९॥

Briefly, these are external penances.
Now I shall describe internal penances in due order. (29)

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं च विउस्सग्गो, एसो अब्भिन्तरो तवो ॥३०॥

(१) प्रायश्चित्त (२) विनय (३) वैयावृत्य (४) स्वाध्याय (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग–ये छह आभ्यन्तर तप हैं ॥३०॥

(1) Expiation (2) politeness (3) servitude to others (4) study (5) meditation and (6) abandoning affection to body etc.,–these six are internal penances. (30)

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं ।
जे भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं ॥३१॥

आलोचनार्ह (आलोचना के योग्य) आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त तप है। जिसका भिक्षु सम्यक् रूप से वहन (पालन) करता है, वह प्रायश्चित्त तप कहा जाता है ॥३१॥

Mendicant strictly observes the expiation penance. It is tenfold, like confession of faults etc. (31)

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं ।
गुरुभत्ति-भावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥३२॥

खड़े होना, हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति तथा भाव सहित शुश्रूषा (सेवा करना) विनय तप है ॥३२॥

To stand from seat, fold arms, give seat, devotion to elder sages and teachers and their service is the penance of politeness. (32)

आयरियमाइयम्मि य, वेयावच्चम्मि दसविहे ।
आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥३३॥

आचार्य आदि से सम्बन्धित दस प्रकार का वैयावृत्य है। उसका यथाशक्ति (अपनी शक्ति के अनुसार) आसेवन (आचरण) करना वैयावृत्य तप है ॥३३॥

Servitude penance is tenfold with respect of preceptors etc. To practise it according to own strength and power is servitude penance. (33)

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पंचहा भवे ॥३४॥

(१) वाचना (२) पृच्छना (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा–यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय तप है ॥३४॥

(1) Learning or saying lesson (2) question the teacher about it (3) repetition (4) pondering or reflection and (5) religious discourse–this fivefold is study penance. (34)

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिए ।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ॥३५॥

आर्त और रौद्र (ध्यान) को वर्जित कर (छोड़कर) सुसमाहित साधु धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्याता है, वह बुद्धिमानों द्वारा ध्यान तप कहा जाता है ॥३५॥

Abandoning painful (ārtadhyāna) and sinful (raundradhyāna) meditations, the zealous and attentive sage engages his concentrated mind in religious (dharmadhyāna) and purest (śukladhyāna) meditations. These (religious and purest meditations) are called meditation penance by wises. (35)

सयणासण-ठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे ।
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥३६॥

शयन (सोने), बैठने तथा खड़े होने में जो भिक्षु व्यर्थ का काय-व्यापार (कायचेष्टा) नहीं करता; वह शरीर का व्युत्सर्ग–व्युत्सर्ग नाम का छठा (आभ्यन्तर) तप कहा गया है ॥३६॥

While laying down, sitting, standing upright, who does not make useless motions of body. This is called abandoning affection to the body penance (vyutsargatapa) which is the sixth and last of internal penances. (36)

एयं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी ।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डिए ॥३७॥

–त्ति बेमि ।

जो पण्डित (तत्त्ववेत्ता–मेधावी) मुनि, इन दोनों प्रकार के तपों का सम्यक्तया आचरण करता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार (द्रव्य और भाव संसार) से विमुक्त हो जाता है ॥३७॥ –ऐसा मैं कहता हूँ ।

The wise and witty monk, who practises well these both types of (external and internal) penances, becomes free soon from this (substantial and thought) world. (37)

–Such I speak.

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७–बाह्यतप–निम्न कारणों से इसे बाह्यतप कहा जाता है–१. अनशन आदि मुक्ति की प्राप्ति में बहिरंग निमित्त हैं। २. शरीर आदि बाह्य द्रव्य पर आधारित हैं, ३. यह अन्तरंग तप के माध्यम से ही मुक्ति का कारण है, स्वयं साक्षात् कारण नहीं। इसके विपरीत जो शरीर आदि बाह्य साधनों पर आधारित नहीं है, अन्तःकरण से स्वयं स्फूर्त है, जो विशिष्ट विवेकी साधकों द्वारा ही समाचारित है, वह ध्यान आदि अन्तरंग तप है।

गाथा १०-११–इत्वरिक अनशन तप देश, काल, परिस्थिति आदि को ध्यान में रखते हुए अपनी शक्ति के अनुसार एक अमुक समय विशेष की सीमा बाँधकर किया जाता है। भगवान महावीर के शासन में दो घड़ी से लेकर उत्कृष्ट छह मास तक की सीमा है। संक्षेप में इसके छह भेद होते हैं।

(१) श्रेणि तप–उपवास से लेकर छह मास तक क्रमपूर्वक जो तप किया जाता है, वह श्रेणि तप है। इसकी अनेक श्रेणियाँ हैं। जैसे उपवास, बेला–यह दो पदों का श्रेणि तप है। उपवास, बेला तेला, चौला–यह चार पदों का श्रेणितप है।

(२) प्रतर तप–एक श्रेणि तप को जितने क्रम अर्थात् प्रकारों से किया जा सकता है, उन सब क्रमों को मिलाने से प्रतर तप होता है। उदाहरण स्वरूप १, २, ३, ४ संख्यक उपवासों से चार प्रकार बनते हैं। स्थापना इस प्रकार है–

क्रम	१	२	३	४
१	उपवास	बेला	तेला	चौला
२	बेला	तेला	चौला	उपवास
३	तेला	चौला	उपवास	बेला
४	चौला	उपवास	बेला	तेला

यह प्रतर तप है। इसमें कुल पदों की संख्या १६ है। इस तरह यह तप श्रेणि पदों को श्रेणि पदों से गुणा करने से बनता है। चार को चार से गुणित करने पर १६ की संख्या उपलब्ध होती है। यह आयाम और विस्तार दोनों में समान है।

(३) घन तप–जितने पदों की श्रेणि हो, प्रतर तप को उतने पदों से गुणित करने पर घनतप बनता है। जैसे कि ऊपर में चार पदों की श्रेणि है, अतः उपर्युक्त षोडशपदात्मक तप को चतुष्टयात्मक श्रेणि से गुणा करने पर अर्थात् प्रतर तप को चार बार करने से घन तप होता है। इस प्रकार घन तप के ६४ पद होते हैं।

(४) वर्ग तप–घन को घन से गुणित करने पर वर्ग तप बनता है। अर्थात् घन तप को ६४ बार गुणा करने से वर्ग तप बनता है। इस प्रकार वर्ग तप के ६४ × ६४ = ४०९६ पद अर्थात् चार हजार छियाणवें पद हैं।

(५) वर्ग-वर्ग तप–वर्ग को वर्ग से गुणित करने पर वर्ग-वर्ग तप होता है। अर्थात् वर्ग तप को ४०९६ बार गुणा करने से १ करोड़ ६७ लाख ७७ हजार और २१६ पद होते हैं। उक्त पद अंकों में इस प्रकार है ४०९६ × ४०९६ = १६७७७२१६

यह श्रेणि तप के चार पदों की भावना है। इसी प्रकार पाँच, छह, सात आदि पदों की भावना भी की जा सकती है।

(६) प्रकीर्ण तप–यह तप श्रेणि आदि निश्चित पदों की रचना किये बिना ही अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार किया जा सकता है। नौकारसी से लेकर यवमध्य, वज्रमध्य, चन्द्रप्रतिमा से लेकर १५ तक बढ़ाना और फिर क्रमशः घटाते हुए एक उपवास पर आ जाना आदि प्रकीर्ण तप है।

गाथा १२–मरण काल का आमरणान्त अनशन, संथारा कहा जाता है। वह सविचार और अविचार भेद से दो प्रकार का है। सविचार में उद्वर्त्तन–परिवर्तन (करवट बदलने) आदि की हरकत होती है, अविचार में नहीं।

भक्त प्रत्याख्यान और इङ्गिनीमरण सविचार होते हैं। भक्तप्रत्याख्यान में साधक स्वयं भी करवट आदि बदल सकता है, दूसरों से भी इस प्रकार की सेवा ले सकता है। यह संथारा दूसरे भिक्षुओं के साथ रहते हुए भी हो सकता है। यह इच्छानुसार त्रिविधाहार अथवा चतुर्विधाहार के प्रत्याख्यान से किया जा सकता है।

इङ्गिनीमरण संथारा में अनशनकारी एकान्त में एकाकी रहता है। यथाशक्ति स्वयं तो करवट आदि बदलने की क्रियायें कर सकता है, किन्तु इसके लिये दूसरों से सेवा नहीं ले सकता।

गिरिकन्दरा आदि शून्य स्थानों में किया जाने वाला पादपोपगमन संथारा अविचार ही होता है। जैसे वृक्ष जिस स्थिति में गिर जाता है उसी स्थिति में पड़ा रहता है, उसी प्रकार पादपोपगमन में भी प्रारंभ में साधक जिस आसन का उपयोग करता है अन्त तक उसी आसन में रहता है, आसन आदि बदलने की कोई भी चेष्टा नहीं करता है।

गाथा १३–अथवा यह मरणकालीन अनशन सपरिकर्म (बैठना, उठना, करवट बदलना आदि परिकर्म से सहित) और अपरिकर्म भेद से दो प्रकार का है। भक्त प्रत्याखान और इंगिनी सपरिकर्म होते हैं, और पादपोपगमन अपरिकर्म ही होता है। अथवा संलेखना के परिकर्म से सहित और उससे रहित को भी क्रमशः सपरिकर्म और अपरिकर्म कहा जाता है। वर्ष आदि पूर्वकाल से ही अनशनादि तप करते हुए शरीर को, साथ ही इच्छाओं, कषायों और विकारों को निरन्तर क्षीण करना संलेखना है, अन्तिम मरणकालीन क्षण की पहले से ही तैयारी करना है।

गाँव से बाहर जाकर जो संथारा किया जाता है, वह निर्हारिम है, और जो गाँव में ही किया जाता है वह अनिर्हारिम है। अथवा जिसके शरीर का मरणोत्तर अग्निसंस्कार आदि होता है, वह निर्हारिम है। और जो गिरिकन्दरा आदि शून्य स्थानों में संथारा किया जाता है, फलतः जिसका अग्निसंस्कार आदि नहीं होता है, वह अनिर्हारिम है। विस्तार के लिये लिखे देखें–शान्त्याचार्य कृत बृहद् वृत्ति (औपपातिक सूत्र तथा उत्तराध्ययन–साध्वी चन्दनाजी)

गाथा १६-१७-१८–जहाँ कर लगते हो वह ग्राम है। और जहाँ कर न लगते हों, वह नगर है, अर्थात् न कर। निगम–व्यापार की मण्डी। आकर–सोने आदि की खान, पल्ली–वन में साधारण लोगों की या चोरों की बस्ती, खेट–धूल मिट्टी के कोट वाला ग्राम, कर्वट–छोटा नगर, द्रोण मुख–जिसके आने जाने के जल और स्थल दोनों मार्ग हों। पत्तन–जहाँ सभी ओर से लोग आते हों, मंडब–जिसके पास सब ओर अढाई योजन तक कोई दूसरा गाम न हो। सम्बाध–ब्राह्मण आदि चारों वर्ण के लोगों का जहाँ प्रचुरता से निवास हो। आश्रमपद–तापस आदि के आश्रम। विहार–देवमन्दिर। संनिवेश–यात्री लोगों के ठहरने का स्थान अर्थात् पड़ाव। समाज–सभा और परिषद। घोष–गोकुल, स्थली–ऊँची जगह, टीला आदि। सेना और स्कन्धावार (छावनी) प्रसिद्ध है। सार्थ–सार्थवाहों के साथ चलने वाला जनसमूह। संवर्त–जहाँ के लोग भयत्रस्त हों। कोट्ट–प्राकार, किला आदि। वाड–जिन घरों के चारों ओर काँटों की बाड़ या तार आदि का घेरा हो। रथ्या–गाँव और नगर की गलियाँ (बृहद्वृत्ति)

गाथा १९–भिक्षाचरी के छह भेद इस प्रकार हैं–

(१) पेटा–अर्थात् पेटिका चतुष्कोण होती है। इस प्रकार बीच के घरों को छोड़कर चारों श्रेणियों में भिक्षा लेना।

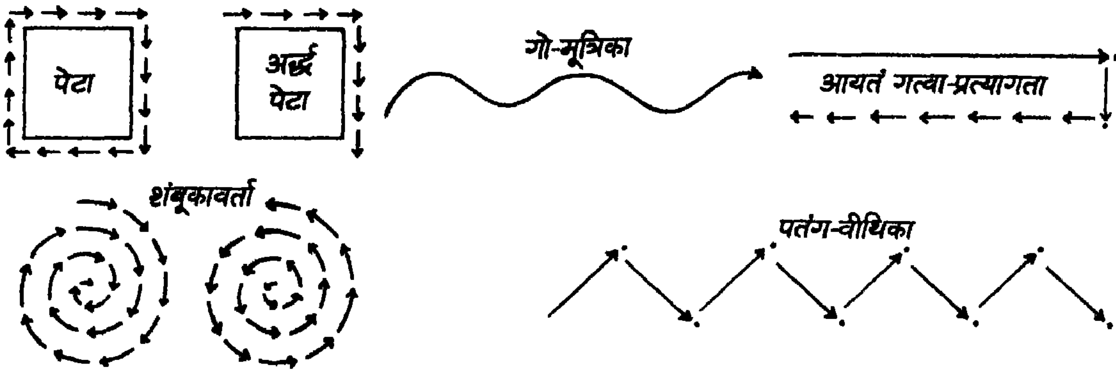
(२) अर्धपेटा–इसमें केवल दो श्रेणियों से भिक्षा ली जाती है।

(३) **गोमूत्रिका**–वक्र अर्थात् टेढ़े–मेढ़े भ्रमण से भिक्षा लेना गोमूत्रिका है। जैसे चलते बैल के मूत्र की रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होती है।

(४) **पतंगवीथिका**–पतंग जैसे उड़ता हुआ बीच में कहीं-कहीं चमकता है, इसी प्रकार बीच-बीच में घरों को छोड़ते हुए भिक्षा लेना।

(५) **शम्बूकावर्ता**–शंख के आवर्तों की तरह गाँव के बाहरी भाग से भिक्षा लेते हुए अन्दर में जाना अथवा गाँव के अन्दर से भिक्षा लेते हुए बाहर की ओर आना। शम्बूकावर्ता के ये दो प्रकार हैं।

(६) **आयतंगत्वा प्रत्यागता**–गाँव की सीधी सरल गली में अन्तिम घर तक जाकर फिर लौटते हुए भिक्षा लेना। इसके भी दो भेद हैं–जाते समय गली की एक पंक्ति से और आते समय दूसरी पंक्ति से भिक्षा लेना। अथवा एक ही पंक्ति से भिक्षा लेना, दूसरी पंक्ति से नहीं।



गाथा ३१–प्रायश्चित्त के १० भेद इस प्रकार हैं–

(१) **आलोचनार्ह**–गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करना आलोचना है।

(२) **प्रतिक्रमणार्ह**–कृत पापों से निवृत्त होने के लिये "मिच्छामि दुक्कड़" कहना।

(३) **तदुभयार्ह**–पापनिवृत्ति के लिये आलोचना और प्रतिक्रमण–दोनों करना।

(४) **विवेकार्ह**–लाये हुए अशुद्ध आहार आदि का परित्याग करना।

(५) **व्युत्सर्गार्ह**–चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के साथ कायोत्सर्ग करना।

(६) **तपार्ह**–उपवास आदि तप करना।

(७) **छेदार्ह**–संयम काल को छेद कर कम करना, दीक्षा काट देना।

(८) **मूलार्ह**–फिर से महाव्रतों में आरोपित करना, नई दीक्षा देना।

(९) **अनवस्थापनार्ह**–तपस्यापूर्वक नई दीक्षा देना।

(१०) **पारंचिकार्ह**–भयंकर दोष लगने पर काफी समय तक भर्त्सना एवं अवहेलना करने के अनन्तर नई दीक्षा देना। (स्थानांग–१०)

गाथा ३३–वैयावृत्य तप के दस प्रकार है–(१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) स्थविर–वृद्ध गुरुजन (४) तपस्वी (५) ग्लान-रोगी (६) शैक्ष–नवदीक्षित, (७) कुल–गच्छों का समुदाय (८) गण–कुलों का समुदाय (९) संघ–गणों का समुदाय (१०) साधर्मिक–समानधर्मा, साधु–साध्वी।

गाथा ३६–यहाँ व्युत्सर्ग तप में कायोत्सर्ग की ही गणना की है। प्रावरण एवं पात्र आदि उपधि का विसर्जन भी व्युत्सर्ग तप है। कषाय का व्युत्सर्ग भी व्युत्सर्ग तप में गिना गया है। काय मुख्य है। अतः काय के व्युत्सर्ग में सभी उत्सर्गों का समावेश हो जाता है।

Salient Elucidations

Gāthā 7–External penance–Due to following causes it is called external penance (1) Fast etc., are external causes to attain salvation. (2) It is based on external substances like body etc. (3) It is the cause of salvation by the medium of internal penances, not itself eminent direct cause.

Internal penance–Contrary to external penances which is not based on external means, like body etc., which is aroused itself by mind, and practised by wise and discretionary practisers, that meditation etc., is internal penance.

Gāthā 10-11–Short-period fast penance observed according to the circumstances of country, time etc., and own strength, with the limit of a certain time-period.

In the religious order of Bhagawāna Mahāvira, this limit is settled minimum 48 minutes (2 *ghaḍīs*) to maximum six months.

Briefly, this penance is of six types.

(1) Series or chain penance (śreṇi tapa)–Beginning with one day fast gradually increasing in a line upto six months, the penance practised is a series fast penance. For example, one day fast, two days' fast–it is two line fast penance and one-two-thre-four days' is a four line series fast penance.

(2) Pratara tapa–A series penance can be observed in as many ways, combining all those ways, makes a *pratara tapa*. For example 1, 2, 3, 4 days' fast penance carries four ways. Following table shows it–

S. No.	1	2	3	4
1.	1 fast	2 fast	3 fast	4 fast
2.	2 fast	3 fast	4 fast	1 fast
3.	3 fast	4 fast	1 fast	2 fast
4.	4 fast	1 fast	2 fast	3 fast

It is pratara tapa. There are sixteen lines (padas) in it. Multiplying series lines by series lines the penance comes in existence. Multiplying four by four the digit of sixteen is gotten. It is equal in length and breadth or extension and expansion.

(3) Cube penanance (ghana tapa)–The series of as much lines multiplying *pratara tapa* by all those lines makes a cube penance (*ghana pata*). As in abovesaid example the series is of four lines. Hence multiplying sixteen line penance by four-line series meaning observing pratara tapa four times makes a cube penance (ghana tapa). Thus there are 64 lines of cube fast penance.

(4) Square penance (varga tapa)–Multiplying cube penance by cube penance makes a square penance, meaning for getting square penance the cube penance is to be multiplied by 64 times. Hence the lines of square penance are $64 \times 64 = 4096$ padas.

(5) *Square-square penance (varga-varga tapa)*–Square-square penance can be gotten by multiplying square penance to square penance meaning multiplying square penance by the digit 4096. It would be equal to 1,67,77,216.

It is the digit of 4 line series penance. Like this the digits can be calculated of 5, 6, 7 lines etc.

(6) Of any arrangement or miscellaneous penance (prakīrṇa tapa)– This fast penance can be observed by one's own will and according to his capacity. It needs not the construction of series etc. Beginning from *Naukārsī, yavamadhya, vajramadhya, candrapratimā* and increasing to a fortnight and then gradually decreasing to one day fast etc., this is.

Gāthā 12–Till death fast penance is called *santhārā*. It is of two kinds (1) With motion of body (savicāra) and (2) without body-motion (avicāra).

Bhakta-Pratyākhyāna and *Inginīmaraṇa* both are with motion. In *Bhaktpratyākhyāna* the practiser can himself turn the side while he is laying down and take such service from other sages. This type of santhārā can be done living with other monks. It can be observed by renouncing threefold or fourfold food.

In *Inginī-maraṇa santhāra*, the sage remains alone, renouncing all kinds of food. According to his capability he can turn the side while laying down himself and can move his own body, but cannot take any type of service from other sages.

Pādapopagamana santhārā is always without motion. It is observed at lonely places, like–the cave of a mountain. As the branch of a tree falls down on ground, remains in the same position, so is the case with *Pādapopagamana santhārā*. Practiser begins it with·which posture remains in the same till end of life, he does not even try to change that posture.

Gāthā 13–Or this till-death fast penance is of two kinds with body-motion (saparikarma) and without body motion (aparikarma). *Bhakta pratyākhāna and Inginī-maraṇa* are with motion like-sitting, standing, changing the side etc., but *Pādapopagamana* is always without any kind of body-motion.

Or *Saṁlekhanā*–with motion and without motion is called respectively *saparikarma and aparikarma.*

Saṁlekhanā is the preparation to face boldly and joyfully the death-moment. It is practised since (before the estimated time of death) a year observing fast penance etc., regularly decreasing the body, desires, passions etc.

Going outside the village etc., the santhārā observed is known as *nirhārima* and which is observed in village etc., is called *anirhārima*. Or the funeral of which practiser's body observed after his death, that is nirhārima, and the *santhāra* observed in lonely place, like–mountain-caves etc., consequently no funeral can be done of the corpse of that sage, that is called as anirhārima.

For detailed study of this subject readers are sugested to read–*Śāntyācārya's Vṛhad Vṛtti, Aupapātika sūtra* and *Uttarādhyayana–Sadhvi Candanājī.*

Gāthā 16, 17, 18–Where taxes are levied, that is *Grāma* (village). Taxes are not levied is *Nagara* meaning *na kara. Nigama*-place of business. *Ākara*–mines of gold etc., or a small village near a mine. *Pallī*–a village or a dwelling place of ordinary people or thieves. *Kheṭa*-a village with a earth wall. *Karbaṭa*–small town or bad town. *Droṇamukha*–a town having both the ways of land and water for coming and going. *Pattana*–where people can come from all directions. *Maḍamba*–there is no village upto 20 miles (2.5 yojana) in all directions. *Sambādha*–where plenty of people dwell of four classes–brāhmaṇa etc. *Āśramapada*–Dwelling places of hermitages etc., *Vihāra*–temples of deities. *Saṁniveśa*–resting house for travellers. *Samāja*–Corporation. *Ghoṣa*–station of herds man-living place., *Sthalī*–high place or the camp of army. *Sārtha*–group of men walking with the merchants who goes to other places through forests. *Saṁvarta*–the place of frightened people. *Koṭṭa*–a wall surrounding town, fort etc. *Vāḍa*–the houses encircled by the kraal ring of thorns or wires. *Rathyā*–streets of village or a town. (*Vṛhad vṛtti*)

Gāthā 19–Six kinds of collecting alms are as following–

(*1*) *Peṭā*–Peṭikā is rectangular. Like this to take alms from all the four series.

(2) Ardhapeṭā–Leaving in between houses to collect alms only from two series of houses.

(3) Gomūtrikā–To collect alms by zigzag line, as the urine line zigzag of walking bull or ox.

(4) Pataṅgavīthikā–(cricket's walk) As the moth flying shines somewhere. So to collect alms leaving the houses in betweeen.

(5) Śambūkāvartā–Like the windings of a conch either collecting the alms from the outer part of village to the inner part or collecting alms from the inner part of village to come to outer part of it, these two kinds are of *śambūkāvartā*.

(6) Āyataṁgatva pratyāgata–Reaching the last house of the village-street, then collecting alms while returning. This is also of two kinds–(1) while going to collect alms from the house of one line and while returning to take alms from the second line of hosues. (2) or collecting from only one line of houses and not to take from other line.

Please see illustration

Gāthā 31–Ten kinds of expiation penance are as following–

(1) Ālocanārha–To express own faults before teachers is confession.

(2) Pratikramaṇārha–For getting rid of sins to utter *micchāmi dukkaḍaṁ* by the core of heart.

(3) Tadubhayārha–For getting rid of sins to do both confession and exculpation.

(4) Vivekārha–To renounce the faultful food which has been carried.

(5) Vyutsargārha–To observe meditation (*kāyotsarga*) with the appraisal of twenty four tīrthaṁkaras.

(6) Tapārhā–To observe fast penances etc.

(7) Chedārha–To decrease the consecration-period.

(8) Mūlārha–To bestow new consecration, again imposing great vows.

(9) Anavasthāpanārha–To bestow new consecration along with penances.

(10) Pārañcikārha–Being done severe sins, insulting and reprimanding for a long time and after that bestow new consecration. *(Sthānāṅga, 10)*

Gāthā 33–There are ten types of servitude penance. (1) Preceptor (2) preacher (3) sthavira–aged teachers (4) penancer (5) *glan*–patient (6) *śaikṣa*–newly consecrated (7) *kūla*–group of *gacchas* (8) *gaṇa*–group of *kulas* (9) saṅgha–group of *gaṇas* (10) sādharmika–followers of the same creed–sages and nuns.

Gāthā 36–Only *Kāyotsarga* is enumerated in *Vyutsarga* penance. But renouncement of cloths, utensils etc., is also Vyutsarga. To cast off passions is also *Vyutsarga* penance. But being primacy, all types of renunciations are amalgmated in the *Vyutsarga* of body.

卐

इकत्तीसवाँ अध्ययन : चरण-विधि

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम चरण-विधि है। चरण-विधि का अर्थ है चारित्र विधि। चारित्र का ज्ञान करके, भली-भाँति समझकर उसे विवेक पूर्वक धारण करना, उसका आचरण करना।

यह अध्ययन संख्याप्रधान है। स्थानांग और समवायांग के समान संख्या को माध्यम बनाया गया है। १से३३ तक की संख्याओं के माध्यम से श्रमण के चारित्र के विविध गुणों/पक्षों का वर्णन किया गया है। ज्ञान से संबंधित भी कुछ बातें बताई गई हैं; पर प्रमुखता चारित्र की है।

चारित्र साधु-साध्वियों के लिए मेरुदण्ड है। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन में साधक द्वारा हेय-ज्ञेय-उपादेय से चारित्र-वर्द्धक गुणों और क्रिया--प्रवृत्ति को चयन करने की विधि का वर्णन किया गया है।

चारित्र का प्रारम्भ ही संयम से होता है। अतः असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति ही चारित्र विधि है। सम्यक् प्रवृत्ति ही अन्त में अप्रवृत्ति के रूप में प्रतिफलित होती है।

पंच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दशविध श्रमण धर्म, सम्यक्तप, कषाय-विजय आदि सब चारित्र के ही अंग हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में साधक को पग-पग पर सावधान किया है कि वह संयम में आगे बढ़कर पुनः पीछे न हटे। इसी दृष्टि से राग-द्वेष, विराधना, अशुभ लेश्या, क्रियास्थान, कषाय, पांच अशुभ क्रियाएँ, असमाधिस्थान, शबल दोष, महामोह स्थान आदि विघ्नों पर दृष्टिपात करके उनसे बचने की प्रेरणा भी दी गई है।

मूल में असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति का सन्देश मुखरित है। किन्तु साधक फूलों के साथ शूलों को भी अपनी झोली में न भर ले, इसी कारण दोषों की ओर भी संकेत किया गया है तथा उनको विवेचित भी किया गया है।

साधक को चाहिए कि रागात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहे। किसी भी कारण से चित्त में उद्वेग उत्पन्न न होने दे। आस्रव हेतुओं का वर्जन करे। आत्म-संलीनता--समाधि में रहे और असमाधिस्थानों से दूर रहे।

संक्षेप में दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहकर सत्प्रवृत्तियों में साधक सतत प्रयत्नशील रहे।

यही इस अध्ययन का सन्देश और प्रेरणाबिन्दु है।

इसकी (चरण विधि की) फलश्रुति भी अन्त में मोक्ष-प्राप्ति बताई गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 31
MODE OF CONDUCT

Foreview

Caption of this chapter is Mode of Conduct. *Caraṇa* and *Cāritra*-both the words denote the same meaning. It means by knowing and understanding well to practise the conduct wisely.

Numbers have been given primacy in this chapter. Like Sthānāṅga and Samavāyāṅga numbers taken as medium. The various virtues of sage-conduct have been described by the medium of numericals from one to thirty-three. Though some topics are related to knowledge but conduct took the importancy.

Conduct is like the backbone for sages and nuns. By this reason, this chapter describes the methods of selection of activities enhancing conduct virtues by adept knowing the renouncable-knowable-adaptables.

Conduct begins only by restrain. Therefore abandoning non-restrain and adapting restrain is mode of conduct.

Five great vows, five circumspections, three incognitoes, tenfold sage religious order, right penances, overcoming passions–all these are the parts of conduct.

By this chapter adept is inspired to be mindful at every step that moving forward in restrain, he should not come back. By this view point, he is inspired to protect himself from the obstacles of restrain which are–attachment-detachment, dispropiliation, inauspicious tinges (leśyā), passions, five demeritorious activities, place of distress, great faults, dense infatuation.

Basically the message of abandoning unrestrain and practise restrain has been elaborated. But adept may not fill the thorns of faults with the flowers of virtues in his bag; for this purpose the hints have been made to faults and also analysed.

Adept should remain always far away from attachment-tendencies. He should not disturb his mind by any cause, and avoid the causes of inflow of karma, always be indulge in his own soul and peace and should remain far from the places where his calmness and peace may be disturbed.

Briefly, adept should always exert in auspicious tendencies remaining far away from ill-tendencies.

This is the message and inspiring point of this chapter.

The fruition of this mode of conduct is settled attaining the liberation.

This chapter contains only 21 couplets.

एगतीसइमं अज्झयणं : चरणविही
एकत्रिंश अध्ययन : चरण-विधि

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं ।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥१॥

जीव (प्राणियों) के लिए सुखकारी चरणविधि को मैं कहता हूँ, जिसका आचरण करके बहुत से जीव संसार सागर को तर गये हैं ॥१॥

I describe the mode of conduct which bestowes happiness to souls (living beings) and practising it innumerable souls have crossed the wordly ocean. (1)

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥२॥

(साधक) एक ओर से विरति (निवृत्ति) करे और एक ओर प्रवृत्ति करे; असंयम से निवृत्ति करे और संयम में प्रवृत्ति करे ॥२॥

Adept should desist from one and practise the other ; should desist from non-restrain and practise restrain. (2)

रागद्दोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे ।
जे भिक्खू रुम्भई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥३॥

पापकर्म में प्रवृत्त करने वाले राग और द्वेष हैं। जो भिक्षु इन दोनों को सदा-नित्य रोकता है-निरोध करता है वह मण्डल (जन्म-मरण रूप संसार) में नहीं रहता ॥३॥

Attachment and detachment inspires the soul to do sinful deeds. The mendicant who always resists them does not remain in cycle of births and deaths, i.e., the world. (3)

दण्डाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं ।
जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥४॥

जो भिक्षु तीन प्रकार के दण्डों, तीन प्रकार के गौरवों और तीन प्रकार के शल्यों का सदा त्याग करता है, वह मण्डल (संसार) में नहीं रहता ॥४॥

The mendicant, who always renounces three types of soul punishment, prides and internal thorns, he does not remain in the world. (4)

दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ-माणुसे ।
जे भिक्खू सहई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥५॥

जो भिक्षु दिव्य (देवकृत), मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत उपसर्गों को सदा समभाव से सहता है, वह मण्डल (संसार) में नहीं रहता ॥५॥

The mendicant, who bears the calamities caused by deities (gods), men and beasts with even-mind, he does not entangle in this world. (5)

विगहा-कसाय-सन्नाणं, झाणाणं च दुयं तहा ।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥६॥

जो भिक्षु चार प्रकार की विकथाओं, चार कषायों, चार संज्ञा और दो दुर्ध्यानों (आर्त रौद्र ध्यान) का सदा वर्जन-त्याग करता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता-नहीं रहता ॥६॥

The mendicant who renounces four types of ill-tales, four passions, four types of expression of emotions (sañjā) and two sinful-cruel meditations, he does not remain in this world. (6)

वएसु इन्दियत्थेसु, समिईसु किरियासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥७॥

जो भिक्षु व्रतों (पाँच महाव्रतों) तथा पाँच समितियों के पालन में और पंचेन्द्रिय विषयों तथा (बन्धनकारी) क्रियाओं के परिहार में सदा यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥७॥

The mendicant who always remain careful in practising five great vows and circumspections and in renouncement of pleasures of five senses and activities which are causes of bondage,does not remain in this world. (7)

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥८॥

जो भिक्षु छह प्रकार की लेश्याओं में, छह काया (पृथ्वी आदि छह काय के जीव) तथा आहार (ग्रहण करने न करने) के छह कारणों में सदा यतना का पालन करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥८॥

The mendicant, who remains diligent in six types of tinges, protects six species, strenuous in six causes–to take and not to take food; he does not remain in this world. (8)

पिण्डोग्गहपडिमासु, भयट्ठाणे सु सत्तसु ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥९॥

जो भिक्षु (सात) पिण्ड (एषणाओं) (सात) अवग्रह प्रतिमाओं और सात भयस्थानों में सदा यतनाशील (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं ठहरता-परिभ्रमण नहीं करता ॥९॥

The mendicant, who remains alert to seven rules of collecting food, seven rules of resolution to places for seeking alms and seven dangers–fears, he does not transmigrate in this world. (9)

मयेसु बम्भगुत्तीसु, भिक्खुधम्मंमि दसविहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं से न अच्छइ मण्डले ॥१०॥

जो भिक्षु (आठ) मदस्थानों में (नौ प्रकार की) ब्रह्मचर्य गुप्तियों में और दस प्रकार के भिक्षु धर्मों (श्रमणधर्मों) में सदा यतनाशील (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१०॥

The mendicant, who always remains attentive in respect of eight types of prides, nine types of celibacy incognitoes, and ten types of sage-religious order; he does not remains in this world. (10)

उवासगाणं पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥११॥

जो भिक्षु उपासकों (श्रमणोपासकों) की (ग्यारह) प्रतिमाओं और भिक्षु (साधु की बारह) प्रतिमाओं में सदा (उपयोगवान) यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥११॥

The mendicant, who always remains strenuous, with regard to householders' eleven special determinative resolutions (pratimā), sages' twelve special propiliations (pratimā), he does not remain in this world. (11)

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१२॥

जो भिक्षु (तेरह) क्रियाओं में, (चौदह प्रकार के) भूतग्रामों (जीव समूहों) और (पन्द्रह प्रकार के) परमाधार्मिक देवों में सदा यतनाशील (उपयोगवान) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१२॥

The mendicant, who remains always attentive with regard to thirteen types of activities, fourteen kinds of living beings (groups of empirical souls) and fifteen kinds of irreligious and cruel deities, he does not stop in this world. (12)

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१३॥

जो भिक्षु गाथा षोडशक (सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययन) और (सत्रह प्रकार के) असंयम में सदा (उपयोग युक्त) यतनावान रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१३॥

The mendicant, who always remains strenous to sixteen gāthās (16 chapters of Sūtrakṛtāṅga sutra) and (abandoning) seventeen kinds of non-restrain, he does not stay in the world. (13)

बम्भम्मि नायज्झयणेसु, ठाणेसु य ऽसमाहिए।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१४॥

जो भिक्षु (अठारह प्रकार के) ब्रह्मचर्य, (१९ प्रकार के) ज्ञातासूत्र के अध्ययन तथा (बीस प्रकार के) असमाधिस्थानों में सदा यतनाशील (उपयोगवान) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१४॥

Mendicant, who always exerts himself in eighteen types of celibacy, nineteen chapters of Jñātā sūtra and (alert from) twenty places not worthy for contemplation; he does not remain in this world. (14)

एगवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१५॥

इक्कीस शबल दोषों और बाईस परीषहों में जो भिक्षु सदा यतना (उपयोगवान) रखता है, वह संसार में प्ररिभ्रमण नहीं करता ॥१५॥

Mendicant, who always remains alert with regard to twenty one great faults and (conquering) twentytwo troubles, he does not transmigrate in this world. (15)

तेवीसइ सूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु अ ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१६॥

जो भिक्षु सूत्रकृतांग सूत्र के तेईस अध्ययनों और (२४ प्रकार के) अत्यन्त सुन्दर रूप वाले देवों में उपयोगवान (यतनाशील) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१६॥

Mendicant, who always indulges himself in twenty three chapters of Sūtrakṛtāṅga sūtra and alert from twenty four types of extremely beautiful deities and gods; he does not stay in this world. (16)

पणवीस–भावणाहिं, उद्देसेसु दसाइणं ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१७॥

जो भिक्षु (पाँच महाव्रतों की) पच्चीस भावनाओं और दशाश्रुतस्कन्ध आदि के (छब्बीस) उद्देशकों में सदा यतनावान (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१७॥

Mendicant, who always indulges himself in twentyfive feelings and reflections of five great vows and twentysix chapters of Daśāśrutaskandha etc., he does not stay in this world. (17)

अणगारगुणेहिं च, पकप्पम्मि तहेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१८॥

जो भिक्षु (सत्ताईस प्रकार के) अनगार गुणों में और प्रकल्प (आचार-प्रकल्प–आचारांग के अट्ठाईस अध्ययन) में सदा उपयोगयुक्त–यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥१८॥

The mendicant, who always addict himself to the twentyseven virtues of a monk and twentyeight chapters of prakalpa (ācāraprakalpa–Ācārāṅga); he does not stay in this world. (18)

पावसुयपसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१९॥

जो भिक्षु (२९ प्रकार के) पापश्रुत प्रसंगों और मोहस्थानों (३० प्रकार के महामोहनीय कर्म बन्ध के स्थानों) में सदा यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं ठहरता ॥१९॥

The mendicant, who always remains alert from twentynine sinful scriptures and thirty causes of dense infatuation (causes of rigid bondages of karmas); he does not entangle in this worldly life. (19)

सिद्धाइगुणजोगेसु, तेत्तीसासायणासु य ।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥२०॥

जो भिक्षु सिद्धों के (३१ प्रकार के गुणों) गुणों तथा (३२ प्रकार के) योग संग्रहों तथा तेतीस प्रकार की आशातना में सदैव यतनावान रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥२०॥

The mendicant, who remains always attentive to thirtyone virtues of emancipateds, and thirtytwo kinds of concentration of mind-speech-body (yoga saṁgraha) and thirtythree types of āśātanās; he does not stay in this world. (20)

इइ एएसु ठाणेसु, जे भिक्खू जयई सया।
खिप्पं से सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डिओ ॥२१॥

—त्ति बेमि।

इस प्रकार जो पण्डित (तत्त्ववेत्ता–सदसद्विवेकी) भिक्षु इन स्थानों में सदा यतना रखता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से विमुक्त हो जाता है ॥२१॥ —ऐसा मैं कहता हूँ।

Thus the wise, witty mendicant remains always particular to all aforesaid points; he soon becomes thoroughly released from this whole world. (21) **–Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

तीन दण्ड–

दुष्प्रवृत्ति में संलग्न मन, वचन और काया–तीनों दण्ड हैं। इनसे चारित्ररूप ऐश्वर्य का तिरस्कार होता है, आत्मा दण्डित होता है।

तीन गौरव–(१) ऋद्धि गौरव–ऐश्वर्य का अभिमान, (२) रस गौरव–रसों का अभिमान (३) सात गौरव–सुखों का अभिमान।

गौरव अभिमान से उत्पन्न हुए चित्त की एक विकृत स्थिति है।

तीन शल्य–(१) माया (२) निदान–ऐहिक तथा पारलौकिक भौतिक सुख की प्राप्ति के लिये धर्म का विनिमय, (३) मिथ्यादर्शन–आत्मा का तत्वों के प्रति मिथ्यारूप दृष्टिकोण।

शल्य काँटे या शस्त्र की नोक को कहते हैं। जैसे वह पीड़ा देता है, उसी प्रकार साधक को ये शल्य भी निरन्तर उत्पीड़ित करते हैं। (बृहद्वृत्ति)

चार विकथा–(१) स्त्री कथा–स्त्री के रूप, लावण्य आदि का वर्णन करना। (२) भक्त कथा–नाना प्रकार के भोजन की कथा (३) देश कथा–नाना देशों के रहन-सहन आदि की कथा, (४) राजकथा–राजाओं के ऐश्वर्य तथा भोगविलास का वर्णन। (स्थानांग ४)

चार संज्ञा–संज्ञा का अर्थ है–आसक्ति और मूर्च्छना। (स्थानांग ४)

(१) आहार संज्ञा (२) भय संज्ञा (३) मैथुन संज्ञा और (४) लोभ संज्ञा।

पाँच व्रत–अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं। **पाँच इन्द्रियाँ**–शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श–ये पाँच इन्द्रियों के विषय हैं।

पाँच क्रियायें–(१) कायिकी (२) आधिकरणिकी–शस्त्रादि अधिकरण से सम्बन्धित (३) प्राद्वेषिकी–द्वेष रूप (४) पारितापनिकी (५) प्राणातिपात–प्राणिहिंसा।

सात पिण्ड और अवग्रह की प्रतिमायें–

पिण्ड का अर्थ आहार है।

अवग्रह (स्थान) आहार ग्रहण करने में स्थान सम्बन्धी अभिग्रह (संकल्प) करना।

इनका वर्णन स्थानांग सूत्र ७ में देखें।

सात भय–

१. इहलोक भय–अपनी ही जाति के प्राणी से डरना, इहलोक भय है। जैसे मनुष्य का मनुष्य से, तिर्यंच का तिर्यंच आदि से डरना।

२. परलोक भय–दूसरी जाति वाले प्राणी से डरना, परलोक भय है। जैसे मनुष्य का देव से या तिर्यंच आदि से डरना।

३. आदान भय–अपनी वस्तु की रक्षा के लिये चोर आदि से डरना।

४. अकस्मात् भय–किसी बाह्य निमित्त के बिना अपने आप ही सशंक होकर रात्रि आदि में अचानक डरने लगना।

५. आजीव भय–दुर्भिक्ष आदि में जीवन यात्रा के लिये भोजन आदि की अप्राप्ति के दुर्विकल्प से डरना।

६. मरण भय–मृत्यु से डरना।

७. अश्लोक भय–अपयश की आशंका से डरना। (स्थानांग ७)

आठ मदस्थान–

१. जाति मद–ऊँची और श्रेष्ठ जाति का अभिमान।

२. कुलमद–ऊँचे कुल का अभिमान।

३. बलमद–अपने बल का घमण्ड।

४. रूप मद–अपने रूप, सौन्दर्य का गर्व।

५. तप मद–उग्र तपस्वी होने का अभिमान।

६. श्रुत मद–शास्त्राभ्यास अर्थात् पाण्डित्य का अभिमान।

७. लाभ मद–अभीष्ट वस्तु के मिल जाने पर अपने लाभ का अहंकार।

८. ऐश्वर्य मद–अपने ऐश्वर्य अर्थात् प्रभुत्व का अहंकार। (स्थानांग ८)

नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति–इनके लिये इसी सूत्र का १६वाँ अध्ययन देखें।

दस श्रमण धर्म–

१. क्षान्ति–क्रोध न करना।

२. मार्दव–मृदु भाव रखना। जाति, कुल आदि का अहंकार न करना।

३. आर्जव–ऋजुभाव–सरलता रखना, माया न करना।

४. मुक्ति–निर्लोभता रखना, लोभ न करना।

५. तप–अनशन आदि बारह प्रकार का तप करना।

६. संयम–हिंसा आदि आस्रवों का निरोध करना।

७. सत्य–सत्य भाषण करना, झूठ न बोलना।

८. शौच–संयम में दूषण न लगाना, संयम के प्रति निरुपलेपता–पवित्रता रखना।

९. आकिंचन्य–परिग्रह न रखना।

१०. ब्रह्मचर्य–ब्रह्मचर्य का पालन करना।

ग्यारह उपासक प्रतिमायें–देखें समवायांग ११

बारह भिक्षु प्रतिमायें–देखें समवायांग १२

तेरह क्रियास्थान–(देखें समवायांग १३)

चौदह भूतग्राम–जीवसमूह–

१. सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २. बादर एकेन्द्रिय, ३. द्वीन्द्रिय, ४. त्रीन्द्रिय, ५. चतुरिन्द्रिय ६. असंज्ञी पंचेन्द्रिय और ७. संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त–कुल चौदह भेद होते हैं। इनकी विराधना करना, किसी भी प्रकार की पीड़ा देना वर्जित है। (समवायांग)

पंद्रह परमाधार्मिक–परम-अधार्मिक अर्थात् पापाचारी क्रूर एवं निर्दय असुर जाति के देव हैं। इनके हिंसाकर्मों का अनुमोदन नहीं करना।

गाथा षोडशक–(सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन)

सत्रह प्रकार का असंयम–

१-९ पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय–उक्त नौ प्रकार के जीवों की हिंसा करना, कराना, अनुमोदन करना।

१०. **अजीव असंयम**–अजीव होने पर भी जिन वस्तुओं के द्वारा असंयम होता हो, उन बहुमूल्य वस्त्र पात्र आदि का ग्रहण करना अजीव असंयम है।

११. **प्रेक्षा असंयम**–जीवसहित स्थान में उठना, बैठना, सोना आदि।

१२. **उपेक्षा असंयम**–गृहस्थ के पाप कर्मों का अनुमोदन करना।

१३. **अपहृत्य असंयम**–अविधि से किसी अनुपयोगी वस्तु का परठना। इसे परिष्ठापना असंयम भी कहते हैं।

१४. **प्रमार्जना असंयम**–वस्त्र पात्र आदि की प्रमार्जना न करना।

१५. **मनः असंयम**–मन में दुर्भाव रखना।

१६. **वचन असंयम**–कुवचन या असत्य बोलना।

१७. **काय–असंयम**–गमनागमनादि क्रियाओं में असावधान रहना। (समवायांग १७)

अठारह अब्रह्मचर्य–

देवसम्बन्धी भोगों का मन, वचन और काय से स्वयं सेवन करना, दूसरों से करवाना, तथा करते हुए को भला जानना–इस प्रकार नौ भेद वैक्रिय शरीर सम्बन्धी होते हैं। मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बन्धी औदारिक भोगों के भी इसी तरह नौ भेद समझ लेने चाहिये। कुल मिलाकर अठारह भेद होते हैं। (समवायांग १८)

ज्ञाता धर्म कथा के १९ अध्ययन–

बीस असमाधि स्थान–देखें समवायांग २०

इक्कीस शबल दोष–(दशाश्रुतस्कन्ध, दशा २)

बाईस परीषह–देखिये, उत्तराध्ययन का दूसरा परीषह अध्ययन।

गाथा १६–सूत्रकृतांग सूत्र के २३ अध्ययन–

उक्त तेईस अध्ययनों के कथानानुसार संयमी जीवन न होना, दोष है।

चौबीस देव–यहाँ रूप का अर्थ एक है। अतः पूर्वोक्त तेईस संख्या में एक अधिक मिलाने से रूपाधिक का अर्थ २४ होता है। चौबीस प्रकार के देव १० असुरकुमार आदि दशभवनपति, ८ भूत–यक्ष आदि आठ व्यन्तर, ५ सूर्य–चन्द्र आदि पाँच ज्योतिष्क और एक वैमानिक देव–इस प्रकार कुल चौबीस जाति के देव हैं। इनकी प्रशंसा करना भोग-जीवन की प्रशंसा करना है और निन्दा करना द्वेषभाव है। अतः मुमुक्षु को तटस्थ भाव ही रखना चाहिये।

समवायांग में २४ देवों से २४ तीर्थंकरों को ग्रहण किया गया है।

पाँच महाव्रतों की २५ भावनायें–(विस्तार के लिये देखें भावना योग आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी)

दशाश्रुत आदि तीनों सूत्रों के २६ उद्देशन काल–

दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र के दश उद्देश, बृहत्कल्प के छह उद्देश, और व्यवहार सूत्र के दश उद्देश इस प्रकार तीनों के छब्बीस उद्देश होते हैं। जिस श्रुतस्कन्ध या अध्ययन के जितने उद्देश होते हैं उतने ही वहाँ उद्देशन काल अर्थात् श्रुतोपचार रूप उद्देशावसर होते हैं। एक दिन में जितने श्रुत की वाचना (अध्यापन) दी जाती है उसे एक उद्देशन काल कहा जाता है।

सत्ताईस अनगार के गुण–देखें समवायांग २७

(१–५) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन करना। (६) रात्रि भोजन का त्याग करना (७–११) पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना (१२) भाव सत्य–अन्तःकरण की शुद्धि (१३) करण सत्य–वस्त्र

पात्र आदि की भली-भाँति प्रतिलेखना करना (१४) क्षमा (१५) विरागता-लोभनिग्रह (१६) मन की शुभ प्रवृत्ति (१७) वचन की शुभ प्रवृत्ति (१८) काय की शुभ प्रवृत्ति (१९-२४) छह काय के जीवों की रक्षा (२५) संयम-योगयुक्तता (२६) वेदनाऽभिसहन-तितिक्षा अर्थात् शीत आदि से सम्बन्धित कष्टसहिष्णुता (२७) मारणान्तिकाऽभिसहन-मारणान्तिक कष्ट को भी समभाव से सहना। उक्त गुण आचार्य हरिभद्र ने आवश्यक सूत्र की शिष्यहिता वृत्ति में बताये हैं। समवायांग सूत्र में कुछ भिन्नता है।

गाथा १८-अट्ठाईस आचार प्रकल्प-(आचारांग सूत्र के २५ अध्ययन तथा एवं निशीथ के तीन अध्ययन)

गाथा १९-पापश्रुत के २९ भेद-

(१) भौम-भूमिकम्प आदि का फल बताने वाला शास्त्र (२) उत्पात-रुधिर वृष्टि, दिशाओं का लाल होना इत्यादि का शुभाशुभ फल बताने वाला निमित्त शास्त्र (३) स्वप्नशास्त्र (४) अन्तरिक्ष-आकाश में होने वाले ग्रहवेध आदि का वर्णन करने वाला शास्त्र (५) अंग शास्त्र-शरीर के स्पन्दन आदि का फल कहने वाला शास्त्र (६) स्वर शास्त्र (७) व्यंजन शास्त्र-तिल, मष आदि का वर्णन करने वाला शास्त्र। (८) लक्षण शास्त्र-स्त्री पुरुषों के लक्षणों का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र।

ये आठों ही, सूत्र, वृत्ति और उनकी वार्तिक के भेद से चौबीस शास्त्र हो जाते हैं।

(२५) विकथानुयोग-अर्थ और काम के उपायों को बताने वाले शास्त्र, जैसे वात्स्यायनकृत कामसूत्र आदि। (२६) विद्यानुयोग-रोहिणी आदि विद्याओं की सिद्धि के उपाय बताने वाले शास्त्र (२७) मन्त्रानुयोग-मन्त्र आदि के द्वारा कार्य सिद्धि बताने वाले शास्त्र (२८) योगानुयोग-वशीकरण आदि योग बताने वाले शास्त्र (२९) अन्यतीर्थिकानुयोग-अन्यतीर्थिकों द्वारा प्रवर्तित एवं अभिमत हिंसा प्रधान आचारशास्त्र।

गाथा १९

महा मोहनीय के ३० स्थान। देखें दशाश्रुतस्कन्ध एवं समवायांग सूत्र।

सिद्धों के ३१ अतिशायी गुण-देखें समवायांग ३१।

बत्तीस योग संग्रह-

मन, वचन, काया के प्रशस्त योगों का एकत्रीकरण योग संग्रह है।

१. गुरुजनों के पास दोषों की आलोचना करना। २. किसी के दोषों की आलोचना सुनकर अन्य के पास न कहना। ३. संकट पड़ने पर भी धर्म में दृढ़ रहना। ४. आसक्ति रहित तप करना। ५. सूत्रार्थग्रहणरूप ग्रहण शिक्षा एवं प्रतिलेखना आदि-रूप आसेवना-आचार शिक्षा का अभ्यास करना। ६. शोभा-शृंगार नहीं करना। ७. पूजा प्रतिष्ठा का मोह त्याग कर अज्ञात तप करना। ८. लोभ का त्याग। ९. तितिक्षा। १०. आर्जव-सरलता। ११. शुचि-संयम एवं सत्य की पवित्रता। १२. सम्यक्त्व शुद्धि। १३. समाधि-प्रसन्नचित्तता। १४. आचार पालन में माया न करना। १५. विनय। १६. धैर्य। १७. संवेग-सांसारिक भोगों से भय अथवा मोक्षाभिलाषा। १८. माया न करना। १९. सदनुष्ठान। २०. संवर-पापास्रव को रोकना। २१. दोषों की शुद्धि करना। २२. काम भोगों से विरक्ति करना। २३. मूल गुणों का शुद्ध पालन। २४. उत्तर गुणों का शुद्ध पालन। २५. व्युत्सर्ग करना। २६. प्रमाद न करना। २७. प्रतिक्षण संयम यात्रा में सावधानी रखना। २८. शुभ ध्यान। २९. मारणान्तिक वेदना होने पर भी अधीर न होना। ३०. संग का परित्याग करना। ३१. प्रायश्चित्त ग्रहण करना। ३२. अन्त समय में संलेखना करके आराधक बनना। (समवायांग ३२)

तेतीस आशातना-देखें दशाश्रुतस्कन्ध दशा ३ तथा समवायांग ३३ एवं श्रमण सूत्र-उपाध्याय श्री अमर मुनि।

Salient Elucidations

Three punishments (daṇḍas)–mind, speech and body indulged in ill-tendencies are punishments. By these the glory of conduct insulted and soul is punished.

Three prides–(1) pride of wealth, (2) pride of tastes (3) pride of pleasures.

Gaurava or glory is the deformed state of mind.

Three internal thorns (śalya)–(1) deceit (2) exchange of religious rituals for the empirical pleasures of this and that world, (3) contrary belief of soul regarding elements.

Śalya is thorn or a point of a weapon. As this gives pain, so the internal thorns also give pains to the adept.

Four ill-tales–(1) Women-tale–to describe beauty, charms and coquets of women (2) Food tale–Description of various types of delicious foods, dainties etc., (3) Country tale–Description of dresses and livings of various countries (4) Tale of kings–Description of wealth, amusements and rejoicings of kings and rulers. (Sthānaṅga 4)

Four Sajñās–Sajñā means addictment and indulgement (Sthānāṅga 4).

It is of four kinds (1) food (2) fear (3) cohabitation and (4) greed.

Five vows, senses and object of senses–(1) five vows–non-violence etc. (2) five senses–ears, eyes, nose, tongue and touch (3) objects of senses–sound, sight, smell, taste and touch.

Five activities–(1) bodily (2) pertaining to weapons etc., (3) in the form of detachment (4) *paritāpanikī* (5) violence of living beings.

Seven pratimas of food and avagraha–

Piṇḍa means food.

Special resolution (avagraha) pertaining to place for seeking and accepting food.

(For detail see Sthānāṅga 7)

Seven Fears

(1) *Ihaloka fear*–Fear from the beings of own caste, e. g., a man fears from other man and beast from other beast.

(2) *Paraloka fear*–Fear from other caste, e.g., a man fears from deity (god) and beasts.

(3) *Ādāna fear*–For protecting own possessions to be frightened of thieves etc.

(4) *Akasmāta Fear*–Without any external cause, being doubtful by ownself to be frightened suddenly in the night etc.

(5) *Ājīva Fear*–In the time of famine to be frightened by mis-apprehending to get food for living alive.

(6) *Maraṇa Fear*–Fear of death.

(7) *Aśloka Fear*–To be frightened by the suspicion of disfame. (*Sthānāṅga 7*)

Eight Prides–

(1) *Pride of caste*–Pride of high and superior caste.

(2) *Pride of kula*–Pride of high family.

(3) *Pride of power*–Pride of own strength.

(4) *Pride of beauty*–Pride of his own form, frame and beauty.

(5) *Pride of penance*–To be proudy as I am rigorious penancer.

(6) *Pride of knowledge*–To be proudy of study of scriptures and learnedness.

(7) *Pride of gain*–Getting the desired thing to be proudy of his gain.

(8) *Pride of wealth*–To be proudy of his own wealth and authority. (*Sthānāṅga 8*)

For *nine incognitoes of celibacy*, see the sixteenth chapter of this sūtra.

Ten Religious orders of sages

(1) *Kṣānti*–Not to be angry.

(2) *Mārdava*–Humility. Avoidance of pride of caste, family etc.

(3) *Ārjava*–Simplicity, avoidance of deceit.

(4) *Mukti*–ungreediness, avoidance of greed.

(5) *Tapa*–To observe twelve types of penances, like–fast etc.

(6) *Saṁyama*–Restrainment. To stop the inflow–violence etc.

(7) *Satya*–To speak always truth, never tell a lie.

(8) *Śauca*–Never flaw in restrain, to observe purity to restrain.

(9) *Ākiṅcanya*–Becoming possessionless.

(10) *Brahmacarya*–To practise celibacy.

For householders' eleven *pritimās*–see Samavāyāṅga 11.

For Mendicants' twelve *pratimās*–see Samavāyāṅga 12.

For thirteen activities–see Samavāyāṅga 13.

Fourteen Bhutagrāma (group of living beings)

(1) Subtle one-sensed beings (2) gross one-sensed living beings (3) two sensed beings (4) three sensed beings (5) four sensed beings (6) five sensed asañjñī beings (7) five sensed sañjñī beings. All these are of two types–paryāpta and aparyāpta. Thus all the groups of living beings are of 14 kinds.

Fifteen most irreligious deities–These are most irreligious, cruel deities of *asura* class. Not to consent their sinful deeds.

Gāthā Ṣoḍaśaka–Sixteen chapters of Sūtrakṛtāṅga sūtra.

Seventeen types of non-restrain–

(1-9) Earth-bodied (2) Water-bodied (3) Fire-bodied (4) Air-bodied (5) Vegetables (6) two sensed (7) three sensed (8) four sensed and (9) five sensed living beings. Injure himself, make to injure others and to give consent to injure all the abovesaid beings.

(10) *Ajīva asaṁyama*–Being without life by things if non-restrain takes place, to accept those costly cloths, vessels etc., is nonsoul non-restrain.

(11) *Prekṣā Asaṁyma*–To stand, sit, lay down on the ground which is with living beings.

(12) *Upekṣa Asaṁyama*–To give consent to the sinful deeds of householders.

(13) *Apahṛtya Asaṁyama*–To throw any worthless thing improperly. It is also called pariṣṭhāpanā asaṁyama.

(14) *Pramārjanā Asaṁyama*–Not to clean cloths and vessels.

(15) *Manaḥ Asaṁyama*–Ill-feelings of the mind.

(16) *Vacana Asaṁyama*–To speak ill words or telling lies.

(17) *Kāya Asaṁyama*–To be careless in the activities of coming and going.

Eighteen types of Non-celibacy–To enjoy sex behaviour himself by mind, speech and body, to make other to enjoy such sex behaviour, if any one enjoys such type of sex behaviour then treat him as good. These are nine kinds pertaining to aerial body. Pertaining to human beings and beasts (crooked beings) of gross body, one should understand the sex-behaviour like this. Thus in sum total there are eighteen kinds of sex behaviours.

For Nineteen chapters of Jñātādharama kathā–see Jñātā sūtra.

For twenty Asamādhi sthāna–see Samavāyaṅga 20.

Twentyone Śabala Doṣa.

Twentytwo troubles–see second chapter of this sūtra.

Twentythree chapters of Sūtrakṛtānga–According to these chapters not to lead the restrain life order is a fault.

Twentyfour deities (gods)–Here the word rūpa stands for one. Therefore adding one to aforesaid twentythree numbers it becomes numerical twentyfour.

Twentyfour types of deities (gods) can be enumerated thus–10 types of Asurakumāras, 8 types of Vyantara, 5 types of Jyotiṣka and 1 Vaimāmika. All these are twenty-four types of deities (gods). To appraise them is appraisal of rejoicing life and to abuse them is the emotion of detachment. So the salvation-wisher should remain neutral.

In Samavāyānga twentyfour tīrthaṁkaras are grasped for twentyfour deities (gods).

For twentyfive reflections–feelings of five great vows–see Bhāvanāyoga by Ācārya Ānanda Ṛṣiji.

Twentysix Uddeśana kālas of Daśāśruta–Skandha etc., *three scriptures–*

Ten Uddeśas of Daśāśrutaskandha, six of Bṛhatkalp and ten of Vyavahārāsūtra, thus becomes twentysix uddeśas. As much are Uddeśas of any Śrutaskandha or chapters so much are Uddeśanakālas alias śrutopacāra–uddeśāvasara. As much teaching is given of śruta in a day is called one Uddeśanakāla.

For twentyseven virtues of a monk–see Samavāyānga 27.

(1–5) Non-violence, truth, non-stealing, celibacy, non-possession–to practise these great vows properly, (6) renouncement of any kind of food and water in night time (7–11) subjugating all the five senses (12) truth of thought–purifying internal mind and heart (13) Truth of means–outfits–to inspect cloths and vessels with due care (14) forgiveness (15) obstruction of greed (16) auspicious tendency of mind (17) to speak meritorious words (18) auspicious activities of body (19–24) protection of six kinds of species (25) practising restrain (26) tolerance regard cold, heat etc., (27) to endure death-like troubles with even mind.

These virtues of monk are described by ācārya Haribhadra in his śiṣyahitā vritti of Āvaśyaka sūtra. There is somewhat difference in Samavāyānga.

Twentyeight Ācārprakalpa–Twentyfive chapters of Ācārānga sūtra. and three chapters of Niśitha.

Twentynine kinds of evil scriptures–

(1) Bhauma–seismology (2) Utpāta–showering of blood, becoming directions red even after sun-set and in night (3) Dreamology, (4) Astrology (5) Throbbing parts of body (6) Vioceoloby or air coming in and going out from nostrils (7) signs of body–like til, masa etc. (8) symptomology–foretelling auspicious and inauspicious happenings may take palce in future.

All these eight types of original scriptures, their Vṛtti and Vārtika–thus these are of twentyfour kinds.

(25) Vikathānuyoga–scriptures describing the devices to fulfil the desire of wealth and sensual pleasure, like–Kāmasūtra of Vātsyāyana (26) Vidyānuyoga–scriptures, describing the practices for activating the cherismas (Vidyās), like Rohiṇī etc. (27) Mantrānuyoga–mantrology–scriptures relating the means for accomplishing any desire (28) Yogānunyoga–scriptures telling devices (yoga) of subjugation etc. (29) Anyatīrthikānuyoga–scriptures propagating violent conduct.

For thirty dense infatuation causes–see Daśaśrutaskandha and Samavāyaṅga sūtras.

For thirtyone special qualities of perfect souls–see Samavāyāṇga 31.

Thirtytwo Yoga-saṇgrahas–

Embodiment of auspicious activities of mind, speech and body is the amass of yogas (yoga-saṅgraha).

(1) To confess own faults before elders and teachers (2) Listening the confession of faults of any to not tell other (3) To remain steady even in troubles (4) To observe penance without any worldly fondness (5) To practise study to religion of conduct by grasping the teachings of holy texts and inspection etc. (6) not to adorn himself (7) renouncing the desire of respect and honour, observing austerities not showing to others (8) Abandonment of greed (9) tolerance (10) simplicity (11) purification of restrain and truth (12) purification of right faith (13) pleasant mindedness (14) Not to deceit in practising conduct (15) humiliation–courtesy, modesty (16) constancy (17) fear from empirical pleasures or desire for salvation (18) Not to deceit (19) good deeds (10) stoppage of inflow of karmas (21) purification of defects (22) Non-addictment to amusements and rejoicings (23) pure practice of great vows–virtues (mūla guṇa) (24) pure practice of subsidiary vows–virtues (uttara guṇa) (25) to renounce (26) Not to be careless (27) ever carefulness in restrain life-order (28) auspicious meditation (29) not be distressed even in death-like trouble (30) renunciation of company (31) To accept expiation (32) To be propiliator by accepting saṁlekhanā in the end of present life or at the time of death (Samavāyaṅga 32)

For thirtythree āśatanās–see Daśāśruta skandha, daśā 3, Samavāyāṅga 33, and Śramaṇa sūtra by Upādhyāya Śrī Amara muni

卐

बत्तीसवाँ अध्ययन : प्रमादस्थान

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'प्रमाद स्थान' है। इसमें साधक की साधना के प्रमुख विघ्न प्रमाद के कारणों का वर्णन करके साधक को उनसे दूर रहने की–निवारण की प्रेरणा दी गई है।

प्रमाद के भेद-प्रभेद अनेक प्रकार से बताये गये हैं–

प्रमाद के प्रमुख भेद ५ हैं–(१) मद्य (मद) (२) विषय, (३) कषाय (४) विकथा और (५) निद्रा–निन्दा अथवा निद्रा। इन्हीं के पन्द्रह अवान्तर भेद हो जाते हैं; क्योंकि विषय (इन्द्रियविषय) ५ प्रकार के हैं, कषाय और विकथा–दोनों के चार-चार भेद हैं।

अन्य अपेक्षा से प्रमाद के ८ भेद भी बताये गये हैं–(१) अज्ञान (२) संशय (३) मिथ्याज्ञान (४) राग (५) द्वेष (६) स्मृतिभ्रंश (७) धर्म के प्रति अनादर और (८) मन-वचन-काया का दुष्प्रणिधान। (प्रवचनसारोद्धार द्वार २०७, गाथा १२२-२३)

सामान्य शब्दों में प्रमाद का अभिप्राय है–अजागृति, असावधानी, आलस्य, अविवेक, आत्म-लक्ष्य के प्रति स्मृति न रहना (Negligence) आदि।

यह सत्य है कि संयम यात्रा के लिए साधक को भी कुछ अपरिहार्य साधनों की आवश्यकता होती है। साधनों के बिना उसका जीवन यापन संभव ही नहीं है।

लेकिन साधन अपने-आप में न शुभ हैं, न अशुभ; न अच्छे हैं, न बुरे। उनकी शुभता-अशुभता उपयोक्ता के भाव, मनोदशाएँ, वृत्ति-प्रवृत्तियाँ, राग-द्वेष आदि निर्धारित करते हैं।

भोजन शरीर-रक्षा के लिए अत्यावश्यक है। किन्तु यदि भोजन सिर्फ भोजन के लिए किया जाय, स्वादिष्ट पकवानों को अधिक मात्रा में खा लिया जाय तो वही भोजन उदर-व्याधियों और अनेक रोगों का कारण बनकर साधना में विघ्न बन जाता है।

शयन और आसन भी साधक के लिए आवश्यक हैं, किन्तु यदि वे स्त्री-नपुंसक से संसक्त हों तो काम विकार वर्द्धक बन जाते हैं, साधक अपने मन पर नियन्त्रण न रख पायेगा और उसकी साधना में विघ्न खड़ा हो जायेगा।

यही बात अन्य साधनों के विषय में भी सत्य है।

साधक का कर्त्तव्य है, साधनों को मात्र साधन समझे और इसी दृष्टि से उनका उपयोग करे, उनके प्रति मोह-ममत्व-मूर्च्छा के भाव मन में न आने दे।

राग-द्वेष, आसक्ति, मिथ्या-दर्शन, मोहादि का त्याग संसार के दुःखों से मुक्ति और एकान्त आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

प्रमाद में शिष्यैषणा भी सम्मिलित है। अपने शरीर की सेवा तथा सुख-सुविधा के लिए साधक को शिष्य बनाना उचित नहीं है। यद्यपि साधक को सहायक की आवश्यकता होती है, वह सहायक साथी मुनि भी हो सकता है और शिष्य भी। लेकिन आवश्यक है कि वह धर्म में प्रवीण और साधना में सहायक हो। यदि ऐसा सहायक न मिले तो साधक ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त होकर एकाकी विचरण करे।

प्रमाद-स्थानों से बचकर वीतराग के मार्ग पर चलना चाहिए। वीतरागी साधक ही मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में १११ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 32
CAUSES OF NEGLIGENCE

Foreview

The caption of this chapter is 'Causes of Negligence'. By describing the main obstructions of observing the propiliation of adept-the causes of negligence,the adept is inspired to remain far away from these causes.

Divisions and sub-divisions of negligence are described in various ways–

The chief divisions of negligence are five–(1) Proud (2) sensualities (3) passions (4) ill-tales and (5) sleep or abusement.

These five kinds are sub-divided into fifteen types; because the sensualities are of five types on account of five senses, passions and ill-tales–both are of four kinds.

By another viewpoint negligence is divided into eight kinds–(1) Ignorance (2) Suspicion (3) Wrong Knowledge, (4) Attachment (5) Detachment (6) Memory-spoiled (7) Disrespect towards religion (8) ill-concentration or attempt of mind, speech and body (*Pravacanasāroddhāra, Dwāra 207, Gāthā 122-123*).

Generally negligence denotes–unwakefulness, carelessness, laziness, non-discretion, forgetfulness about soul-benefit etc.

It is the prescribed fact for restrained life-order an adept needs some unavoidable means. Without means to sustain life is not possible.

But the means by themselves neither auspicious nor inauspicious; neither good nor bad. Their auspiciousness and inauspiciousness is determined by the thoughts, mental conditions, tenencies, attachment-detachment of the user of them.

Food is very much essential for sustaining body. But food is taken for food only, delicious dishes are taken in excessive quantity then it would be the cause of stomach diseases and many other sicknesses and will become an obstacle in propiliation.

Bed and seat also necessary for adept; if they are afflicted and used by women and eunuch, then they will excite the sexual feelings. Adept would not control his mind and thereby obstacle will take place in his practice of religious order.

This is also true regarding other means.

It is the duty of adept that he should take means as means only and should utilise them with this viewpoint. Let not arouse the feelings of affection-myness-indulgence towa·ds them in his mind.

Seeking of disciples is also incorporated in negligence. For service, ease and comfort of his own body, it is not proper for adept to take a person as his disciple. Though adept needs a helper, he may be his companion sage and disciple too. But it is necessary for the helper that he should be expert in religion and religious order and helpful in practices of religious rites. If an adept could not get such helper then he should wander lonely being opulent by knowledge-faith and conduct.

Being far away from negligence and its causes adept should take the path prescribed by attachment-free Jinas. Attachment-free adept attains liberation.

This chapter contains 111 (one hundred eleven) couplets.

卐

बत्तीसइमं अज्झयणं : पमायट्ठाणं
द्वात्रिंश अध्ययन : प्रमाद-स्थान

अच्चन्तकालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ।
तं भासओ मे पडिपुण्णचित्ता, सुणेह एगंतहियं हियत्थं ॥१॥

अत्यन्त (अनन्त तथा अनादि) काल के सभी दुःखों तथा उनके मूल कारणों से जो प्रमोक्ष (मुक्त) करने वाला है उसको मैं कहता हूँ, प्रतिपूर्ण (पूरे) मन से सुनो ; (क्योंकि यह) एकान्त (पूर्णरूप से) हित रूप है और कल्याण के लिए (कल्याणकारी) है ॥१॥

I express the subject which is capable to make free from the miseries of beginningless times and their causes. Listen with concentrated mind my dialect; because it exhaustively beneficial and benedictory (for you–your soul). (1)

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥२॥

सम्पूर्ण ज्ञान के प्रगट होने से, अज्ञान-मोह के विवर्जन (परिहार) से तथा राग और द्वेष के सर्वथा क्षय (नष्ट होने) से जीव एकान्त सुख रूप (सुख स्थान) मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२॥

By manifestation of right knowledge (by which every thing is cognised), by avoidance of wrong-knowledge and exhaustive destruction of attachment and detachment; the soul obtains salvation which is the abode of eternal beatitude. (2)

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झाय-एगन्तनिसेवणा य, सुत्तऽत्थसंचिन्तणया धिई य ॥३॥

उस (दुःखों से मुक्ति और सुख प्राप्ति) का यह मार्ग है–१. गुरुजनों और वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करना, २. बाल (अज्ञानी) जनों से दूर रहना ३. स्वाध्याय तथा एकान्त सेवन, ४. सूत्र और उसके अर्थ का चिन्तन तथा धैर्य धारण किये रहना ॥३॥

This (freedom from miseries and attaining happiness) is the way–(1) service of teachers and ageds (2) remaining far away from ignorant or wrong-faithed persons (3) study holy texts and to live in solitary places (4) pondering over the words and meanings of scriptures and to be ever constant. (3)

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं ।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्गं, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥४॥

समाधि की कामना (इच्छा) करने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार की इच्छा करे, अर्थ (तत्व और अर्थ) में निपुण बुद्धिवाले सहायक की इच्छा करे और स्त्री-पशु-नपुंसक से विविक्त–रहित–एकान्त योग (विवेग-जोग्गं) स्थान में रहने की इच्छा करे ॥४॥

The penancer sage desirous of contemplation should seek for limited and faultless food, wish for expert and intelligent helper and desire for lonely bed and lodge unfrequented by women, beast and eunuch. (4)

न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।
एक्को वि पावाइ विवज्जयन्तो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥५॥

यदि निपुण सहायक, अपने से अधिक गुणों वाला अथवा समान गुणवाला सहायक न प्राप्त हो सके तो पापों को वर्जित करता हुआ और काम-भोगों में अनासक्त रहता हुआ अकेला-एकाकी ही विचरण करे ॥५॥

If he could not get the helper–companion more proficient or equal in virtues then avoiding sins and unaddicted to empirical pleasures, he should wander alone. (5)

जहा य अण्डप्पभवा बलागा, अण्डं बलागप्पभवं जहा य ।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयन्ति ॥६॥

जैसे बगुली (बलाका) अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा बगुली से उत्पन्न होता है। वैसे ही मोह का आयतन (घर-जन्मस्थान), तृष्णा है और तृष्णा का आयतन (घर–जन्मस्थान) मोह को कहा गया है ॥६॥

As the crane produced from egg and egg produced from crane, so the origin of infatuation is desire and infatuation is called origin or abode of desire. (6)

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति ।
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयन्ति ॥७॥

राग और द्वेष ये दोनों कर्म के वीज हैं और कर्म को मोह से उत्पन्न हुआ कहा गया है तथा कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण को ही दुःख कहा गया है ॥७॥

Attachment and detachment–both are the root causes (seeds) of karmas and karma is originated by infatuation and only karma is the root of births and deaths and these (births and deaths) are called the miseries. (7)

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥८॥

जिसको मोह नहीं होता उसका दुःख नष्ट हो जाता है, जिसको तृष्णा नहीं होती उसका मोह नष्ट हो जाता है, तृष्णा के समाप्त हो जाने पर लोभ विनष्ट हो जाता है और जिसका लोभ नष्ट हो जाता है उसके पास कुछ नहीं रहता, वह अकिंचन हो जाता है ॥८॥

Who has no infatuation his misery ceases, infatuation ceases who has no desire, in absence of desire greed ceases and whose greed is ceased he possessed nothing and becomes possessionless. (8)

रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तुकामेण समूलजालं ।
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ॥९॥

जो राग और द्वेष तथा उसी प्रकार मोह को मूल सहित उखाड़ने की इच्छा करने वाला है उसे जिस-जिस प्रकार के उपाय करने–अपनाने चाहिए उन (उपायों) का मैं अनुक्रम से (क्रमशः) कथन करूँगा ॥९॥

Who wants to uproot attachment, detachment and infatuation, what means he should adopt, I shall explain those in due order. (9)

रसा पगामं न निसेवियव्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥१०॥

रसों का अधिक सेवन न करे; क्योंकि रस प्रायः उन्माद बढ़ाने वाले अथवा कामोद्दीपन करने वाले होते हैं और (उद्दीप्त मानव को) विषय-भोग (काम) उसी प्रकार उत्पीड़ित करते हैं जिस प्रकार स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष को पक्षी करते हैं ॥१०॥

He should not take tasty food in excessive quantity; because tastes are often enhancer of intoxication and exciting sex and sexualities harasses the excited man as the birds harass the tree with juicy and tasty fruits. (10)

जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ ।
एविन्दियग्गी वि पगामभोइणो, न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ॥११॥

जिस प्रकार प्रचुर ईंधन वाले जंगल में प्रचण्ड पवन के साथ लगी हुई दावाग्नि किसी उपाय से शांत नहीं होती उसी प्रकार अतिमात्रा में अथवा अपनी इच्छानुकूल भोजन करने वाले (पगाम भोजी) की इन्द्रियाग्नि (इन्द्रियों में उत्पन्न हुई काम-वासना की अग्नि) भी किसी भी उपाय से शांत नहीं होती अतः ब्रह्मचारी के लिए (प्रकाम भोजन) किसी भी प्रकार से हितकारी नहीं होता ॥११॥

As in a dense forest filled with fuel, a fire fanned by strong wind can not be extinguished by any means, in the same way who takes food in excessive quantity and according to his own desire, the fire of senses (fire of sensuality) of such person can never be extinguished. So excessive tasty food never becomes beneficial to a celibate. (11)

विवित्तसेज्जासणजन्तियाणं, ओमासणाणं दमिइन्दियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ॥१२॥

जो विविक्त (स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित) शैया और आसन से नियंत्रित (नियमबद्ध) है, जो अल्प आहार करने वाला है, जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है, उसके चित्त को राग-द्वेष रूपी शत्रु उसी प्रकार पराभूत नहीं कर सकते जिस प्रकार औषधियों से पराजित (समाप्त) की हुई व्याधि पुनः रोगी को आक्रान्त नहीं कर सकती ॥१२॥

Who is controlled and regulated by lonely seat and lodge (unfrequented by women, eunuch and beasts), who takes little or limited food and has subdued his senses; the attachment and detachment foes cannot overcome his mind as the disease uprooted by medicines can not attack the man again. (12)

जहा बिरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बम्भयारिस्स खमो निवासो ॥१३॥

जिस प्रकार बिडाल (बिल्लियों) के निवास स्थान के समीप (मूले) मूषकों (चूहों) का निवास प्रशस्त (अच्छा) नहीं होता उसी प्रकार स्त्रियों के निवास स्थान के अतिनिकट अथवा मध्य में (इत्थीनिलयस्स मज्झे) *ब्रह्मचारी का निवास (रहना) क्षम्य (उचित) नहीं है ॥१३॥*

As it is not safe for mice to live near the dwelling of the cats, so it is not proper for a celibate to live near or in between the houses inhabited by women. (13)

न रूव-लावण्ण-विलास-हासं, न जंपियं इंगिय-पेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ॥१४॥

स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास, प्रियभाषण, इंगित चेष्टा (अंग-भंगिमा) आदि को (अपने) हृदय में स्थान देकर तपस्वी श्रमण उनको देखने का प्रयास न करे ॥१४॥

A penancer sage should not visualize the shape, beauty, laughter, coquetry, prattle, gestures, glances of women taking to his heart. (14)

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिन्तणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थीजणस्सारियझाणजोग्गं, हियं सया बम्भवए रयाणं ॥१५॥

ब्रह्मव्रत (ब्रह्मचर्य) में सदा रत (लीन) रहने वाले पुरुष (साधक) के लिए स्त्रियों को न देखना, उनकी प्रार्थना (अभिलाषा) न करना, उनका चिन्तन (विचार) भी न करना और उनका कीर्तन (कथन-वर्णन) भी *न करना हितकारी है तथा आर्य (सम्यक्) ध्यान (साधना) के लिए योग्य (उचित) है ॥१५॥*

Nor to look at, nor to long for and nor to describe the women-folk is beneficial to the adept indulged in vow of celibacy and it is proper for practising right meditation. (15)

कामं तु देवीहि विभूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।
तहा वि एगन्तहियं ति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ॥१६॥

यद्यपि (मानं तु–मानाकि) तीन गुप्तियों (मन-वचन-काय) से गुप्त मुनि को (वस्त्रालंकारों से) विभूषित देवियाँ भी क्षुभित–(उसकी साधना से विचलित) नहीं कर सकतीं तथापि (तब भी) एकान्त हित को जानकर मुनि के लिए विविक्त (स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित) वास ही प्रशस्त है ॥१६॥

Though well adorned with lustrous costumes and ornaments the goddesses cannot disturb the monk who is latent with three incognitoes of mind, speech and body; but with the viewpoint of utter benefit, the lonely lodge (devoid of woman, eunuch and beast) is wholesome. (16)

मोक्खाभिकंखिस्स वि माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ।
नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, जहित्थिओ बालमणोहराओ ॥१७॥

मोक्ष की आकांक्षा वाले, संसार से भयभीत और धर्म में स्थित मनुष्य के लिए संसार में इतना दुस्तर कार्य और कोई नहीं है जितनी कि अज्ञानियों (बाल) के मन (हृदय) को हरण करने वाली स्त्रियाँ (दुस्तर) हैं ॥१७॥

To a man, who longs for liberation, frightened from world, and fixed in religion; there is nothing so difficult to cross as the women, heart attracting of ignorants are difficult to cross. (17)

एए य संगे समइक्कमित्ता, सुहुत्तरा जेव भवन्ति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ॥१८॥

इन (उपर्युक्त स्त्री-संबंधी) संपर्कों को सम्यक् (भली प्रकार) अतिक्रमण (पार) कर लेने पर शेष सभी संसर्ग सुख से पार करने योग्य हो जाते हैं जिस प्रकार कि महासागर को तैरकर पार कर लेने के बाद गंगा जैसी नदियों को पार कर लेना सुकर-सरल हो जाता है ॥१८॥

One who crosses successfully the connections (relating women) remaining all connections can be crossed easily. As after crossing the ocean, to cross the rivers like Gaṅgā becomes too easy. (18)

कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि, तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो ॥१९॥

देवताओं सहित सम्पूर्ण लोक के (प्राणियों के) जितने भी शारीरिक तथा मानसिक दुःख हैं वे सब काम (कामना-वासना) की अनुगृद्धि (अतिशय आसक्ति) से उत्पन्न होते हैं। इन दुःखों का अन्त (समाप्ति) केवली वीतरागी ही कर पाते हैं ॥१९॥

All the bodily and mental torments of living beings of world along with gods, originate by the dense addictment to sex and sensuality. Only attachment-free omniscients put an end to all the miseries. (19)

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे ॥२०॥

जिस प्रकार किम्पाग फल रस, रूप और खाने में मनोरम-चित्ताकर्षक लगते हैं, किन्तु परिणाम में जीवन का अन्त कर देते हैं। इसी प्रकार कामगुण भी विपाक (परिणाम) में विनाशकारी होते हैं ॥२०॥

As the fruits of poisonous tree (Kimpākafala) are very attractive and tasty while eating but in consequence they end the life. In the same way the enjoyments of five senses are destructive in consequence. (20)

जे इन्दियाणं विसया मणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाइ ।
न याऽमणुन्नेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥२१॥

समाधि की इच्छा वाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में कदापि रागभाव न करे और अमनोज्ञ विषयों में मन से भी द्वेष (द्वेष-भाव) न करे ॥२१॥

The penancer sage, who wishes the contemplation, must not have the feeling of attachment in the heart-capturing enjoyments of senses and should not have feeling of detachment to unattractive sense-objects even by the mind. (21)

चक्खुस्स रूवं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥२२॥

चक्षु (नेत्रों) का ग्रहण करने योग्य विषय रूप कहा जाता है। यदि वह मनोज्ञ होता है तो राग का कारण (हेतु) बनता है और यदि वह अमनोज्ञ होता है तो द्वेष का हेतु बन जाता है। इन दोनों (मनोज्ञ-अमनोज्ञ) स्थितियों में जो सम (राग-द्वेषातीत) रहता है, वह वीतरागी होता है ॥२२॥

Eye is said perceiver of colour. If (colour) it is pleasant then becomes the cause of attachment and detachment caused by unpleasant. Who remains equanimous in both the conditions he is attachment-free or even-minded. (22)

रूवस्स चक्खुं गहणं वयन्ति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥२३॥

रूप का ग्रहण करने वाला चक्षु कहा जाता है और चक्षु का ग्राह्य विषय रूप कहलाता है। राग के हेतु को मनोज्ञ कहा है और द्वेष का हेतु (कारण) अमनोज्ञ है ॥२३॥

Eye is said perceiver of colour and colour is the perceivable object of eye. Pleasant (colour) is the cause of attachment and detachment caused by unpleasant. (23)

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे से जहवा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं ॥२४॥

जो (मनोज्ञ) रूप में तीव्र गृद्धि (आसक्ति) रखता है, वह राग में आतुर होकर अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार प्रकाश-लोलुप पतंगा मृत्यु को प्राप्त होता है, मर जाता है ॥२४॥

Who indulged deep in pleasant colours, he gets untimely ruin, just as a moth fond of light rushes into death. (24)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि रूवं अवरज्झई से ॥२५॥

(इसके विपरीत) जो (अमनोज्ञ रूप के प्रति) तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण अपने स्वयं के दुर्दान्त (दुर्दमनीय) द्वेष के कारण दुःख ही प्राप्त करता है। इसमें (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) रूप का कुछ भी अपराध (दोष) नहीं है ॥२५॥

Contrary to this who deeply indulged in detachment to unpleasant colour, he suffers pain at the same moment due to his own unsubduable detachment. There is no fault of colour in it. (25)

एगन्तरत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥२६॥

जो रुचिर (सुन्दर) रूप में एकान्ततः अत्यधिक अनुरक्त होता है वह अतादृश-कुरूप में प्रद्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा (कष्ट) को पाता है। किन्तु विरागी मुनि उनमें (मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में) लिप्त नहीं होता, राग-द्वेष नहीं करता ॥२६॥

Who is much more addicted to colour, he hates unlovely colours, that ignorant suffers the pain; but indifferent monk who is not indulged in those (lovely and unlovely colours) does not attach nor detach. (26)

रूवाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥२७॥

मनोज्ञ रूप की आशा-लालसा का अनुगमन करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार से चर-अचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है, एक मात्र अपने स्वार्थ को ही प्रमुखता देने वाला, राग-द्वेष से क्लिष्ट अज्ञानी जीव विविध प्रकार से उन्हें (चराचर जीवों को) पीड़ित करता है ॥२७॥

The man lustful of colours injures mobile and immobile beings by several ways; indulged to attachment and detachment the ignorant person intent to his own interest torments and pains those beings by various ways. (27)

रूवाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥२८॥

रूप में अनुपात–अनुराग और परिग्रह-ममत्व के कारण रूप के उत्पादन, संरक्षण और सन्नियोग (व्यापार-विनिमय) तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ (प्राप्त होता है) ? संभोग–उपभोग के समय भी उसे अतृप्ति ही प्राप्त होती है, तृप्ति का अनुभव नहीं होता ॥२८॥

On account of passion to colours and the feeling of myness to possessions, how can a man be happy while he gets, keeps, uses, loses and misses those things. Even when he enjoys them he does not feel satiety, always remains unsatisfied. (28)

रूवे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥२९॥

रूप में अतृप्त तथा परिग्रह (परिग्रहण) में आसक्त उवसक्त (अत्यधिक आसक्त) व्यक्ति को तुष्टि–सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होती। अतुष्टि के दोष से दुःखी तथा लोभ से आविल (व्याकुल-कलुषित) व्यक्ति दूसरों की वस्तु को उनके द्वारा बिना दिये ही ले लेता है–चुराता है ॥२९॥

Unsatisfied in colours and much more addicted to seizing them, such man can never be satisfied. Painful by the fault of dissatisfaction and overwrought by greed such person takes (steals) the things of others. (29)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
माया-मुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥३०॥

तृष्णा से अभिभूत, दूसरे की वस्तुओं को हरण करने वाला–चुराने वाला, रूप और परिग्रह से अतृप्त व्यक्ति के लोभ दोष के कारण उसके कपट और झूठ बढ़ते जाते हैं फिर भी (कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी) वह दुःखों से विमुक्त नहीं हो पाता ॥३०॥

Overwhelmed by keen desire, burglar of others' things, dissatisfied by colour and possessions; due to blemish of greed his deceits and lies go on increasing, and even then he can not get rid of pains and sufferings. (30)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, रूवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥३१॥

झूठ बोलने से पहले और बाद में तथा असत्य का प्रयोग (बोलते) करते समय भी वह दुःखी होता है और उसका परिणाम (अन्त) भी दुःखमय होता है। इस प्रकार अदत्तादान (चोरी) का आचरण करता हुआ तथा रूप से अतृप्त व्यक्ति दुःखी और अनाश्रित (आश्रय विहीन–निराधार) हो जाता है ॥३१॥

He becomes sorrowful before, after and while telling a lie and consequences are also full of pains. Thus practising stealing dissatisfied by colour, the person becomes painful and protectionless. (31)

रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥३२॥

इस प्रकार रूप में अनुरक्त–आसक्त पुरुष को कहाँ, कब और कितना सुख प्राप्त हो सकता है? जिसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य इतना दुःख–कष्ट सहता है। उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख का ही अनुभव होता है ॥३२॥

Thus the person, addicted in colours can attain delight when, where and how much ? For obtaining that delight he suffers so much pains. During enjoyment of those colours only pains are felt. (32)

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥३३॥

इसी तरह रूप के प्रति प्रद्वेष करने वाला भी अनेक प्रकार की दुःख परम्पराओं को प्राप्त करता है और वह प्रद्वेष युक्त चित्त वाला होकर जिन कर्मों का संचय करता है वे कर्म भी विपाक–फल प्रदान करते समय दुःखरूप ही होते हैं ॥३३॥

In the same way, who hates the colours gets the chain of pains; and by detachment he accumulates the karmas they also becomes painful in consequence. (33)

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥३४॥

(किन्तु) रूप से विरक्त (राग-द्वेष हीन) व्यक्ति को शोक नहीं होता, वह इन दुःखों की परम्पराओं से मुक्त रहता है। जिस प्रकार जलाशय में–पुष्करिणी में रहता हुआ कमल का पत्ता जल से निर्लिप्त रहता है उसी तरह वह मनुष्य भी संसार में रहता हुआ भी (रूप के प्रति राग-द्वेष से) लिप्त नहीं होता ॥३४॥

But the person, indifferent to colours remains free from painful chains. Just as the leaf of lotus, remaining in pond is not moistened by water, so that indifferent person living in the

world, is not effected by the attachment and detachment towards colours (forms, frames, figures etc. (34)

सोयस्स सद्दं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥३५॥

श्रोत्र (कर्णेन्द्रिय) के विषय को शब्द कहा गया है। जो शब्द राग का हेतु है उसे मनोज्ञ कहा है और अमनोज्ञ को द्वेष का कारण बताया गया है लेकिन जो इन दोनों (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) में सम-समभाव रखता है, वह वीतराग है ॥३५॥

Ear is said perceiver of sound, pleasant sound generates attachment and unpleasant sound is the cause of detachment; but who remains equanimous in both the conditions, he is attachment-free or even-minded. (35)

सद्दस्स सोयं गहणं वयन्ति, सोयस्स सद्दं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥३६॥

शब्द को ग्रहण करने वाला श्रोत्र कहा गया है और शब्द को श्रोत्र का ग्राहक (ग्रहण करने योग्य विषय) बताया गया है। उसमें जो शब्द राग का हेतु होता है उसे समनोज्ञ और द्वेष के हेतु को अमनोज्ञ कहा गया है ॥३६॥

Ear is said grasper of sound, and sound is the grasping object of ear, pleasant or sweet sound causes attachment and unpleasant sound is the cause of detachment (36)

सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं ॥३७॥

जो (मनोज्ञ) शब्दों में तीव्र गृद्धि-आसक्ति रखता है वह राग में आतुर व्यक्ति अकाल में ही विनष्ट हो जाता है ठीक उसी प्रकार जिस तरह शब्द में अत्यासक्त मूढ़ बना हुआ हरिण (मृग-पशु) मृत्यु को प्राप्त करता है, मर जाता है ॥३७॥

Who indulged deep in sweet sounds by his own addictment he gets untimely ruin just as keenly afflicted to sweet sound deer dies. (37)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि सद्दं अवरज्झई से ॥३८॥

और जो (अमनोज्ञ) शब्द के प्रति तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष के कारण दुःख का उपार्जन करता है। इसमें शब्द का किंचित् भी अपराध (दोष) नहीं होता ॥३८॥

Contrary to this, who has keen detachment to unpleasant sounds, he suffers due to his own sharp detachment. There is no fault of sound in it. (38)

एगन्तरत्ते रुइरंसि सद्दे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥३९॥

जो रुचिर (प्रिय) शब्दों में एकान्त रूप से–अत्यधिक आसक्त होता है और अतादृश (प्रतिकूल) शब्द में प्रद्वेष करता है वह अज्ञानी दुःख के समूह से पीड़ा प्राप्त करता है। लेकिन विरागी मुनि उसमें लिप्त नहीं होता (निर्लिप्त रहता है) ॥३९॥

Who is keenly addicted to pleasant sounds and hates unpleasant sounds., that ignorant suffers by groups of pains. But indifferent monk is not effected. (39)

सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परियावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥४०॥

(मनोज्ञ) शब्द की इच्छा करने वाला अनेक प्रकार से चराचर–त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। अपने ही स्वार्थ को प्रधानता देने वाला क्लिष्ट अज्ञानी व्यक्ति उन्हें (उन जीवों को) विभिन्न प्रकार से परितापित और पीड़ित करता है ॥४०॥

Who is keenly desirous of sweet sounds, he injures mobile and immobile beings by different ways. Giving importance to only his own desires the ignorant person torments and tortures them by various ways. (40)

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ? संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥४१॥

शब्द के प्रति अधिक अनुराग और ममत्व (परिग्रह) के कारण उसके उत्पादन (उत्पन्न करने), एवं रक्षा करने, सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में सुख कहाँ है? उसके उपभोग समय में भी अतृप्ति ही मिलती है, तृप्ति प्राप्त नहीं होती ॥४१॥

Due to much more love to sweet sounds and feeling of myness to seizing, how can he be delightful while he produces, keeps, uses, loses and misses those sounds. Even when he enjoys, he does not feel satiety, always remains dissatisfied. (41)

सद्दे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥४२॥

शब्द में अतृप्त और परिग्रह में प्रगाढ़ आसक्त व्यक्ति को तुष्टि प्राप्त नहीं होती। असंतुष्टि के दुःख से दुःखी तथा लोभ से व्याकुल व्यक्ति दूसरों की अदत्त वस्तुओं को ले लेता है–चोरी करता है ॥४२॥

Dissatisfied in sweet sounds and much more indulged in seizing them such man can never be satisfied. Suffering from pain caused by dissatisfaction and overwrought by greed the person steals the things of other persons. (42)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥४३॥

तृष्णा से अभिभूत, अदत्त वस्तुओं को ग्रहण करने—हरण करने–चुराने वाला, शब्द और परिग्रह से अतृप्त होने वाले व्यक्ति का उसके लोभ जनित दोष के कारण कपट और झूठ बढ़ता जाता है। लेकिन कपट और झूठ के प्रयोग से भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥४३॥

Overwhelmed by sharp desire, the stealer of others' things, dissatisfied by sounds and seizings, due to blemish of greed his lies and deceits go on increasing, and even then he cannot get rid of pains and sufferings. (43)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥४४॥

मृषा (झूठ) बोलने से पहले, बोलने के पश्चात और बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त-परिणाम भी दुःखरूप होता है। इस तरह शब्द में अतृप्त (व्यक्ति) अदत्तादान-चोरियाँ करता हुआ दुःखी तथा अनाश्रित हो जाता है ॥४४॥

Before, after and while speaking untruth he becomes sorrowful and consequences also result in pains. Thus practising steals and dissatisfied in sweet sounds he becomes sorrowful and without protection. (44)

सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥४५॥

इस तरह शब्द में अनुरक्त-आसक्त मनुष्य को कहाँ, कब और कितने सुख की प्राप्ति हो सकती है? जिसके लिए वह इतने क्लेश और कष्ट सहन करता है तथा उसके (उस सुख के) उपभोग में भी उसे क्लेश और कष्ट का ही अनुभव होता है ॥४५॥

Thus the person addicted to sweet sounds can get the delight how much, when and where; for attaining which he suffers so much difficulties and pains and while enjoying those sweet sounds only pain he feels. (45)

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥४६॥

इसी तरह जो अमनोज्ञ-अप्रिय शब्दों में प्रद्वेष करता है वह भी अनेक प्रकार की दुःख परम्पराओं-परिपाटियों को उत्पन्न करता है और प्रदुष्टचित्त से वह जिन कर्मों का संचय करता है वही पुनः विपाक-फलप्रदान के समय दुःखरूप ही होते हैं ॥४६॥

In the same way who hates unpleasant sounds, he also produces the chains of sufferings and accumulates the karmas by hateful mind and those karmas also bring painful fruits. (46)

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पए भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥४७॥

शब्द (मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ दोनों प्रकार के शब्द) से विरक्त-उदासीन व्यक्ति को शोक-अवसाद नहीं होता और वह इस प्रकार की दुःख परम्पराओं-शृंखलाओं से भी दूर रहता है। तथा जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमल-पत्र जल से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों से विरक्त व्यक्ति भी संसार में रहता हुआ भी उन शब्दों में लिप्त नहीं होता ॥४७॥

Who is indifferent to pleasant and unpleasant sounds, he does not feel sorrow and thus remains far away from the painful chains. Just as the leaf of lotus, remaining in a large pond

full of water, not moistened by water, in the same way the indifferent person living in the world is not effected by pleasant and unpleasant sounds. (47)

घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥४८॥

घ्राण (घ्राणेन्द्रिय–नासिका) के ग्राह्य विषय को गंध कहा जाता है। राग के हेतु गन्ध को मनोज्ञ (सुगन्ध) कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु बनती है वह अमनोज्ञ (दुर्गन्ध) कहलाती है। जो गन्ध में सम रहता है, वह वीतराग है ॥४८॥

Nose is said as perceiver of smell. Fragrance is the cause of attachment and effluvium (bad smell) is the cause of detachment; but who remains equanimous in both the conditions, he is attachment-free or even-minded. (48)

गन्धस्स घाणं गहणं वयन्ति, घाणस्स गन्धं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥४९॥

गन्ध को ग्रहण करने वाला घ्राण है और घ्राण का ग्राह्य विषय गन्ध कही जाती है। राग को उत्पन्न करने वाली–कारणभूत समनोज्ञ गन्ध है और द्वेष की कारणभूत अमनोज्ञ गन्ध है ॥४९॥

Nose (the sense of smell) is said the grasper of smell; and smell is the grasping object of nose. Fragrance causes the attachment and effluvium is the cause of detachment. (49)

गन्धेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे ओसहिगन्धगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमन्ते ॥५०॥

जो (मनोज्ञ) गन्ध में तीव्र रूप से आसक्त रहता है वह अकाल (असमय) में विनष्ट हो जाता है। जिस प्रकार औषधियों की गन्ध में गृद्ध राग से आतुर बना हुआ सर्प बिल से बाहर निकलते ही विनष्ट हो जाता है ॥५०॥

Who indulged deep in fragrance, by his own addiction he gets untimely ruin just as keenly afflicted by the fragrance of herbs, the serpent coming out of its hole soon ruined (caught or murdered). (50)

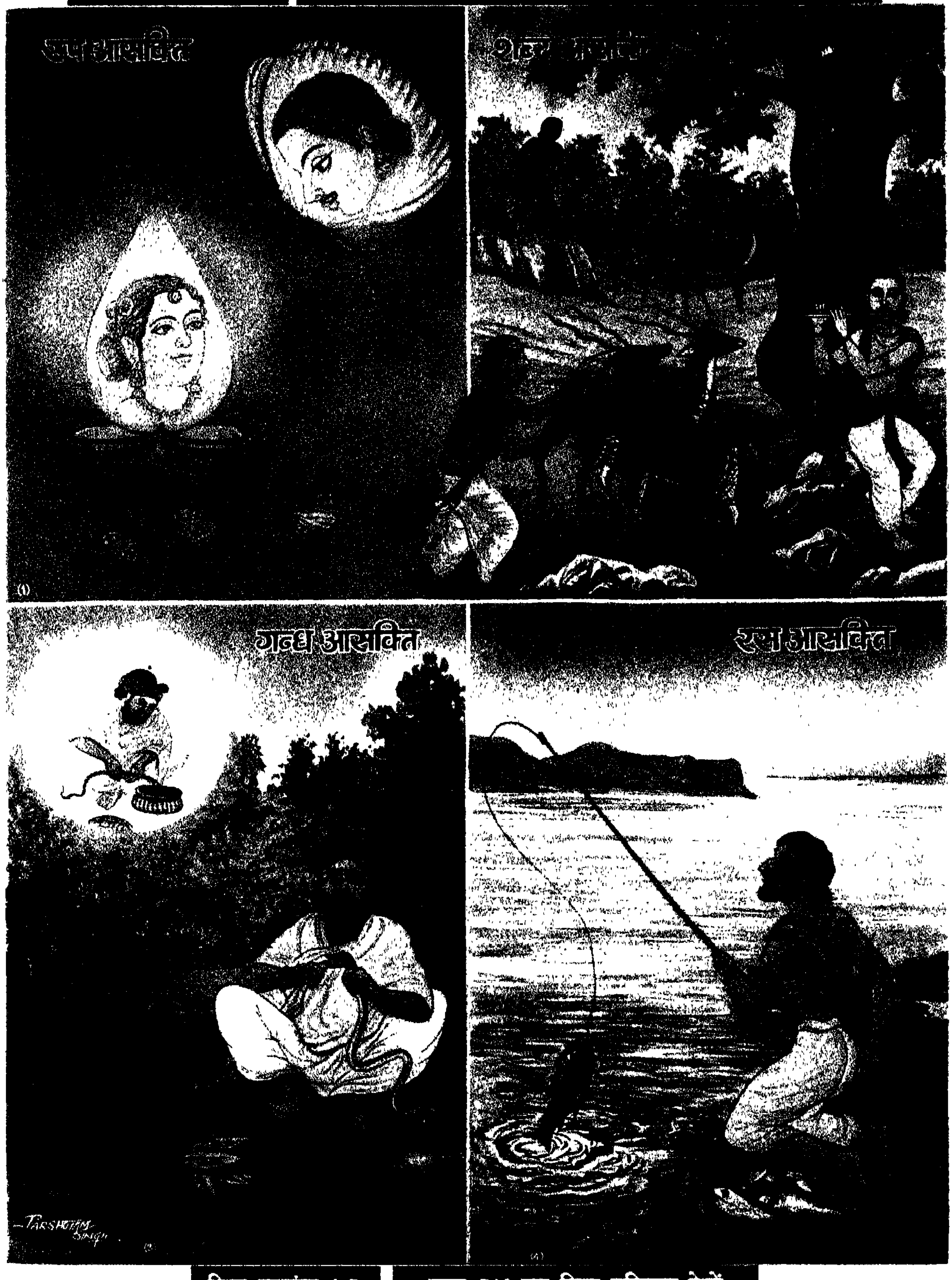
जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि गन्धं अवरज्झई से ॥५१॥

जो अमनोज्ञ गन्ध में अत्यधिक तीव्र द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दमनीय द्वेष के कारण दुःखी हो जाता है। इसमें गन्ध का कोई दोष नहीं है ॥५१॥

Who has keen detachment to effluvium he suffers at the same moment by his own sharp detachment. There is no fault of smell in it. (51)

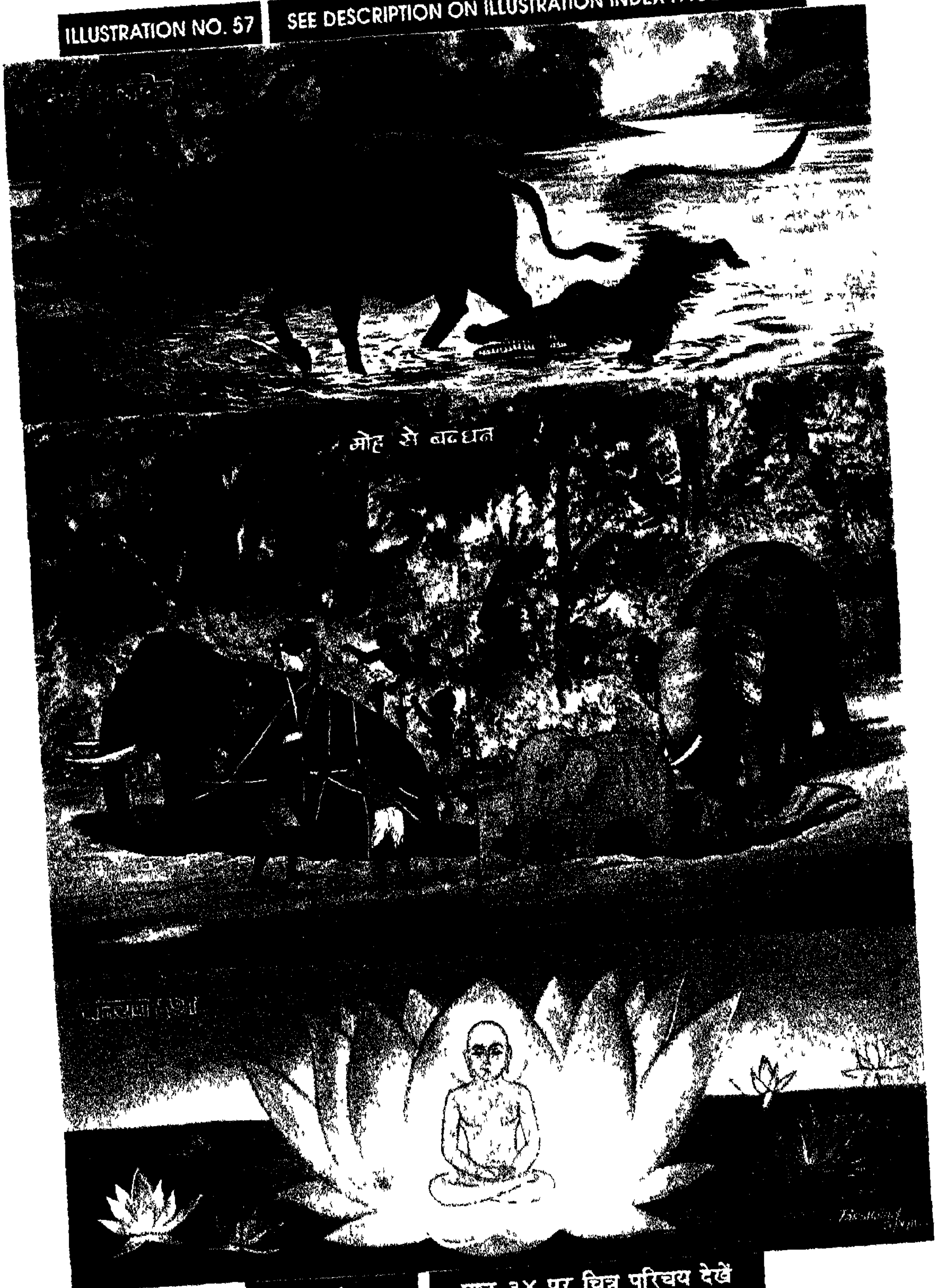
एगन्तरत्ते रुइरंसि गन्धे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥५२॥

ILLUSTRATION NO. 56 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 28



चित्र क्रमांक ५६ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 57 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 28



चित्र क्रमांक ५७ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

जो रुचिर (प्रिय–मनोज्ञ) सुगन्ध में अत्यधिक गृद्ध रहता है और अतादृश (अप्रिय–अमनोज्ञ) गन्ध में प्रद्वेष करता है वह अज्ञानी जीव दुःख के समूह को प्राप्त करता है। लेकिन विरागी मुनि उससे (प्रिय-अप्रिय गंध में राग-द्वेष न करके) लिप्त नहीं होता ॥५२॥

Who is keenly addicted to fragrance and hates effluvium that ignorant person suffers by groups of pains. But indifferent monk is not effected; because he is devoid of attachment and detachment to pleasant and unpleasant smells. (52)

गन्धाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥५३॥

प्रिय सुगन्ध की आशा के पीछे दौड़ता हुआ जीव चराचर–त्रस-स्थावर जीवों की अनेकरूप से हिंसा करता है। अपने ही स्वार्थ को प्रमुखता देने वाला क्लिष्ट अज्ञानी उन्हें–उन जीवों को विचित्र-विचित्र प्रकार से परितापित और पीड़ित करता है ॥५३॥

Keenly desirous of fragrance, such person injures movable and non-movable living beings by different ways. Paying primacy to his own interest the ignorant person torments and tortures them by various methods. (53)

गन्धाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥५४॥

गंध (प्रिय सुगन्ध) के प्रति अत्यधिक राग और परिग्रह-ममत्व के कारण गंध को उत्पन्न करने, उसकी रक्षा करने और सन्नियोजन, व्यय तथा वियोग में सुख कहाँ है और उपभोग के समय भी अतृप्ति ही प्राप्त होती है (यह भी दुःख ही है) ॥५४॥

Due to much more love to fragrance and myness for seizing, how can he be delighted in producing, keeping, using, losing and missing those fragrances. Even at the moment of enjoying he cannot be satiated. (This is also a pain). (54)

गन्धे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥५५॥

गंध में अतृप्त (असंतुष्ट) और उसके (गन्ध के) परिग्रहण में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति को तुष्टि प्राप्त नहीं होती। वह अतुष्टि से दुःखी और लोभ की व्याकुलता–अधिकता के कारण दूसरों की न दी हुई वस्तु को ग्रहण कर लेता है, अदत्तादान–चोरी करता है ॥५५॥

Dissatisfied in fragrances and much more indulged in seizing them, such man can never be satisfied. Suffering from pain of dissatisfaction and overwrought by greed he takes the things ungiven by their owners–steals others' things. (55)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गन्धे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥५६॥

तृष्णा से अभिभूत तथा गन्ध और परिग्रह में अतृप्त, दूसरों की वस्तुओं को चुराने वाले के लोभ की बुराई से कपट और झूठ बढ़ जाते हैं। कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी उसका दुःख समाप्त नहीं होता, दुःख से मुक्ति नही मिलती ॥५६॥

Overwhelmed by keen desire and dissatisfied by seizing, the stealer's–deceit and falsehood go on increasing by the blemish of greediness. Practising falsehood and deceit his pains do not come to an end, he cannot get rid of them. (56)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥५७॥

असत्य-प्रयोग–मिथ्या बोलने से पहले, उसके पश्चात् और झूठ बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त भी दुःखपूर्ण ही होता है। इस प्रकार गन्ध में अतृप्त, सुगन्धित वस्तुओं की चोरियाँ करने वाला व्यक्ति दुःखी और अनाश्रित हो जाता है ॥५७॥

Before, after and while speaking untruth he becomes sorrowful and the consequences are also full of pains. Thus the person dissatisfied in fragrances and stealer of fragrant things becomes sorrowful and unprotected. (57)

गन्धाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥५८॥

इस तरह गंध में आसक्त मानव को कदापि और कुछ भी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? जिसके लिए वह दुःख सहन करता है। उसके उपभोग में भी उसे क्लेश और दुःख की ही प्राप्ति होती है ॥५८॥

Thus the person addicted to fragrances, how can he obtain a bit of delight for which he suffers so much pains and while enjoying fragrance he gets only pains and miseries. (58)

एमेव गन्धम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥५९॥

इसी तरह जो (अप्रिय–अमनोज्ञ) गन्ध में प्रद्वेष करता है, उसे दुःख समूह की परंपराएँ प्राप्त होती हैं। वह द्वेषयुक्त हृदय से जिन कर्मों का संचय करता है वही कर्म फलभोग के समय दुःखदायी बन जाते हैं ॥५९॥

In the same way who hates effluvium he gets the group of chains of miseries. With hateful mind he accumulates those karmas which give pains in consequences. (59)

गन्धे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥६०॥

गंध (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) से विरक्त मनुष्य को अवसाद (शोक) नहीं होता, वह संसार में रहता हुआ भी दुःख परम्पराओं से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमलपत्र जल से निर्लिप्त रहता है ॥६०॥

The person indifferent to fragrance and effluvium does not feel sorrow, living in world he is not effected just like the lotus leaf remaining in large pond does not moistened by water. (60)

जिब्भाए रसं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥६१॥

जिह्वा का ग्राह्य विषय रस (स्वाद) है। जो रस राग का हेतु बनता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो रस द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है, वह अमनोज्ञ कहलाता है तथा जो रस में सम-समभाव रखता है, वह वीतरागी होता है ॥६१॥

Object of tongue is taste. The taste which becomes the cause of attachment called delicious and the cause of detachment called undelicious. But who is equanimous in both types of tastes, he is free of attachment. (61)

रसस्स जिब्भं गहणं वयन्ति, जिब्भाए रसं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥६२॥

जिह्वा को रस की ग्रहण करने वाली और रस को जिह्वा का ग्राह्य विषय कहा जाता है। राग के हेतु रस को समनोज्ञ और द्वेष के कारणभूत रस को अमनोज्ञ कहा गया है ॥६२॥

Tongue grasps the taste and taste is grasped by tongue. Taste which is the cause of attachment is called delicious and undelicious taste causes detachment. (62)

रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे वडिसविभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे ॥६३॥

जो व्यक्ति (मनोज्ञ) रसों में अत्यन्त गृद्ध होता है वह अकाल में उसी तरह विनाश को पाता है जिस प्रकार मांस-भोजन के लुब्धक रागातुर मत्स्य का शरीर (गला-कंठ) लोहे के काँटे से विंध जाता है (और उसकी मृत्यु हो जाती है) ॥६३॥

A person who is indulged deeply in delicious tastes he untimely ruins like the fish who is lustful of eating meat, swallows the bait and rushes into the jaws of death. (63)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, रसं न किंचि अवरज्झई से ॥६४॥

जो अमनोज्ञ रस के प्रति तीव्र-अत्यन्त उग्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण (तत्काल) अपने दुर्दम्य द्वेष-दोष के फलस्वरूप दुःख पाता है। इस (दुःख) में रस का बिल्कुल भी अपराध अथवा दोष नहीं है ॥६४॥

Who extremely hates the undelicious taste, he at the same moment suffers by the agony of pain due to his own sharp detachment. In this agony taste is not responsible. (64)

एगन्तरत्ते रुइरे रसम्मि, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥६५॥

जो व्यक्ति रुचिर (रुचिकर-स्वाद) रस में अत्यधिक रक्त हो जाता है और उसके प्रतिकूल (अरुचिकर-रस-स्वाद) रस में द्वेष करता है वह अज्ञानी दुःखजन्य पीड़ा (कष्ट) को पाता है। लेकिन विरक्त मुनि (मनोज्ञ-अमनोज्ञ रस-सम्बन्धी राग-द्वेष में) लिप्त नहीं होता ॥६५॥

The person who is keenly addicted to delicious taste and extensively hates the undelicious taste that ignorant suffers the agony caused by pain. But the person indifferent to delicious and undelicious taste remains uneffected. (65)

रसाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥६६॥

रस की आशा करता हुआ जीव अनेक प्रकार से चराचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ को ही सर्वोपरि मानने वाला क्लिष्ट अज्ञानी उन (चराचर) जीवों को विचित्र-विचित्र प्रकार से अनुतापित और पीड़ित करता है ॥६६॥

A person keenly desirous of delicious tastes injures mobile and immobile living beings in many ways. Becoming intent to his own desire ignorant person tortures and torments them by various methods. (66)

रसाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥६७॥

(मनोज्ञ) रस में अधिक राग और परिग्रह में ममत्व होने से उस (रस) को उत्पन्न करने, उसकी भली-भाँति रक्षा करने, सन्नियोग तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कैसे मिल सकता है? और उस मनोज्ञ रस का उपभोग करते समय भी अतृप्ति का ही दुःख होता है, तृप्ति नहीं होती ॥६७॥

Due to much more love to delicious tastes and feelings of myness and seizing how can he become delighted in producing, keeping, using, losing and missing those delicious tastes. Even while enjoying he can not be satiated, remains always dissatisfied. (67)

रसे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥६८॥

रस में अतृप्त और उसके परिग्रह में अत्यधिक आसक्त–रचे-पचे रहने वाले (सत्तोवसत्तो) व्यक्ति को तुष्टि की प्राप्ति नहीं हो पाती, वह अपने असंतुष्टि दोष से दुःखी और लोभाविष्ट होकर दूसरों के पदार्थ (रसयुक्त पदार्थ) उनके बिना दिये ही, अदत्त रूप से ले लेता है, चुरा लेता है ॥६८॥

Dissatisfied in delicious taste and sharply indulged in seizing them, he can not be contented. Suffering from the pain caused by dissatisfaction and overwrought by greediness he takes others' delicious dainties ungiven by them–he steals those. (68)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रसे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥६९॥

तृष्णा से अभिभूत (पराजित), रस और परिग्रह से अतृप्त, दूसरों के रसयुक्त पदार्थों का अपहरण करने वाले के लोभ-दोष के कारण कपट और मृषा (असत्य) बढ़ जाते हैं। किन्तु इन (कपट और असत्य) का प्रयोग करने पर भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥६९॥

Overwhelmed by extensive desire and dissatisfied by taste and seizing those dainties, and by blemish of greediness, the stealer's deceit and falsehood go on increasing. But practising falsehood and deceit he can not put an end to his miseries. (69)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥७०॥

मिथ्या भाषण करने से पहले, उसके बाद तथा मिथ्या बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त भी दुःख पूर्ण होता है। इस प्रकार रस में अतृप्त होकर, चोरी करता हुआ वह दुःखित और निराश्रित हो जाता है ॥७०॥

Before, after and while telling a lie he becomes sorrowful and its consequences are also full of pains. Thus discontented in tastes, stealing he becomes sorrowful and without protection. (70)

रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ?।
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥७१॥

इस तरह रस (स्वाद) में अधिक आसक्त मानव को कदाचित भी सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है? जिसको प्राप्त करने के लिए वह इतने दुःख उठाता है। उसके उपभोग में भी दुःख और क्लेश ही होता है ॥७१॥

Thus the person excessively addicted to delicious taste, how can he get a bit of delight for obtaining which he suffers so much pains, while enjoying those tastes he feels pain only. (71)

एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥७२॥

इसी तरह (अमनोज्ञ) रस में द्वेष करने वाला व्यक्ति भी दुःख की परम्पराएँ प्राप्त करता है। प्रदुष्ट चित्त से जिन कर्मों का संचय करता है वही पुनः विपाक के समय दुःख रूप हो जाते हैं ॥७२॥

In the same way, who hates undelicious taste he gets chains of sufferings, and with hateful heart he accumulates the karmas which bear painful consequences. (72)

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥७३॥

रस में रक्त न होने वाला मनुष्य अवसाद नहीं करता। जिस प्रकार जल में रहता हुआ कमल-पत्र जल से लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार संसार में रहता हुआ भी वह मानव इस दुःख संपात की परंपरा से लिप्त नहीं होता ॥७३॥

Who is not indulged in delicious taste he does not feel sorrow. As the lotus leaf is not moistened by water, in the same way that person is not effected by chains of pains, living in this world. (73)

कायस्स फासं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥७४॥

स्पर्श को काय (शरीर) का ग्राह्य विषय कहा जाता है। जो स्पर्श राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जिस स्पर्श के कारण द्वेष उत्पन्न होता है, वह अमनोज्ञ कहलाता है तथा जो इन दोनों में सम (समभाव युक्त) रहता है, वह वीतरागी है ॥७४॥

Touch is said the object of body (skin). Smooth or pleasant touch is the cause of attachment and rough or unpleasant touch is the cause of detachment. Who remains equanimous in both types of touches, he is attachment-free. (74)

फासस्स कायं गहणं वयन्ति, कायस्स फासं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥७५॥

काय को स्पर्श का ग्राहक और स्पर्श को काय का ग्राह्य विषय कहा जाता है। जो स्पर्श राग का हेतु है वह समनोज्ञ कहा जाता है और द्वेष का हेतु-कारण स्पर्श अमनोज्ञ कहा जाता है ॥७५॥

Skin is called the grasper of touch and touch is called the grasped object of skin. The touch, which is the cause of attachment is said soothing and which causes detachment is said rough touch. (75)

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहग्गहीए महिसे व ऽरन्ने ॥७६॥

जो (मनोज्ञ) स्पर्श में तीव्रतापूर्वक गृद्ध है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है उसी प्रकार जैसे वन में शीतल जल के स्पर्श में आतुर बना हुआ भैंसा मगर (ग्राह) द्वारा पकड़ लिया जाता है ॥७६॥

Who is extensively indulged in smooth touch, he gets prematured death just as he-bufallow addicted to the touch of cold water is caught by crocodile. (76)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि फासं अवरज्झई से ॥७७॥

जो अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी तत्काल उसी क्षण अपने ही दुर्दमनीय दोष के कारण दुःख पाता है। इसमें स्पर्श का कुछ भी अपराध या दोष नहीं है ॥७७॥

Who keenly hates the unpleasant touch, he at the same moment attains pain due to his own unsubdued blemish. There is not a bit of fault of touch in it. (77)

एगन्तरत्ते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥७८॥

जो रुचिर (सुखद रुचिकर) स्पर्श में अत्यधिक आसक्त होता है तथा इसके विपरीत अरुचिकर-असुखद स्पर्श के प्रति प्रद्वेष (विशेष द्वेष) रखता है, वह अज्ञानी दुःखजनित पीड़ा को प्राप्त करता है तथा विरागी मुनि (सुखद और दुःखद दोनों प्रकार के स्पर्शों में राग-द्वेष न करके) उनमें लिप्त नहीं होता ॥७८॥

Who is sharply indulged in pleasant touch and hates unpleasant, that ignorant person gets the painful suffering and the person, indifferent to both types of touches remains uneffected. (78)

फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे ।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥७९॥

(मनोज्ञ) स्पर्श की प्राप्ति की आशा का अनुगमन करने वाला अनेक प्रकार के चर-अचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ को गुरुतर (सर्व प्रमुख) मानने वाला वह राग-द्वेष से पीड़ित–क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन जीवों को परिताप देता है और पीड़ित करता है ॥७९॥

Keen indulged to pleasant touches, such person injures the mobile and immobile living beings by various ways. Supposing his own purpose super-most and agitated by attachment and detachment that ignorant person torments and tortures them by different methods. (79)

फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥८०॥

मनोज्ञ स्पर्श के प्रति अनुरक्ति और परिग्रह के प्रति ममत्व होने से उसके उत्पादन, सुरक्षा और व्यवस्था (सन्नियोग) में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ? तथा उपभोग करते समय भी तृप्ति का लाभ नहीं होता ॥८०॥

Due to much more fascination to pleasant touch and feelings of myness and seizing, how can he be delighted in producing, keeping, using, losing and missing those pleasant touches. Even at the moment can not get satisfaction. (80)

फासे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥८१॥

स्पर्श में अतृप्त तथा परिग्रह में प्रगाढ़ रूप से आसक्त को संतुष्टि प्राप्त नहीं होती। असन्तुष्टि के दोष से दुःखित और लोभाविष्ट होकर वह दूसरों की बिना दी हुई (अदत्त) वस्तु को चुरा (ग्रहण कर) लेता है ॥८१॥

Dissatisfied in pleasant touches and keenly indulged in seizing them, he cannot be contented. Suffering from the pain caused by dissatisfaction and overwrought by greediness he takes others' pleasant touches (soothing things) ungiven by them–he steals those things. (81)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्गहे य ।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥८२॥

तृष्णा से अभिभूत तथा अदत्त का हरण करने वाला, एवं स्पर्श में और परिग्रह में अतृप्त व्यक्ति के लोभदोष के कारण छल-कपट तथा मृषावाद–झूठ बढ़ जाते हैं लेकिन छल करने और झूठ बोलने से भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥८२॥

Overwhelmed, stealer dissatisfied by pleasant touches and seizing them and by blemish of greed, his deceit and falsehood go on increasing. But practising deceit and falsehood he cannot put an end to his pains. (82)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥८३॥

मिथ्या बोलने से पहले, उसके पश्चात तथा मिथ्या बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त (परिणाम) भी दुःखपूर्ण होता है। इस प्रकार अदत्त ग्रहण का आचरण करता हुआ वह स्पर्श में अतृप्त दुःखी और निराश्रित हो जाता है ॥८३॥

Before, after and while speaking untruth he becomes sorrowful and its consequences are also painful. Thus discontented in pleasant touches and stealing he becomes sorrowful and protectionless. (83)

फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥८४॥

इस प्रकार स्पर्श में अनुरक्त (सदैव रचे-पचे रहने वाले) व्यक्ति को किंचित् मात्र, कभी भी, कैसे सुख की प्राप्ति हो सकती है? जिसके लिए दुःख सहा जाता है उसका उपभोग करते समय भी दुःख और क्लेश (का अनुभव) ही होता है ॥८४॥

Thus the person excessively addicted to pleasant touches, how can he get a bit of delight, for obtaining which he suffers so much pains, and while enjoying those touches he feels only misery. (84)

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥८५॥

इसी तरह जो (अमनोज्ञ) स्पर्श के प्रति अधिक द्वेष करता है, वह भी दुःख परम्पराओं को प्राप्त करता है और द्वेष से आपूर्ण हृदय वाला वह जिस प्रकार के कर्मों का संचय (उपार्जन) करता है वही कर्मदलिक विपाक के समय दुःख रूप हो जाते हैं ॥८५॥

In the same way, who bitterly hates unpleasant touches, he gets chains of sufferings and with hateful mind acquires those karmas, which cause pains at the time of fruition. (85)

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥८६॥

स्पर्श में आसक्त नहीं होने वाला मनुष्य अवसादग्रस्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहता हुआ कमल-पत्र जल में लिप्त नहीं होता। उसी प्रकार संसार में रहता हुआ वह मानव इस दुःख-संपात की परम्परा में लिप्त नहीं होता ॥८६॥

Who is not addicted to touches, he does not become sorrowful. As the lotus leaf is not moistened by water, so that person is not effected by chains of pains, yet living in this world. (86)

मणस्स भावं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो ॥८७॥

भाव (विचार, चिन्तन, अभिप्राय) को मन का ग्रहण करने योग्य विषय कहा जाता है। जो भाव राग का हेतु होता है वह मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का कारण बनता है वह अमनोज्ञ कहा गया है। जो उसमें सम रहता है वह वीतरागी है ॥८७॥

Feeling (thoughts, thinkings, purports) are said the object of mind. Pleasant feelings are the cause of attachment and unpleasant feelings cause detachment. (87)

भावस्स मणं गहणं वयन्ति, मणस्स भावं गहणं वयन्ति ।
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥८८॥

मन को भाव का ग्राहक (गहणं) ग्रहण करने वाला कहते हैं और भाव को मन का ग्राह्य (जो ग्रहण किया जाता है) कहते हैं। राग का हेतु समनोज्ञ भाव कहा जाता है और अमनोज्ञ को द्वेष का कारण कहा है ॥८८॥

Mind is the grasper of feelings and feelings are grasped by mind. Pleasant feelings are the cause of attachment and unpleasant feelings are said the cause of detachment. (88)

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिए व नागे ॥८९॥

जो भावों में अत्यधिक गृद्धि करता है, वह उसी प्रकार अकाल (असमय) में विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार हथिनी के प्रति आकृष्ट और कामगुणों में गृद्ध, राग में आतुर बना हुआ हाथी विनाश को प्राप्त हो जाता है ॥८९॥

Who is extremely indulged in pleasant feelings, he gets untimely ruin. As the elephant attracted to female elephant, indulged in sexual intercourse and inspired by attachment is ruined. (89)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसि क्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।
दुद्दन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि भावं अवरज्झई से ॥९०॥

जो अमनोज्ञ–अप्रिय भाव के प्रति तीव्र द्वेष करता है, उसी क्षण वह प्राणी स्वयं अपने ही दुर्दान्त दोष के कारण दुःख पाता है। इसमें भाव का किंचित् भी अपराध अथवा दोष नहीं है ॥९०॥

Who bitterly hates the unpleasant feelings, he at the same moment attains pain on account of his own unsubdued blemish. There is not a bit of fault of feelings in it. (90)

एगन्तरत्ते रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं ।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥९१॥

जो व्यक्ति रुचिर (प्रिय अथवा रुचिकर) भाव में एकान्त–अत्यधिक रूप से गृद्ध (रक्त) होता है तथा उसके प्रतिकूल अप्रिय-अरुचिकर भाव के प्रति प्रद्वेष करता है वह व्यक्ति दुःखजन्य पीड़ा को प्राप्त करता है लेकिन विरक्त (राग-द्वेष से विरत) मुनि उसमें (प्रिय-अप्रिय भावों में) लिप्त नहीं होता ॥९१॥

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे।
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥९२॥

(प्रिय) भावों की आशा का अनुगमन करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार के चराचर जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ को ही सर्वोच्च महत्व देने वाला, राग-द्वेष संपीड़ित–क्लिष्ट अज्ञानी जीव उन (त्रस-स्थावर) जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से परितापित और पीड़ित करता है ॥९२॥

Sharply desirous and indulged in pleasant feelings, such person injures the mobile and immobile living beings by various methods. Taking only his own pleonasm supermost and agitated by attachment and detachment that ignorant person torments and tortures them by different methods. (92)

भावाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥९३॥

(प्रिय) भावों में अनुरक्ति और परिग्रहण में ममत्व होने के कारण मानव उनका उत्पादन, रक्षण और सन्नियोग करता है किन्तु उनका व्यय और वियोग भी होता है। इन सब में सुख कहाँ हैं? उनका उपभोग करते समय भी उसे अतृप्ति ही प्राप्त होती है ॥९३॥

Due to much more fascination to pleasant feelings and myness and seizing, how can he be delighted in producing, keeping, using, losing and missing. Where is joy in all these? At the moment of enjoying even, he gets only dissatisfaction. (93)

भावे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥९४॥

भाव में अतृप्त और परिग्रह में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति को संतुष्टि नहीं होती। असंतुष्टि के दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर वह दूसरे का बिना दिया हुआ पदार्थ ग्रहण कर लेता है, अदत्तादान का आचरण करता है ॥९४॥

Dissatisfied in pleasant feelings and deeply indulged in seizing them, he can not be contented. Suffering from pain caused by dissatisfaction and overwrought by greed he takes others' things ungiven by them–he steals those things. (94)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, भावे अतित्तस्स परिग्गहे य।
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥९५॥

वह तृष्णा से अभिभूत (पराजित) होकर चोरी करता है और भाव-परिग्रहण में अतृप्त होता है। अतृप्ति-लोभदोष के कारण उसका माया-मृषा (छल सहित झूठ बोलने की प्रवृत्ति) बढ़ जाता है; (किन्तु) माया-मृषा से भी उसकी दुःख से मुक्ति नहीं होती–दुःख नहीं मिटता ॥९५॥

He steals becoming overwhelmed by keen desire and dissatisfies in seizing the feelings. By the blemishes of dissatisfaction and greediness his tendency of speaking deceitful untruth goes on increasing, but thereby he can not get rid of his miseries. (95)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते ।
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, भावे अतित्तो दुहिणो अणिस्सो ॥९६॥

झूठ बोलने के बाद, बोलने से पहले और बोलते समय भी वह दुःखी होता है। उसका पर्यवसान भी दुःखपूर्ण होता है। इस तरह भाव में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ वह दुःखी और अनाश्रित हो जाता है ॥९६॥

Before, after and while speaking deceitful false, he becomes sorrowful and consequence is also full of pains. Thus discontented in feelings and by stealing he becomes miserable and protectionless. (96)

भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि ? ।
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥९७॥

भाव में अनुरक्त मनुष्य को कदाचित, किंचित् सुख भी कहाँ हो सकता है? जिस उपभोग के लिए वह दुःख सहता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख बना रहता है ॥९७॥

How a man can be delighted, indulged in pleasant feelings. For which he suffers, he does not get joy while experiencing those. (97)

एमेव भावम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥९८॥

इसी प्रकार जो (अप्रिय-असुखकर) भाव के प्रति द्वेष करता है, वह अनेक दुःखों की परम्पराओं को पाता है। प्रदुष्ट (द्वेष से क्लिष्ट) हृदय वाला व्यक्ति जिन कर्मों का संचय करता है, वही कर्म विपाक काल में उसके लिए दुःख के हेतु बनते हैं ॥९८॥

In the same way, who bitterly hates unpleasant feelings, he gets the chains of many kinds of pains. Hateful hearted man acquires which karmas, they also become the cause of pains at the time of fruition. (98)

भावे विरत्तो विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥९९॥

भाव से विरक्त मानव शोक-मुक्त बन जाता है। जिस प्रकार कमलिनी का पत्र (पत्ता) जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार वह मानव संसार में रहता हुआ भी अनेक दुःख परम्पराओं से लिप्त नहीं होता ॥९९॥

The person indifferent to pleasant and unpleasant feelings becomes free of sorrow. Just as the lotus–leaf is not moistened by water remaining in large pond full of water, so that indifferent person living in this world is not effected by chains of pains. (99)

एविन्दियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो ।
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरागस्स करेन्ति किंचि ॥१००॥

इस प्रकार जो इन्द्रियों और मन के विषय हैं, वे रागी मनुष्य के लिए दुःख के कारण हैं। वे ही विषय वीतराग के लिए कदापि और किंचित् भी दुःखरूप नहीं बनते हैं ॥१००॥

Thus the objects of senses and mind are the cause of pains to a passionate man but do not cause the least pain to an impassionate. (100)

न कामभोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥१०१॥

कामभोग (अपने आप में) न तो समता-समभाव उत्पन्न करते हैं और न ही वे भोग विकृति पैदा करते हैं। जो उनके प्रति प्रद्वेष और परिग्रह (ममत्व-राग) रखता है वह उनमें मोह के कारण विकृति को प्राप्त करता है ॥१०१॥

The sensual and mental pleasures, rejoicings and amusements do not generate by themselves the evenness or equanimity nor agitation of merriment. Who has attachment and detachment to them, by the dint of his own infatuation gets agitation. (101)

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुंछं अरइं रइं च।
हासं भयं सोगपुमित्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे ॥१०२॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा, अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद तथा अन्य विविध भावों को-॥१०२॥

Anger, pride, deceit, greed, hate, aversion, inclination, mirth, fear, sorrow, carnal desire of man, woman and eunuch and various other feelings-(102)

आवज्जई एवमणेगरूवे, एवंविहे कामगुणेसु सत्तो।
अन्ने य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥१०३॥

इसी तरह अनेक प्रकार के विकारों को कामगुणों में आसक्त जीव प्राप्त करता है तथा इन भावों से प्राप्त होने वाले नरकादि दुःखों को पाता है तथा वह करुणास्पद, हीन, लज्जित और द्वेष का पात्र बन जाता है ॥१०३॥

And likewise various types of agitations, and addicted to sensual pleasures, such soul attains all these feelings and obtains the agonies of hells etc., which are the consequences of these feelings and he becomes pitiable, inferior, ashamed and object of hate. (103)

कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणुतावेय तवप्पभावं।
एवं वियारे अमियप्पयारे, आवज्जई इन्दियचोरवस्से ॥१०४॥

(वीतराग के पथ का पथिक साधु) अपने शरीर की सेवा सहायता की लिप्सा से योग्य शिष्य की इच्छा न करे, दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात पश्चात्ताप करके अथवा अनुतप्त होकर तप के प्रभाव की भी इच्छा न करे क्योंकि इस प्रकार की इच्छाओं से साधक इन्द्रिय चोरों के वश में होकर अनेक प्रकार के विकारों दोषों से ग्रस्त हो जाता है, उनको प्राप्त कर लेता है ॥१०४॥

Sage, follower of the path of attachment-free-Jina, should not desire the able pupil for the service and help of his own body, after accepting consecration, becoming agitated should not regret and does not wish have the desire of effect of penance; because by these types of desires the adept is subjugated by the senses and gripped by many faults and defects. (104)

तओ से जायन्ति पओयणाइं, निमज्जिउं मोहमहण्णवम्मि ।
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा, तप्पच्चयं उज्जमए य रागी ॥१०५॥

तब (कषायों, नोकषायों, विकारों से ग्रस्त होने के पश्चात्) उस सुखाभिलाषी साधक अथवा व्यक्ति को मोहरूपी महासागर में डुबोने के लिए, दुःखों के निवारण के लिए (आरम्भ, परिग्रह, आदि रूप) अनेक प्रयोजन उत्पन्न-उपस्थित होते हैं, वह रागी (द्वेषी तथा मोही भी) व्यक्ति उन कल्पित दुःखों से मुक्त होने का प्रयास-उद्यम करता है ॥१०५॥

Then (gripped by passions and auxiliary passions) for submerging that comfort-wisher adept or person, in the ocean of infatuation, forwarding off the imaginary miseries–many plans take place; and that addicted (also aversed and infatuated) person also endeavours to get rid of those imaginary miseries. (105)

विरज्जमाणस्स य इन्दियत्था, सद्दाइया तावइयप्पगारा ।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं वा, निव्वत्तयन्ती अमणुन्नयं वा ॥१०६॥

शब्द आदि जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं, वे विरक्त चित्त वाले व्यक्ति के मन में अमनोज्ञता अथवा मनोज्ञता का भाव उत्पन्न नहीं करते हैं ॥१०६॥

All the objects of senses, like–sound etc., do not generate the pleasant and unpleasant feelings in the mind of an indifferent person. (106)

एवं ससंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स ।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥१०७॥

मेरे अपने ही संकल्प-राग-द्वेष, मोह रूप अध्यवसाय तथा विकल्प-मनोज्ञ-अमनोज्ञ की कल्पनाएँ ही सभी प्रकार के दोषों का कारण हैं, जो इस प्रकार के चिन्तन में उद्यत होता है, तथा इन्द्रिय विषय दुःखों के मूल नहीं हैं-जो इस प्रकार का संकल्प करता है। उसके मन में समता उत्पन्न होती है और उससे काम गुणों में होने वाली तृष्णा क्षीण हो जाती है ॥१०७॥

My own resolutions–thoughts of attachment, detachment and infatuation–and ambiguities–imagination of pleasant and unpleasant, are causes of all faults and defects–who ponders like this; and resolves that the objects of senses are not the root causes of pains and miseries; the equanimity takes place and thereby the desire of sensual pleasures diminishes and destructs. (107)

स वीयरागो कयसव्वकिच्चो, खवेइ नाणावरणं खणेणं ।
तहेव जं दंसणमावरेइ, जं चऽन्तरायं पकरेइ कम्मं ॥१०८॥

वह कृतकृत्य बना हुआ वीतराग आत्मा क्षणभर में (अल्प समय में) ज्ञानावरण कर्म को क्षीण करता है तथा दर्शन का आवरण करने वाले दर्शनावरण कर्म एवं अन्तराय कर्म को नष्ट कर देता है ॥१०८॥

That beholden (Kṛtakṛtya), attachment–free soul in a moment (in a short period) destructs the knowledge obstructing, perception obstructing and power or energy hindering karmas. (108)

सव्वं तओ जाणइ पासए य, अमोहणे होइ निरन्तराए।
अणासवे झाणसमाहिजुत्ते, आउक्खए मोक्खमुवेइसुद्धे ॥१०९॥

तत्पश्चात वह संसार के सभी भावों को जानता-देखता है। मोहनीय और अन्तराय कर्म से रहित होकर आस्रव रहित (अनास्रव) हो जाता है। (तदनन्तर) वह ज्ञान समाधि से युक्त हुआ, आयुक्षय होने पर, शुद्ध होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥१०९॥

Then he sees and knows all the substances, attributes, modifications and elements of the three worlds. Becoming free of infatuation and power hindering karmas he stops the inflow of karmas. Then becoming opulent with knowledge contemplation, at the end of life-duration, being totally purified attains liberation. (109)

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जन्तुमेयं।
दीहामयविप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चन्तसुही कयत्थो ॥११०॥

वह उन सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है जो इस जीव को सतत बाधित (पीड़ित) करते रहते हैं। दीर्घकालिक (जन्म-मरण, कर्म) रोगों से विमुक्त, प्रशस्त, कृतार्थ एवं अत्यन्त सुखी हो जाता है ॥११०॥

Then he becomes exhaustively free from all agonies and miseries which always give pains to the soul. He becomes utmost happy, auspicious, contented (who has nothing to do) and free from all prolonged diseases of births, deaths and karmas. (110)

अणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चन्तसुही भवन्ति ॥१११॥

—त्ति बेमि।

अनादिकाल से उत्पन्न होते आये, समस्त दुःखों से मुक्ति का यह मार्ग कहा गया है, जिसे सम्यक् प्रकार से अपनाकर जीव क्रम से अत्यन्त सुखी (अनन्त सुख-सम्पन्न) हो जाते हैं ॥१११॥ —ऐसा मैं कहता हूँ।

This path is told to be free from all agonies, which are being generated from beginningless times. Accepting well this path the souls become most happy–opulent with eternal bliss and beatitude. (111) **–Such I Speak**

卐

तेतीसवाँ अध्ययन : कर्म प्रकृति

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम कर्म प्रकृति है। नाम से ही स्पष्ट है कि इस अध्ययन में कर्म प्रकृतियों का वर्णन किया गया है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कर्म क्या हैं, वे आत्मा से कैसे चिपकते हैं और आत्मा तथा कर्म का बन्धन क्यों होता है आदि............

कर्म पुद्‌गल द्रव्य (Matter) हैं। पुद्‌गल की कई वर्गणाएँ हैं। उनमें से एक कर्म (कार्मण) वर्गणा भी है। चतुःस्पर्शी असंख्य पुद्‌गल परमाणुओं का समूह कार्मण वर्गणा है। जीव के राग-द्वेष-मोह युक्त भावों से आकृष्ट होकर ये कर्म-वर्गणाएं जीव के साथ नीर-क्षीर के समान एक क्षेत्रावगाह–एकमेक हो जाती है। यही वन्ध है।

वन्ध का प्रारम्भ कब हुआ? जीव पहली बार कर्मों से कब बँधा ? इसका उत्तर है अनादिकाल से; क्योंकि संसारी जीव की कभी अबन्ध दशा थी ही नहीं। वह सदा ही विभाव में रहा। लेकिन स्वभाव की साधना करके वह अबन्ध हो सकता है और तब वह सिद्ध अथवा परमात्मा बन जाता है।

कर्म आठ हैं–(१) ज्ञानावरण–ज्ञान अथवा विशिष्ट बोध का आवरक।

(२) दर्शनावरण–सामान्य सत्ता के अवलोकन–दर्शन, देखने की शक्ति का आवरक।

(३) वेदनीय–सुख-दुःख की अनुभूति (वेदना) कराने वाला।

(४) मोहनीय–जीव के आत्मा के प्रति सम्यक् (सत्य) दृष्टि और तदनुरूप सम्यक् आचरण में विकार उत्पन्न कराने वाला।

(५) आयु–किसी एक गति-योनि में जीवित रहने की समय-सीमा निर्धारण में हेतुभूत।

(६) नाम–शरीर-रचना में हेतुभूत।

(७) गोत्र–उच्च-नीच कुल में जीव को उत्पन्न होने में हेतुभूत।

(८) अन्तराय–जीव की उपलब्धियों में विघ्नकारक।

इन आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ १४८ हैं–ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम की ९३, गोत्र की २ और अन्तराय की ५।

बन्ध की चार दशाएँ हैं–(१) प्रकृति, (२) प्रदेश, (३) स्थिति और (४) अनुभाग–फल प्रदान शक्ति।

कर्म का बन्ध जीव के राग-द्वेष आदि अध्यवसायों से होता है। तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम आदि अध्यवसायों की अनेक तरतमताएँ हैं, इसी कारण कर्मों की भी अनेक तरतमताएँ हो जाती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में इन सभी बातों का संक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण विवेचन किया गया है।

इस अध्ययन में २५ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 33
THE KARMAS

Foreview

The title of this chapter is 'Karmas'. The very name hints that in this chapter, the karmas, their chief and sub-divisions are described.

Most important question is–What are the karmas? How and why they sticks to soul? Why the bondage of karmas to soul occurs?

When the bondage began? When the soul bound by karmas at first time? The answer to these questions is–from beginningless time. Because the empirical soul was never unbound by karmas. It always remained in vibhāva–addicted to attachment-detachment, sensual pleasures etc.,–denturalised. But propiliating its own nature–own attributes, it may be free of bondage and then it becomes perfected, emancipated, omniscient and God Almighty.

Karmas are mainly of eight types called mūla prakṛties–

(1) *Knowledge obstructing*–It obstructs the knowledge attribute of soul.

(2) *Perception obstructing*–It obstructs the soul-attribute of perception–indistinguishable knowledge of a thing.

(3) *Emotion evoking*–It causes the soul to feel the pleasures and pains.

(4) *Infatuatory or illusory or delusory*–It causes perversion to the right faith and conduct.

(5) Age or duration determining–It is the cause for determining the time-limit of soul in any existence.

(6) *Form determining*–It is the cause of body-construction.

(7) *Status determining*–It is the cause of birth of soul in a high or low family or lineage.

(8) *Power or energy hindering*–It is meddlesome to the acquirements of soul.

These eight types are sub-divided into 148 sub-divisions, called uttara prakṛties. These are–

5 of Knowledge obstructing, 9 of Perception obstructing, 2 of Emotion Evoking, 28 of Infatuatory, 4 of Age determinng, 93 of Form determining of body, 2 of Status determining, and 5 of Power hindering.

There are four states of karma-bondage–(1) Nature (prakṛti), (2) micro-particles of Kārmaṇa vargaṇās (pradeśa) (3) duration (4) fruition (anubhāga)

Bondage of karma takes place by the attachment and detachment of soul. Excessive, more excessive, most excessive, less, lesser, least are gradations of the thoughts of soul, thereby various gradations of karmas also become evident.

All these are described in this chapter in brief but exhaustively.

This chapter contains 25 couplets.

तेत्तीसइमं अज्झयणं : कम्मपयडी
त्रयस्त्रिंश अध्ययन : कर्म-प्रकृति

अट्ठ कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं ।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवत्तए ॥१॥

मैं आनुपूर्वी और यथाक्रम से आठ कर्मों का प्रतिपादन करता हूँ, जिन (कर्मों) से बंधा हुआ यह जीव (चतुर्गतिरूप) संसार में पर्यटन करता है ॥१॥

I demonstrate in due order the types of karmas, bound by which this soul transmigrates in this world of four existences. (1)

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥२॥
नामकम्मं च गोयं च, अन्तरायं तहेव य ।
एवमेयाइ कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

ज्ञान को आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय और वेदनीय कर्म तथा मोहनीय कर्म, इसी प्रकार आयुकर्म-॥२॥

नाम कर्म, गोत्रकर्म तथा अन्तराय कर्म-इस प्रकार ये कर्म संक्षेप में आठ ही हैं ॥३॥

Main divisions (mūla prakṛtis) of karma

(1) Knowledge obstructing (2) Perception obstructing (3) Emotion evoking (4) Illusory (5) Age determining–(2)

(6) Formation of body determining (7) Status determining and (8) Power hindering.

Briefly these are eight karmas (main divisions of karmas). (3)

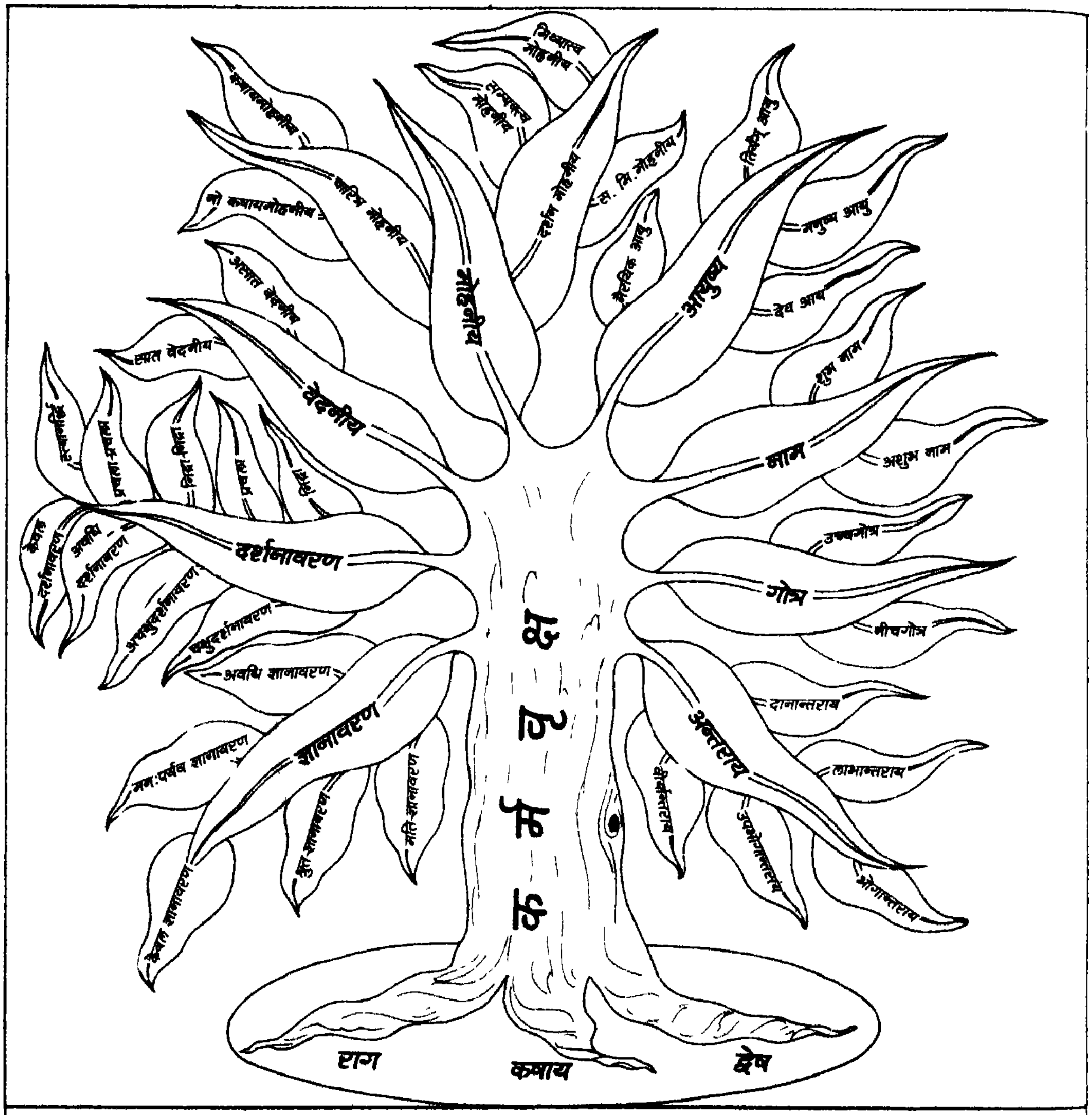
आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ

नाणावरणं पंचविहं, सुयं आभिणिबोहियं ।
ओहिनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं ॥४॥

ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार का है-(१) श्रुत ज्ञानावरणीय (२) आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरणीय) (३) अवधिज्ञानावरणीय (४) मनोज्ञानावरणीय (मनःपर्यव ज्ञानावरणीय और (५) केवलज्ञानावरणीय ॥४॥

Sub-divisions (uttara prakṛtis) of karmas

Knowledge obstructing karma is of five kinds–(1) obstructer of śruta knowledge (2) obstructer of ābhinibodhika (mati) knowledge (3) obstructer of clairvoyance knowledge (4) obstructer of direct knowledge of others' mind (5) obstructer of omniscience. (4)



आत्मा का राग-द्वेष मूलक कषाय रंजित परिणाम कर्म वृक्ष का मूल है।

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ ज्ञानावरण आदि आठ हैं

उत्तर प्रकृतियाँ (क्रमशः 148 अथवा 158 मानी गई हैं) ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयुष्य की 4, नामकर्म की (मूल 2) (अवान्तर 93 अथवा 103), गोत्रकर्म की 2, और अन्तराय कर्म की 5। इस प्रकार कुल 148 हैं।

कर्मों की स्थिति—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 30 कोटा-कोटि सागरोपम।

मोहनीय की—ज. अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 70 कोटा-कोटि सागरोपम

आयुकर्म की ज. अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 33 सागरोपम

नाम और गोत्र कर्म की ज. 8 मुहूर्त, उत्कृष्ट 20 कोटा-कोटि सागरोपम।

निद्दा तहेव पयला, निद्दानिद्दा य पयलपयला य ।
तत्तो य थीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥५॥
चक्खुमचक्खु-ओहिस्स, दंसणे केवले य आवरणे ।
एवं तु नवविगप्पं, नायव्वं दंसणावरणं ॥६॥

(१) निद्रा, तथा (२) प्रचला, (३) निद्रा-निद्रा और (४) प्रचला-प्रचला तथा पाँचवीं स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि)–॥५॥

(६) चक्षुदर्शनावरणीय (७) अचक्षुदर्शनावरणीय (८) अवधिदर्शनावरणीय और (९) केवलदर्शनावरणीय– ये ९ विकल्प (भेद) दर्शनावरणीय कर्म के जानने चाहिए ॥६॥

Perception obstructing karma is ninefold viz.,–(1) Common or light sleep (2) sleep, when sitting (3) deep sleep (4) sleep even when walking (5) styāngṛddhi–a high degree of activity in sleep. (5)

Obstructer of perception viz.,–(6) by eye (7) by other senses except eye, (8) clairvoyance (9) supreme perception. (6)

वेयणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं ।
सायस्स उ बहू भेया, एमेव असायस्स वि ॥७॥

वेदनीयकर्म दो प्रकार का है–(१) सात (साता) वेदनीय और (२) असात–असातावेदनीय। सातवेदनीय के बहुत भेद हैं और इसी प्रकार असातवेदनीय के भी बहुत भेद हैं ॥७॥

Emotion evoking karma is of two kinds–(1) pleasure experience (2) pain experience. There are many types of pleasure experiences so there are of pain experiences too. (7)

मोहणिज्जं पि दुविहं, दंसणे चरणे तहा ।
दंसणं तिविहं वुत्तं, चरणे दुविहं भवे ॥८॥

मोहनीय कर्म भी दो प्रकार का है–(१) दर्शनमोहनीय और (२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद कहे गये हैं और चारित्रमोहनीय दो प्रकार का होता है ॥८॥

Illusory karma is twofold–(1) Faith Illusory and (2) Conduct Illusory. Faith Illusory is sub-divided into three kinds and Conduct Illusory into two kinds. (8)

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं, सम्मामिच्छत्तमेव य ।
एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ॥९॥

(१) सम्यक्त्व (२) मिथ्यात्व (३) सम्यक्त्व मिथ्यात्व–ये तीन प्रकृतियाँ दर्शनमोहनीय कर्म की हैं ॥९॥

(1) Right faith (2) wrong faith and (3) rightwrong faith mixed–these are sub-divisions (uttara prakṛtis) of Faith Illusory karma. (9)

चरित्तमोहणं कम्मं, दुविहं तु वियाहियं ।
कसायमोहणिज्जं तु, नोकसायं तहेव य ॥१०॥

चारित्रमोहनीय कर्म के दो भेद कहे गये हैं–(१) कषायमोहनीय और दूसरा (२) नोकषायमोहनीय ॥१०॥

Two divisions are of Conduct Illusory karma–(1) Passion illusory and (2) auxiliary or like to passions illusory (no-kaṣāya) (10)

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं ।
सत्तविहं नवविहं वा, कम्मं नोकसायजं ॥११॥

कषाय मोहनीय कर्म के सोलह भेद हैं। सात अथवा नौ प्रकार का नोकषाय मोहनीय कर्म है ॥११॥

Passion illusory karma has sixteen kinds and auxiliary passion karma is said of seven or nine types. (11)

नेरइय-तिरिक्खाउ, मणुस्साउ तहेव य ।
देवाउयं चउत्थं तु, आउकम्मं चउव्विहं ॥१२॥

(१) नैरयिक आयु (२) तिर्यग् आयु (३) मनुष्य आयु और (४) देव आयु–इस तरह आयुकर्म चार प्रकार का है ॥१२॥

Age determining karma is fourfold (1) denizens of hell (2) beasts, creature, birds etc., (3) men and (4) deities and gods. (12)

नामं कम्मं तु दुविहं, सुहमसुहं च आहियं ।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि ॥१३॥

नाम कर्म दो प्रकार का है–(१) शुभनाम कर्म और (२) अशुभ नामकर्म। शुभ नामकर्म के बहुत भेद हैं, इसी तरह अशुभ नाम कर्म के भी बहुत भेद हैं ॥१३॥

Form of body determining karma is twofold (1) auspicious and (2) inauspicious. Both of these are of several types. (13)

गोयं कम्मं दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं ।
उच्चं अट्ठविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं ॥१४॥

गोत्र कर्म दो प्रकार है–(१) उच्च गोत्रकर्म और (२) नीच गोत्रकर्म। उच्च गोत्रकर्म आठ प्रकार का है इसी तरह नीच गोत्रकर्म भी आठ प्रकार का बताया गया है ॥१४॥

Status or lineage or family determining karma is of two types–(1) high and (2) low, High is of eight kinds and so the low is also of eight types. (14)

दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ।
पंचविहमन्तरायं, समासेण वियाहियं ॥१५॥

(१) दानान्तराय (२) लाभान्तराय (३) भोगान्तराय (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यन्तराय–संक्षेप से अन्तराय कर्म के ये पाँच प्रकार बताये गये हैं ॥१५॥

Power hindering karma is said of five kinds viz., hindering–(1) donation or charity (2) gains or profits (3) the things can be utilised or used only once–like food etc. (4) the things can be used many times–like cloths etc (5) energy, zeal or power. (15)

कर्मों के प्रदेशाग्र (द्रव्य) क्षेत्र, काल और भाव

एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया ।
पएसग्गं खेत्तकाले य, भावं चादुत्तरं सुण ॥१६॥

कर्मों की ये मूल और उत्तर प्रकृतियाँ बताई गई हैं। (अब) उनके प्रदेशाग्र (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव भी सुनो ॥१६॥

These are said the main divisions and sub-divisions of karmas. Now hear their micro particles (pradeśāgra–dravya) place-area, time–duration, and fruition–the intensity to make the soul to experience their consequences. (16)

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसग्गमणन्तगं ।
गण्ठिय-सत्ताईयं, अन्तो सिद्धाण आहियं ॥१७॥

एक समय में (एक आत्मा द्वारा बद्ध–ग्राह्य होने वाले) सभी कर्मों के प्रदेशाग्र (कर्म-परमाणु पुद्गल दलिक का परिमाण) अनन्त है। (यह अनन्त परिमाण) ग्रन्थिक सत्वातीत (जिन्होंने गन्थि भेद नहीं किया है ऐसे अभव्य जीवों) से अनन्त गुणा अधिक तथा सिद्धों के अन्तवर्ती–अनन्तवें भाग जितने कहे गये हैं ॥१७॥

The micro particles or molecules of all the karmas bound or gripped by soul in a moment (the undivisible subtle particle of time) the quantity of these micro-particles of karmas is infinite. This infinite quantity of molecules of karmas is infinite times more than the number of abhavya souls (the souls can never break up the knot of wrong-faith and so can never be salvated) and infinite part of the number of all emancipated souls. (17)

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं ।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥१८॥

सभी जीव छह दिशाओं में रहे कर्मों (कार्मण वर्गणा के पुद्गलों) का संग्रहण करते हैं। वे सभी कर्म पुद्गल आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ सर्व प्रकार से बद्ध–आश्लिष्ट हो जाते हैं ॥१८॥

All the souls grip or bound the micro-particles of group of karmas (Kārmaṇa vargaṇās) remaining in six directions around them. All the karmas bound or sticked to the whole soul, its all parts (pradeśas) in every way. (18)

उदहीसरिसनामाणं, तीसई कोडिकोडिओ ।
उक्कोसिया ठिई होइ, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९॥

उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा-कोटि सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१९॥

Maximum or longest duration (of karmas) is of thirty crores of crores sāgaropamas; and minimum or shortest duration is less than fortyeight minutes (antarmuhūrta). (19)

आवरणिज्जाण दुण्हंपि, वेयणिज्जे तहेव य ।
अन्तराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया ॥२०॥

यह (पूर्व गाथा में वर्णित) स्थिति दोनों आवरणीय (ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय) कर्मों की तथा वेदनीय और अन्तराय कर्म की बताई गई है ॥२०॥

The duration said in aforesaid couplet nineteen is of four karmas (of each separately) viz.,–(1) Knowledge obstructing (2) perception obstructing (3) emotion evoking and (4) power hindering karmas. (20)

उदहीसरिसनामाणं, सत्तरिं कोडिकोडिओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥२१॥

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटा-कोटि सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की बताई गई है ॥२१॥

The longest duration of Illusory karma is of seventy crores of crores sāgaropamas and short duration is of less than forty eight minutes. (21)

तेत्तीस सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ।
ठिई उ आउकम्मस्स, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥२२॥

आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥२२॥

The maximum duration of age determining karma is of thirty three sāgaropamas and minimum duration is of less than fortyeight minutes. (22)

उदहीसरिसनामाणं, वीसई कोडिकोडिओ ।
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अट्ठमुहुत्ता जहन्निया ॥२३॥

नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटा-कोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है ॥२३॥

The maximum duration of Form of body determining and Status determining karmas (of each-separately) is of twenty crores of crores sāgaropamas and minimum duration is of 48 x 8 = 384 minutes (eight muhūrtas). (23)

सिद्धाणऽणन्तभागो य, अणुभागा हवन्ति उ ।
सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवेसुऽइच्छियं ॥२४॥

कर्मों के रस-विशेष–अनुभाग सिद्धों के अनन्तवें भाग जितने होते हैं और सभी अनुभागों में प्रदेशों के अग्र-परमाणुओं का परिमाण सभी (भव्य-अभव्य जीवों से भी) से अधिक है ॥२४॥

The fruitions (rasa) of karmas are infinite part of perfected souls in number and the quantity of all the fruitions is more than all the empirical souls (bhavya-abhavaya–the souls may be liberated or may not be liberated). (24)

तम्हा एएसि कम्माणं, अणुभागे वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहे ॥२५॥

त्ति बेमि ।

इसलिए इन कर्मों के अनुभागों को जानकर बुद्धिमान-तत्त्वज्ञानी साधक इन कर्मों के संवर और क्षय करने में प्रयासरत बने ॥२५॥ —ऐसा मैं कहता हूँ।

Therefore knowing all these karmas and their fruitions–consequences, wise adept should exert himself to stop and destruct them. (25) **–Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १–समास का अर्थ संक्षेप है। संक्षेप में आठ कर्म हैं, इसका अभिप्राय है कि वैसे तो जितने प्राणी हैं, उतने ही कर्म हैं, अर्थात् कर्म अनन्त हैं यहाँ विशेष स्वरूप की विवक्षा से आठ भेद हैं।

गाथा ६–सहज रूप में आने वाली निद्रा है। गहरी और कठिनाई से टूटने वाली निद्रा-निद्रा है। बैठे-बैठे सो जाना प्रचला निद्रा है। चलते हुए भी सो जाना प्रचला-प्रचला निद्रा है।

स्त्यानर्द्धि का अर्थ है–जिसमें सबसे अधिक ऋद्धि अर्थात् गृद्धि का स्त्यान है, उपचय है, वह निद्रा। इसमें वासुदेव का आधा बल आ जाता है, प्रबल राग-द्वेष वाला प्राणी इस निद्रा में बड़े-बड़े असंभव जैसे कार्य कर लेता है और उसे भान ही नहीं होता कि मैंने क्या किया है?

गाथा ९–सम्यक्त्वमोहनीय कर्म शुद्धदलिकरूप है, अतः उसके उदय में भी तत्वरुचिरूप सम्यक्त्व हो जाता है। पर, उसमें शंका आदि अतिचारों की मलिनता बनी रहती है। मिथ्यात्व अशुद्धदलिकरूप है, उसके कारण तत्व में अतत्व रुचि और अतत्त्व में तत्व रुचि होती है। सम्यग्मिथ्यात्व के दलिक शुद्धाशुद्ध अर्थात् मिश्र हैं।

गाथा १०–"नोकषाय" में प्रयुक्त "नो" का अर्थ "सदृश" है। जो कषाय के समान है, कषाय के सहवर्ती हैं, वे हास्य आदि नोकषाय हैं।

गाथा ११–एक बार उपयोग में आने वाले जल, आहार आदि भोग हैं। बार-बार उपयोग में आने वाले वस्त्र, अलंकार, मकान आदि उपभोग हैं।

दान देने वाला भी है, देय वस्तु भी है, दान के फल को भी जानता है, फिर भी दान में प्रवृत्ति न होना, दानान्तराय है।

उदार दाता के होने पर भी याचना निपुण याचक कुछ भी न पा सके, यह लाभान्तराय है।

धन वैभव और अन्य वस्तु के होने पर भी तिनका तोड़ने जैसी भी क्षमता–शक्ति का न होना वीर्यान्तराय है।

इनके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि अनेक भेद हैं।

गाथा १७–एक समय में बंधने वाले कर्मों का प्रदेशाग्र (कर्मपुद्गलों के परमाणुओं का परिमाण) अनन्त है। अर्थात् आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर एक समय में अनन्तानन्त परमाणुओं से निष्पन्न कर्मवर्गणायें श्लिष्ट होती हैं।

ये अनन्त कर्मवर्गणायें अनन्तसंख्यक अभव्य जीवों से अनन्तगुणा अधिक और अनन्तसंख्यक सिद्धों के अनन्तवे भाग होती हैं। अर्थात् एक समय में बद्ध अनन्त कर्म वर्गणाओं से सिद्ध अनन्तगुणा अधिक हैं।

ग्रन्थिकसत्व का अर्थ है अभव्य जीव। अभव्यों की राग-द्वेषरूप ग्रन्थि अभेद्य होती है, अतः उन्हें ग्रन्थिक अथवा ग्रन्थिक सत्व (जीव) कहा है।

गाथा १८–पूर्व आदि चार, और ऊर्ध्व एवं अधः ये छह दिशायें हैं। जिस आकाश क्षेत्र में जीव अवगाढ़ है, रह रहा है वहीं के कर्मपुद्गल रागादि भावरूप स्नेह के योग से आत्मा में बद्ध हो जाते हैं। भिन्न क्षेत्र में रहे हुए कर्म पुद्गल वहाँ से आकर आत्मा को नहीं लगते।

ईशान आदि विदिशाओं के भी कर्मपुद्गल बंधते हैं पर विदिशायें दिशाओं में गृहीत हो जाने से यहाँ अविवक्षित हैं।

यह छह दिशाओं का कर्मबन्ध सम्बन्धी नियम द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों को लक्ष्य में रखकर बताया गया है। एकेन्द्रिय जीवों के लिये तो कभी तीन, कभी चार, कभी पाँच और कभी छह दिशाओं का उल्लेख है।

ज्ञानावरणादि सभी कर्म आत्मा के सभी असंख्यात प्रदेशों से बंधते हैं, अमुक प्रदेशों पर ही नहीं। आत्मा के प्रदेश बुद्धिपरिकल्पित हैं, पुद्गल की तरह मिलने-बिछुड़ने वाले परमाणु जैसे नहीं।

गाथा १९-२०-प्रस्तुत में वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त ही बतायी गई है, जबकि अन्यत्र १२ मुहूर्त का उल्लेख है। टीकाकार कहते हैं, इसका क्या अभिप्राय है, हम नहीं जानते। "तदभिप्रायं न विद्मः।"

(सन्दर्भ-उत्तराध्ययन सूत्र : साध्वी चन्दना जी)

Salient Elucidations

Gāthā 3–The meaning of word samāsa is brief. Briefly the karmas are eight. This denotes that how much are living beings so much are the karmas, i.e., karmas are infinite. Here by special conception eight kinds of karmas are described.

Gāthā 6–General or common sleep is sleep. Which can be broken by efforts is sleep-sleep or deep sleep. To sleep while sitting is pracala. To sleep while walking or moving is pracalā-pracalā.

Styānardhi means, in which there is most addictment and accumulation, that sleep. The person addicted to such sleep begets the half strength of Vāsudeva and the person effected by intense attachment-detachment may do the impossible tasks in the effect of this type of sleep and he could not be even aware of the fact that what I have done.

Gāthā 9–The micro particles of right faith illusory karmas are pure, so in the rise of this right faith of interest to elements is attained; but the transgressions of doubt etc , all persists. The micro particles of right-wrong faith are mixture of pure and impure.

Gāthā 10–The prefix '*no*' in the word nokaṣāya means alike. Which is equal to pasions or auxiliary–helpful to passions, those mirths etc., are auxiliary passions (nokaṣāyas).

Gāthā 11–Which can be used only once is called 'bhoga' e.g., food, water etc., and which can be used many times is called 'upabhoga' e g., clothes, ornaments, house etc.

Donator, thing to be given, donator is well aware of the sweet fruits of charity–still the absence of zeal and intention to give is called hindrance of charity.

The person expert in begging could get nothing from a liberal donator, then it is the effect of gain hindrance.

Being owner of wealth, fortune etc.. but absence of capability even to break up a straw, is called power hindrance.

There are innumerable types of all these by the gradation of minimum, medium and maximum.

Gāthā 17–The quantity to be bound the micro particles of karmas to soul in a moment (undivisible shortest particle of time) is infinite. It means that at every pradeśa of soul, the karma-varganās stick. Which are composed by infinite of infinite atoms (molecules) of matter.

These infinite karma varganās are infinite times more than the infinite numbers of abhavya souls and infinite-part of infinite number of perfected souls. It means that liberated souls are infinite times more than the infinite karma-varganas, which stick or bound to soul in an undivisible shortest particle of time.

The word granthika-satva means that the knot of attachment-detachment can not be broken by any means of abhavya souls. In other words it is eternal. Therefore abhavya souls are called granthika or granthikasatva (souls).

Gāthā 18–Six directions are-East, West, North, South, Zenith and Nadir. The soul remaining in those space-points the karma-matter of the same space points stick to it by the thought greasiness of attachment etc. The karma-atoms of different space-points never come and stick to that soul.

The karma-atoms of four angular cardinal points also bound to souls; but these angular cardinal points of directions amalgamated in four main directions, so these are not enumerated separately.

This rule of karma-bondage of six directions is settled keeping in view five-sensed souls, but regarding one-sensed souls, there is description of three, four, five and six directions.

Knowledge obstructing etc., all the karmas are bound with all the pradeśas which are innumerable, of soul; not at particular pradeśas. The pradeśas of soul are only imaginary–imagined by intellect; these are not joining and separating like the atoms of matter.

Gāthā 19-20–Shortest duration of emotion evoking karma is told less than 48 minutes (antarmuhūrta) in these couplets; while other holy scriptures and dogmatic authoritative texts described it of twelve muhūrtas (576 minutes). At this point commentators say–What is the purport of this, we do not know–*tadabhiprāyaṁ na vidmah.*

(–Courtesy–Uttarādhyayana sūtra – Sādhvī Candanājī)

चौंतीसवाँ अध्ययन : लेश्याध्ययन

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम लेश्याध्ययन है। नाम से ही स्पष्ट है कि इसका वर्ण्य विषय लेश्या है।

लेश्या क्या है तथा इसका किस प्रकार का प्रभाव होता है आदि विषयों को समझना आवश्यक है।

शास्त्रों में लेश्याओं को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

(१) कषाय से अनुरंजित जीव-परिणाम (भाव)

(२) कषायोदय से रञ्जित मन-वचन-काय–योगों की प्रवृत्ति

(३) कर्म के साथ आत्मा को संश्लिष्ट करके कर्मबंध की निर्माणक

(४) कर्म विधायिका।

लेश्या के दो भेद हैं–(१) द्रव्य लेश्या और (२) भाव लेश्या।

भाव लेश्या आत्मा के क्रोधादि कषायों से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति है तथा द्रव्य लेश्या पुद्‌गलों से निर्मित है। लेश्या के जो वर्ण, गन्ध, रस आदि बताये गये हैं, वे द्रव्य लेश्या से सम्बन्धित हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा के परिणाम (भाव, विचार, चिन्तन) पुद्‌गल को प्रभावित करते हैं और पुद्‌गल परमाणु आत्मा के भावों को।

लेकिन शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि द्रव्य लेश्या शरीर से सम्बन्धित है; शरीर रचना करने वाले नाम कर्म की शरीर-निर्माण नाम की एक उत्तर प्रकृति का सीधा सम्बन्ध द्रव्य लेश्या से बताया गया है। निष्कर्षतः यह निश्चित किया गया है कि द्रव्य लेश्या (शरीर का वर्ण आदि) जीवन भर स्थायी रहती है और भाव लेश्या आत्म परिणामों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। तभी तो काले शरीर वाले व्यक्ति की शुक्ल (श्वेत वर्ण की) और श्वेत वर्णी शरीरधारी व्यक्ति की कृष्ण (काले रंग की) भाव लेश्या होना संभव है।

आधुनिक विज्ञान ने ऐसे कैमरों का निर्माण कर लिया है जिससे वे आत्मा के क्रोधादि कषाय रंजित परिणामों द्वारा प्रादुर्भूत रंगों का चित्र लेने में सक्षम हो सके हैं।

इस पौद्‌गलिक लेश्या को आचार्यों ने आणविक-आभा, प्रभा, छाया आदि नामों से निरूपित किया है।

लेश्या ६ हैं–कृष्ण, नील, कापोत, तेजः, पद्म और शुक्ल। इनमें से प्रथम तीन अधर्म लेश्याएँ हैं और अन्तिम तीन धर्म लेश्या हैं। इनके मन्दतम, मन्दतर, मन्द, तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम–परिणामों के अनुसार अनेक विकल्प हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में इन छहों लेश्याओं का–(१) नामद्वार, (२) वर्णद्वार (३) रसद्वार (४) गन्धद्वार (५) स्पर्शद्वार (६) परिणामद्वार (७) लक्षणद्वार (८) स्थानद्वार (९) स्थितिद्वार (१०) गतिद्वार और (११) आयुद्वार–इन ग्यारह द्वारों द्वारा व्यवस्थित वर्णन हुआ है।

लेश्या के लक्षण, परिणाम तथा वर्ण, गन्ध, स्पर्श आदि को दो रंगीन चित्रों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

इस अध्ययन में ६१ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 34
TINGES

Foreview

The caption of this chapter is 'Tinges' (Leśyās). By the very name it is evident that subject matter of this chapter is the conception and description of tinges.

What are the tinges and how they effect? All the questions like these, to be clarified and pacified, is necessary.

In scriptures, the tinges are defined as–

(1) The thoughts of soul tinted by passions.

(2) Activities of mind-speech-body tinted by the rise of passions.

(3) Creator of karma-bondage by sticking karmas to soul.

(4) Legislative of karmas.

Pondering deeply it may be said that tinges are the reflections of karmas on the soul. These are thought tinges.

Hence tinges are divided into two kinds–(1) thought tinges or internal tinges (bhāva leśyā) and (2) external or bodily tinges (dravya leśyā).

Thought tinges are the mental-speech-bodily activities tinted by passions and external or gross tinges are constructed by matter. The colour, taste, smell etc., are described, these are related to gross or bodily tinges.

Though it is true that the thoughts (thinking etc.) effects the matter and the atoms of matter also effect soul.

But it is also mentioned in the scriptures that gross tinges are related to body; and body-construction karma's one sub-division is directly related to tinges. Consequently, it has been settled that gross tinges (the colour or complexion etc., of body) remains stable till life and thought tinges change according to the thoughts of soul. That is why black bodied man may possess white tinge (śukla leśyā) and the white-bodied person may possess black tinge (kṛṣṇa leśyā).

Modern science has developed such sensitive cameras which are capable to photograph the soul thoughts coloured by passions. Really these photographs are of the colour-current of electric body, not the thought current of soul.

This material tinge is said by the names–atomic lustre, light, shade etc., by Jaināčāryas.

Tinges are six in number, named–(1) Black (2) Blue (3) Grey–colour of the neck of a pigeon (4) Red (5) Yellow and (6) white.

Among these first three tinges are irreligious and last three are religious.

There are innumerable types of all these tinges by the gradation of dim, more dim and dimest; intense, more intense and most intense. These various kinds are according to the thoughts of soul regarding thought tinges and the changes of matter-atoms regarding bodily tinges.

In this chapter the systemised description of all these six tinges done by–(1) Nāmadvāra (name) (2) Varṇadvāra (colour) (3) rasadvāra (taste) (4) Gandhadvāra (smell) (5) Sparśadvāra (touch) (6) Pariṇāmadvāra (7) Lakṣaṇadvāra (symptom) (8) Sthānadvāra (place) (9) Sthitidvāra (duration) (10) Gatidvāra (existence) and (11) Āyudvāra–these eleven ways.

The efforts are done by two colour illustrations to make clearly understand the symptoms, colours, touches etc., of tinges.

This chapter contains 61 couplets.

卐

चउतीसइमं : लेसज्झयणं
चतुस्त्रिंश अध्ययन : लेश्याध्ययन

लेसज्झयणं पवक्खामि, आणुपुव्विं जहक्कमं ।
छण्हं पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे ॥१॥

मैं आनुपूर्वी के क्रमानुसार–यथाक्रम से लेश्याओं के प्रतिपादक अध्ययन का कथन करूँगा। कर्म (की स्थिति विधायक) छह लेश्याओं के रस-विशेष–अनुभावों को मुझसे सुनो ॥१॥

I will express in due order the chapter demonstrating tinges. (Tinges are legislative of karmas's duration) hear from me the fruitions–consequences of these six tinges. (1)

नामाइं वण्ण-रस-गन्ध–, फास-परिणाम-लक्खणं ।
ठाणं ठिइं गइं चाउं, लेसाणं तु सुणेह मे ॥२॥

नाम, वर्ण (रंग), रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु–इन द्वारों के माध्यम से लेश्याओं के विषय में मुझसे सुनो ॥२॥

Name, colour, taste, smell, touch, pariṇāma, symptom, place, duration, existence and ayu–by the medium of these ways (dvāras) hear from me all about tinges. (2)

(१) **नामद्वार–**

किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा उ, नामाइं तु जहक्कमं ॥३॥

(१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) तेजस् (५) पद्म और (६) शुक्ल–इन छह लेश्याओं के ये नाम यथाक्रम से–क्रमानुसार हैं ॥३॥

(1) Black (2) Blue (3) Kāpota (4) Tejas (5) Padma (6) White (śukla)–these six names of the tinges are in due course. (3)

(२) **वर्णद्वार–**

जीमूयनिद्धसंकासा, गवलऽरिट्ठगसन्निभा ।
खंजणंजण-नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥४॥

स्निग्ध (सजल) काले मेघ के समान, भैंस के सींग और अरिष्टक (काले रीठे, द्रोण काक) के सदृश, खंजन (गाड़ी के कीट, अथवा खंजन पक्षी), अंजन (काजल या सुरमा अथवा आँखों की पुतली) जैसा काला रंग (वर्ण) कृष्ण लेश्या का वर्ण है ॥४॥

The colour of black tinge is, like–a black cloud full of water, horns of he-buffalo, (fruits of) ariṣṭaka (sapindus detergens), eye of wagtail, sediment of cart, collyrium, pupil of eye. (4)

नीला-ऽसोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।
वेरुलियनिद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥५॥

नीले अशोक वृक्ष जैसा, चास पक्षी के पंख की प्रभा जैसा, स्निग्ध वैडूर्य रत्न के समान (अतिनील)-नील लेश्या का रंग है ॥५॥

The colour of blue tinge is, like-blue (Jonesia) aśoka tree, lustre of the feathers of cāsa bird, smooth jewel vaiḍūrya (lapis lazult). (5)

अयसीपुप्फसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।
पारेवयगीवनिभा, काउलेसा उ वण्णओ ॥६॥

अलसी के पुष्प, कोयल के पंख के समान, कबूतर की ग्रीवा (गरदन) (कुछ नीला और कुछ लाल) जैसा रंग कापोत लेश्या का है ॥६॥

The colour of kāpota (of pigeon) tinge is like-the colours of the flowers of alasī, feathers of kokila, neck of pigeon (somewhat blue and somewhat red). (6)

हिंगुलुयधाउसंकासा, तरुणाइच्चसन्निभा ।
सुयतुण्ड-पईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥७॥

हिंगुल, धातु-गेरू के समान, तरुण (उदय होते हुए) सूर्य के सदृश, तोते की चोंच, प्रज्वलित दीपक की प्रभा जैसा लाल-तेजोलेश्या का वर्ण होता है ॥७॥

The colour of tejas tinge is like the colours of sulphate of mercury, red ochre or ruddle, rising sun, beak of a parrot and the flicker of lighted lamp (deepak). (7)

हरियालभेयसंकासा, हलिद्दाभेयसंनिभा ।
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

हरिताल (हड़ताल) के टुकड़े जैसा, हल्दी के टुकड़े के समान, सन और असन के पुष्प के समान पीला रंग पद्मलेश्या का होता है ॥८॥

The colour of yellow (padma) tinge is like the piece of orpiment, piece of turmeric and the flowers of sana and asana. (8)

संखंककुन्दसंकासा, खीरपूरसमप्पभा ।
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥९॥

शंख अंकरत्न (स्फटिक मणि के समान एक विशेष रत्न), कुन्द के पुष्प जैसा, दूध की धार जैसा और चाँदी के हार के समान श्वेत वर्ण शुक्ल लेश्या का होता है ॥९॥

The colour of white (śukla) tinge is like the colour of conch-shell, the aṅka jewel (a particular jewel like crystal gem), the flower of kunda, flow of milk and the neckless of silver. (9)

(३) रसद्वार–

जह कडुयतुम्बगरसो, निम्बरसो कडुयरोहिणिरसो वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ किण्हाए नायव्वो ॥१०॥

जिस प्रकार कड़वे तुम्बे का रस, नीम का रस, कड़वी रोहिणी (नीम गिलोय) का रस जितना कड़वा होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक कड़वा रस (स्वाद) कृष्ण लेश्या का जानना चाहिए ॥१०॥

The taste of black tinge is infinitely more bitter than that of bitter gourd (tumbaka) juice of (fruits and leaves) margossa tree and bitter rohiṇī. (10)

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो ॥११॥

जैसा त्रिकटुक (त्रिकुटा–सोंठ, पिप्पल, कालीमिर्च) का रस, गज पीपल का रस जितना तीखा (चरपरा) होता है उससे भी अनन्तगुणा तीखा रस (स्वाद) नील लेश्या का जानो ॥११॥

The taste of blue tinge is infinitely more pungent than that of trikaṭuka (aggregate of black round and long pepper and dry ginger). and hastipippala. (11)

जह तरुणअम्बगरसो, तुवरकविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो ॥१२॥

जैसे कच्चे आम का रस, कच्चे कपित्थ फल (कवीठ) का रस जितना कषैला होता है, उससे भी अनन्तगुणा कषायला रस (स्वाद) कापोत लेश्या का जानना चाहिए ॥१२॥

The taste of grey (kāpota) tinge is infinitely more sour than the juice of unripe mango and unripe fruit of kapittha. (12)

जह परिणयम्बगरसो, पक्ककविट्ठस्स वावि जारिसओ ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ तेऊए नायव्वो ॥१३॥

जैसे पके हुए आम का रस, पके हुए कपित्थ का रस जितना खट-मीठा होता है उससे भी अनन्तगुणा खट-मीठा रस तेजोलेश्या का जानो ॥१३॥

The taste of red (tejas) tinge is infinitely more sour and sweet than the juice of ripe mango and *kapittha fruit. (13)*

वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ ।
महु-मेरगस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं ॥१४॥

उत्तम मदिरा का जैसा रस होता है तथा विविध प्रकार के आसवों का रस और मधु (विशेष प्रकार की मदिरा) सिरके, मैरेयक का रस (कुछ खट्टा कुछ कसैला) होता है उससे भी अनन्तगुणा ज्यादा कुछ खट्टा-कुछ कसैला रस पद्म लेश्या का होता है ॥१४॥

The taste of yellow (padma) tinge is infinitely more sour and astringent than that of wine, various types of liquors, vinegar and maireyaka. (14)

खज्जूर-मुद्दियरसो, खीररसो खण्ड-सक्कररसो वा ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥१५॥

खजूर और द्राक्षा, दूध, खांड-शक्कर का जैसा रस (स्वाद) होता है उससे भी अनन्तगुणा अधिक मीठा रस शुक्ल लेश्या का होता है ॥१५॥

The taste of white tinge is infinitely more sweet than that of dates, grapes, milk and candied and pounded sugar. (15)

(४) गन्धद्वार–

जह गोमडस्स गन्धो, सुणगमडगस्स व जहा अहिमडस्स ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१६॥

मृत गाय की, मरे हुए कुत्ते की, मरे हुए सर्प की जैसी गंध (दुर्गन्ध) होती है उससे भी अनन्तगुणी अधिक दुर्गन्ध तीन अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं की होती है ॥१६॥

The smell of three inauspicious tinges (black, blue and grey) is infinitely more worse than the bad smell of corpses of cow, dog and serpent. (16)

जह सुरहिकुसुमगन्धो, गन्धवासाण पिस्समाणाणं ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१७॥

सुरभित कुसुमों की गंध, पीसे जाते हुए सुगन्धित गन्ध द्रव्यों की जैसी गन्ध (सुगन्ध) होती है उससे भी अनन्तगुणी अधिक सुगन्ध तीन प्रशस्त (तेजस्, पद्म और शुक्ल) लेश्याओं की होती है ॥१७॥

The smell of three auspicious tinges (red, yellow and white) is infinitely more pleasant than that of fragrant flowers and perfumes when they are grinded. (17)

(५) स्पर्शद्वार–

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१८॥

करवत (करौत) का, गाय की जीभ का, शाक नामक वनस्पति के पत्तों का जैसा कर्कश स्पर्श होता है उससे भी अनन्तगुणा अधिक कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं का होता है ॥१८॥

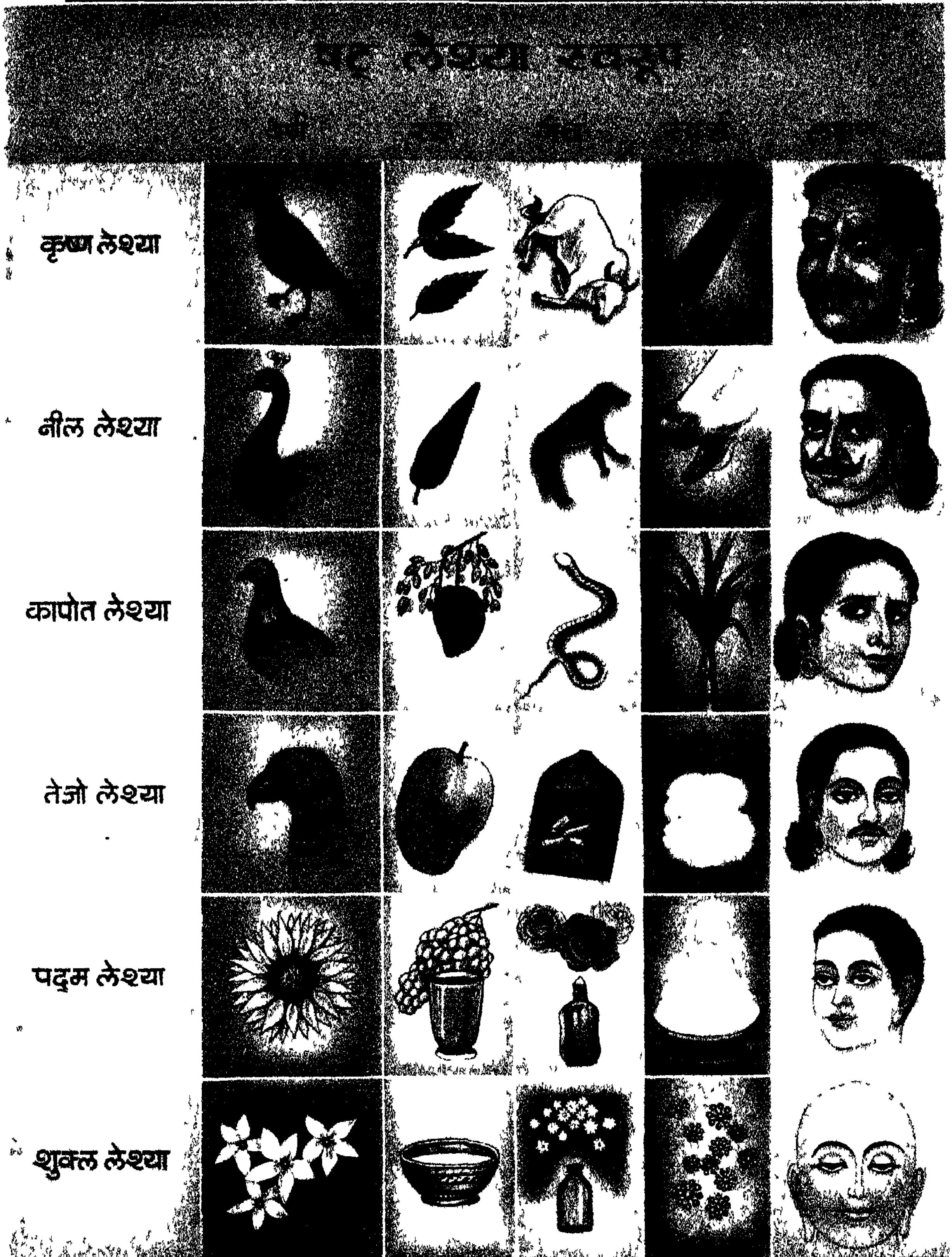
The touch of three inauspicious tinges is infinitely more harsh (screeching) than that of saw, tongue of cow and the leaf of vegetable name śaka-teak tree. (18)

जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।
एत्तो वि अणन्तगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥१९॥

बूर (एक विशेष वनस्पति), नवनीत (मक्खन) शिरीष के पुष्पों का जैसा मृदुल-कोमल स्पर्श होता है उससे भी अनन्तगुणा कोमल स्पर्श तीन प्रशस्त (तेजस्, पद्म और शुक्ल) लेश्याओं का होता है ॥१९॥

The touch of three auspicious tinges is infinitely more soothing–pleasant than that of būra vegetable, cotton, butter and the flowers of śirīṣa. (19)

ILLUSTRATION NO. 59 | SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 28



चित्र क्रमांक ५९ | पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

ILLUSTRATION NO. 58 SEE DESCRIPTION ON ILLUSTRATION INDEX PAGE NO. 28



चित्र क्रमांक ५८ पृष्ठ ३४ पर चित्र परिचय देखें

(६) परिणामद्वार–

तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसीओ वा ।
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो ॥२०॥

तीन (३) प्रकार का, नौ (९) प्रकार का, सत्ताईस (२७) प्रकार का, इक्यासी (८१) प्रकार का, दो सौ तेतालीस (२४३) प्रकार का लेश्याओं का परिणाम होता है ॥२०॥

The pariṇāma or degrees of tinges is of three, nine, twentyseven, eightyone and two hundred fortythree types. (20)

(७) लक्षणद्वार–

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छसुंअविरओ य ।
तिव्वारम्भपरिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो ॥२१॥

जो मानव पाँच प्रकार के आस्रवों में प्रवृत्त है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है (मन-वचन-काय का गोपन नहीं करता), छह काया के जीवों (की हिंसा) से अविरत है, तीव्र आरम्भ (हिंसा आदि) में परिणत–रचा-पचा है, क्षुद्र है, साहसिक (दुःसाहसी–बुरे कामों को करने में निडर) है–॥२१॥

A man, who is engaged in five kinds of inflow of karmas, not latent by three incognitoes (does not cease the activities of mind, speech and body), not disinclined to injure the six species, indulged in intense violence, fearless to do sinful deeds–(21)

निद्धन्धसपरिणामो, निस्संसो अजिइन्दिओ ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ॥२२॥

निःशंक परिणाम (परिणाम–फल के विचार से शून्य) वाला है, नृशंस (क्रूर) है, अजितेन्द्रिय (इन्द्रियों को अपने वश में न रखने वाला)–जो इन योगों (लक्षणों) से युक्त है वह कृष्ण लेश्या में परिणत होता है (वह कृष्ण लेश्या वाला कहलाता है) ॥२२॥

Doubtless (does not consider) about the ill-consequences, cruel, does not subdue his senses–having these symptoms-habits, qualities, such person is called possessing black tinge. (22)

इस्सा-अमरिस-अतवो, अविज्ज-माया अहीरिया य ।
गेद्धी पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य ॥२३॥

जो ईर्ष्या करने वाला है, अमर्ष (हठाग्रही-कदाग्रही-असहिष्णु) है, अतपस्वी (अथवा अनुशासनहीन) है, अविद्यायुक्त (अज्ञानी अथवा मिथ्यात्वी) है, मायावी है, निर्लज्ज है, विषयों में गृद्ध है, प्रद्वेषी है, प्रमादी (असावधान, आलसी) है, शठ अथवा धूर्त है, रस का लोलुपी है, सुख का गवेषक (सिर्फ अपनी ही सुख-सुविधा का अभिलाषी) है–॥२३॥

A man, who is envious, haughty-evil conducted–untolerant, indisciplined, ignorant or having false faith, deceitful, shameless, indulged in sensual pleasures, full of hate, careless and lazy, stupid or fraudulent, lustful of tastes, desirous of only his own comforts and luxuries–(23)

आरम्भाओ अविरओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो ।
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे ॥२४॥

आरम्भ (हिंसा आदि) से अविरत है, क्षुद्र है, दुःसाहसी है–इन योगों (लक्षणों) से युक्त मनुष्य नील लेश्या में परिणत होता है (नील लेश्या के परिणाम वाला होता है) ॥२४॥

Not disinclined to violence, wicked or niggardly, arrogant or rash–the person having these qualities is possessed by blue tinge. (24)

वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥२५॥

जो मनुष्य वक्र है (मन-वचन से वक्र है), वक्रता का आचरण करता है, कुटिल-कपटी है, सरल नहीं है, प्रतिकुंचक (अपने दोषों को छिपाने वाला) है, औपधिक (छल-छद्म का प्रयोग करने वाला) है, मिथ्यादृष्टि है, अनार्य है–॥२५॥

A man, who is crooked (dishonest in mind and words), acts of crookedness, deceitful, not upright, guiser of his own faults, dissembler and deceiver, of wrong belief, in-noble–(25)

उप्फालग-दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे ॥२६॥

उत्प्रासक (अश्लील मजाक करने वाला) है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, चोर है और मत्सर (डाह करने वाला) है–इन योगों (लक्षण) से युक्त जीव कापोत लेश्या में परिणत होता है ॥२६॥

Pantagruelist, speaks ill-words, thief and jealous–the person having these habits is possessed by by grey (kāpota) tinge. (26)

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ।
विणीयविणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं ॥२७॥

जिसकी वृत्ति नम्र है, जो अचपल है, माया (कपट) से रहित है, कौतूहल नहीं करता है, विनय में विनीत है, दान्त (अपनी इन्द्रियों का दमन करने वाला) है, योगवान-उपधानवान (स्वाध्याय से समाधि सम्पन्न और विहित तप करने वाला) है–॥२७॥

A person, who is modest, steadfast, free from deceit and inquisitiveness, well disciplined in humility, subduer of his own senses, opulent with study contemplation and observes prescribed penances (yogavāna-upadhānavana)–(27)

पियधम्मे दढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए ।
एयजोगसमाउत्तो, तेउलेसं तु परिणमे ॥२८॥

प्रियधर्मी है, दृढ़धर्मी है, पापभीरु है, हितैषी (आत्मार्थी) है–इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव तेजो लेश्या में परिणत होता है (परिणमन करता है) ॥२८॥

Who loves and remain firm in religion–religious activities, afraid of sins, strives for the utmost good–such person having these symptoms is possessed by red (tejas) tinge. (28)

पयणुक्कोह-माणे य, माया-लोभे य पयणुए ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥२९॥

जिसके क्रोध, मान, माया, लोभ पतले (मन्द) हो गये हैं, जो प्रशान्तचित्त है, जिसने अपनी आत्मा का दमन कर लिया है, जो योगवान और उपधानवान है (योग और उपधान करने वाला है)–॥२९॥

A man, whose passions–anger, pride, deceit, greed became but little, who is calm-minded, who has subdued his own soul, opulent with study contemplation and observes prescribed penances–(29)

तहा पयणुवाई य, उवसन्ते जिइन्दिए ।
एयजोगसमाउत्ते, पम्हलेसं तु परिणमे ॥३०॥

जो अल्पभाषी (कम बोलने वाला) है, उपशान्त है, जितेन्द्रिय है–इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव पद्म लेश्या वाला होता है ॥३०॥

Who speaks very little, peaceful, controlled his senses–such person possesses yellow (padma) tinge. (30)

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए ।
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिहिं ॥३१॥

जो आर्त-रौद्र ध्यान को वर्जित करके (छोड़कर) धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याता है, (एकाग्रचित्त होता है) जिसका चित्त (हृदय, मन, मस्तिष्क) प्रशांत है, जो अपनी आत्मा का दमन करता है, पाँच समितियों से समित है और तीन गुप्तियों से गुप्त है–॥३१॥

Who, avoiding the painful and cruel thinkings, meditates religious and pure (śukla) meditations, concentrates his mind, whose heart, head, mind is full of peace, who controls his own soul, cirmumspect by five circumspections and latent with three incognitoes–(31)

सरागे वीयरागे वा, उवसन्ते जिइन्दिए ।
एयजोग–समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥३२॥

ऐसा मानव चाहे सरागी हो अथवा वीतरागी हो (लेकिन) जो उपशांत हो, जितेन्द्रिय हो–इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव शुक्ल लेश्या में परिणत होता है ॥३२॥

Such person, may he be with attachment or without attachment, but must be peace-minded and overcomer of senses; he possesses white (śukla) tinge. (32)

(८) स्थानद्वार–

असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया ।
संखाईया लोगा, लेसाण हुन्ति ठाणाइं ॥३३॥

असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के जितने समय होते हैं तथा संख्यातीत (अगणित) लोकों के जितने आकाश प्रदेश होते हैं, लेश्याओं के उतने ही स्थान होते हैं ॥३३॥

There are as many places (varieties) of tinges as there are moments (indivisible shortest particle of time) of innumerable Avasarpiṇīs and Utsarpiṇīs and as many space points of innumerable universes (lokas). (33)

(९) स्थितिद्वार–

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥३४॥

कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) होती है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण जाननी चाहिए ॥३४॥

The shortest duration of black tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and longest duration is thirtythree sāgaropamas plus antarmuhūrta, it should be known. (34)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥३५॥

नील लेश्या की जघन्य (कम से कम) स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) होती है और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर की जाननी चाहिए ॥३५॥

The shortest duration of blue tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and longest duration is ten sāgaropamas plus innumerable part of one palyopama. (35)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥३६॥

कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर की है ॥३६॥

The minimum duration of grey (kāpota) tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and maximum duration is three sāgaras plus innumerable part of one palyopama. (36)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोउदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥३७॥

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति अर्द्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥३७॥

The shortest duration of red tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and longest is of two sāgaras plus innumerable part of one palyopama. (37)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस होन्ति सागरा महुत्तऽहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥३८॥

पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति अर्द्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूत) और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागर की जाननी चाहिए ॥३८॥

The shortest duration of yellow tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and longest is of ten sāgaras. (38)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥३९॥

शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति अर्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर की जाननी चाहिए ॥३९॥

The shortest duration of white tinge is half muhūrta or antarmuhūrta and longest is thirtythree sāgaras plus one muhūrta. (39)

गति की अपेक्षा लेश्याओं की स्थिति—

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई उ वण्णिया होई ।
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिइं तु वोच्छामि ॥४०॥

यह (पूर्वोक्त) लेश्याओं की स्थिति का वर्णन औघिक (सामान्य) रूप से किया गया। अब (यहाँ से आगे) चारों गतियों में लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ॥४०॥

The aforesaid duration of tinges described generally; now I shall express the duration of tinges regarding four mundane existences. (40)

दस वाससहस्साइं, काऊए ठिई जहन्निया होइ ।
तिण्णुदही पलिओवमअसंखभागं च उक्कोसा ॥४१॥

कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर की होती है ॥४१॥

The minimum duration of grey tinge is ten thousand years and maximum duration is three sāgaras plus innumerable part of one palyopama. (41)

तिण्णुदही पलियमसंखभागा जहन्नेण नीलठिई ।
दस उदही पलिओवमअसंखभागं च उक्कोसा ॥४२॥

नील लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर की है ॥४२॥

The shortest duration of blue tinge is three sāgaras plus innumerable part of one palyopama and longest duration is ten sāgaras plus innumerable part of one palyopama. (42)

दस उदही पलियमसंखभागं जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं उक्कोसा, होइ किण्हाए ॥४३॥

कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की होती है ॥४३॥

The longest duration of black tinge is of thirtythree sāgaras and shortest duration is ten sāgaras plus innumerable part of one palyopama. (43)

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, तिरिय-मणुस्साण देवाणं ॥४४॥

यह नैरयिक जीवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन किया गया है। इससे आगे तिर्यंच, मनुष्य और देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ॥४४॥

This description is made of duration of tinges of hellish beings. Now further I shall express the duration of tinges regarding crooked beings (animals, creatures, birds etc.,), human beings and deities–gods. (44)

अन्तोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ ।
तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥४५॥

केवला शुक्ल लेश्या को छोड़कर (वर्जित करके) तिर्यंचों अथवा मनुष्यों की जहाँ-जहाँ, जो-जो हैं, उनकी लेश्याओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त काल की होती है ॥४५॥

Exepting white tinge, the longest and shortest duration is less than 48 minutes (antarmuhūrta) of all men and animals where there are those. (45)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥॥४६॥

शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त काल की और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की समझनी चाहिए ॥४६॥

The shortest duration of white tinge is antarmuhūrta and longest duration is nine years less one crore purvas. (46)

एसा तिरिय-नराणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं ॥४७॥

यह तिर्यंचों और मनुष्यों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन हुआ। इससे आगे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ॥४७॥

This is the description of duration of tinges regarding men and animals. Now further I shall describe the duration of tinges regarding deities–gods. (47)

दस वाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ ।
पलियमसंखिज्जइमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४८॥

(भवनपति और वाणव्यन्तर देवों की) कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है और कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है ॥४८॥

(of Bhavanapati and Vāṇavyantara deities). The shortest duration of black tinge is ten thousand years and longest duration is innumerable part of one palyopama. (48)

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं तु उक्कोसा ॥४९॥

कृष्ण लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग (प्रमाण) है ॥४९॥

Which is the longest duration of black tinge, the shortest duration of blue tinge is more one samaya than that and the longest duration of blue tinge is innumerable part of one palyopama. (49)

जा नीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥५०॥

जो नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है, वही एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति है तथा उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है ॥५०॥

The shortest duration of grey tinge is one samaya more than that of longest duration of blue tinge, and the longest duration of grey tinge is innumerable part of a palyopama. (50)

तेण परं वोच्छामि, तेउलेसा जहा सुरगणाणं ।
भवणवइ---वाणमन्तर--, जोइस---वेमाणियाणं च ॥५१॥

इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों की जिस प्रकार की तेजोलेश्या (की स्थिति) होती है, उसका कथन करूँगा ॥५१॥

Now further I shall tell about the duration of red tinge regarding Bhavanapati, Vāṇavyantara, Jyotiṣi and heavenly gods. (51)

पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुण्हऽहिया ।
पलियमसंखेज्जेणं, होई भागेण तेऊए ॥५२॥

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥५२॥

The shortest duration of red tinge is one palyopama and longest duration is two sâgaras plus innumerable part of one palyopama. (52)

दस वाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।
दुण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥५३॥

(भवनपति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा से) तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥५३॥

(Regarding Bhavanapati and Vyantara deities) The shortest duration of red tinge is ten thousand years and longest duration is two sâgaras plus innumerable part of one palyopama. (53)

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं पम्हाए दस उ, मुहुत्तऽहियाइं च उक्कोसा ॥५४॥

तेजोलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही व उससे एक समय अधिक की पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की है ॥५४॥

Which is the longest duration of red tinge, the same and adding one samaya to it makes the shortest duration of yellow tinge and its longest duration is of ten sāgaropames plus one muhūrta. (54)

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीस-मुहुत्तमब्भहिया ॥५५॥

पद्म लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति कही गई है, वही तथा उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति होती है, और उत्कृष्ट एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की है ॥५५॥

Which is the longest duration of yellow tinge, the same and adding one samaya to it makes the shortest duration of white tinge and the longest duration of it, is thirtythree sāgaropamas plus one muhūrta. (55)

(१०) गतिद्वार–

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई बहुसो ॥५६॥

कृष्ण, नील, कापोत–ये तीनों ही अधर्म लेश्याएँ हैं। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार दुर्गति में भी उत्पन्न होता है ॥५६॥

Black, blue, grey–all these three are irreligious tinges. On account of these many times soul takes birth in ill-existences. (56)

तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो ॥५७॥

तेजस्, पद्म, शुक्ल–ये तीनों ही धर्म लेश्या हैं। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार सुगति में भी उत्पन्न होता है ॥५७॥

Red, yellow and white–all these three are religious tinges. On account of these, the soul many times takes birth in good existences. (57)

(११) आयुद्वार–

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥५८॥

प्रथम समय में परिणत हुई सभी लेश्याओं से किसी भी जीव की परभव (दूसरे जन्म) में उत्पत्ति नहीं होती ॥५८॥

In the first moment of all tinges, (when, these or any one of them enjoined to the soul) the soul cannot be born in next existence. (58)

लेसाहिं सव्वाहिं, चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥५९॥

चरम (अन्तिम) समय में परिणत हुई सभी लेश्याओं से भी किसी भी जीव की परभव (अगले जन्म) में उत्पत्ति नहीं होती ॥५९॥

No soul can take birth in next existence in the ending moment of all the tinges. (59)

अन्तमुहुत्तम्मि गए, अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥६०॥

लेश्याओं के परिणत होने से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक (अगले जन्म) में जाते हैं ॥६०॥

As the tinges enjoined the soul, the half antarmuhūrta passed and half is remaining then the souls go to take birth in next life. (60)

तम्हा एयाण लेसाणं, अणुभागे वियाणिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि ॥६१॥

—त्ति बेमि ।

इसलिए (विवेकी व्यक्ति) इन लेश्याओं के अनुभाग (विपाक-रस-विशेष) को जानकर इनमें से अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं को वर्जित-परित्याग करके प्रशस्त (तेजो, पद्म, शुक्ल) लेश्याओं में अधिष्ठित-स्थिर हो जाए ॥६१॥ —ऐसा मैं कहता हूँ ।

Therefore a wise man knowing the fruitions and consequences of these tinges, abandon the inauspicious (black, blue and grey) and be firm in auspicious (red, yellow and white) tinges. (61) **—Such I speak.**

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—कर्मलेश्या का अर्थ है—कर्मबन्ध के हेतु रागादि भाव। लेश्यायें भाव और द्रव्य के भेद से दो प्रकार की हैं। कुछ आचार्य कषायानुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इस दृष्टि से यह छद्मस्थ व्यक्ति को ही हो सकती हैं। किन्तु शुक्ल लेश्या १३वें गुणस्थानवर्ती केवली को भी है, अयोगी केवली को नहीं। अतः योग की प्रवृत्ति ही लेश्या है। कषाय तो केवल उसमें तीव्रता आदि का संनिवेश करती है। आवश्यक चूर्णि में जिनदास महत्तर ने कहा—

"लेश्याभिरात्मनि कर्माणि संश्लिष्यन्ते । योगपरिणामो लेश्या । जम्हा अयोगिकेवली अलेस्सो।"

गाथा ११— त्रिकटुक से अभिप्राय सूंठ, मिरच और पिप्पल के एक संयुक्त योग से है।

गाथा २०—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के भेद से सर्वप्रथम लेश्या के तीन प्रकार हैं। जघन्य आदि तीनों के फिर जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट के भेद से तीन-तीन प्रकार होने से नौ भेद होते हैं। फिर इसी प्रकार क्रम से त्रिक की गुणन प्रक्रिया से २७, ८१ और २४३ भेद होते हैं। यह एक संख्या की वृद्धि का स्थूल प्रकार है। वैसे तारतम्य की दृष्टि से संख्या का नियम नहीं है। स्वयं उक्त अध्ययन (गा. ३३) में प्रकर्षापकर्ष की दृष्टि से लोकाकाश प्रदेशों के परिमाण के अनुसार असंख्य स्थान बताये हैं। अशुभ लेश्याओं के संक्लेशरूप परिणाम हैं, और शुभ के विशुद्ध परिणाम है।

गाथा ३४–मुहूर्तार्ध शब्द से एक समय से ऊपर और पूर्ण मुहूर्त से नीचे के सभी छोटे-बड़े अंश विवक्षित हैं। इस दृष्टि से मुहूर्तार्ध का अर्थ अन्तर्मुहूर्त है।

गाथा ३८–यहाँ पद्म लेश्या की एक मुहूर्त अधिक दस सागर की स्थिति जो बताई है, उसमें मुहूर्त से पूर्व एवं उत्तर भव से सम्बन्धित दो अन्तर्मुहूर्त विवक्षित हैं।

नील लेश्या आदि के स्थिति वर्णन में जो पल्योपम का असंख्येय भाग बताया है उसमें भी पूर्वोत्तर भव सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तद्वय प्रक्षिप्त हैं। फिर भी सामान्यतः असंख्येय भाग कहने से कोई हानि नहीं है। क्योंकि असंख्येय के भी असंख्येय भेद होते हैं।

गाथा ४५-४६–तिर्यंच और मनुष्यों में जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही रूप से लेश्याओं की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यह भाव लेश्या की दृष्टि से कथन है। छद्मस्थ व्यक्ति के भाव अन्तर्मुहूर्त से अधिक एक स्थिति में नहीं रहते।

परन्तु यहाँ केवला अर्थात् शुद्ध शुक्ल लेश्या को छोड़ दिया है। क्योंकि सयोगी केवली की उत्कृष्ट केवला पर्याय नौ वर्ष कम पूर्वकोटि है और सयोगकेवली को एक जैसे अवस्थित भाव होने से उनकी शुक्ल लेश्या की स्थिति भी नववर्षन्यून पूर्वकोटि की है।

गाथा ५२–मूल पाठ में गाथाओं का व्यत्यय जान पड़ता है। ५२ के स्थान पर ५३वीं और ५३ के स्थान ५२वीं गाथा होनी चाहिये। क्योंकि ५१वीं गाथा में आगमकार ने भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक सभी देवों की तेजोलेश्या के कथन की प्रतिज्ञा की है। किन्तु ५२वीं गाथा में केवल वैमानिक देवों की ही तेजोलेश्या निरूपित की है। जब कि ५३वीं गाथा में प्रतिपादित लेश्या का कथन चारों ही प्रकार के देवों की अपेक्षा से है। टीकाकारों ने भी इस विसंगति का उल्लेख किया है।

गाथा ५८-५९–प्रतिपत्तिकाल की अपेक्षा से छहों ही लेश्याओं के प्रथम समय में जीव का परभव में जन्म नहीं होता है और न अन्तिम समय में ही। लेश्या की प्राप्ति के बाद अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर और अन्तर्मुहूर्त ही शेष रहने पर जीव परलोक में जन्म लेते हैं।

भाव यह है कि मृत्युकाल में आगामी भव की और उत्पत्ति काल में अतीत भव की लेश्या का अन्तर्मुहूर्त काल तक होना आवश्यक है। देवलोक और नरक में उत्पन्न होने वाले मनुष्य और तिर्यंचों को मृत्युकाल में अन्तर्मुहूर्त काल तक अग्रिम भव की लेश्या का सद्भाव होता है। मनुष्य और तिर्यंच गति में उत्पन्न होने वाले देव व नारकों को भी मरणानन्तर अपने पहले भव की लेश्या अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है। अतएव आगम में देव और नारकों की लेश्या का पहले और पिछले भव के लेश्या सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्त के साथ स्थितिकाल बताया गया है। प्रज्ञापना सूत्र में कहा है–"जल्लेसाइं दव्वाइं आयइत्ता कालं करेई, तल्लेसेसु उववज्जइ।"

(सन्दर्भ : उत्तराध्ययन सूत्र–साध्वी श्री चन्दनाजी)

Salient Elucidations

Gāthā 1–The purport of word karma-leśyā is the thoughts of attachment etc., which are the causes of karma-bondage. The tinges (leśyās) are of two types–thought tinges and bodily or substance tinges. Some preceptors opine that the activities tinted by passions are tinges. By this point of view the tinges can exist in the man who is bound by vitious karmas. But white tinge exists in kevalin too, who is at the thirteenth stage of soul purification and omniscient. Only who has ceased the activities of yogas, he is devoid of all types of tinges. Therefore only the activities of yogas are tinges. The passions enjoin them intensity etc.

Jinadāsa Mahattara said in Āvaśyaka Cūrṇī–

Leśyābhirātmani karmāṇi saṁśliṣyante. Yoga pariṇāma leśyā. Jamhā akevali alesso.

Gāthā 11–Trikaṭuka is the aggregate of black round and long pepper and dried ginger.

Gāthā 20–First of all there are three types of tinges by the gradation low, middle and high. Multiplied these three by three gradations of low, middle, high becomes nine types of tinges. Multiplying again, again and over again figures we get 27, 81, 243. These are the types of tinges. This is the gross kind of increasement of numbers. But there is no law of numericals by the view of gradation.

In this very chapter (couplet 33) by the view point of gradation and degradation, there are described the innumerable places equal to the quantity of space-points of innumberable lokas (lokākāśas)

The fruitions–consequences–thoughts of demeritorious tinges are anguish and those meritorious tinges are purified.

Gāthā 34–The muhūrtārdha denotes all the parts of a muhūrta, which are more than one samaya and less than one full muhūrta. So the meaning of word muhūrtārdha is antarmuhūrta.

Gāthā 38–In this couplet the duration of yellow (padma) tinge is told ten sāgara plus one muhūrta. Here muhūrta is two fold one of pre-birth and one of next birth. So here one muhūrta denotes two muhūrtas.

In the duration description of blue etc., tinges the innumerable part of palyopama is expressed. In this also two antarmuhūrtas are amalgmated regarding previous birth and next birth. Still generally, there is no harm saying innumerable part; because there are innumerable types of innumerable part.

Gāthā 45-46–The shortest and longest both the durations of tinges of men and beasts is told of antarmuhūrta. This expression is about thought tinges; because the thoughts of vitious karma bound (chadmastha) person can not remain in one state more than the period of antarmuhūrta..

But here the kevalā–pure white tinge is excepted. Because the time period of kevalin with the activities of yogas, is nine years less pūrva koṭi and the thoughts of kevalin remains always in the same state so the duration of their white tinge is also of pūrvakoṭi less nine years.

Gāthā 52–There seems to be some discrepancy in these two couplets. Their order should be reversed. 52nd couplet should be placed on 53rd and 53rd should be 52nd. Because the preceptor has solemanly declared in 51st couplet to describe red tinge of all the divisions of gods viz., Bhavanapati, Vāṇavyantara, Jyotiṣka and Vaimānika; but 52nd couplet declared the red tinge of only Vaimānika gods. While in 53rd couplet the description of declared tinge is related to all the four kinds of gods. Commentators have also mentioned this discrepancy.

Gāthā 58-59–According to time acquirement in all the six tinges the soul takes birth in next life neither in first samaya nor in last samaya when the tinged it.

The purport is that at the time of death, it is necessary that the same tinge should remain in both lives-next life and this life. The souls take birth in heaven and hell, in such men and animals the tinges of next birth exist upto antarmuhūrta. So is the case about gods and hellish beings. Therefore in holy original texts duration period of two antarmuhūrtas of gods and hellish beings is described with reference to present and next life

Prajñāpanā sūtra clearly mentions–Jallesāiṁ davvāiṁ āyaïttā kālaṁ kareī, tallesesu uvavajjaī.

The soul dies in which tinge takes birth in the same tinge in next existence.

(–Courtesy–Uttarādhyayana sūtra : Sādhvī Candanāji)

पैंतीसवाँ अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति

पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम अनगार-मार्ग-गति है। इसका वर्ण्य विषय है कि अनगार अपने मार्ग–मोक्ष मार्ग में तीव्रता पूर्वक गति किस प्रकार करे?

यद्यपि इसी उत्तराध्ययन सूत्र के २८वें अध्ययन मोक्ष-मार्ग-गति में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप–यह चतुर्विध मार्ग बताये गये हैं।

लेकिन रत्नत्रय की आराधना और चतुर्विध मार्ग की साधना गृहस्थ और अनगार–दोनों के लिए सामान्य (Common) है।

गृहस्थ भी सम्यक्त्वी होता है, आगमों को पढ़कर अथवा श्रमणों के प्रवचन सुनकर सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है, अहिंसा आदि श्रावक व्रतों के रूप में आंशिक रूप से ही सही चारित्र का भी पालन करता है और अनशन, ऊनोदरी, स्वाध्याय आदि तप भी कर लेता है।

किन्तु गृहस्थ अगार और श्रमण–अनगार की साधना में मन्दता और तीव्रता, अपूर्णता और समग्रता का मूल-भूत अन्तर है। यद्यपि मोक्ष-प्राप्ति की दिशा में दोनों ही अग्रसर होते हैं लेकिन अगार की गति मन्द होती है; जबकि अनगार की गति तीव्र होती है।

अगार की गति मंद होने के कारण हैं–संग, संयोग, पारिवारिक जनों के प्रति मोह, सामाजिक-पारिवारिक कर्त्तव्यों के पालन का उत्तरदायित्व, जीवन यापन हेतु धनोपार्जन संचय-संग्रह–परिग्रह, भोजन के पचन-पाचन आदि अन्य कारणों से जीव हिंसा से पूर्णतः विरक्त होने की अशक्यता।

जबकि अनगार इन सबसे मुक्त होता है, इसी कारण मोक्ष-प्राप्ति की ओर उसकी गति तीव्र होती है।

यद्यपि सामान्यतः गृहत्यागी को अनगार माना जाता है किन्तु सिर्फ गृहत्याग ही अनगार बनने के लिए काफी नहीं है; उसे कुछ और भी करना अनिवार्य होता है।

सर्वप्रथम उसे घर, कुटुम्ब आदि के त्याग के साथ ही उनके प्रति मोह,आसक्ति आदि का भी त्याग कर देना चाहिए। सर्वसंगत्यागी बन जाना उसके लिए आवश्यक है।

तदुपरान्त पापास्रवों का त्याग, शयन-आसन-सम्बन्धी विवेक, समारम्भ वर्जन, स्वाद-त्याग, मृत्यु पर्यन्त श्रमण-धर्म पालन आदि भी अनिवार्य है।

उसकी इन्हीं प्रवृत्तियों से उसकी गति में तीव्रता एवं समग्र-त्याग वृत्ति आती है और वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में अनगार-धर्म सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवेचन किया गया है और इन सूत्रों के यथार्थतः पालन की फलश्रुति मोक्ष-प्राप्ति बताई गई है।

इस अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 35
CODE FOR A HOUSELESS MENDICANT

Foreview

Caption of this chapter is 'Code for a Houseless Mendicant' and the subject matter is how a mendicant endeavour to rapidly move on the path of salvation.

Though in the twentyeighth chapter of this testament the path of salvation is demonstrated–right knowledge-faith-conduct-penance–these four-fold ways.

But the propiliation of three jewels (right knowledge-faith-conduct) or fourfold path (right knowledge-faith-conduct-penance) is common both to householders and houseless mendicants.

Householder also possesses right faith, obtains right knowledge by reading holy texts or hearing the preceptions of sages, he also practises right conduct by observing householder's vows non-violence etc., may they be partial and also observes penances, like-fast, abstinence and study.

But there is a basic difference of slowliness-rapidness, incompleteness–completeness about the propiliation of a householder and houseless mendicant. Though both move on the *path of salvation but the speed of householder remains low while houseless mendicant moves* rapidly on the path.

There are causes of slow speed of a householder–company, connection, affection to family members, responsiblities to perform the duties pertaining family and society, earning money for leading life and its accumulation,undertaking and possession, cooking food and by such other reasons, it is impossible that he may abandon the violence completely.

While homeless mendicant is free from all these; thereby his speed for attaining salvation is rapid.

Generally quit-home is regarded as mendicant but only to leave home is not sufficient to a mendicant, he has to do some more which is compulsory for him.

First of all, he should renounce the affection and attachment to all those, as he leaves the home. For it, he should renounce all companies and connections.

Then abandonment of all sinful inflows, discretion about bed and lodge, renouncement of all activities which may be harmful to others, disinclination to tastes and practice of sagehood till the end of life–these all are also necessary.

All these tendencies practised by him bring rapidness to his speed and whole renouncement and attains salvation in no time-quickly.

Some inportant points, regarding mendicant religious order, are analysed in this chapter and the consequence is told obtaining salvation, if these points are practised well and with full zeal.

This chapter contains 21 couplets.

पणतीसइमं अज्झयणं : अणगारमग्गगई

पंचत्रिंश अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति

सुणेह मेगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं।
जमायरन्तो भिक्खू, दुक्खाणऽन्तकरो भवे ॥१॥

मन (चित्त) को एकाग्र करके, बुद्धों (तीर्थंकरों) द्वारा उपदिष्ट मार्ग को मुझसे सुनो; जिसका आचरण करने वाला भिक्षु दुःखों का अन्त करने वाला होता है ॥१॥

Hear from me the path precepted by wise (tīrthaṁkaras) with concentrated mind, practising which path, the mendicant puts an end to his all miseries. (1)

(१) प्रथम सूत्र : सर्वसंग परित्याग

गिहवासं परिच्चज्ज, पवज्जंअस्सिओ मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जन्ति माणवा ॥२॥

गृहवास का परित्याग करके प्रव्रज्या के आश्रित हुआ (मुनि धर्म स्वीकार किया हुआ) मुनि इन संगों को भली प्रकार जान ले, जिनमें मानव आसक्त होते हैं ॥२॥

Giving up the life living in a home and becoming consecrated, a mendicant know very well the oonnections, in which the men indulge. (2)

(२) द्वितीय सूत्र : पापास्रवों का सम्पूर्ण त्याग

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबम्भसेवणं।
इच्छाकामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए ॥३॥

इसी तरह संयमी साधक हिंसा, अलीक-असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य का सेवन–मैथुन, इच्छाकाम (अप्राप्त वस्तु की इच्छा) और लोभ (प्राप्त वस्तु के प्रति ममता–गृद्धि) का परित्याग करे ॥३॥

A restrained sage abandon the violence, untruth, stealing, carnal intercourse, desire of unobtained thing and greed–indulgement to obtained thing. (3)

(३) तृतीय सूत्र : स्थान-विवेक

मणोहरं चित्तहरं, मल्लधूवेण वासियं।
सकवाडं पण्डुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥४॥

मनोहर (चित्त को आकर्षित करने वाला), चित्रघर (स्त्रियों के चित्रों से युक्त घर-मकान), पुष्पमालाओं और धूप आदि सुगन्धित वस्तुओं से वासित, कपाट (किवाड़ों) से युक्त, सफेद चंदोवा (पर्दे आदि से सुसज्जित) गृह की मन से भी प्रार्थना–आकांक्षा न करे ॥४॥

A sage, even in his mind, should not long for the lodge heart-attracting and adorned with the pictures of women, fragrant with garlands and frankincense, secured by door-leaf and decorated with a white ceiling cloth and curtains. (4)

इन्दियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।
दुक्कराइं निवारेउं, कामरागविवड्ढणे ॥५॥

(क्योंकि) काम-राग की वृद्धि करने वाले उपाश्रय-निवास स्थान में भिक्षु के लिए इन्द्रियों का निवारण करना-रोकना दुष्कर है ॥५॥

Because it is very difficult for a mendicant to control his senses in such a passion-increasing dwelling place. (5)

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थऽभिरोयए ॥६॥

(अत:) भिक्षु एकाकी होकर श्मशान में, सूने (एकान्त) घर में, वृक्ष के मूल में, परकृत (दूसरों द्वारा निर्मित मकान) मकान में, खाली स्थानों में निवास करने की अभिरुचि (इच्छा) करे ॥६॥

Therefore mendicant should long for, becoming alone, dwell in funeral place, deserted house, root of tree and the houses prepared for others, empty place. (6)

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ॥७॥

परम संयमी भिक्षु प्रासुक, बाधारहित, स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में निवास करने का संकल्प करे ॥७॥

Most restrained mendicant should resolve to live at the place, which is pure, obstacleless and unfrequented by women. (7)

(४) चतुर्थ सूत्र : गृह समारम्भ-निषेध

न सयं गिहाइं कुज्जा, णेव अन्नेहिं कारए ।
गिहकम्मसमारम्भे, भूयाणं दीसई वहो ॥८॥

(संयमी साधक) न स्वयं गृह आदि का निर्माण करे और न किसी दूसरे से करवाये, क्योंकि गृह कर्म (निर्माण) के समारम्भ में भूतों (प्राणियों) की हिंसा देखी जाती है ॥८॥

Restrained practiser should not build a house by himself, nor cause others to erect one, because in building a house the injurement of many living beings is seen. (8)

तसाणं थावराणं च, सुहुमाण बायराण य ।
तम्हा गिहसमारम्भं, संजओ परिवज्जए ॥९॥

(गृह-निर्माण में) त्रस और स्थावर जीवों का तथा सूक्ष्म और बादर (स्थूल) जीवों का वध होता है इसलिए संयमी साधक गृह निर्माण (समारम्भ) का सर्वथा परित्याग कर दे ॥९॥

In erection of a house many mobile-immobile, subtle-gross living beings are killed. Therefore, restrained practiser should cast off creation of a house. (9)

(५) पंचम सूत्र : आहार पचन-पाचन निषेध

तहेव भत्तपाणेसु, पयण-पयावणेसु य ।
पाण-भूयदयट्ठाए, न पये न पयावए ॥१०॥

इसी प्रकार भक्त और पान (आहार तथा जल) के पकाने और पकवाने के संबंध में भी जानना चाहिए कि इसमें भी जीवों की हिंसा होती है। अत: प्राणी और भूतों की दया के लिए (भिक्षु) न स्वयं (भक्त-पान) पकाये और न किसी दूसरे से पकवाए ॥१०॥

The same should be known about cooking the food and water, that the living beings are killed in this also. Therefore, out of compassion for living beings, mendicant should not cook by himself nor cause others to cook for him. (10)

जल-धन्ननिस्सिया जीवा, पुढवी-कट्ठनिस्सिया ।
हम्मन्ति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू न पायए ॥११॥

जल, धान्य, पृथ्वी और काष्ठ (ईंधन) के आश्रित बहुत से जीव होते हैं उनका हनन (हिंसा) हो जाता है, इस कारण भिक्षु न स्वयं पकाये और न दूसरे से पकवाये ॥११॥

There are innumerable beings in water, grain, earth and fuel, they are killed, so mendicant should not cook nor cause others to cook. (11)

विसप्पे सव्वओधारे, बहुपाणविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥१२॥

अग्नि के समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं है। यह सभी ओर फैल जाता है तथा तीक्ष्ण धार वाला है, बहुत जीवों का विनाशक-प्राणघातक है, इसलिए अग्नि (ज्योति) दीपित–प्रज्वलित न करे ॥१२॥

There is no dangerous weapon like fire. It spreads in all the directions, of sharp edge and destructor of innumerable beings, so one (mendicant) should not light fire. (12)

(६) छठा-सूत्र : क्रय-विक्रय वृत्ति-निषेध, भिक्षावृत्ति का विधान

हिरण्णं जायरूवं च, मणसा वि न पत्थए ।
समलेट्ठुकंचणे भिक्खू, विरए कयविक्कए ॥१३॥

सोने और मिट्टी के ढेले को समान समझने वाला भिक्षु सुवर्ण और रजत (चाँदी) की मन से भी इच्छा न करे और सभी प्रकार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय से विरक्त रहे ॥१३॥

A mendicant who takes gold and clod of clay alike, should not desire gold and silver, even by mind and should remain abstain from buying and selling. (13)

किणन्तो कइओ होइ, विक्किणन्तो य वाणिओ ।
कयविक्कयम्मि वट्टन्तो, भिक्खू न भवइ तारिसो ॥१४॥

वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक (ग्राहक) और बेचने वाला (विक्रय करने वाला) वणिक (व्यापारी) होता है। क्रय-विक्रय में प्रवृत्त भिक्षु तो (भिक्षु के लक्षणों से युक्त) भिक्षु ही नहीं होता ॥१४॥

Seller and buyer of a thing is a merchant. The mendicant indulged in buying and selling is not a mendicant. (14)

भिक्खियव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा ।
कयविक्कओ महादोसो, भिक्खावत्ती सुहावहा ॥१५॥

भिक्षु को भिक्षावृत्ति से भिक्षा करनी चाहिए। क्रय (विक्रय) नहीं करना चाहिए ; क्योंकि क्रय-विक्रय महादोष है और भिक्षावृत्ति सुखावह (सुखदायी) है ॥१५॥

Mendicant should beg alms. He should not purchase or sale anything; because purchasing and selling is a great defect; but to live on alms leads to happiness. (15)

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिन्दियं ।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिण्डवायं चरे मुणी ॥१६॥

मुनि सूत्र (में बताई गई) विधि से अनिन्दित सामुदायिक अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा की एषणा (खोज) करे और लाभ-अलाभ में सन्तुष्ट रहकर भिक्षा के लिए पर्यटन (पिण्डपात) करे ॥१६॥

Mendicant should collect alms taking in small quantity from many houses, in the method as described in scriptures and should wander for seeking alms being contented, whether gets or not. (16)

(७) सातवाँ सूत्र : स्वाद-वृत्ति निषेध

अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादन्ते अमुच्छिए ।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥१७॥

अलोलुपी, रस (स्वाद) में अगृद्ध (आसक्त न होने वाला) जिह्वा (रसना) इन्द्रिय का दमन करने वाला (स्वाद में) मूर्च्छित--ममत्व, लालसा न रखने वाला महामुनि रस (स्वाद) के लिए न खाये, संयम यात्रा के निर्वाह हेतु भोजन करे ॥१७॥

A great mendicant should eat food for sustenance of life and not for pleasant taste. He should not be dainty nor eager for good taste, but should control his tongue and cupidity. (17)

(८) आठवाँ सूत्र : पूजा-प्रतिष्ठा का निषेध

अच्चणं रयणं चेव, वन्दणं पूयणं तहा ।
इड्ढीसक्कार-सम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥१८॥

अर्चना, रचना और वन्दना, पूजा, तथा ऋद्धि, सत्कार, सम्मान आदि की मुनि मन से भी इच्छा न करे ॥१८॥

The mendicant should not desire worship, bow, respect, exalt, good treatment and welcome, even by mind. (18)

(९) नौवाँ सूत्र : जीवन पर्यन्त मुनि धर्म पालन

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥१९॥

जब तक काल का पर्याय है (जीवन है) तब तक मुनि शुक्लध्यान ध्याता रहे। निदान रहित, अकिंचन बनकर तथा काय का व्युत्सर्ग (ममत्व त्याग) करके विचरण करे ॥१९॥

Till he is alive, he should meditate purest meditation and wander without the resolve of worldly pleasures, possessionless and unaddicted to his own body. (19)

फलश्रुति

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए।
जहिऊण माणुसं बोन्दिं, पहू दुक्खे विमुच्चई ॥२०॥

(अनगार मार्ग पर गति करने वाला मुनि) कालधर्म (मृत्यु) उपस्थित होने पर आहार का परित्याग करके मनुष्य-शरीर को छोड़कर तथा प्रभु बनकर दुःखों से विमुक्त हो जाता है ॥२०॥

The mendicant moving on the path of mendicant life-order, at the time of death, abandoning food and quitting this frame (body) becomes free from miseries. (20)

निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो।
संपत्तो केवलं नाणं, सासयं परिणिव्वुए ॥२१॥

–त्ति बेमि।

ममत्वरहित, अहंकारशून्य, वीतराग एवं आस्रवरहित होकर तथा केवलज्ञान से संपन्न होकर (अनगार) शाश्वत परिनिर्वाण (सिद्ध गति) को प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ –ऐसा मैं कहता हूँ।

Becoming without addictment and devoid of pride and inflow of karmas and affection-free and being opulent with supreme knowledge (omniscience) he obtains eternal emancipation. (21) **–Such I speak.**

卐

विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ४-६–भिक्षु को किवाड़ों से युक्त मकान में रहने की मन से भी इच्छा न करनी चाहिये। यह उत्कृष्ट साधना का, अगुप्तता का और अपरिग्रह भाव का सूचक है।

श्मशान में रहने से अनित्य भावना एवं वैराग्य की जागृति रहती है। चिता में जलते शवों को और दग्ध अस्थियों को देखकर किस साधक को विषय भोगों से विरक्ति न होगी ?

वृक्ष के नीचे रहना भी महत्वपूर्ण है। प्रतिकूलताओं को तो सहना होता ही है। बौद्धग्रन्थ विशुद्धि मार्ग में कहा है कि वृक्ष के नीचे रहने से साधक को हर समय पेड़ के पत्तों को परिवर्तित होते और पीले पत्तों को गिरते देखकर जीवन की अनित्यता का ख्याल पैदा होता रहेगा। अल्पेच्छता भी रहेगी।

गाथा २०–देह के छोड़ने का अर्थ देह को नहीं देहभाव को छोड़ना है, देह में नहीं देह की प्रतिबद्धता-आसक्ति में ही बन्धन है। देह की प्रतिबद्धता से मुक्त होते ही साधक के लिये देह मात्र जीवन यात्रा का एक साधन रह जाता है। बन्धन नहीं।

Salient Elucidations

Gāthā 4-6–Mendicant should not even wish in the house with door-leaf. This denotes his excellent propiliation, non-secretness and possessionlessness.

The feeling of transitoriness remains awakened dwelling in funeral place. Looking at the corpses and bones in burning pyres, which practiser would not be disinclined to the worldly pleasures and rejoicings. ?

To live under the tree is also important. Repugnants are to be tolerated.

The Bauddha scripture, Viśuddhi Mārga says that by living under a tree, and looking on the falling and becoming yellow the leaves of tree, every moment, the thought of transitoriness always remains active in the mind of propiliator and his wishes also remain a few.

Gāthā 20–To quit body does not mean to renounce the body; but to renounce the addictment to body. Because only addictment to body creates bondage. Being free from body-effection the body remains only a means of sustaining life-order for a sage.

卐

छत्तीसवाँ अध्ययन : जीवाजीव विभक्ति

पूर्वालोक

प्रस्तुत छत्तीसवाँ अध्ययन, इस सूत्र का अन्तिम अध्ययन है। इसका नाम जीवाजीव विभक्ति है। नाम के अनुरूप इस अध्ययन में जीव और अजीव की विभक्ति–दोनों को पृथक्-पृथक् करके उनको सम्यक्‌रूप से निरूपित किया गया है।

लोक में जीव और अजीव–ये दो ही मूल तत्त्व हैं। शेष तत्व इन्हीं के संयोग-वियोग का परिणाम हैं।

जीव और अजीव (रूपी अजीव–पुद्‌गल) का अनादि संयोग सम्बन्ध है; लेकिन तप–संयम आदि की साधना के द्वारा इस सम्बन्ध को सदा के लिए विच्छिन्न किया जा सकता है तब जीव शुद्ध रूप–अपना निजरूप प्राप्त कर लेता है और पुद्‌गल से सम्पूर्णतया विमुक्त होकर सिद्ध बन जाता है।

जब तक जीव के साथ अजीव (कर्म पुद्‌गलों) का सम्बन्ध रहता है तभी तक शरीर, इन्द्रियों, मन आदि की रचना होती है। जीव में ममत्व मूर्च्छा का अस्तित्व रहता है, पर-द्रव्यों, भौतिक पदार्थों के प्रति उसका आकर्षण रहता है, यही जीव की वैभाविक प्रवृत्ति है, जो राग-द्वेष, संकल्प-विकल्पों के माध्यम से प्रकट होती है और यही जीव का संसार है जिसमें वह अनादि काल से परिभ्रमण करता आ रहा है।

जीव का अजीव से पृथक्करण मोक्ष-प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इसी पृथक्करण को भेद-विज्ञान कहा जाता है? भेदविज्ञान होते ही जीव स्वयं को पुद्‌गल से, कर्मों और नोकर्मों से अलग समझने लगता है। भेद-विज्ञान का पूर्ण विश्वास होते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है, ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है और जीव अपनी आत्मा और आत्मिक गुणों में रमण करने लगता है, यही सम्यक् चारित्र है। संयम–चारित्र की पूर्ण निर्मलता और समग्रता ही जीव की मुक्ति है।

अजीव का जीव से पृथक्करण इष्ट होने से ही प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम अजीव का निरूपण किया गया है।

जीव की शुद्ध दशा की प्रतीति कराने के लिए पहले सिद्धों का विस्तृत वर्णन करने के बाद संसारी जीवों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

अन्त में संयम पालन की प्रेरणा दी गई है।

आराधक बनने के लिए संल्लेखना, संथारा और समाधिमरण का पतिपादन किया गया है।

कन्दर्पी आदि पांच भावनाओं, मिथ्यात्व, निदान, हिंसा, कृष्ण आदि अधर्म लेश्याओं से बचकर सम्यक्त्व, शुक्लध्यान, जिन वचनों में अनुराग आदि तथा आत्मशुद्धि करके परीत्त संसारी और मोक्ष प्राप्ति की सुन्दर प्रेरणा दी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन इस सूत्र में सबसे बड़ा है, इसमें २६८ गाथाएँ हैं।

CHAPTER 36
SOUL AND NON-SOUL

Foreview

This thirtysixth chapter is the last chapter of this scripture. It is entitled as 'Soul and Non-Soul'. As its name shows, in this chapter, dividing the soul and non-soul and separating them from each other, they are ascertained in well order.

There are only two main elements in this world–universe (loka). These are soul and non-soul. Remaining all the elements are the consequences of union and disunion of these two.

There is beginningless union connection of soul and non-soul–the matter. But it can be disunited for ever by practising restrain and penances. The soul attains its own pure nature and becomes emancipated being exhaustively free from matter.

Till the matter is connected with soul upto that period body, senses, mind etc., are constructed. Feeling of myness and indulgence and addictment to other substances and empirical things remains in the soul, it is its unnatural tendency, which elaborates through the mediums of attachment and detachment and this is the world of soul, in which it (soul) is transmigrating from beginningless times.

Separation of soul from non-soul is ultimately necessary for obtaining salvation. This separation is called 'science of differentiation'. As the soul becomes opulent with the science of differentiation or separation, he begins to consider himself different from matter, karma and nokarma (auxiliary karmas).

With the strong trust in science of separation right-faith achieved, knowledge also turns to right knowledge and the soul indulges in the realisation of his own soul and soul virtues, and this is the right conduct. The exhaustive purity and completeness of restrain or conduct is the salvation of soul

Separation of non-soul from soul, being the main purport, in this chapter the concept of non-soul is first of all ascertained.

For making belief of the pure condition of soul, emancipateds are widely described and then the empirical souls are demonstrated fully and widely.

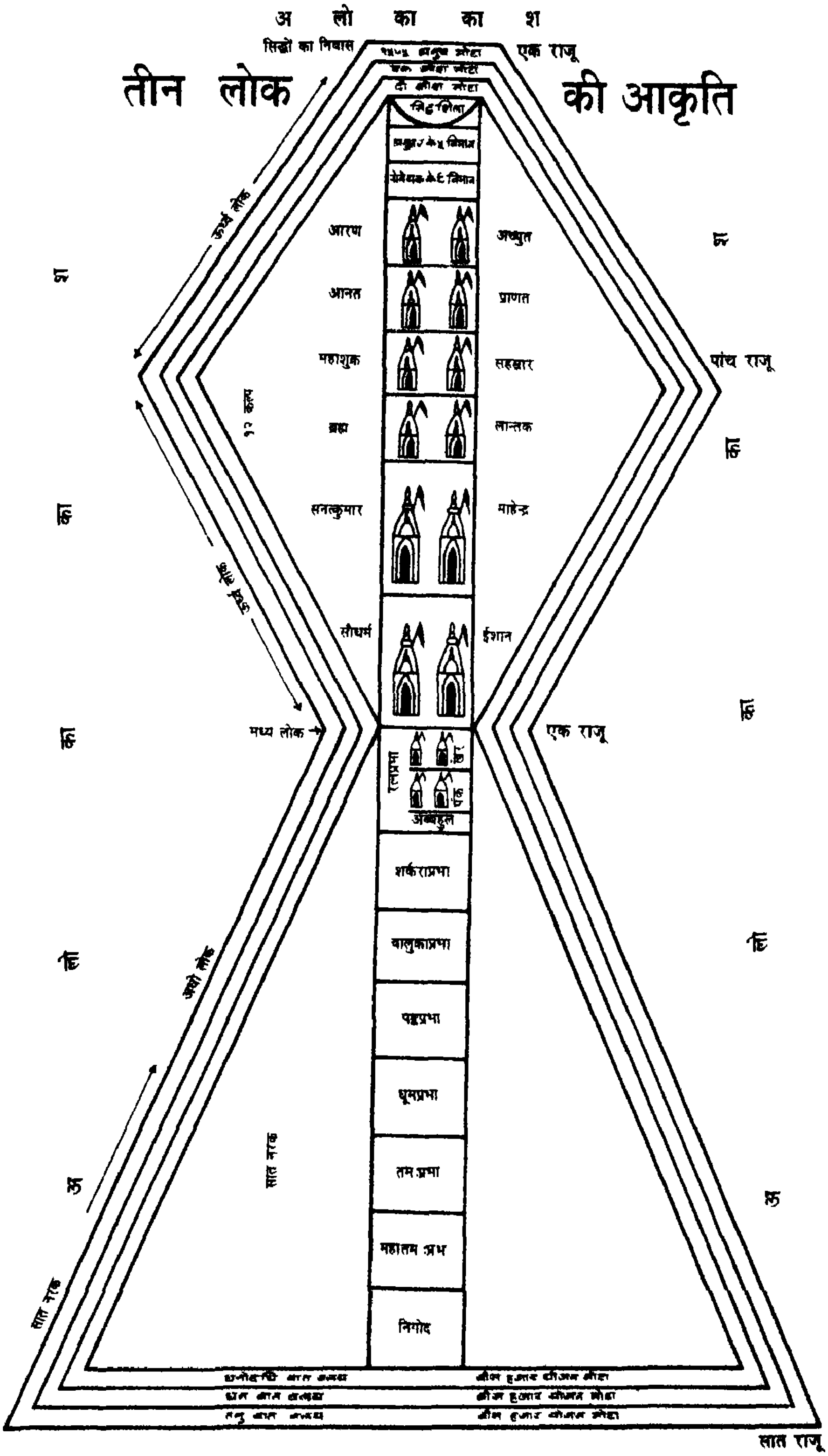
In the end inspiration is made to practise restrain.

For becoming propiliator saṁlekhanā, saṅthārā and samādhi maraṇa are demonstrated.

Sexual (Kāndarpī) etc., five ill-feelings, wrong faith, volition, black etc., irreligious tinges–becoming far away from all these and such tendencies; right faith, pure meditation, inclination to the precept of Jinas etc., and purifying the soul, to diminish the period of remaining in this world and attainment of liberation–the inspiration for these given in very effective and eloquent words.

This chapter is very large in all this scripture. It contains 268 couplets.

तीन लोक की आकृति


अ लो का का श
सिद्धों का निवास
एक राजू
सिद्धशिला
आरण
अच्युत
आनत
प्राणत
महाशुक्र
सहस्रार
पांच राजू
लान्तक
सनत्कुमार
माहेन्द्र
सौधर्म
ईशान
मध्य लोक
एक राजू
अब्बहुल
शर्कराप्रभा
वालुकाप्रभा
पङ्कप्रभा
धूमप्रभा
तम:प्रभा
महातम प्रभ
निगोद
सात नरक
सात राजू

छत्तीसइमं अज्झयणं : जीवाजीवविभत्ती
षट्त्रिंश अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति

जीवाजीवविभत्तिं, सुणेह मे एगमणा इओ ।
जं जाणिऊण समणे, सम्मं जयइ संजमे ॥१॥

जीव और अजीव के विभाग (विभक्ति) को मुझसे एकाग्रचित्त होकर सुनो; जिसे जानकर श्रमण संयम में सम्यक् प्रकार से यतनाशील बनता है ॥१॥

Hear from me the division of soul and non-soul with concentrated mind, knowing that the sage exert himself in restrain well. (1)

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए ।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए ॥२॥

जीव और अजीव जहाँ हैं, वह लोक कहा गया है। और अजीव का एक देश (विभाग या अंश) जो (मात्र) आकाश है, वह अलोक (अलोकाकाश) है ॥२॥

Where exists soul and non-soul. That is called world (loka) and the one part of non-soul, that is space; where only space exists that is aloka (alokākāśa). (2)

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।
परूवणा तेसिं भवे, जीवाणमजीवाण य ॥३॥

उन जीवों और अजीवों की प्ररूपणा–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से की जाती है ॥३॥

Soul and non-soul are described with reference to (1) substance (2) place (3) time and (4) developments or attitudes. (3)

अजीव प्ररूपणा

रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा भवे ।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो वि चउव्विहा ॥४॥

अजीव दो प्रकार का होता है–(१) रूपी और (२) अरूपी। अरूपी (अजीव) दस प्रकार का है और रूपी (अजीव) के चार भेद हैं ॥४॥

Non-souls are of two kinds–(1) with form (rūpī) and (2) without form (arūpī). With form non-souls are of ten kinds and with form non-souls are of four types. (4)

अरूपी-अजीव प्ररूपणा

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए ।
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ॥५॥

धर्मास्तिकाय तथा उस (धर्मास्तिकाय) के देश और उस (धर्मास्तिकाय) के प्रदेश कहे गये हैं तथा इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, उस (अधर्मास्तिकाय) का देश और उस (धर्मास्तिकाय) का प्रदेश भी बताया गया है ॥५॥

(1) Dharmāstikāya, (2) its divisions (3) its indivisible parts are told and in the same way (4) Adharmāstikāya (5) its divisions and (6) its indivisible parts are also described. (5)

आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे ॥६॥

आकाशास्तिकाय, उस (आकाशास्तिकाय) का देश और उस (आकाशास्तिकाय) का प्रदेश बताया गया है और अद्धासमय (काल)। इस तरह अरूपी अजीव दस प्रकार का है ॥६॥

Likewise (7) Ākāśāstikāya, (8) its divisions and (9) its indivisible parts are told; but the (10) time is one, it has no divisions and sub-divisions. Thus formless non-soul substances are of ten types. (6)

धम्माधम्मे य दोऽवेए, लोगमित्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥७॥

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय–ये दोनों ही लोकप्रमाण-सम्पूर्ण लोक में व्याप्त बताये गये हैं। आकाशास्तिकाय लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है तथा समय (काल) समय-क्षेत्रिक–ढाई द्वीप प्रमाण मानव-क्षेत्र में है ॥७॥

Both the Dharmāstikāya and adharmāstikāya are co-extensive to the world (loka). But Ākāśāstikāya is spread in world and beyond (Loka and aloka) and time is spread upto human sphere, the place of time, two and half great islands. (7)

धम्माधम्मागासा, तिन्नि वि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया ॥८॥

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय–ये तीनों ही द्रव्य अनादि, अपर्यवसित (अनन्त) तथा सर्व काल स्थायी (नित्य) हैं ॥८॥

Dharmāstikāya, Adharmāstikāya and Space (Ākāśa) all the three substances are beginningless, endless and eternal. (8)

समए वि सन्तइं पप्प, एवमेवं वियाहिए।
आएसं पप्प साईए, सपज्जवसिए वि य ॥९॥

समय (काल) भी संतति-प्रवाह की अपेक्षा से इसी प्रकार (अनादि, अनन्त, स्थायी-नित्य) कहा गया है किन्तु आदेश (प्रतिनियत) की अपेक्षा से वह आदि (आदि सहित) और अन्तसहित (सपज्जिए) भी होता है ॥९॥

Time is also called beginningless, endless and eternal with regard to its continuous flow but with regard to particularity it has a beginning and an end too. (9)

रूपी अजीव प्ररूपणा

खन्धा य खन्धदेसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा ॥१०॥

(१) स्कन्ध, (२) स्कन्ध के देश (३) उस (स्कन्ध) के प्रदेश और (४) परमाणु–इस प्रकार रूपी अजीव द्रव्य के चार भेद हैं ॥१०॥

(1) Molecule (Compound) (2) its divisions (3) its sub-divisions and (4) atoms (indivisible part)–thus with form substance is of four kinds. (10)

एगत्तेण पुहत्तेण, खन्धा य परमाणुणो।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ ॥
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥११॥

परमाणुओं के एकत्व (सम्मिलन) से स्कन्ध का निर्माण हो जाता है और स्कन्ध के पृथकृत्व (विभाजित होने–बिखर जाने) से परमाणु बन जाते हैं। (यह स्थिति द्रव्य की अपेक्षा से बताई गई है)।

क्षेत्र की अपेक्षा से वे स्कन्ध और परमाणु लोक के एक देश में तथा संपूर्ण लोक में भाज्य हैं। अतः उनके असंख्य विकल्प (भेद) हैं।

यहाँ से आगे मैं उन स्कन्ध और परमाणुओं के काल विभाग की अपेक्षा से चार भेद कहूँगा ॥११॥

Molecule comes into existence by the assimilation of atoms and when molecule divided or scattered the atom takes place. (This position is described with respect to substance).

With regard to place those compounds or molecules are spread in one part of world and the whole. So there are innumerable types of these.

Now further I shall describe the four divisions of those molecules and atoms with regard to time. (11)

संतइं पप्प तेऽणाइं, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१२॥

प्रवाह (संतति) की अपेक्षा से वे स्कन्ध-परमाणु अनादि और अनन्त हैं। स्थिति (नियत स्थान पर अवस्थान) की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥१२॥

With regard to continuity these molecules and atoms are beginningless and endless. But with regard to stability at a particular point of space these have beginning and an end too. (12)

असंखकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्निया।
अजीवाण य रूवीणं, ठिई एसा वियाहिया ॥१३॥

रूपी अजीव द्रव्यों की यह स्थिति जघन्य (कम से कम) एक समय की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) असंख्यात काल की कही गई है ॥१३॥

This stability of with form substances is minimum of one samaya and maximum of numberless time. (13)

अणन्तकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्नयं।
अजीवाण य रूवीणं, अन्तरेयं वियाहियं ॥१४॥

रूपी अजीव द्रव्यों का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है। (अन्तर का अभिप्राय है–अपने प्रतिनियत पूर्वावगाहित स्थान से चलकर पुनः उसी स्थान पर पहुँचने के मध्य-अन्तराल का समय।) ॥१४॥

Non-soul substances possessing form have the interval of one samaya and maximum of innumerable time. (Here the word interval means gap. A molecule or a atom moves from a particular space-point and it comes back to the same space-point–the time in between it takes, is interval or *antara*.) (14)

वण्णओ गन्धओ चेव, रसओ फासओ तहा।
संठाणओ य विन्नेओ, परिणामो तेसि पंचहा ॥१५॥

स्कन्ध आदि का परिणमन–(१) वर्ण की अपेक्षा से (२) गन्ध की अपेक्षा से (३) रस की अपेक्षा से (४) स्पर्श की अपेक्षा से और (५) संस्थान की अपेक्षा से–पाँच प्रकार का जानना चाहिए ॥१५॥

The changes of molecules should be known by (1) colour (2) smell, (3) taste, (4) touch and (5) form (15)

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
किण्हा नीला य लोहिया, हालिद्दा सुक्किला तहा ॥१६॥

वर्ण से जो (स्कन्ध आदि रूपी अजीव-पुद्गल) परिणत होते हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं–(१) कृष्ण (२) नील (३) लोहित (लाल) (४) हारिद्र (पीत) और (५) श्वेत-शुक्ल ॥१६॥

The molecules of non-soul possessing form are changed by the attribute of colour, these are of five kinds–(1) black (2) blue (3) red (4) yellow and (5) white. (16)

गन्धओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।
सुब्भिगन्धपरिणामा, दुब्भिगन्धा तहेव य ॥१७॥

जो (स्कन्ध आदि) पुद्गल गन्ध से परिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं–(१) सुरभिगन्ध परिणमन और (२) दुरभिगन्ध परिणमन ॥१७॥

The molecules of matter changed by the attribute of smell are twofold (1) pleasant smell and (2) unpleasant or foul smell (17)

रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
तित्त-कडुय-कसाया, अम्बिला महुरा तहा ॥१८॥

जो (पुद्गल) रस से परिणत हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं–(१) तिक्त–तीखा या चरपरा, (२) कटुक-कड़वा, (३) कषायला (४) अम्ल–खट्टा और (५) मधुर–मीठा ॥१८॥

The molecules of matter change by the attribute of taste are fivefold–(1) bitter (2) pungent (3) astringent (4) sour and (5) sweet. (18)

फासओ परिणया जे उ, अट्ठहा ते पकित्तिया।
कक्खडा मउया चेव, गरुया लहुया तहा ॥१९॥

जो (पुद्गल) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे आठ प्रकार के कहे गये हैं–(१) कर्कश–खुरदरा (२) मृदु–मुलायम, कोमल, (३) गुरु-भारी, (४) लघु-हल्का–॥१९॥

The matter changed or developed by the attribute of touch, said of eight kinds–(1) hard (2) soft (3) heavy (4) light–(19)

सीया उण्हा य निद्धा य, तहा लुक्खा व आहिया।
इइ फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया ॥२०॥

(५) शीत-ठंडा (६) उष्ण–गर्म (७) स्निग्ध–चिकना (८) रूक्ष–कठोर, कड़ा इस प्रकार ये स्पर्श से परिणत पुद्गल सम्यक् रूप से कहे गये हैं ॥२०॥

(5) cold (6) hot (7) smooth and (8) rough–thus the molecules developed by touch are described well. (20)

संठाणपरिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
परिमण्डला य वट्टा, तंसा चउरंसमायया ॥२१॥

संस्थान से परिणत जो पुद्गल होते हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं–(१) परिमण्डल (चूड़ी की तरह गोल) (२) वृत्त–गेंद की तरह गोल (३) त्र्यंश–त्रिकोणाकार (४) चतुरस्र–चौकोर, चौकोन (वर्गाकार) और (५) आयताकार ॥२१॥

The molecules of matter developed by form are fivefold–(1) circular (2) globular (round like ball) (3) triangular (4) square and (5) long, rectangular. (21)

वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गन्धओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२२॥

कृष्ण (काले) वर्ण (रंग) वाला पुद्गल–गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भी भाज्य–अनेक विकल्पों (प्रकारों) वाला होता है ॥२२॥

The molecules of matter of black are divisible by smell, taste, touch and form, so it becomes of numberless types. (22)

वण्णओ जे भवे नीले, भइए से उ गन्धओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२३॥

नीले वर्ण का पुद्गल–गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है। इस अपेक्षा से उसके अनेक विकल्प होते हैं ॥२३॥

Blue colour matter is divisible by smell, taste, touch and form, so it becomes of several types. (23)

वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गन्धओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२४॥

जो पुद्गल लाल वर्ण वाला है, वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२४॥

Red colour matter is sub-divisible by smell, taste, touch and form, so it becomes of many types. (24)

वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२५॥

जो पुद्गल पीले वर्ण वाला होता है, वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२५॥

Yellow colour matter is sub-divisible by smell, taste, touch and form, so it becomes of innumerable types. (25)

वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गन्धओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२६॥

श्वेत (शुक्ल) वर्ण वाला पुद्गल-गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२६॥

White colour matter is sub-divisible by smell, taste, touch and form, so it becomes of various types. (26)

गन्धओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२७॥

गंध से जो पुद्गल सुरभित-सुगन्धित होता है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भी भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२७॥

Pleasant smell matter is sub-divisible with regard to colour, taste, touch and form, so it becomes of many kinds. (27)

गन्धओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२८॥

जो पुद्गल दुरभिगन्ध वाला-दुर्गन्धित होता है वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२८॥

Foul smell matter is sub-divisible with regard to colour, taste, touch and form (figure), so it becomes of innumerable kinds. (29)

रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥२९॥

जो पुद्गल तिक्त-चरपरे रस वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥२९॥

The matter of bitter taste is sub-divisible with regard to colour, smell, touch and form; so it becomes of many types. (29)

रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३०॥

कटु (कड़वा) रस वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥३०॥

The matter of pungent taste is sub-divisible with regard to colour, smell, touch and form; so it becomes of several types. (30)

रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३१॥

जो पुद्गल रस से कषाय-कसैला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥३१॥

The matter of astringent taste is sub-divisible by colour, smell, touch and form; so it becomes of various types. (31)

रसओ अम्बिले जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३२॥

जो पुद्गल रस से अम्ल-खट्टा होता है वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनन्त विकल्पों-भेदों वाला होता) है ॥३२॥

The matter of sour taste is sub-divisible by colour, smell, touch and form, so it becomes of various types. (32)

रसओ महुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३३॥

जो पुद्गल मधुर रस वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भी भाज्य है ॥३३॥

The matter of sweet taste is sub-divisible by colour, smell, touch and form; so it becomes of many types. (33)

फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३४॥

जो पुद्गल कर्कश स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥३४॥

The matter of hard touch is sub-divisible with regard to colour, smell, taste and form. (34)

फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३५॥

जो पुद्गल मृदु-कोमल स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध,रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥३५॥
The matter of soft touch is divisible by colour, smell, taste and form. (35)

फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३६॥

जो पुद्गल स्पर्श से गुरु-भारी होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥३६॥
The matter of heavy touch is divisible by colour, smell, taste and form. (36)

फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३७॥

जो पुद्गल लघु-(हलका) स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥३७॥
The matter of light touch is divisible by colour, smell, taste and form. (37)

फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३८॥

जो पुद्गल शीत स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥३८॥
The matter of cold touch is divisible by colour, smell, taste and form. (38)

फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥३९॥

जो पुद्गल उष्ण (गर्म) स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥३९॥
The matter of hot touch is divisible by colour, smell, taste and form. (39)

फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४०॥

स्निग्ध स्पर्श वाला पुद्गल-वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥४०॥
The matter of smooth touch is divisible by colour, smell, taste and form. (40)

फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥४१॥

रूक्ष स्पर्श वाला पुद्गल-वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥४१॥
The matter of rough touch is divisible by colour, smell, taste and form. (41)

परिमण्डलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४२॥

परिमण्डल (चूड़ी के समान गोल आकार) संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ॥४२॥

The matter possessing circular (like a bangle) form (frame, figure) is divisible by colour, smell, taste and touch. (42)

संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४३॥

वृत्त संस्थान (गेंद के समान गोल आकार वाला) पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य है ॥४३॥

The matter possessing globular (like ball, orange, ape) form (shape) is divisible by colour, smell, taste and touch. (43)

संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४४॥

त्र्यंश (त्रिकोण) संस्थान (आकार) वाला पुद्गल वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ॥४४॥

The matter of triangular form is divisible by colour, smell, taste and touch. (44)

संठाणओ य चउरंसे, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४५॥

चौरस-चौकोन (वर्गाकार) संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भी भाज्य होता है ॥४५॥

The matter of square form is divisible by colour, smell, taste and touch. (45)

जे आययसंठाणे, भइए से उ वण्णओ ।
गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥४६॥

आयत संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भी भाज्य है ॥४६॥

The matter of rectangular (cylinderical, long like a bamboo or rope) form is divisible by colour, smell, taste and touch. (46)

एसा अजीवविभत्ती, समासेण वियाहिया ।
इत्तो जीवविभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥४७॥

यह संक्षिप्त में अजीव विभक्ति की प्ररूपण की गई है। अब यहाँ से क्रमशः जीव-विभक्ति का कथन करूँगा ॥४७॥

Thus the divisions of non-soul substances demonstrated.

Now further I shall describe the divisions of soul. (47)

जीव-प्ररूपणा

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया ।
सिद्धाऽणेगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥४८॥

(१) संसारस्थ (संसारी) और (२) सिद्ध (संसार-मुक्त)-जीव दो प्रकार के बताये गये हैं। सिद्ध जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो ॥४८॥

The souls are of two kinds-(1) mundane and (2) emancipateds. Emancipated souls are said of many types. I describe about them, hear. (48)

सिद्ध जीवों की प्ररूपणा

इत्थी पुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा।
सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य ॥४९॥

स्त्री-पुरुष-नपुंसक, स्वलिंग, अन्यलिंग और गृहस्थ लिंग से जीव सिद्ध होते हैं ॥४९॥

Emancipation may be attained by women, man, impotent (eunuch), sage of Jain order, hermitages of other orders (but essentially possessing right faith-knowledge-conduct) and householders. (49)

उक्कोसोगाहणाए य, जहन्नमज्झिमाइ य।
उड्ढं अहे य तिरियं च, समुद्दम्मि जलम्मि य ॥५०॥

उत्कृष्ट अवगाहना में, जघन्य और मध्यम अवगाहना में (सिद्ध होते हैं) तथा ऊर्ध्वलोक में, तिर्यक् लोक में, अधोलोक में और समुद्र तथा जल (नदी, जलाशय आदि) में जीव सिद्ध होते हैं ॥५०॥

Salvation may be attained by the people of greatest, middle and small size (avagāhanā) and from higher regions, surface of earth, nether regions, waters (river or pond) and ocean. (50)

दसं चेव नपुंसेसु, वीसं इत्थियासु य।
पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५१॥

एक समय में (अधिक से अधिक) नपुंसकों में से दस, स्त्रियों में से बीस और पुरुषों में से १०८ जीव सिद्ध हो सकते हैं ॥५१॥

Utmost ten from impotents, twenty from women and one hundred eight from men, souls can be liberated in one samaya (indivisible shortest particle of time). (51)

चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य।
सलिंगेण य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥५२॥

गृहस्थलिंग में चार, अन्यलिंग में दस और स्वलिंग में १०८ जीव एक समय में सिद्ध हो सकते हैं ॥५२॥

And four from householders, ten from other orders and one hundred eight from Jain order-souls can attain liberation in one samaya. (52)

उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झन्ते जुगवं दुवे।
चत्तारि जहन्नाए, जवमज्झऽट्ठुत्तरं सयं ॥५३॥

उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में १०८ जीव सिद्ध (एक समय में) हो सकते हैं ॥५३॥

And two of greatest size, four of smallest size and one hundred eight of middle size–souls can be perfected in one samaya. (53)

चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव ।
सयं च अट्ठुत्तर तिरियलोए, समएणेगेण उ सिज्झई उ ॥५४॥

चार ऊर्ध्वलोक में, दो समुद्र में, तीन जल (जलाशय) में, बीस अधोलोक में, १०८ तिर्यक् लोक में–एक समय में जीव सिद्ध हो सकते हैं ॥५४॥

And four from higher region, two from ocean, three from waters (pond), twenty in nether region and one hundred eight from the surface of earth the souls may be salvated in one samaya. (54)

कहिं पडिहया सिद्धा ?, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ?।
कहिं बोन्दिं चइत्ताणं ?, कत्थ गन्तूण सिज्झई ?॥५५॥

(प्रश्न) सिद्ध जीव कहाँ जाकर रुकते हैं, कहाँ पर सिद्ध प्रतिष्ठित होते हैं (ठहरते हैं), शरीर को कहाँ छोड़कर और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ॥५५॥

(Q.) Where the perfected souls debarred ? Where do they reside ? Where they quit their bodies and going where they become emancipated. (55)

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोन्दिं चइत्ताणं, तत्थ गन्तूण सिज्झई ॥५६॥

(उत्तर–) सिद्ध जीव अलोक द्वारा रुके हुए हैं, लोक के अग्रभाग (ऊर्ध्व दिशा का लोकान्त) में ठहरे हुए हैं, यहाँ मनुष्य क्षेत्र में शरीर को छोड़कर वहाँ लोक के अग्रभाग में जाकर सिद्ध होते हैं ॥५६॥

(A.) Perfected souls are debarred by aloka, residing in the end (the end of highest direction-the top of world) of loka, leaving their bodies in human abode, become emancipated reaching the top of universe (loka). (56)

बारसहिं जोयणेहिं, सव्वट्ठस्सुवरिं भवे ।
ईसीपब्भारनामा उ, पुढवी छत्तसंठिया ॥५७॥

सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर इषत्प्राग्भारा नाम की छत्राकार पृथ्वी है ॥५७॥

There is a place named Īṣatprāgbhārā twelve yojan above Sarvārthasiddha vimāna. (57)

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया ।
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरओ ॥५८॥

वह पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी विस्तीर्ण (चौड़ी) है तथा उसकी परिधि (कुछ अधिक) तीन गुनी है–॥५८॥

That place is fortyfive lākha yojana in length and breadth respectively and its circumference is somewhat more than three times. (58)

अट्ठजोयणबाहल्ला, सा मज्झम्मि वियाहिया ।
परिहायन्ती चरिमन्ते, मच्छियपत्ता तणुयरी ॥५९॥

वह मध्य में आठ योजन बाहल्य वाली (स्थूल-मोटी) कही गई है। फिर वह क्रमशः पतली होती गई है और चरम-अन्त में मक्खी की पाँख से भी अधिक पतली है ॥५९॥

In middle it is eight yojana thick and regularly decreasing it is thinner than the wings of a fly on both the ends. (59)

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं ।
उत्ताणगछत्तगसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥६०॥

जिनेन्द्रों ने बताया है कि–वह पृथ्वी अर्जुन स्वर्णमयी (श्वेत सुवर्ण वाली) और स्वभाव से ही निर्मल (उज्ज्वल) है और उसका आकार तने हुए उलटे छाते जैसा है ॥६०॥

Jinas have told that it is pure by nature and of white gold and its form is like an open umbrella overturned. (60)

संखंक-कुन्दसंकासा, पण्डुरा निम्मला सुहा ।
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयन्तो उ वियाहिओ ॥६१॥

वह पृथ्वी शंख, अंकरत्न और कुन्द पुष्प के समान श्वेत, निर्मल तथा शुभ है। उस सीता (ईषत् प्राग्भारा नाम की पृथ्वी) से एक योजन ऊपर लोक का अन्त कहा गया है ॥६१॥

That place is white like conch-shell, aṅkaratna, kunda-flower, pure and auspicious. One yojana above that place named Sītā (Īṣatprāgbhārā) there is the end of universe (loka). (61)

जोयणस्स उ जो तस्स, कोसो उवरिमो भवे ।
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६२॥

उस योजन का जो सबसे ऊपर का कोस है, उस कोस के छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना है–वहाँ सिद्ध जीव ठहरे हुए हैं ॥६२॥

In the uppermost sixth part of the highest kosa of that yojana, the salvated souls reside. (62)

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोयग्गम्मि पइट्ठिया ।
भवप्पवंचउम्मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥६३॥

भव प्रपंच–जन्म-मरणादि संसार के प्रपंचों से उन्मुक्त, परमश्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त, महाभाग्यशाली सिद्ध भगवान वहाँ लोक के अग्रभाग में स्थित–प्रतिष्ठित हैं ॥६३॥

Free from the world of births and deaths, attaining the most excellent existence of salvation, the greatest fortunate emancipateds are stayed here in the uppermost region–top of the universe (loka). (63)

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ ।
तिभागहीणा तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥६४॥

अन्तिम भव (जिस जन्म से जीव मुक्त होता है) में जिसकी (जिस मनुष्य की) जितनी ऊँचाई होती है, सिद्धावस्था में उस ऊँचाई की त्रिभाग (एक तिहाई भाग) कम ऊँचाई होती है ॥६४॥

The height of perfected soul remains two-third of the height of his last birth-body, from which he has attained liberation. (64)

एगत्तेण साईया, अपज्जवसिया वि य ।
पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसिया वि य ॥६५॥

एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्ध सादि (आदि सहित) और अनन्त भी हैं और पृथक-पृथक अनेक जीवों की अपेक्षा से सिद्ध अनादि-अनन्त भी हैं ॥६५॥

Salvated souls considering individually they have beginning but no end but considered separately with the viewpoint of many then they have no beginning, no end. (65)

अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया ।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स नत्थि उ ॥६६॥

वे सिद्ध जीव अरूपी हैं, घनरूपी सघन हैं, ज्ञानदर्शन संज्ञा से सम्पन्न उपयोगमय हैं, ऐसा अतुल सुख उन्हें प्राप्त है, जिसकी कोई उपमा नहीं है ॥६६॥

Emancipated souls have no (visible) form, of compact pradeśas of soul, conscious, opulent with knowledge and perception and such beatitude which has no comparison. (66)

लोएगदेसे ते सव्वे, नाणदंसणसन्निया ।
संसारपारनिच्छिन्ना, सिद्धिं वरगइं गया ॥६७॥

वे सभी सिद्ध जीव–ज्ञान-दर्शन से संपन्न (युक्त), संसार से पार पहुँचे हुए, परमगति–सिद्धि को प्राप्त–लोक के एक देश (भाग) में अवस्थित हैं ॥६७॥

All those perfected souls opulent with knowledge and perception, crossed the boundry of world, reached in excellent salvation existence, reside in a part of universe (loka). (67)

संसारस्थ (संसारी) जीवों की प्ररूपणा

संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया ।
तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं ॥६८॥

संसारस्थ (संसार में अवस्थित–संसारी) जीवों के दो भेद कहे गये हैं–(१) त्रस और (२) स्थावर। इनमें से स्थावर जीवों के तीन भेद (प्रकार) हैं ॥६८॥

The mundane souls (living beings still belong to worldly ties) are said of two kinds–(1) mobiles and (2) immobiles. Among these the immobiles are of three types. (68)

स्थावर जीव-प्ररूपणा

पुढवी आउजीवा य, तहेव य वणस्सई ।
इच्चेए थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥६९॥

स्थावर जीव तीन प्रकार के हैं–(१) पृथ्वीकायिक (२) जलकायिक और (३) वनस्पतिकायिक। अब इनके भेद (प्रकार) मुझसे सुनो ॥६९॥

Immobile beings are of three kinds–(1) earth-bodied (20 water-bodied and (3) plants–vegetable-bodied. Now hear from me the sub-divisions of all these. (69)

पृथ्वीकाय की प्ररूपणा

दुविहा पुढवीजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥७०॥

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं–(१) सूक्ष्म और (२) बादर। इन दोनों प्रकार के दो-दो भेद हैं–(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त ॥७०॥

Earth-bodied souls are of two kinds–(1) subtle and (2) gross. These both are also of two types–(1) developed fully (paryāpta) and undeveloped (aparyāpta). (70)

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोद्धव्वा, सण्हा सत्तविहा तहिं ॥७१॥

बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं–(१) श्लक्ष्ण–कोमल और (२) खर-कठिन। इन दोनों में भी श्लक्ष्ण (मृदु अथवा कोमल) के सात भेद जानने चाहिए ॥७१॥

Gross earth bodied fully developed living beings are said of two kinds–(1) smooth and (2) rough. Among these smooth are of seven types. (71)

किण्हा नीला य रुहिरा य, हालिद्दा सुक्किला तहा।
पण्डु-पणगमट्टिया, खरा छत्तीसईविहा ॥७२॥

(मृदु पृथ्वी मिट्टी) के सात भेद–(१) काली (२) नीली (३) लाल (४) पीली (५) श्वेत-शुक्ल-सफेद (६) पाण्डु-भूरी और (७) पनक (मिट्टी)–अत्यन्त सूक्ष्म रज। तथा खर-कठिन पृथ्वी (मिट्टी) छत्तीस प्रकार की है ॥७२॥

The seven types of smooth earth-bodied are–(1) black, (2) blue, (3) red, (4) yellow (5) white (6) pale and (7) subtle dust (clay). And rough is of thirtysix types. (72)

पुढवी य सक्करा वालुया य, उवले सिला य लोणूसे।
अय-तम्ब-तउय–सीसग-, रुप्प-सुवण्णे य वइरे य ॥७३॥

शुद्ध पृथ्वी शर्करा–कंकड़ वाली–कंकरीली बालू-रेत उपल–पत्थर–पाषाण शिला-चट्टान लोणु-लवण ऊस-क्षार (नौनी मिट्टी) अय–लोहा, ताँबा, रांगा, सीसा, चाँदी-रजत, स्वर्ण और वज्र–हीरा–॥७३॥

Pure earth, gravel, sand, stones, rocks, rock-salt, iron, tin, copper, lead, silver, gold and diamond–(73)

हरियाले हिंगुलुए, मणोसिला सासगंजण-पवाले।
अब्भपडलऽब्भवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥७४॥

हरिताल हिंगुल, मेनसिल सासक (अथवा सस्यक-एक धातु) अंजन प्रवाल-मूँगा अभ्रपटल-अभ्रक अभ्रबालुका-अभ्रक की परतों में चिपकी-मिली हुई बालू तथा विविध प्रकार की मणियाँ भी बादर पृथ्वीकाय में ही परिगणित होती हैं ॥७४॥

Orpiment, vermillion, realgar, sāsaka (or sasyaka–a kind of metal), antimony or collyrium, coral, mica, sand sticked to mica-plates and various types of gems are enumerated in earth-bodied beings–(74)

गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिहे य लोहियक्खे य ।
मरगय-मसारगल्ले, भुयमोयग-इन्दनीले य ॥७५॥

यथा–गोमेदक रुचक अंक (रत्न) स्फटिक लोहिताक्ष मरकत मसारगल्ल भुजमोचक इन्द्रनील–॥७५॥

As–hyacinth, natron, añka, crystal, lohitāksa, emerald, masāragalla, bhujamocaka, and sapphire–(75)

चन्दण-गेरुय-हंसगब्भ-, पुलए सोगन्धिए य बोद्धव्वे ।
चन्दप्पह-वेरुलिए, जलकन्ते सूरकन्ते य ॥७६॥

चन्दन गेरुक या हंसगर्भ पुलक सौगन्धिक चन्द्रप्रभ वैडूर्य, जलकान्त और सूर्यकान्त ॥७६॥

Candana, red chalk, pulaka and sulphur, candraprabha, lapis lazuli, jalakānta and sūryakanta. (76)

एए खरपुढवीए, भेया छत्तीसमाहिया ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥७७॥

ये छत्तीस भेद (प्रकार) खर (कठोर) पृथ्वीकाय के कहे गये हैं। उन दोनों (पृथ्वीकाय के भेदों) में सूक्ष्म पृथ्वीकाय अनानात्व (अनेक प्रकार के भेदों से रहित) एक ही प्रकार की कही गयी है ॥७७॥

These thirtysix kinds are said of rough earth-bodied species.

Among those two kinds of earth-bodieds (subtle and gross), the subtle earth-bodieds are of only one kind. (77)

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥७८॥

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं किन्तु बादर पृथ्वीकायिक जीव लोक के एक देश में ही हैं।

अब यहाँ से आगे मैं इन (पृथ्वीकायिक जीवों) के चार प्रकार के काल विभाग का वर्णन करूँगा ॥७८॥

Subtle earth-bodied species are filled in whole world (loka) while gross ones are in a part of it.

Now further I shall describe the fourfold divisions of (gross earth-bodied beings) these with regard to time. (78)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥७९॥

संतति–प्रवाह की अपेक्षा पृथ्वीकायिक जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी हैं ॥७९॥

With regard to continuous flow these earth-bodied beings are beginningless and endless but with regard to individual life duration these are with beginning and with an end too. (79)

बावीससहस्साइं वासाणुक्कोसिया भवे।
आउठिई पुढवीणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥८०॥

पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति बाईस हजार वर्ष है और जघन्य आयु स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥८०॥

The longest duration of earth-bodied beings is twentytwo thousand years and shortest duration is of antarmuhūrta (less then fortyeight minutes.) (80)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
कायठिई पुढवीणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८१॥

पृथ्वीकायिक जीव, यदि पृथ्वीकाय को न छोड़कर उसी में जन्म-मरण करते रहें तो इस अपेक्षा से उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात काल की होती है तथा जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥८१॥

Earth-bodied beings, without leaving their body, if they take births and deaths in the same body then their longest body-duration is of innumerable time and shortest body-duration is of antarmuhūrta. (81)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढंमि सए काए, पुढवीजीवाण अन्तरं ॥८२॥

अपने काय (पृथ्वीकाय) को एक बार छोड़कर (दूसरे अन्य कायों में उत्पन्न होने–जन्म-मरण करने के पश्चात्) पुनः पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने का अन्तर (अन्य कायों में बिताया हुआ काल–मध्यवर्ती अन्तराल) उत्कृष्ट अनन्त काल और जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है ॥८२॥

The interval (leaving their body, moving out and again taking birth in the same body-in between time, which the soul takes, that is called interval) of earth-bodied beings, maximumly is of infinite time and minimum of antarmuhūrta. (82)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥८३॥

ये पृथ्वीकायिक जीव वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा संस्थान के आदेश (अपेक्षा) से भी हजारों प्रकार के होते हैं ॥८३॥

These earth-bodied beings are also of thousands of kinds with reagard to colour, smell, taste, touch and frame–form. (83)

अपूकाय की प्ररूपणा

दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥८४॥

अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं–(१) सूक्ष्म और (२) बादर। पुनः इन दोनों प्रकारों के दो-दो भेद और होते हैं–(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त ॥८४॥

Water-bodied living beings are of two kinds–(1) subtle and (2) gross. Again these both are sub-divided into (1) developed fully (paryāpta) and (2) undeveloped (aparyāpta). (84)

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया ।
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥८५॥

जो पर्याप्त बादर अप्कायिक जीव हैं, वे पाँच प्रकार के बताये गये हैं, यथा–(१) शुद्धोदक–शुद्ध जल (२) उस्स–ओस (३) हरतणु–गीली (आर्द्र) भूमि से उत्पन्न वह पानी जो प्रातःकाल तृण के अग्रभाग पर बिन्दु के रूप में दृष्टिगोचर होता है (४) महिका–कुहासा, कोहरा और (५) हिम–बर्फ ॥८५॥

Gross water-bodied beings are said of five types–(1) pure water (2) dew (3) exudations (4) fog and (5) ice. (85)

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥८६॥

नानात्व (अनेकता) से रहित सूक्ष्म अप्कायिक जीव एक ही प्रकार के हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त (भरे हुए) हैं; लेकिन बादर अप्कायिक जीव लोक के एक देश (विभाग) में ही हैं ॥८६॥

Subtle water-bodied beings are only of one kind and filled in whole world (loka) and gross water-bodied beings are in a part of it.

Now further I shall describe the fourfold divisions of water-bodied beings, with regard to time. (86)

सन्तइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥८७॥

संतति–प्रवाह की अपेक्षा से अप्कायिक जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा वे सादि-सान्त भी हैं ॥८७॥

By continuous flow water-bodied beings have neither beginning, nor end; but considering individually they have beginning and end too. (87)

सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे ।
आउट्ठिई आऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥८८॥

उनकी (अप्कायिक जीवों की) उत्कृष्ट आयुस्थिति सात हजार वर्ष की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥८८॥

The maximum duration of water-bodied beings is of seven thousand years and minimum duration is of antarmuhūrta. (88)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ।
कायट्ठिई आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥८९॥

अप्कायिक जीव, यदि अप्काय को न छोड़कर लगातार उसी में जन्म-मरण करते हैं, वह उनकी कायस्थिति कहलाती है। उनकी कायस्थिति उत्कृष्ट असंख्यात काल की होती है तथा जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥८९॥

The body-duration (continuous births and deaths in the same body) of water-bodied beings maximumly is of innumerable time and minimum of antarmuhūrta. (89)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढंमि सए काए, आऊजीवाण अन्तरं ॥९०॥

अपनी काय (अप्काय) को छोड़कर (अप्काय से निकलकर अन्य कायों में जन्म-मरण करने के बाद) पुनः अप्काय में उत्पन्न होने का अन्तर (अन्य कायों में बिताया गया समय–मध्यवर्ती अन्तराल) उत्कृष्ट अनन्तकाल का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त का है ॥९०॥

The interval period of water-bodied beings is maximumly of infinite time and minimumly of antarmuhūrta. (90)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रस-फासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥९१॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश-अपेक्षा से भी अप्कायिक जीवों के हजारों प्रकार कहे गये हैं ॥९१॥

With regard to colour, smell, taste, touch and form, thousands of kinds are said of water-bodied beings. (91)

वनस्पतिकाय की प्ररूपणा

दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥९२॥

दो प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव हैं–(१) सूक्ष्म और (२) बादर। पुनः इन दोनों के दो-दो भेद और हैं–(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त ॥९२॥

Vegetation or flora bodied beings are of two types–(1) subtle and (2) gross. These are again sub-divided into two kinds–(1) fully developed and (2) undeveloped. (92)

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया ।
साहारणसरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ॥९३॥

पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं–(१) साधारण शरीरी (अनन्त जीवों का निवास स्थान-पिंड) और (२) प्रत्येक शरीरी (एक जीव का निवास स्थान) ॥९३॥

Fully developed flora bodied beings are said of two kinds–(1) Common bodied (Compound of infinite souls sheltered in one body–sädhāma śarīrī) and (2) each bodied (every soul possesses its own body separately–pratyeka śarīrī). (93)

पत्तेगसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया ।
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तणा जहा ॥९४॥

प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–रुक्ख–वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्लरी–बेल (ककड़ी आदि की बेल) तथा तृण आदि–॥९४॥

Single bodied plant beings are said of several types, e.g., trees, shrubly pants, shrubs, big plants, tendrils, grass, etc.–(94)

लयावलया पव्वगा कुहुणा, जलरुहा ओसही-तिणा ।
हरियकाया य बोद्धव्वा, पत्तेया इति आहिया ॥९५॥

लतावलय, पर्वज–ईख आदि, कुहन–भूमिफोड़, जलरूहा–जल में उत्पन्न होने वाले, औषधि (गेहूँ, चना आदि धान्य) तृण–शालि आदि धान्य, हरितकाय आदि–ये सभी प्रत्येक शरीरी (वनस्पतिकायिक) हैं ॥९५॥

Palm, plants of knotty stems or stalks–like sugarcane, mushrooms, water-plants, plants of wheat, gram etc., plants of rice etc., and green vegetables etc.,–all these are single bodied vegetations. (95)

साहारणसरीरा उ, णेगहा ते पकित्तिया ।
आलुए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य ॥९६॥

साधारण शरीरी (वनस्पतिकायिक) भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं–यथा–आलुए–आलूक (अथवा आलू), मूलए–मूलक (अथवा मूली), सिंगबेरे–अदरक–॥९६॥

Common bodied flora beings are also of several types, e. g., potato (ālūka), redish (mūlaka), ginger–(96)

हिरिली सिरिली सिस्सिरिली, जावई केय-कन्दली ।
पलंडू-लसणकन्दे य, कन्दली य कुडुंबए ॥९७॥

हिरली–हिरलीकन्द सिरिली–सिरिलीकन्द, सिस्सिरिली-सिस्सिरिलीकन्द, जावई-जावईकन्द, केयकन्दली–केदकन्दलीकन्द, पलण्डु-प्याज, लसणकन्द–लहसुन, कन्दली–कन्दली, कुडुम्बए–कुस्तुम्बक–॥९७॥

Hirlī–hiralīkanda, sirilī–sirilīkanda, sissirilī–sissirilīkanda, jāvaī–jāvaīkanda, keyakandalī–kedakandalīkanda, onion (palaṇḍu) garlic (lasaṇakanda–lahasuna), plantain tree (kandali), kustumbaka–(97)

लोहि णीहू व थिहू य, कुहगा य तहेव य ।
कण्हे य वज्जकन्दे य, कन्दे सूरणए तहा ॥९८॥

लोहि–लोही, लोहिणी, लीहू–स्निहु, कुहक, कृष्णकन्द, वज्रकन्द और सूरणकन्द–॥९८॥

Lohi–lohī–lohiṇī, līhū–snihu, kuhaka, kṛṣṇakanda, vajrakanda and sūranakanda–(98)

अस्सकण्णी य बोद्धव्वा, सीहकण्णी तहेव य।
मुसुण्ढी य हलिद्दा य, ऽणेगहा एवमायओ ॥९९॥

अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंडी, हरिद्रा-हल्दी-इत्यादि अनेक प्रकार के साधारण शरीरी वनस्पतिकाय जाननी चाहिए ॥९९॥

Aśvakarṇī, siṁhakarṇī, musuṇḍī, turmeric etc., thus various types of common-bodied flora beings should be known. (99)

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया।
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥१००॥

नानात्व (अनेकता) से रहित एक ही प्रकार के सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव कहे गये हैं। वे समस्त लोक में व्याप्त हैं लेकिन बादर वनस्पतिकायिक जीव लोक के एक देश (अंश अथवा भाग) में ही हैं ॥१००॥

Subtle flora beings have no variations, they are of only one kind and filled in the whole universe (loka) but gross flora beings reside only in a part of universe (loka).

(Now further I shall describe the fourfold division of these flora-bodied beings, with regard to time.) (100)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१०१॥

संतति प्रवाह की अपेक्षा से वनस्पतिकायिक जीव अनादि-अनन्त हैं किन्तु स्थिति की अपेक्षा से वे सादि सान्त भी हैं ॥१०१॥

With regard to continuity vegetable-bodied beings have neither beginning nor end but with regard to individual duration they have beginning and an end too. (101)

दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
वणप्फईण आउं तु, अन्तोमुहुत्तं जहन्नगं ॥१०२॥

इन (बादर वनस्पतिकायिक जीवों) की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस हजार वर्ष की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ॥१०२॥

Longest duration of folra-bodied beings is ten thousand years and shortest duration is of antarmuhūrta only. (102)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
कायठिई पणगाणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥१०३॥

वे वनस्पतिकाय के जीव यदि उसी काय में जन्म-मरण करते हैं तो उनकी कायस्थिति उत्कृष्टतः अनन्त काल की और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१०३॥

The maximum body-duration of vegetable-bodied beings (continuous births and deaths in the same body) is of infinite time and minimum antarmuhūrta only. (103)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढंमि सए काए, पणगजीवाण अन्तरं ॥१०४॥

अपनी यानी वनस्पतिकाय से निकलकर अन्य कायों में जन्म-मरण करके पुनः वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने (अन्य कायों में विताया हुआ काल–अन्तराल) का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल का है और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त काल का है ॥१०४॥

The interval time of vegetable-bodied beings (quitting that body, taking births and deaths elsewhere and then coming to that body–the time in between it takes) is maximumly of infinite time and minimumly of antarmuhūrta. (104)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्सओ ॥१०५॥

इन वनस्पतिकायिक जीवों के–वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश–अपेक्षा से हजारों प्रकार बताये गये हैं ॥१०५॥

Thousands of types are said of these vegetable-bodied beings with regard to colour, smell, taste, touch and form. (105)

इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया ।
इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥१०६॥

इस तरह तीन प्रकार के स्थावर जीवों का संक्षेप में वर्णन किया गया। इससे आगे तीन प्रकार के त्रस जीवों का आनुपूर्वी से क्रमपूर्वक कथन करूँगा ॥१०६॥

Thus three kinds of immobile beings are described.

Now further I shall demonstrate three kinds of movable species in due order. (106)

तीन त्रसकायों का नामोल्लेख

तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा, उराला य तसा तहा ।
इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१०७॥

तेजस्काय, वायुकाय तथा उदार (एकेन्द्रिय त्रसों की अपेक्षा द्वीन्द्रिय आदि उदार-स्थूल) त्रस–इस तरह ये तीन प्रकार के त्रस हैं, उनके भेदों को मुझसे सुनो ॥१०७॥

The movable livings are of three kinds–(1) fire-bodied (2) air-bodied and (3) gross (gross with regard to one-sensed mobile being) mobile beings. Now hear from me the divisions of all these three. (107)

तेजस् त्रस काय की प्ररूपणा

दुविहा तेउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥१०८॥

तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं–(१) सूक्ष्म और (२) बादर। पुनः इन दोनों के दो-दो भेद हैं–(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त ॥१०८॥

There are two kinds of fire-bodied living beings-(1) subtle and (2) gross. Again these are divided into two sub-divisions-(1) fully developed and (2) undeveloped. (108)

बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया ।
इंगाले मुम्मरे अग्गी, अच्चि जाला तहेव य ॥१०९॥

जो बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीव हैं, उनके अनेक प्रकार बताये गये हैं; यथा-अंगार-निर्धूम अग्निकण, मुर्मुर-भस्ममिश्रित अथवा भस्म से आवरित अग्नि कण, अग्नि-आग, अर्चि-मूल सहित अग्निशिखा अथवा दीपशिखा या प्रकाशकिरण, ज्वाला-प्रदीप्त अग्नि-॥१०९॥

There are many types of fully developed gross fire-bodied living beings, e. g.,-embers-fire particle without smoke (aṅgāra), fire-particles covered or mixed with ashes (murmura), fire, flame of fire, flicker of a lamp (dīpaka), ray of light, blaze, burning fire-(109)

उक्का विज्जू य बोद्धव्वा, णेगहा एवमायओ ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ॥११०॥

उल्का-तारों के समान गिरने वाली आकाशीय अग्नि-यथा उल्कापात, विद्युत्-मेघों के संघर्ष से उत्पन्न होने वाली आकाशीय बिजली-इत्यादि तेजस्कायिक जीव अनेक प्रकार के जानने चाहिए।

नानात्व (अनेकता) से रहित सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव एक ही प्रकार के कहे गये हैं ॥११०॥

Meterors, lightning etc., these all are kinds of fire-bodied species.

Subtle fire-bodied living beings are of only one type, having no variations. (110)

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोग देसे य बायरा ।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१११॥

सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव समस्त लोक में व्याप्त (भरे हुए) हैं किन्तु बादर तेजस्कायिक जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं।

यहाँ से आगे अब मैं उन (तेजस्कायिक जीवों के) चार प्रकार के काल विभाग को कहूँगा ॥१११॥

Subtle fire-bodied beings are filled in whole universe (loka) while gross fire bodied beings reside only in a part of it.

Now further I shall describe the fourfold division of fire-bodied beings with regard to time. (111)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥११२॥

वे (बादर तेजस्कायिक जीव) संतति-प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सांत भी हैं ॥११२॥

With regard to continuity the gross fire-bodied living beings have neither beginning nor end but with regard to individual duration they have beginning and an end too. (112)

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।
आउट्ठिई तेऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥११३॥

तेजस्कायिक जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः तीन अहोरात्र-दिन-रात्रि-७२ घण्टे की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥११३॥

Longest duration of fire-bodied beings is of three days and nights–seventytwo hours and shortest duration is of antarmuhūrta. (113)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
कायट्ठिई तेऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥११४॥

अपनी काय को न छोड़ते हुए–उसी में जन्म-मरण करते हुए तेजस्कायिक जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त काल की होती है ॥११४॥

Longest body-duration (continuous births and deaths in the same body) of fire-bodied living beings is of innumerable time and shortest body duration is of antarmuhūrta. (114)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढंमि सए काए, तेउजीवाण अन्तरं ॥११५॥

अपनी काय (तेजस्काय) से निकलने-छोड़ने (से लेकर अन्य काय में जाकर जन्म-मरण करते हुए विताया हुआ काल–अन्तराल और पुनः तेजस्काय में उत्पन्न होने तक का समय) तेजस्कायिक जीवों का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल का और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त काल का होता है ॥११५॥

The longest interval period (leaving fire-body, taking births and deaths elsewhere and then taking birth again in fire-body) of fire-bodied living beings is of infinite time and shortest interval period is of antarmuhūrta. (115)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥११६॥

वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के आदेश–अपेक्षा से इन तेजस्कायिक जीवों के हजारों भेद बताये गये हैं ॥११६॥

With respect of colour, smell, taste, touch and form, thousand kinds are said of fire-bodied living beings. (116)

वायु त्रस काय की प्ररूपणा–

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥११७॥

वायुकायिक जीवों के दो प्रकार कहे गये हैं–(१) सूक्ष्म और (२) बादर। इन दोनों प्रकारों के पुनः दो-दो भेद होते हैं–(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त ॥११७॥

Two types are said of air-bodied beings–(1) subtle and (2) gross. Again these are sub-divided into two kinds–(1) fully developed and (2) undeveloped. (117)

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया।
उक्कलिया-मण्डलिया–, घण-गुंजा सुद्धवाया य ॥११८॥

जो पर्याप्त बादर वायुकायिक जीव हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं–(१) उत्कलिक वात (२) मण्डलिका वात (३) घनवात (४) गुंजावात और (५) शुद्धवात ॥११८॥

Fully developed gross air-bodied beings are of five kinds–(1) squalls or intermittent winds, (utkalika) (2) whirl winds (maṇḍalikā), (3) thick winds (ghana) (4) high wind or buzzing wind (guñjā) (5) low wind or pure air (śuddha)–(118)

संवट्टगवाते य, ऽणेगविहा एवमायओ।
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ॥११९॥

संवर्तक वात आदि और अनेक प्रकार के बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव हैं।

नानात्व (अनेक प्रकार के भेदों) से रहित सूक्ष्म वायुकायिक जीवों का एक ही भेद है ॥११९॥

Circular blowing wind (saṁvartaka) etc., and many other kinds of air-bodied living beings.

Subtle air-bodied beings have no variations, these are of only one type. (119)

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥१२०॥

सूक्ष्म वायुकायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं किन्तु बादर वायुकायिक जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं। यहाँ से आगे में वायुकायिक जीवों के चार प्रकार का कालविभाग कहूँगा ॥१२०॥

Subtle air-bodied beings are filled in whole universe (loka) while gross air-bodied beings are in a part of it.

Now further I shall describe the fourfold divisions of air-bodied beings with regard to time. (120)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१२१॥

संतति–प्रवाह की अपेक्षा वायुकायिक जीव अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा वे सादि-सान्त भी हैं ॥१२१॥

With regard to continuity air-bodied beings have neither beginning nor end but regarding individual duration they have beginning and an end too. (121)

तिण्णेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
आउट्ठिई वाऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१२२॥

उनकी (वायुकायिक जीवों की) उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन हजार वर्ष की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥१२२॥

Longest age-duration of air–bodied beings is of three thousand years and shortest age duration is of antarmuhūrta. (122)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
कायट्ठिई वाऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥१२३॥

उस वायुकाय को न छोड़कर उसी में जन्म मरण करते रहने पर वायुकायिक जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१२३॥

The maximum body-duration (with continuous births and deaths in the same body) is of innumerable time and minimum is of antarmuhūrta. (123)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढंमि सए काए, वाउजीवाण अन्तरं ॥१२४॥

स्वकाय छोड़कर-निकलने के बाद (अन्य कायों में परिभ्रमण के बाद पुनः वायुकाय में उत्पन्न होने तक का अन्तराल) अन्तर उत्कृष्टतः अनन्त काल तथा जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त होता है ॥१२४॥

The longest interval of air-bodied beings is of infinite time and shortest is of antarmuhūrta. (124)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१२५॥

इन वायुकायिक जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार होते हैं ॥१२५॥

There are thousands of kinds of these air-bodied beings regarding colour, smell, taste, touch and form (125)

उदार त्रस काय की प्ररूपणा—

ओराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया ।
बेइन्दिय-तेइन्दिय-, चउरो-पंचिन्दिया चेव ॥१२६॥

जो उदार (उराला) त्रस हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—(१) द्वीन्द्रिय (२) त्रीन्द्रिय (३) चतुरिन्द्रिय और (४) पंचेन्द्रिय ॥१२६॥

Movable beings with organic (urāla) body are said of four types–(1) two-sensed (2) three-sensed (3) four-sensed (4) five-sensed, beings. (126)

द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की प्ररूपणा—

बेइन्दिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१२७॥

जो द्वीन्द्रिय जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त। उन द्वीन्द्रिय जीवों के भेदों को मुझसे सुनो ॥१२७॥

Two sensed mobile beings are of two kinds–(1) fully developed (2) undeveloped. The divisions of these listen from me. (127)

किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया ।
वासीमुहा य सिप्पीया, संखा संखणगा तहा ॥१२८॥

किमिणा–कृमि, सोमंगला–सौमंगल, अलसा–अलसिया, माइवाहिया–मातृवाहक, वासीमुहा–वासीमुख, सिप्पीया–सीप, शंख, संखणगा–शंखनक–॥१२८॥

Worms, saümangala, small snake or earth worm (alasiā), mātṛvāhaka, vāsīmukha, shells, conches, śaṅkhanaka–(128)

पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव य वराडगा ।
जलूगा जालगा चेव, चन्दणा य तहेव य ॥१२९॥

पल्योय–पल्लक, अणुल्लया–अणुल्लक (छोटे पल्लक), वराडगा–वराटक (कौड़ी), जलूगा–जलौका (जोंक), जालगा–जालक, चन्दणा–चन्दनक (अक्ष) (चन्दनिया)–इत्यादि–॥१२९॥

Pallaka, aṇullaka, cowries, leeches, jālaka., candanaka etc. (129)

इइ बेइन्दिया एए, णेगहा एवमायओ ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥१३०॥

इस तरह अनेक प्रकार के ये द्वीन्द्रिय जीव हैं, वे लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥१३०॥

Thus, two-sensed movable beings are of several types and they are in a part of universe (loka) not in whole universe, it is said.

(Now further I describe fourfold division of two-sensed beings regarding time). (130)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१३१॥

संतति–प्रवाह की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय त्रस जीव अनादि–अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी हैं ॥१३१॥

Regarding continuous flow movable two-sensed beings have neither beginning nor an end but regarding individual age duration they have beginning and end too. (131)

वासाइं बारसे व उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
बेइन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१३२॥

द्वीन्द्रिय जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः बारह वर्ष की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ॥१३२॥

Longest age duration of two-sensed beings is of twelve years and shortest is of antarmuhūrta. (132)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
बेइन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१३३॥

द्वीन्द्रियकाय को न छोड़कर उसी में जन्म-मरण करते रहने की उन (द्वीन्द्रिय जीवों) की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१३३॥

Body duration of two-sensed beings (by continuous births and deaths in the same body) is maximumly of innumerable time period and minimumly of antarmuhūrta. (133)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
बेइन्दियजीवाणं, अन्तरेयं वियाहियं ॥१३४॥

द्वीन्द्रिय जीवों का अन्तर (द्वीन्द्रिय से निकलकर पुनः द्वीन्द्रिय में उत्पन्न होने के मध्य का समय) उत्कृष्टतः अनन्तकाल का और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त का है ॥१३४॥

Interval period of two-sensed beings (in between time from going out of two-sensed life and again taking birth as two-sensed being) is maximumly of infinite time and minimumly of antarmuhūrta. (134)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१३५॥

इन द्वीन्द्रिय जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥१३५॥

There are thousands of kinds regarding colour, smell, taste, touch and form, of two-sensed beings. (135)

त्रीन्द्रिय त्रसकाय की प्ररूपणा—

तेइन्दिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१३६॥

जो त्रीन्द्रिय जीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त। इन जीवों के भेद मुझसे सुनो ॥१६६॥

Three sensed beings are of two kinds—(1) fully developed and (2) undeveloped. Hear the divisions of these beings from me. (136)

कुन्थु-पिवीलि-उड्डंसा, उक्कलुद्देहिया तहा ।
तणहार-कट्ठहारा, मालुगा पत्तहारगा ॥१३७॥

कुन्थु—कुन्थुआ, पिवील—पिपीलिका (चींटी), उड्डंसा—उद्दंस (खटमल), उक्कल, मकड़ी, उद्देहिया—उदई (दीमक), तणहारा—तृणहारक, कट्ठहारा—काष्टहारक (घुन), मालूगा—मालुका, पत्तहारगा—पत्रहारक—॥१३७॥

Kunthuā or animalcules, ants, bugs, ukkala, spiders, white ants, tṛṇahāraka or straw-worm, woodworm, māluka, patrahāraka or leaf worm—(137)

कप्पासऽट्ठिमिंजा य, तिंदुगा तउसमिंजगा ।
सदावरी य गुम्मी य, बोद्धव्वा इन्दकाइया ॥१३८॥

कपासऽट्ठिमिंजा—कपास और उसकी अस्थि कपासिये-करकड़ों) में उत्पन्न होने वाले जीव, तिन्दुगा—तिन्दुक, तउसमिंजगा—तृपुषमिंजक, सदावरी—सतावरी, गुम्मी—गुल्मी—(कानखजूरा), इन्द्रकायिक—षट्पदी (जूँ) ये सब—त्रीन्द्रिय त्रसकायिक जीव जानने चाहिए ॥१३८॥

Duga shining like lead, which originate in the kernel of cotton seed, tṛpuṣamiñjaka, satāvarī, gulmī, louse—these all are three-sensed movable beings. (138)

इन्दगोवगमाईया, णेगहा एवमायओ ।
लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥१३९॥

इन्दगोवय-इन्द्रगोयक (वीरबहूटी) इत्यादि त्रीन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकार कहे गये हैं। ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं हैं ॥१३९॥

Various kinds of three-sensed movable beings, like--cochineal etc. These all are in a part of universe (loka) not in whole universe. (139)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१४०॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से ये त्रीन्द्रिय जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥१४०॥

Regarding continuity these three-sensed mobile beings are beginningless and endless; but due to individual age duration, they have beginning and an end too. (140)

एगूणपण्णऽहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया ।
तेइन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१४१॥

त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति उनपचास (४९) दिन-रात्रि की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की बताई गई है ॥१४१॥

The longest age duration of three-sensed mobile beings is of fortynine days and nights and shortest is of only antarmuhūrta. (141)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
तेइन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१४२॥

उस त्रीन्द्रिय की (काय को न छोड़कर बार-बार उसी काय में जन्म-मरण करने का काल) कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की है ॥१४२॥

The longest body duration (by births and deaths in the same body) of three-sensed mobile beings is of innumerable time and shortest is of antarmuhūrta. (142)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
तेइन्दियजीवाणं, अन्तरेयं वियाहियं ॥१४३॥

उन त्रीन्द्रिय जीवों का अन्तर (त्रीन्द्रिय काय को छोडकर अन्य कायों में परिभ्रमण करके पुनः त्रीन्द्रिय काय में जन्म ग्रहण करना–इस मध्य में अन्य योनियों में व्यतीत हुआ काल) उत्कृष्टतः अनन्तकाल और जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल का बताया गया है ॥१४३॥

The interval period (quitting three-sensed body moving in other bodies and again taking birth in three-sensed body--in between time) is maximumly of infinite time period and minimumly of antarmuhūrta. (143)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१४४॥

इन त्रीन्द्रिय जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार कहे गये हैं ॥१४४॥

There becomes thousands of types of these three-sensed beings due to colour, smell, taste, touch and form. (144)

चतुरिन्द्रिय त्रस काय प्ररूपणा—

चउरिन्दिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१४५॥

जो चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियों वाले) जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) पर्याप्त और (२) अपर्याप्त। उनके भेद मुझसे सुनो ॥१४५॥

Four-sensed mobile beings are of two kinds—(1) fully developed and (2) undeveloped. Listen their divisions from me. (145)

अन्धिया पोत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा ।
भमरे कीड-पयंगे य, ढिंकुणे कुंकुणे तहा ॥१४६॥

अन्धिया—अन्धिका, पोतिया—पोत्तिका, मच्छिया—मक्षिका (मक्खी), मसगा—मशक (मच्छर-डांस) भमरे—भ्रमर (भौंरा), कीड-पयंगे—कीट (टिड्डे, पतंगे) ढिंकुणे—ढिंकुण (पिस्सु), कंकुणे—कंकुण—॥१४६॥

Andhikā, pottikā, flies, mosquitoes, large black bees, moths, gnat (pissu), kaṇkuṇa—(146)

कुक्कुडे सिंगिरीडी य, नन्दावत्ते य विंछिए ।
डोले भिंगारी य, विरली अच्छिवेहए ॥१४७॥

कुक्कुडे—कुक्कुड, सिंगिरीडी—शृंगिरीटी, नन्दावत्ते—नन्दावर्त, विंछिए—बिच्छु (वृश्चिक), ढोले—ढोल, भिंगरीडी—भृंगरीटक (झींगुर अथवा भ्रमरी), विरली—विरली, अच्छिवेहए—अक्षिवेधक—॥१४७॥

Kukkuḍa, śṛṅgarīṭī, nandāvarta, scorpions, dhola, bhṛṅgrīṭaka or grasshopper, virali, akṣivedhaka—(147)

अच्छिले माहए अच्छिरोडए, विचित्ते चित्तपत्तए ।
ओहिंजलिया जलकारी य, नीया तन्तवगाविया ॥१४८॥

अच्छिले—अक्षिल, माहए—मागध, अच्छिरोडए—अक्षिरोडक, विचित्ते—विचित्र, चित्तपत्तए—चित्रपत्रक, ओहिंजलिया—ओहिंजलिया, जलकारी—जलकारी, नीया—नीचक, तन्तवगाविण—तन्तवक (अथवा तम्बगाइण—ताम्रक या तम्बकायिक)—॥१४८॥

Akṣila, māgadha, akṣiroḍaka, vicitra, citrapatraka, ohiṁjaliā, jalakārī, nīcaka, tantavaka etc.—(148)

इइ चउरिन्दिया एए, ऽणेगहा एवमायओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया ॥१४९॥

इत्यादि चतुरिन्द्रिय त्रसकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में हैं; समस्त लोक में नहीं हैं ॥१४९॥

Thus, there are several kinds of four-sensed movable beings. These all are in one part of the universe, not in whole. (149)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१५०॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से (सभी चतुरिन्द्रिय जीव) अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा सादि सान्त भी हैं ॥१५०॥

Regarding continuity all these four-sensed mobile beings are beginningless and endless but due to individual age duration these have beginning and end too. (150)

छच्चेव य मासा उ, उक्कोसेण वियाहिया।
चउरिन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१५१॥

चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति छह मास (महीने) की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥१५१॥

The longest age duration of four sensed movable beings is of six months and shortest is of antarmuhūrta. (151)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
चउरिन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥१५२॥

उस अपनी चतुरिन्द्रिय काय को न छोड़कर (उसी में बार-बार जन्म-मरण करने का काल) कायस्थिति उत्कृष्टतः संख्यात काल की और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥१५२॥

The longest body duration of four-sensed mobile being (by continuous births and deaths in the same body) is of numerable time and shortest is of antarmuhūrta. (152)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढंमि सए काए, अन्तरेयं वियाहियं ॥१५३॥

अपनी चतुरिन्द्रिय काय को छोड़कर अन्य योनियों में भ्रमण करने के बाद पुनः चतुरिन्द्रिय में जन्म ग्रहण करने तक का काल-अन्तर उत्कृष्ट रूप से अनन्तकाल का तथा जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त काल का है ॥१५३॥

The interval period (quitting four-sensed body and moving elsewhere, again taking birth in four-sensed body, in between time) is maximumly of infinite time and minimumly of antarmuhūrta. (153)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१५४॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से चतुरिन्द्रिय जीवों के हजारों प्रकार हैं ॥१५४॥

Due to colour, smell, taste, touch and form there becomes thousands kinds of four-sensed mobile beings. (154)

पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीवों की प्ररूपणा—

पंचिन्दिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।
नेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया ॥१५५॥

जो पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीव हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं—(१) नैरयिक (२) तिर्यंच (३) मनुष्य और (४) देव ॥१५५॥

Five-sensed movable beings are of four kinds—(1) Hellish (2) Crooked beings or animals, birds etc. (3) men-human beings and (4) gods. (155)

नैरयिक त्रस जीव प्ररूपणा—

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसू भवे।
रयणाभ-सक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥१५६॥

नैरयिक सात प्रकार के हैं, वे सात पृथिवियों (नरक भूमियों) में उत्पन्न होते हैं। वे सात पृथिवियाँ हैं—(१) रत्नाभा, (२) शर्कराभा, (३) बालुकाभा—॥१५६॥

Denizens of hells are of seven kinds, because hells are seven, these souls take birth in seven hells, the names of hells are—(1) Ratnābhā (2) Śarkarābhā (3) Bālukābhā—(156)

पंकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा।
इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ॥१५७॥

(४) पंकाभा (५) धूमाभा, (६) तमा और (७) तमस्तमा—इन सात पृथिवियों में उत्पन्न होने के कारण नैरयिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं ॥१५७॥

(4) Paṅkābhā (5) Dhūmābhā, (6) Tamā and (7) Tamastamā—due to taking birth in these hells, the hellish beings are called of seven kinds. (157)

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया।
एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥१५८॥

वे सभी नैरयिक (नारकी) जीव लोक के एकदेश (अंश या भाग) में ही हैं—ऐसा कहा गया है। अब इससे आगे मैं उन नारकी जीवों का चार प्रकार का काल-विभाग कहूँगा ॥१५८॥

All these hellish beings are in a part of universe (loka). Now I shall describe fourfold divisions of these beings regarding time. (158)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१५९॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से नारक जीव अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा से वे सादि और सान्त भी हैं ॥१५९॥

Due to continuous flow hellish beings are beginningless and endless but due to individual age duration they have beginning and end too. (159)

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया ।
पढमाए जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥१६०॥

प्रथम–रत्नाभा या रत्नप्रभा नरक पृथिवी में नैरयिक जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः एक सागरोपम की और जघन्यतः दस हजार वर्ष की बताई गई है ॥१६०॥

Longest age duration of the hellish souls of first hell, named Ratnābhā or Ratnaprabhā, is of one sāgaropama and shortest duration is of ten thousand years. (160)

तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं, एगंतु सागरोवमं ॥१६१॥

दूसरी शर्कराभा या शकर्राप्रभा नरक पृथिवी में नैरयिक–नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन सागरोपम की और जघन्य आयु स्थिति एक सागरोपम की कही गई है ॥१६१॥

Longest age duration of the hellish souls of second hell, named Śarkarābhā or Śarkarāprabhā, is of three śāgaropamas and shortest is of one sāgaropama. (161)

सत्तेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
तइयाए जहन्नेणं, तिण्णेव उ सागरोवमा ॥१६२॥

तीसरी बालुकाभा या बालुकाप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों–नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सात सागरोपम की और जघन्य आयु स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है ॥१६२॥

Longest age duration of the hellish souls of third hell, named Bālukābhā or Bālukāprabhā, is of seven sāgaropamas and shortest is of three sāgaropamas. (162)

दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
चउत्थीए जहन्नेणं, सत्तेव उ सागरोवमा ॥१६३॥

चौथी पंकाभा या पंकप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों–नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सात सागरोपम की कही गई है ॥१६३॥

Longest age duration of the hellish souls of fourth hell named Paṅkābhā or Paṅkaprahā, is of ten sāgaropamas and shortest is of seven sāgaropamas. (163)

सत्तरस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
पंचमाए जहन्नेणं, दस चेव उ सागरोवमा ॥१६४॥

पाँचवी धूमाभा या धूमप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों–नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दस सागरोपम की बताई गई है ॥१६४॥

Longest age duration of the hellish souls of fifth hell, named Dhūmābhā or Dhūmaprabhā, is of seventeen sāgaropamas and shortest is of ten sāgaropamas. (164)

बावीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥१६५॥

छठी तमा या तमःप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की कही गई है ॥१६५॥

Longest age duration of the hellish souls of sixth hell, named Tamā or Tamḥprabhā, is of twentytwo sāgaropamas and shortest is of seventeen sāgaropamas. (165)

तेत्तीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।
सत्तमाए जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥१६६॥

सातवीं तमतमा या तमस्तमा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तेतीस (३३) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की कही गई है ॥१६६॥

Longest age duration of the hellish souls of seventh hell, named Tamatamā or Tamastamā, is of thirtythree sāgaropamas and shortest age duration is of twentytwo sāgaropamas. (166)

जा चेव उ आउठिई, नेरइयाणं वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥१६७॥

नैरयिक-नारकी जीवों की जो (जघन्य और उत्कृष्ट) आयुस्थिति बताई गई है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति होती है ॥१६७॥

As much the age duration of hellish souls is described so much is their body duration. (167)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढंमि सए काए, नेरइयाणं तु अन्तरं ॥१६८॥

स्वकाय-नैरयिक शरीर के छोड़ने के बाद पुनः नैरयिक शरीर प्राप्त करने का अन्तराल-अन्तर उत्कृष्ट रूप से अनन्त काल का और जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त काल का होता है ॥१६८॥

Quitting once hellish body-hell and again taking birth in hellish body-hell, in between time-interval maximumly of infinite time and minimumly is of antarmuhūrta. (168)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१६९॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से इन नैरयिक जीवों के हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥१६९॥

There becomes thousands of types of hellish souls due to colour, smell, taste, touch and form. (169)

तिर्यंच पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीवों की प्ररूपणा—

पंचिन्दियतिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया।
सम्मुच्छिमतिरिक्खाओ, गब्भवक्कन्तिया तहा ॥१७०॥

जो पंचिन्द्रिय तिर्यंच जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(१) संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव और (२) गर्भ व्युत्क्रान्तिक (गर्भज) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव ॥१७०॥

Five sensed crooked beings or animals are of two kinds-(1) which originate by generatio aequivoca (saṁmūrcchima) and (2) born from the womb. (170)

दुविहावि ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा ।
खहयरा य बोद्धव्वा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥१७१॥

ये दोनों प्रकार के (गर्भज और संमूर्च्छिम) पंचिन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार और जानने चाहिए-(१) जलचर (२) थलचर (स्थलचर) और (३) नभचर। इन तीनों के भेद मुझ से सुनो ॥१७१॥

Either of them are again of three kinds-(1) aquatic (2) terrestrial and (3) aerial animals. *Hear the sub-divisions of these from me.* (171)

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जलचर जीव-

मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तहा ।
सुंसुमारा य बोद्धव्वा, पंचहा जलयराहिया ॥१७२॥

जल में विचरण करने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय जलचर जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं-(१) मत्स्य, (२) कछुआ, (३) ग्राह-घड़ियाल, (४) मगरमच्छ और (५) सुंसुमार-ये पाँच प्रकार जानने चाहिए ॥१७२॥

Moving, swimming, living in water five sensed aquatic animals are of five kinds-(1) fishes (2) tortoises (3) crocodiles (4) makaras and (5) Gangetic porpoises. (172)

लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥१७३॥

ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं होते-ऐसा कहा गया है। इससे आगे अब मैं इन जलचर जीवों का काल विभाग चार प्रकार से कहूँगा ॥१७३॥

These all are in a part of universe (loka) not in whole universe. Now further I shall describe fourfold divisions regarding time of all these. (173)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१७४॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा ये जलचर जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी हैं ॥१७४॥

By continuous flow these aquatic five-sensed animals have neither beginning nor end and due to individual age duration they have beginning and end too. (174)

एगा य पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई जलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७५॥

इन पंचेन्द्रिय जलचर जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक करोड़ पूर्व (७०५६0000000000 वर्ष) की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बताई गई है ॥१७५॥

Longest age duration of these aquatic animals is of one crore pūrva (70560000000000 years) and shortest is of antarmuhūrta. (175)

पुव्वकोडीपुहत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
कायट्ठिई जलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१७६॥

इन पंचेन्द्रिय जलचर जीवों की कायस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्टतः पूर्व कोटि-पृथक्त्व (२ से९ करोड़ पूर्व) की बताई गई है ॥१७६॥

The shortest body duration of these five sensed aquatic animals is of antarmuhūrta and longest is of two to nine crore pūrvas. (176)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।
विजढंमि सए काए, जलयराणं तु अन्तरं ॥१७७॥

स्वकाय-जलचरकाय छोड़कर तथा अन्य योनियों में भ्रमण करके पुनः जलचर काय में उत्पन्न होने तक का मध्यवर्ती अन्तराल-अन्तर जलचर जीवों का अन्तर अधिक से अधिक अनन्तकाल का और कम से कम अन्तर्मुहूर्त का होता है ॥१७७॥

Once quitting aquatic body and transmigrating in other species, again taking birth in aquatic body–the longest interval is of infinite time and shortest is of antarmuhūrta. (177)

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१७८॥

इन जलचर पंचेन्द्रिय जीवों के-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥१७८॥

With reagard to colour, smell, taste, touch and form, there becomes thousands of kinds of these five sensed aquatic animals. (178)

तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीव–

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।
चउप्पया चउविहा, ते मे कित्तयओ सुण ॥१७९॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के दो प्रकार हैं-(१) चतुष्पाद और (२) परिसर्प। चतुष्पाद जीव चार प्रकार के होते हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनो ॥१७९॥

Five sensed terrestrial animals are of two kinds-(1) quadrupeds and (2) reptiles. Quadrupeds five sensed animals are of four kinds. Hear from me the description of all these. (179)

एगखुरा दुखुरा चेव, गण्डीपय-सणप्पया।
हयमाइ-गोणमाइ–, गयमाइ-सीहमाइणो ॥१८०॥

चतुष्पाद पंचेन्द्रिय जीवों के चार भेद-(१) एक खुरवाले (२) दो खुर वाले (३) गण्डीपद वाले और सनख पद वाले (इनके क्रमशः उदाहरण) (१) एक खुरवाले-घोड़ा, गर्दभ-गधा आदि (२) दो

खुरवाले–गाय, बैल, भैंसा आदि (३) गण्डीपद–हाथी, ऊँट आदि (४) सनखपद–बिल्ली, श्वान–कुत्ता आदि ॥१८०॥

Four kinds of five sensed quadruped animals–(1) solidungular animals, like–horse, (2) biungular animals, like–cows, bulls etc., (3) multiungular (or of solid circular feet) animals, like elephant, camel etc., and (4) animals having toes with nails like–cat, dog, lion etc. (180)

भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्प दुविहा भवे ।
गोहाई अहिमाई य, एक्केक्का ऽणेगहा भवे ॥१८१॥

परिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं–(१) भुज परिसर्प और (२) उर-परिसर्प। (इनके उदाहरण क्रमशः) भुज-परिसर्प–गोधा–गोह (गिलहरी, चूहा आदि) और (२) उर-परिसर्प–सर्प आदि। इनमें से प्रत्येक के अनेक भेद (प्रकार) हैं ॥१८१॥

Terrestrial five sensed reptiles are of two kinds–(1) moving on arms like–squirrel, rat etc., (2) moves on breast, like–serpent etc. These both are of various kinds. (181)

लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥१८२॥

ये सभी स्थलचर पंचेन्द्रिय जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं; समस्त लोक में नहीं हैं। इससे आगे अब मैं उन तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीवों के काल विभाग का चार प्रकार से वर्णन करूँगा ॥१८२॥

All these five sensed terrestrial animals are in a part of universe, not in whole universe. Now further I will describe the fourfold division with regard to time of these five sensed terrestrial animals. (182)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१८३॥

संतति–प्रवाह की अपेक्षा से वे तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥१८३॥

By continuous flow those five sensed terrestrial animals are beginningless and endless. But regarding individual age duration these are with beginning and end. (183)

पलिओवमाउ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई थलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१८४॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की आयुस्थिति (भवस्थिति) उत्कृष्टतः तीन पल्योपम की और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥१८४॥

Longest age duration of five sensed terrestrial animals is of three palyopamas and shortest is of antarmuhūrta. (184)

पलिओवमाउ तिण्णि उ, उक्कोसेण तु साहिया ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१८५॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की कायस्थिति उत्कृष्ट रूप से कोटि पूर्व पृथक्त्व सहित तीन पल्योपम की होती है और जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त की बताई गई है ॥१८५॥

Longest body duration of five sensed terrestrial animals is of koṭi pūrva pṛthakatva plus three palyopamas and shortest is of antarmuhūrta. (185)

कायट्ठिई थलयराणं, अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालमणन्तमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥१८६॥

उनका अन्तर उत्कृष्ट अनन्तकाल का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त का है ॥१८६॥

Their longest interval is of infinite time and shortest is of antarmuhūrta. (186)

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१८७॥

इन स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥१८७॥

There becomes thousands of kinds of five sensed terrestrial animals regarding colour, smell, taste, touch and form. (187)

नभचर पंचेन्द्रिय त्रस जीव

चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया ।
विययपक्खी य बोद्धव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ॥१८८॥

नभचर-पक्षी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के जानने चाहिए-(१) चर्म पक्षी (चमगादड़ आदि) (२) लोमपक्षी (रोमपक्षी) (हंस आदि) (३) समुद्ग पक्षी और (४) वितत पक्षी ॥१८८॥

Five sensed birds or winged animals are of four kinds–(1) of membranous wings, like-bats etc., (2) of feathered wings, like–geese etc., (3) of box-shapped wings, which are always closed, like–samudga bird and (4) of outspread wings, they sit upon their spread wings, like vitata birds. (188)

लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।
इत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥१८९॥

ये नभचर (पक्षी) लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही रहते हैं, समस्त लोक में नहीं रहते। इससे आगे मैं उन नभचर (आकाशचारी-खेचर) पक्षियों के कालविभाग का चार प्रकार से वर्णन करूँगा ॥१८९॥

These all winged animals, birds are only in a part of universe, not in whole universe. Now further I shall describe the fourfold divisions regarding time of all these kinds of birds. (189)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१९०॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से नभचर पक्षी अनादि-अनन्त होते हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त (आदि और अन्त सहित) भी होते हैं ॥१९०॥

With continuous flow all these birds flying in the sky are without beginning and end. But considering individual age duration these are with beginning and end too. (190)

पलिओवमस्स भागो, असंखेज्जइमो भवे ।
आउट्ठिई खहयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९१॥

खेचर (नभचर) पक्षियों की उत्कृष्ट आयुस्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१९१॥

Longest age duration of birds flying in the sky is of innumerable part of palyopama and shortest is of antarmuhūrta. (191)

असंखभागो पलियस्स, उक्कोसेण उ साहिओ ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥१९२॥

खेचर जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः कोटिपूर्व पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥१९२॥

Longest body duration of birds flying in the sky is of koṭi pūrva pṛthaktva and shortest is of antarmuhūrta. (192)

कायठिई खहयराणं, अन्तरं तेसिमं भवे ।
कालं अणन्तमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥१९३॥

उन खेचर जीवों का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्त काल का और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त का होता है ॥१९३॥

Longest interval of these birds is of infinite time and shortest is of antarmuhūrta. (193)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१९४॥

इन खेचर जीवों के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों प्रकार होते हैं ॥१९४॥

There becomes thousands of kinds of flying beings with regard to colour, smell, taste, touch and form. (194)

मनुष्यों सम्बन्धी प्ररूपणा–

मणुया दुविहभेया उ, ते मे कित्तयओ सुण ।
संमुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कन्तिया तहा ॥१९५॥

मनुष्यों के दो भेद हैं–(१) संमूर्च्छिम मनुष्य और (२) गर्भ-व्युत्क्रान्तिक–गर्भज मनुष्य। उन भेदों के विषय में मैं कहता हूँ, सुनो ॥१९५॥

Men (human beings) are of two kinds–(1) originated by generatio aequivoca (saṁmūrcchima) and (2) born from the womb (garbhaja). I describe their divisions, listen to me. (195)

गब्भवक्कन्तिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ।
अकम्म-कम्मभूमा य, अन्तरद्दीवया तहा ॥१९६॥

जो गर्भज मनुष्य हैं, वे तीन प्रकार के बताये गये हैं–(१) कर्मभूमिज (२) अकर्मभमिज और (३) अन्तरद्वीपज ॥१९६॥

Womb originated men are of three types–(1) born in Karmabhûmi, (2) born in Akarmabhûmi and (3) born in minor islands (antaradvipas). (196)

पन्नरस-तीसइ-विहा, भेया अट्ठवीसइं ।
संखा उ कमसो तेसिं, इइ एसा वियाहिया ॥१९७॥

कर्मभूमिज मनुष्यों के पन्द्रह (१५) प्रकार, अकर्मभूमिज मनुष्यों के तीस (३०) प्रकार और अन्तरद्वीपज मनुष्यों के अट्ठाईस प्रकार कहे गये हैं ॥१९७॥

Fifteen kinds of born in Karmabhûmis, thirty kinds of born in Akarmabhûmis and twentyeight kinds of born in minor islands–thus the men are said. (197)

संमुच्छिमाण एमेव, भेओ होइ आहिओ ।
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ॥१९८॥

इसी तरह के तीन भेद संमूर्च्छिम मनुष्यों के होते हैं। ये सभी (गर्भज और संमूर्च्छिम) मनुष्य लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही बताये गये हैं ॥१९८॥

Likewise, there are three kinds of men originating by generatio aequivoca. All these types of men (both originating by generatio aequivoca and born from the womb) reside in a part of the universe, not in whole universe. (198)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।
ठियं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१९९॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा (सभी प्रकार के मनुष्य) ये सभी अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी हैं ॥१९९॥

By continuous flow all the types of men are without beginning and end but considering individual age duration all these are with beginning and end too. (199)

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई मणुयाणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥२००॥

(गर्भज) मनुष्य की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन पल्योपम की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥२००॥

The longest age duration of men born from the womb, is of three palyopamas and shortest is of antarmuhûrta. (200)

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया ।
पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥२०१॥

(गर्भज) मनुष्य की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की बताई गई है ॥२०१॥

The longest body duration of men, born from the womb, is of pūrva koti pṛthaktva plus three palyopama and shortest body duration is of antarmuhūrta. (201)

कायट्ठिई मणुयाणं, अन्तरं तेसिमं भवे ।
अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥२०२॥

उन (गर्भज मनुष्यों) का अन्तर (काल) उत्कृष्टतः अनन्त काल है और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त काल का होता है ॥२०२॥

The longest interval time of men born from the womb is of infinite time and shortest is of antarmuhūrta. (202)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥२०३॥

उन (गर्भज मनुष्यों) के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥२०३॥

Thousands of kinds of womb-born men become with regard to colour, smell, taste, touch and form. (203)

देवों के सम्बन्ध में प्ररूपणा—

देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण ।
भोमिज्ज-वाणमन्तर-, जोइस-वेमाणिया तहा ॥२०४॥

देव चार प्रकार के बताये गये हैं–(१) भोमिज्ज-भवनवासी, (२) वाणमंतर–वाणव्यंतर (व्यंतर) (३) जोइस–ज्योतिष्क (ज्योतिषी) और (४) वेमाणिया–वैमानिक। मैं इन चारों की प्ररूपणा करता हूँ, तुम मुझसे सुनो ॥२०४॥

There are four kinds of gods–(1) Bhavanavāsī (2) Vāṇvyantara (3) Jyotisı and (4) Vaimānikas. I describe them, hear from me. (204)

दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो ।
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥२०५॥

दस प्रकार के भवनवासी देव, आठ प्रकार के व्यंतर देव (वणचारिणो), पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव और दो प्रकार के वैमानिक देव हैं ॥२०५॥

There are ten kinds of Bhavanavāsī, eight kinds of Vyantara, five kinds of Jyotiṣī and two kinds of Vaimānika gods. (205)

असुरा नाग-सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया ।
दीवोदहि-दिसा वाया, थणिया भवणवासिणो ॥२०६॥

भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा-(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) सुपर्णकुमार (सुवण्णा) (४) विद्युतकुमार (विज्जू) (५) अग्निकुमार (अग्गी) (६) द्वीपकुमार (७) उदधिकुमार (८) दिक्कुमार (९) वायुकुमार (वाया) और (१०) स्तनित कुमार (थणिया) ॥२०६॥

(1) Asurakumāra (2) Nāgakumāra, (3) Suparṇakumāra (4) Vidyutkumāra (5) Agnikumāra (6) Dvīpakumāra (7) Udadhikumāra (8) Dikkumāra (9) Vāyukumāra and (10) Stanita kumāra–these are ten kinds of Bhavanavāsī gods. (206)

पिसाय-भूय-जक्खा य, रक्खसा किंनरा य किंपुरिसा ।
महोरगा य गन्धव्वा, अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥२०७॥

वाणव्यंतर (व्यन्तर) देव आठ प्रकार के होते हैं, यथा-(१) पिशाच (२) भूत (३) यक्ष (४) राक्षस (५) किन्नर (६) किंपुरुष (७) महोरग और (८) गन्धर्व ॥२०७॥

(1) Piśāca (2) Bhūta (3) Yakṣa (4) Rākṣasa (5) Kinnara (6) Kiṁpuruṣa (7) Mahoraga and (8) Gandarbha–these are eight kinds of Vāṇavyantara (vyantara) gods. (207)

चन्दा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा ।
दिसाविचारिणो चेव, पंचहा जोइसालया ॥२०८॥

ज्योतिष्क (ज्योतिषी) देव पाँच प्रकार के हैं, यथा-(१) चन्द्र (२) सूर्य (३) नक्षत्र (४) ग्रह और (५) तारा गण। इन पाँचों प्रकार के ज्योतिषी देवों के विमान (आलय) भ्रमणशील (दिसाविचारी) (मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते) हैं ॥२०८॥

(आ. उ. ऋ. प्रति में दिसाविचारी के स्थान पर दिये गये 'ठिया वि चारी, पाठ के अनुसार अर्थ होगा- इन पाँचों प्रकार के ज्योतिषी देवों के विमान स्थिर (ठिया) भी (वि) हैं और चर-गतिशील-भ्रमणशील (चारी) भी हैं।)

(1) Moon, (2) sun (3) nakṣatra (4) planets and (5) hosts of stars–these are five kinds of Jyotiṣī gods. The dwellings, palaces or planes of these gods are moving.

(If the word 'ṭhiyā vi cārī', is substituted for the word 'disavicārī' in the original couplet as we get ā. u. ṛ reading then the explanation would be–These dwellings of five kinds of Jyotiṣī gods are also still and also moving –and it seems more appropriate.) (208)

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।
कप्पोवगा य बोद्धव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥२०९॥

जो वैमानिक देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं-(१) कल्पोपगक (कल्पोपपन्न) और (२) कल्पातीत-जानने चाहिए ॥२०९॥

Vaimānika gods are of two kinds–(1) who are born in (twelve) heavens (kalpas) (kalpopapanna) and (2) those born above the dwellings of heavens. (kalpātīta). (209)

कप्पोवगा बारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा ।
सणंकुमार-माहिन्दा, बम्भलोगा य लन्तगा ॥२१०॥

कल्पोपक (कल्पोपपन्न) देवों के बारह भेद हैं, यथा–(१) सौधर्म (२) ईशानक (३) सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक–॥२१०॥

The kalpopapanna gods are of twelve kinds–(1) Saudharma (2) Īśānaka (3) Sanatkumāra (4) Māhendra (5) Brahmaloka (6) Lāntaka–(210)

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।
आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ॥२११॥

(७) महाशुक्र (८) सहस्रार, (९) आणत (१०) प्राणत (११) आरण और (१२) अच्युत–ये कल्पोपक देव हैं ॥२११॥

(7) Mahāśukra (8) Sahasrāra (9) Āṇata (10) Prāṇata (11) Āraṇa and (12) Acyuta–these are kalpopapanna gods. (211)

कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।
गेविज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं ॥२१२॥

जो कल्पातीत देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा (१) ग्रैवेयक और (२) अनुत्तर (विमानवासी) देव। ग्रैवेयक देवों के पुनः ९ भेद हैं ॥१२॥

Kalpātita gods are of two kinds–(1) Graiveyakas and (2) Anuttaras. Again Graiveyakas are of nine types. (212)

हेट्ठिमा-हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा-मज्झिमा तहा।
हेट्ठिमा-उवरिमा चेव, मज्झिमा-हेट्ठिमा तहा ॥२१३॥

(१) अधस्तन–अधस्तन (२) अधस्तन–मध्यम, (३) अधस्तन-उपरितन (४) मध्यम–अधस्तन–॥२१३॥

(1) Lower-lower (2) lower-middle (3) lower-upper (4) middle-lower–(213)

मज्झिमा-मज्झिमा चेव, मज्झिमा-उवरिमा तहा।
उवरिमा-हेट्ठिमा चेव, उवरिमा-मज्झिमा तहा ॥२१४॥

(५) मध्यम–मध्यम (६) मध्यम-उपरितन (७) उपरितन-अधस्तन (८) उपरितन-मध्यम ॥२१४॥

(5) middle-middle (6) middle-upper (7) upper-lower (8) upper middle–(214)

उवरिमा-उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा।
विजया वेजयन्ता य, जयन्ता अपराजिया ॥२१५॥

और (९) उपरितन–उपरितन–ये ९ प्रकार के ग्रैवेयक देव हैं।

(१) विजय (२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपराजित ॥२१५॥

and (9) upper-upper–these are nine types of Graiveyaka gods. (Really beyond the twelfth heaven there are three trios–lower, middle, upper the gods dwelling in these three trios are Graiveyaka gods and are named according to the trios.) (1) Vijaya (2) Vaijayanta (3) Jayant (4) Aparājita–(215)

सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पंचहाऽणुत्तरा सुरा।
इइ वेमाणिया देवा, णेगहा एवमायओ ॥२१६॥

और (५) सर्वार्थसिद्धक-ये पाँच प्रकार के अनुत्तर (विमावासी) देव हैं।
इस तरह वैमानिक देव अनेक प्रकार के कहे गये हैं ॥२१६॥

And Sarvārthasiddhaka–these five kinds are of anuttara gods–dwelling in these five vimānas (planes) so these are called anuttara vimānavāsī gods. Thus Vaimānika gods are called of several kinds. (216)

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया।
इत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥२१७॥

ये सभी (चारों निकायों के) देव लोक के एक देश (अंश या भाग) में कहे गये हैं। इससे आगे मैं चार प्रकार से उनके काल-विभाग को कहूँगा ॥२१७॥

All these gods (of four abodes) reside in a part of universe. Now further I shall describe the fourfold time division of all these. (217)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥२१८॥

(ये चारों निकायों के देव) संतति-प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी होते हैं ॥२१८॥

By continuous flow all these gods of four abodes are without beginning and end but due to individual age duration are with beginning and end too. (218)

साहियं सागरं एक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे।
भोमेज्जाणं जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥२१९॥

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक एक सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दस हजार वर्ष की होती है ॥२१९॥

Longest age duration of Bhavanavāsī gods is somewhat more than one sagaropama and shortest is of ten thousand years. (219)

पलिओवमेगं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
वन्तराणं जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥२२०॥

व्यंतर देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक पल्योपम की तथा जघन्य आयुस्थिति दस हजार वर्ष की होती है ॥२२०॥

Longest age duration of Vyantara gods is of one palyopama and shortest is of ten thousand years. (220)

पलिओवमं एगं तु, वासलक्खेण साहियं।
पलिओवमऽट्ठभागो, जोइसेसु जहन्निया ॥२२१॥

ज्योतिष्क (ज्योतिषी) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की और जघन्य आयुस्थिति पल्योपम के आठवें भाग प्रमाण होती है ॥२२१॥

Longest age duration of Jyotiṣka gods is one lākha years plus one palyopama and shortest is of eighth part of one palyopama. (221)

दो चेव सागराइं, उक्कोसेण वियाहिया ।
सोहम्मंमि जहन्नेणं, एगं च पलिओवमं ॥२२२॥

सौधर्म (देवलोक में) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दो सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति एक पल्योपम की बताई गई है ॥२२२॥

Longest age duration of the gods of Saudharma heaven is of two sāgaropamas and shortest is of one palyopama. (222)

सागरा साहिया दुन्नि, उक्कोसेण वियाहिया ।
ईसाणम्मि जहन्नेणं, साहियं पलिओवमं ॥२२३॥

ईशान (देवलोक में) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की और जघन्य आयु स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम की होती है ॥२२३॥

Longest age duration of the gods of Īśāna heaven is somewhat more than two sāgaropamas and shortest is of somewhat more than one palyopama. (223)

सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणंकुमारे जहन्नेणं, दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥२२४॥

सनत्कुमार देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सात सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दो सागरोपम की होती है ॥२२४॥

Longest age duration of the gods of Sanatkumāra heaven is of seven sāgaropamas and shortest is of two sāgaropamas. (224)

साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिन्दम्मि जहन्नेणं, साहिया दुन्नि सागरा ॥२२५॥

माहेन्द्रकुमार स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की होती है ॥२२५॥

Longest age duration of the gods of Māhendra heaven is somewhat more tnan seven sāgaropamas and shortest age duration is somewhat more than two sāgaropamas. (225)

दस चेव सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
बम्भलोए जहन्नेणं, सत्त ऊ सागरोवमा ॥२२६॥

ब्रह्मदेवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सात सागरोपम की होती है ॥२२६॥

Longest age duration of the gods of Brahmadevaloka (heaven) is of ten sāgaropamas and shortest age duration is of seven sāgaropamas. (226)

चउद्दस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
लन्तगम्मि जहन्नेणं, दस ऊ सागरोवमा ॥२२७॥

लान्तक देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति चौदह सागरोपम की और जघन्य दस सागरोपम की होती है ॥२२७॥

Longest age duration of the gods of Lāntaka heaven is of fourteen sāgaropamas and shortest is of ten sāgaropamas. (227)

सत्तरस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
महासुक्के जहन्नेणं, चउद्दस सागरोवमा ॥२२८॥

महाशुक्र देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति चौदह सागरोपम की होती है ॥२२८॥

Longest age duration of the gods of Mahāśukra heaven is of seventeen sāgaropamas and shortest is of fourteen sāgaropamas. (228)

अट्ठारस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
सहस्सारे जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥२२९॥

सहस्रार देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति अठारह सागर की और न्यूनतम आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की होती है ॥२२९॥

Longest age duration of the gods of Sahasrāra heaven is of eighteen sāgaropamas and shortest is of seventeen sāgaropamas. (229)

सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आणयम्मि जहन्नेणं, अट्ठारस सागरोवमा ॥२३०॥

आणत (आनत) देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति उन्नीस (१९) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति अठारह सागरोपम की होती है ॥२३०॥

Longest age duration of the gods of Āṇata (Ānata) heaven is of nineteen sāgaropamas and shortest is of eighteen sāgaropamas. (230)

वीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पाणयम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणवीसई ॥२३१॥

प्राणत देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति बीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति उन्नीस (१९) सागरोपम की है ॥२३१॥

Longest age duration of the gods of Prāṇata heaven is of twenty sāgaropamas and shortest is of nineteen sāgaropamas. (231)

सागरा इक्कवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आरणम्मि जहन्नेणं, वीसई सागरोवमा ॥२३२॥

आरण स्वर्गलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति इक्कीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति बीस सागरोपम की होती है ॥२३२॥

Longest age duration of the gods of Ārana heaven is of twentyone sāgaropamas and shortest is of twenty sāgaropamas. (232)

बावीसं सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥२३३॥

अच्युत देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति इक्कीस सागरोपम की होती है ॥२३३॥

Longest age duration of the gods of Acyuta heaven is of twentytwo sāgaropamas and shortest age duration is of twentyone sāgaropamas. (233)

तेवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥२३४॥

प्रथम ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति तेईस (२३) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति बाईस सागरोपम की होती है ॥२३४॥

Longest age duration of the gods of first Graiveyaka is of twentythree sāgaropamas and shortest is of twentytwo sāgaropamas. (234)

चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
बिइयम्मि जहन्नेणं, तेवीसं सागरोवमा ॥२३५॥

द्वितीय ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति चौबीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति तेईस (२३) सागरोपम की होती है ॥२३५॥

Longest age duration of the gods of second Graiveyaka is of twentyfour sāgaropamas and shortest is of twentythree sāgaropamas. (235)

पणवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि जहन्नेणं, चउवीसं सागरोवमा ॥२३६॥

तीसरे ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति पच्चीस (२५) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति चौबीस सागरोपम की होती है ॥२३६॥

Longest age duration of the gods of third Graiveyaka is of twentyfive sāgaropamas and shortest is of twentyfour sāgaropamas. (236)

छव्वीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउत्थम्मि जहन्नेणं, सागरा पणुवीसई ॥२३७॥

चौथे ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति छब्बीस (२६) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति पच्चीस सागरोपम की होती है ॥२३७॥

Longest age duration of the gods of fourth Graiveyaka is of twentysix sāgaropamas and shortest is of twentyfive sāgaropamas. (237)

सागरा सत्तवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
पंचमम्मि जहन्नेणं, सागरा उ छवीसई ॥२३८॥

पाँचवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सत्ताईस (२७) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति छब्बीस (२६) सागरोपम की होती है ॥२३८॥

Longest age duration of the gods of firfth Graiveyaka is of twentyseven sāgaropamas and shortest is of twentysix sāgaropamas. (238)

सागरा अट्ठवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
छट्ठम्मि जहन्नेणं, सागरा सत्तवीसई ॥२३९॥

छठे ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति अट्ठाईस (२८) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सत्ताईस (२७) सागरोपम की होती है ॥२३९॥

Longest age duration of the gods of sixth Graiveyaka is of twentyeight sāgaropamas and shortest is of twentyseven sāgaropamas. (239)

सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
सत्तमम्मि जहन्नेणं, सागरा अट्ठवीसई ॥२४०॥

सातवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति उन्तीस (२९) सागरोपम की और जघन्य आयु स्थिति अट्ठाईस (२८) सागरोपम की होती है ॥२४०॥

Longest age duration of the gods of seventh Graiveyaka is of twentynine sāgaropamas and shortest is of twentyeight sāgaropamas. (240)

तीस तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणतीसई ॥२४१॥

आठवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति उन्तीस (२९) सागरोपम की होती है ॥२४१॥

Longest age duration of the gods of eighth Graiveyaka is of thirty sāgaropamas and shortest is of twentynine sāgaropamas. (241)

सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
नवमम्मि जहन्नेणं, तीसई सागरोवमा ॥२४२॥

नौवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति इकत्तीस (३१) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति तीस सागरोपम की होती है ॥२४२॥

Longest age duration of the gods of ninth Graiveyaka is of thirtyone sāgaropamas and shortest is of thirty sāgaropamas. (242)

तेत्तीस सागरा उ, उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउसुं पि विजयाईसुं, जहन्नेणेक्कतीसई ॥२४३॥

विजय आदि चार अनुत्तर विमान विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित वासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तेतीस सागरोपम की और जघन्य आयु स्थिति इकत्तीस सागरोपम की होती है ॥२४३॥

Longest age duration of the gods of four Anuttara vimānas Vijaya, Vaijayanta, Jayanta and Aparājita is of thirtythree sāgaropamas and shortest is of thirtyone sāgaropamas. (243)

अजहन्नमणुक्कोसा, तेत्तीसं सागरोवमा ।
महाविमाण-सव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया ॥२४४॥

सर्वार्थसिद्ध महाविमानवासी देवों की न जघन्य और न उत्कृष्ट-एक जैसी आयुस्थिति तेतीस सागर की होती है ॥२४४॥

The age duration of the gods of Sarvārthasiddha great vimāna is of thirtythree sāgaropamas, because there is no difference of longest and shortest age duration. (244)

जा चेव उ आउठिई, देवाणं तु वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥२४५॥

देवों की (उपर्युक्त गाथाओं में) जो आयुस्थिति बताई गई है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति होती है ॥२४५॥

The age duration (both longest and shortest) which is described in aforesaid couplets the same is the longest and shortest body duration of all the gods. (245)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढंमि सए काए, देवाणं हुज्ज अन्तरं ॥२४६॥

देवों का अपने देव शरीर को छोड़कर पुनः देव शरीर प्राप्त करने में जो काल का व्यवधान-अन्तर होता है वह उत्कृष्टरूप से अनन्तकाल का तथा जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त का है ॥२४६॥

The interval (quitting god-body, transmigrating in other existences and again attaining god-body-in betweeen time) is maximumly of infinite time and minimumly of antarhumūrta. (246)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्सओ ॥२४७॥

इन सभी देवों के-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥२४७॥

There becomes thousands of kinds of all these gods, with regard to colour, smell, taste, touch and form. (247))

उपसंहार और साधक को निर्देश—

संसारत्था य सिद्धा य, इइ जीवा वियाहिया।
रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा वि य ॥२४८॥

संसारस्थ (संसारी) तथा सिद्ध—इन दोनों प्रकार के जीवों का कथन किया गया है। साथ ही रूपी और अरूपी दोनों प्रकार के अजीवों का भी वर्णन हो गया ॥२४८॥

Thus here described the empirical and liberated–both types of souls and alongwith the description of formless and with form non-soul substances has been completed. (248)

इइ जीवमजीवे य, सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाण अणुमए, रमेज्जा संजमे मुणी ॥२४९॥

इस जीव और अजीव की व्याख्या को सुनकर, उन पर श्रद्धा करके सभी प्रकार की ज्ञान व क्रिया, नयों से अनुमत (नैगम आदि सर्व नयों से अनुमत–सत्यतः प्रमाणित) संयम में मुनि रमण करे ॥२४९॥

Thus listening the explanation of soul and non-soul substances, fixing faith in it, in accordance with all types of knowledge, activities and viewpoints, authentically proved–the monk should indulge himself in restrain. (249)

संलेखना : साधक की अन्तिम साधना—

तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया।
इमेण कमजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी ॥२५०॥

इसके उपरान्त बहुत वर्षों तक श्रमणधर्म का पालन करके मुनि इस क्रम योग से आत्मा की संलेखना (विषय–कषायादि विकारों की क्षीणता) करे ॥२५०॥

After it, practising sagehood upto many years, the sage should mortify his own soul with due order by diminishing passions etc., regularly. (250)

बारसेव उ वासाइं, संलेहुक्कोसिया भवे।
संवच्छरं मज्झिमिया, छम्मासा य जहन्निया ॥२५१॥

बारह वर्ष की संलेखना उत्कृष्ट, एक वर्ष की मध्यम और जघन्य संलेखना छह मास की होती है ॥२५१॥

Longest duration of the mortification of soul is of twelve years, the middle is of one year and the shortest is of six months. (251)

पढमे वासचउक्कम्मि, विगईनिज्जूहणं करे।
बिइए वासचउक्कम्मि, विचित्तं तु तवं चरे ॥२५२॥

पहले चार वर्षों में दूध-दही-घी-तेल आदि विकृति कारक पदार्थों का त्याग करे तथा दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार के तपों का आचरण (तपश्चरण) करे ॥२५२॥

During the first four years, sage should renounce the dressed food, like-milk, curd, ghee, oil etc., and in the seconed four years should practise various types of penances. (252)

एगन्तरमायामं, कट्टु संवच्छरे दुवे ।
तओ संवच्छरद्धं तु, नाइविगिट्ठं तवं चरे ॥२५३॥

फिर दो वर्षों तक (नवें दसवें वर्ष में) एकान्तर तप (एक दिन तप, एक दिन पारणा) करके पारणे के दिन आचाम्ल (आयंबिल) करे। फिर ग्यारहवें वर्ष के पहले छह मास में तेला-चौला-पचौला आदि अतिविकृष्ट तप न करे ॥२५३॥

Then in two years, i.e., in ninth and tenth year, he should observe Ekāntara (one day fast and second day to take food) fast penance and should practise ācāmla–āyaṁbila on the day he takes food. Again in the first six months of the eleventh year he should not observe rigorous fast penances, like–three days', four days, five days' fast penances. (253)

तओ संवच्छरद्धं तु, विगिट्ठं तु तवं चरे ।
परिमियं चेव आयामं, तंमि संवच्छरे करे ॥२५४॥

तदुपरान्त छह मास तक विकृष्ट तप का आचरण करे। इस संपूर्ण वर्ष में परिमित-पारणे के दिन सीमित आचाम्ल (तप) करे ॥२५४॥

After that in the next six months of eleventh year, the sage should observe rigorous fast penances. Thus in this whole year he should observe ācāmla penance on the days he takes food. (254)

कोडीसहियमायामं, कट्टु संवच्छरे मुणी ।
मासद्धमासिएणं तु, आहारेण तवं चरे ॥२५५॥

(बारहवें वर्ष में) एक वर्ष तक कोटि सहित–लगातार आचाम्ल (तप) करके मुनि पक्ष या मास के आहार से–पाक्षिक अथवा मासिक–मासखमण का तप–अनशन करे ॥२५५॥

In the last (twelfth) year, the sage, consecutively or continuously observing ācāmla penance should practise the fast penance of a fortnight or a month. (255)

समाधि मरण में बाधक-साधक तत्व

कन्दप्पमाभिओगं, किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च ।
एयाओ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया होन्ति ॥२५६॥

पाँच प्रकार की भावनाएँ दुर्गति रूप हैं, दुर्गति में ले जाने वाली हैं। ये भावनाएँ है–(१) कान्दर्पी (२) आभियोगिकी, (३) किल्विषिकी (४) मोही (सम्मोही) और (५) आसुरी। मरण के समय ये भावनाएँ संयम की विराधिका होती हैं ॥२५६॥

The five kinds of feelings lead to evil existences. These are–(1) kāndarpī (2) ābhiyogikī (3) kilviṣikī (4) mohī–sammohī and (5) āsurī. At the time of death, these feelings become the obstructions to restrain. (256)

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाण हु हिंसगा ।
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२५७॥

जो जीव (मरण समय में) मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान सहित-निदान से युक्त और हिंसक (हिंसाभाव वाले) होते हैं-इन भावों में मरण करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि प्राप्ति दुर्लभ होती है ॥२५७॥

At the time of death the souls indulged in wrong belief, with volition and thoughtful of violence–quit their present body–frame, engulfed in these thoughts, for them the attainment of right knowledge becomes difficult. (257)

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा, सुलहा तेसिं भवे बोही ॥२५८॥

जो जीव सम्यग्दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान (आगामी भोगाकांक्षा) से रहित हैं, शुक्ललेश्या में अवगाढ़ (निमग्न) हो जाते हैं तथा इस प्रकार (इन भावों में) मरण प्राप्त करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि प्राप्ति सुलभ होती है ॥२५८॥

The souls engrossed in right faith, devoid of volition and enveloped in white tinge, and quit their present body-frame in these thoughts, they attain easily right knowledge again. (258)

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥२५९॥

जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान सहित और कृष्णलेश्या में निमग्न होकर मरण को प्राप्त करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि की प्राप्ति दुर्लभ होती है ॥२५९॥

The souls indulged in wrong faith, having desire of future sensual pleasures and engrossed in black tinge-die in such thoughts, for them attainment of right knowledge becomes difficult. (259)

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेन्ति भावेण ।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होन्ति परित्तसंसारी ॥२६०॥

जो जीव (अन्तिम समय तक) जिन-वचनों में अनुरक्त रहते हैं, जिनेन्द्र भगवान के वचनों के अनुसार भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और राग-द्वेष आदि से असंक्लिष्ट (क्लेश युक्त भावों से रहित) रहकर परिमित संसारी होते हैं ॥२६०॥

The souls till the end of their lives, are inclined to the dialects of Jinas, and lead their lives according to the precept of Jinas with pious hearts; these pure and free from the thoughts of attachment and detachment, their cycle of births and deaths is lessened. (260)

बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहूणि ।
मरिहिन्ति ते वराया, जिणवयणं जे न जाणन्ति ॥२६१॥

जो जीव जिन-वचनों को नहीं जानते, वे बेचारे बहुत बार बालमरणों और अकाममरणों से मरते रहते हैं ॥२६१॥

Those who are not aware of the precepts of Jinas, such pitiable persons die with unwilling death several times. (161)

बहुआगमविन्नाणा, समाहिउप्पायगा य गुणगाही ।
एएण कारणेणं, अरिहा आलोयणं सोउं ॥२६२॥

जो बहुत से आगमों के ज्ञाता (बहुश्रुत), समाधि (हृदय में सुख-शांति) उत्पन्न करने वाले तथा गुणग्राही होते हैं, वे अपने इन्हीं गुणों के कारण आलोचना सुनने के योग्य होते हैं ॥२६२॥

Those who are well-versed in holy texts, learneds, awaken piety in the hearts of others and appreciate their good qualities, by their these qualities they are worthy to listen the confession. (262)

कान्दर्पी आदि अशुभ भावनाओं का स्वरूप

कन्दप्प-कोक्कुयाइं तह, सील-सहाव-हास-विगहाहिं ।
विम्हावेन्तो य परं, कन्दप्पं भावणं कुणइ ॥२६३॥

जो कन्दर्प–कामवर्द्धक चर्चा–वार्ता, कौत्कुच्य–हास्य उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाएँ, अपने आचरण-स्वभाव-हास्य और विकथाओं से दूसरों को विस्मित करता है–वह कान्दर्पी भावना करता है ॥२६३॥

Who by ribaldry and buffoonery, by his comical habits and appearances, by jests and words amuses other persons, he realises kāndarpī feeling. (263)

मन्ता-जोगं काउं, भूईकम्मं च जे पउंजन्ति ।
साय-रस-इड्ढिहेउं, अभिओगं भावणं कुणइ ॥२६४॥

जो (साधक) साता (मन एवं पंचेन्द्रिय विषय संबंधी सुख-सुविधा) रस (स्वादिष्ट रस) और ऋद्धि (समृद्धि, सिद्धि, प्रसिद्धि) के लिए मंत्र, योग (तंत्र–कुछ विशेष पदार्थों के मिलाकर किया जाने वाला) और भूतिकर्म (मंत्रित करके भस्म देना) का प्रयोग करता है, वह आभियोगिकी भावना का आचरण करता है ॥२६४॥

The practiser, who for getting the pleasures of mind and sensual comforts, delicious tastes, fortunes, wealth and fame practises mantra and yoga–tantra (performed by the mixture of many ingredients) and giving ashes activated by various mantras, realises the feeling of ābhiyogikī. (264)

नाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघ-साहूणं ।
माई अवण्णवाई, किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥२६५॥

जो ज्ञान का, केवलज्ञानियों का, धर्माचार्यों का, संघ और साधुओं का अवर्णवाद (जो दोष उनमें नहीं हैं, उनका प्रक्षेप करके निन्दा करना) करता है, वह मायावी–कपटी किल्विषिकी भावना करता है ॥२६५॥

Who speaks ill and accuses with the faults which are not in them about the knowledge, omniscients, preceptors of religion, union or group of religious persons and sages, such deceitful person practises kilviṣikī feeling. (265)

अणुबद्धरोसपसरो, तह य निमित्तंमि होइ पडिसेवी ।
एएहि कारणेहिं, आसुरियं भावणं कुणइ ॥२६६॥

जो सतत रोष-क्रोध को प्रसारित करता है, निमित्त प्रतिसेवी (ज्योतिष विद्या का दुष्प्रयोग करना) होता है, वह इन कारणों से आसुरी भावना करता है ॥२६६॥

Who continuously expands anger and makes evil use of Astrology, by these causes he practises āsurī feeling. (266)

सत्थग्गहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलप्पवेसो य ।
अणायार-भण्डसेवा, जम्मण-मरणाणि बन्धन्ति ॥२६७॥

जो शस्त्र प्रयोग से, विष भक्षण से, आग में जलकर, पानी में डूबकर आत्मघात करता है तथा अनाचार करता है, भांडों जैसी कुचेष्टा करता है (अथवा साध्वाचार से विरुद्ध भाण्ड-उपकरण रखता है) वह (मोही-सम्मोही भावना का आचरण करता हुआ) जन्म-मरणों का बन्धन करता है ॥२६७॥

Who suicides by weapon, eating poison, burning himself in flames of fire, drowning in deep water and practises mis-conduct, does ill activities like clowns or possesses vessels and outfits against the rules of sage-conduct; such person practising the mohī or sammohī feeling binds himself with cycle or births and deaths. (267)

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुए ।
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसंमए ॥२६८॥ —त्ति बेमि ।

इस तरह भव्य जीवों के लिए संमत (प्रिय-इच्छा करने योग्य-इष्ट) छत्तीस श्रेष्ठ अध्ययनों को प्रगट करके समस्त पदार्थों के ज्ञाता सर्वज्ञ-सर्वदर्शी ज्ञातवंशीय भगवान महावीर परिनिवृत्त-मुक्त (निर्वाण को प्राप्त) हुए ॥२६८॥ —ऐसा मैं कहता हूँ ।

Thus precepting the thirtysix chapters of Uttarādhyayana sūtra, which are very favourite to noble persons or the souls who are nearabout to obtain salvation; the knower of all the substances their attributes and modifications, omniscient and possessing extreme perception, of Jñāta-lineage Bhagawāna Mahāvīra obtained salvation and became emancipated. (268)

–Such I speak.

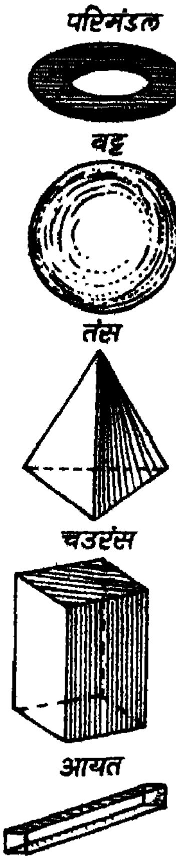
विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ५–पदार्थ के दो रूप हैं खण्ड और अखण्ड। धर्मास्तिकाय आदि अरूपी अजीव वस्तुतः अखण्ड द्रव्य हैं। फिर भी उनके स्कन्ध, देश, प्रदेश के रूप में तीन भेद्र किए हैं। धर्मास्तिकाय स्कन्ध में देश और प्रदेश वास्तविक नहीं, बुद्धि-परिकल्पित हैं। एक परमाणु जितना क्षेत्रावगाहन करता है, वह अविभागी विभाग, अर्थात् फिर भाग होने की कल्पना से रहित सर्वाधिक सूक्ष्म अंश प्रदेश कहलाता है। अनेक प्रदेशों से परिकल्पित स्कन्धगत छोटे बड़े नाना अंश देश कहलाते हैं। पूर्ण अखण्ड द्रव्य स्कन्ध कहलाता है। धर्म और अधर्म अस्तिकाय स्कन्ध से एक हैं। उनके देश और प्रदेश असंख्य हैं। असंख्य के असंख्य ही भेद होते हैं, यह ध्यान में रहे। आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं। लोकाकाश के असंख्य और अलोकाकाश के अनन्त होने से अनन्त प्रदेश हैं। वैसे आकाश स्कन्धतः एक ही है।

गाथा ६–काल को अद्धा समय कहा है। यह इसलिए कि समय के सिद्धान्त आदि अनेक अर्थ होते हैं। अद्धा के विशेषण से यह वर्तनालक्षण काल द्रव्य का ही बोध कराता है। स्थानांगसूत्र (४, १, २६४) की अभयदेवीय वृत्ति के अनुसार काल का सूर्य की गति से सम्बन्ध रहता है। अतः दिन, रात आदि के रूप में काल अढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में ही है, अन्यत्र नहीं। काल में देश-प्रदेश की परिकल्पना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह निश्चय में समयरूप होने से निर्विभागी है। अतः उसे स्कन्ध और अस्तिकाय भी नहीं माना है।

गाथा ७–समय क्षेत्र–जहां समय, आवलिका, पक्ष, मास, वर्ष आदि काल का ज्ञान होता है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड तथा अर्ध पुष्कर द्वीप–समय क्षेत्र अथवा मनुष्य क्षेत्र कहलाते हैं।

गाथा ९–अपरापरोत्पत्तिरूप प्रवाहात्मक सन्तति की अपेक्षा से काल अनादि अनन्त है। किन्तु दिन, रात आदि प्रतिनियत व्यक्तिस्वरूप की अपेक्षा सादि सान्त है।



गाथा १०–पुद्‌गल के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु चार भेद हैं। मूल पुद्‌गल द्रव्य परमाणु ही है। उसका दूसरा भाग नहीं होता है, अतः वह निरंश होने से परमाणु कहलाता है। दो परमाणुओं से मिलकर एकत्व परिणतिरूप द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। इसी प्रकार त्रिप्रदेशी आदि से लेकर अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। पुद्‌गल के अनन्त स्कन्ध हैं। परमाणु स्कन्ध में संलग्न रहता है, तब उसे प्रदेश कहते हैं और जब वह पृथक् अर्थात् अलग रहता है, तब वह परमाणु कहलाता है।

गाथा १३, १४–पुद्‌गल द्रव्य की स्थिति से अभिप्राय यह है कि जघन्यतः एक समय तथा उत्कृष्टतः असंख्यात काल के बाद स्कन्ध आदि रूप से रहे हुए पुद्‌गल की संस्थिति में परिवर्तन हो जाता है। स्कन्ध बिखर जाता है, तथा परमाणु भी स्कन्ध में संलग्न होकर प्रदेश का रूप ले लेता है।

अन्तर से अभिप्राय है–पहले के अवगाहित क्षेत्र को छोड़कर पुनः उसी विवक्षित क्षेत्र की अवस्थिति को प्राप्त होने में जो व्यवधान होता है, वह बीच का अन्तर काल।

गाथा १५ से ४६–पुद्‌गल के असाधारण धर्मों में संस्थान भी एक धर्म है। संस्थान के दो भेद हैं–(१) इत्थंस्थ और (२) अनित्थंस्थ। जिसका त्रिकोण आदि नियत संस्थान हो, वह इत्थंस्थ कहलाता है, और जिसका कोई नियत संस्थान न हो, उसे अनित्थंस्थ कहते हैं। इत्थंस्थ के पाँच प्रकार हैं–(१) परिमण्डल–चूड़ी की तरह गोल, (२) वृत्त–गेंद की तरह गोल, (३) त्र्यंस्र–त्रिकोण, (४) चतुरस्र–चौकोन, और (५) आयत–बांस या रस्सी की तरह लम्बा। (चित्र देखें)

पुद्‌गल के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श आदि इन्द्रियग्राह्य भाव हैं, अतः उनका वर्णन विस्तार से किया गया है। कृष्णादि वर्ण गन्ध आदि से भाज्य होते हैं, तब कृष्णादि प्रत्येक पाँच वर्ण २० भेदों से गुणित होने पर वर्ण पर्याय के कुल १०० भंग होते हैं। इसी प्रकार सुगन्ध के २३ और दुर्गन्ध के २३, दोनों के मिलकर गन्ध पर्याय के ४६ भंग होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक रस के बीस-बीस भेद मिलाकर रस पंचक के संयोगी भंग १०० होते हैं। मृदु आदि प्रत्येक स्पर्श के सतरह-सतरह भेद मिलाकर आठ स्पर्श के १३६ भंग होते हैं। प्रत्येक संस्थान के बीस-बीस भेद मिलाकर संस्थान-पंचक के १०० संयोगी भंग होते हैं। समग्र भंगों की संकलना ४८२ है।

ये सब भंग स्थूल दृष्टि से गिने गए हैं। वस्तुतः तारतम्य की दृष्टि से सिद्धान्ततः देखा जाए तो प्रत्येक के अनन्त भंग होते हैं।

गाथा ४८–सिद्ध होने के बाद सब जीव समान होते हैं। यहाँ पर बताये गये सिद्धों के स्त्रीलिंग और पुरुषलिंग आदि अनेक प्रकार पूर्व जन्मकालीन विभिन्न स्थितियों की अपेक्षा से हैं। वर्तमान में स्वरूपतः सब सिद्ध एक समान हैं। केवल अवगाहना का अन्तर है। अवगाहना का अर्थ शरीर नहीं है। अपितु अरूप आत्मा भी द्रव्य होने से अपनी अमूर्त आकृति तो रखता ही है। द्रव्य आकारशून्य कभी नहीं होता। आत्मा आकाश के जितने प्रदेश क्षेत्रों को अवगाहन करता है, उस अपेक्षा से सिद्धों की अवगाहना है।

गाथा ५६–सिद्ध लोकाग्र में स्थित हैं, इसका अभिप्राय यह है कि उनकी ऊर्ध्वगमन रूप गति वहीं तक है। आगे अलोक में गति हेतुक धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गति नहीं है।

गाथा ६४–पूर्व जन्म के अन्तिम देह का जो ऊँचाई का परिमाण होता है उससे त्रिभागहीन (एक तिहाई कम) सिद्धों की अवगाहना होती है। पूर्वावस्था में उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ धनुष की मानी है, अतः मुक्त अवस्था में शुषिर (शरीर के

खाली पोले अंश) से रहित आत्म प्रदेशों के सघन हो जाने से वह घटकर त्रिभागहीन अर्थात् तीन सौ तेतीस धनुष बत्तीस अंगुल रह जाती है। और सबसे कम जघन्य (दो हाथ वाले आत्माओं की) एक हाथ आठ अंगुल प्रमाण होती है।

गाथा ७२–प्रस्तुत सूत्र में खर पृथ्वी के ३६ भेद बताए हैं, जबकि प्रज्ञापना में ४० गिनाए हैं। इतने ही क्यों, यह तो स्थूल रूप से प्रमुखता की अपेक्षा से गणना है। वैसे असंख्य भेद हैं।

आगमकार ने ३६ भेदों की प्रतिज्ञा की है, जबकि मणि के प्रकारों में चार भेद गणना से अधिक हैं। वृत्तिकार ने इनका उपभेद के रूप में अन्तर्भाव दूसरों में बताया है। पर, किस में किस का अन्तर्भाव है, यह सूचित नहीं किया है।

गाथा ९३–साधारण का अर्थ समान है। जिन अनन्त जीवों का समान–एक ही शरीर होता है, वे साधारण कहलाते हैं। शरीर का एकत्व उपलक्षण है। अतः उनका आहार और श्वासोच्छ्वास भी समान अर्थात् एक ही होता है। 'उपलक्षणं चैतद् आहारानपानयोरपि साधारणत्वात्–सर्वार्थसिद्धि।

प्रत्येक वे कहलाते हैं, जिन का शरीर अपना-अपना भिन्न होता है। जो एक का शरीर है, वह दूसरों का नहीं होता!

प्रत्येक वनस्पति जीवों की उत्कृष्ट दश हजार वर्ष की आयु होती है, जघन्य अन्तर्मुहूर्त। साधारण जीवों की जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही आयु है।

गाथा १०४–पनक का अर्थ सेवाल अर्थात् जल पर की काई है। परन्तु यहाँ कायस्थिति के वर्णन में पनक समग्र वनस्पति काय का वाचक है। सामान्य रूप से वनस्पति जीवों की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल बताई है, जो प्रत्येक और साधारण दोनों की मिलकर है। अलग-अलग विशेष की अपेक्षा से तो प्रत्येक वनस्पति, बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवों की असंख्य काल की कायस्थिति है। प्रत्येक की जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ७० कोटि-कोटि सागरोपम है। निगोद की समुच्चय कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है। बादर निगोद की उत्कृष्ट ७० कोटि-कोटि है, और सूक्ष्म निगोद की असंख्यात काल। जघन्य स्थिति दोनों की अन्तर्मुहूर्त है।

गाथा १०७–तेजस्, वायु और उदार त्रस–ये त्रस के तीन भेद हैं। तेजस् और वायु एकेन्द्रिय हैं, अतः अन्यत्र इनकी गणना पांच स्थावरों में की गई है। यह पक्ष सैद्धान्तिक है। स्थावरनाम कर्म का उदय होने से ये निश्चय से स्थावर हैं, त्रस नहीं। केवल एक देश से दूसरे देश में त्रसन अर्थात् संक्रमणक्रिया होने से तेजस् और वायु की त्रस में गणना की गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि त्रस के उदार और अनुदार भेद करने पड़े। आगे चलकर तेजस् और वायु को 'गतित्रस' और द्वीन्द्रिय आदि को त्रसनाम कर्म के उदय के कारण 'लब्धि त्रस' कहा गया। स्थानांग सूत्र (३/२/१६४) में उक्त तीनों को त्रस संज्ञा दी है। श्वेताम्बरसम्मत तत्त्वार्थ सूत्र में भी ऐसा ही उल्लेख है। आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध सर्वाधिक प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें यह जीव निकाय का क्रम एक भिन्न ही प्रकार का है–पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति, त्रस और वायु।

गाथा १६९–नरक से निकल कर पुनः नरक में ही उत्पन्न होने का जघन्य व्यवधानकाल अन्तर्मुहूर्त का बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि नारक जीव नरक से निकल कर संख्यातवर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच और मनुष्य में ही जन्म लेता है। वहाँ से अति क्लिष्ट अध्यवसाय वाला कोई जीव अन्तर्मुहूर्त परिमाण जघन्य आयु भोग कर पुनः नरक में ही उत्पन्न हो सकता है।

गाथा १७०–अतिशय मूढ़ता को संमूर्च्छा कहते हैं। संमूर्च्छा वाला प्राणी संमूर्च्छिम कहलाता है। गर्भ से उत्पन्न न होने वाले तिर्यंच तथा मनुष्य मनःपर्याप्ति के अभाव से सदैव अत्यन्त मूर्च्छित जैसी मूढ़ स्थिति में रहते हैं।

'गर्भ व्युत्क्रान्तिक' शब्द में व्युत्क्रान्तिक का अर्थ उत्पत्ति है।

गाथा १८०–स्थलचर चतुष्पदों में एकखुर अश्व आदि हैं, जिनका खुर एक है, अखण्ड है, फटा नहीं है। द्विखुर गाय आदि हैं, जिनके खुर फटे हुए होने से दो अंशों में विभक्त हैं। गण्डी अर्थात् कमलकर्णिका के समान जिनके पैर वृत्ताकार गोल हैं, वे हाथी आदि गण्डी पद हैं। नखसहित पैर वाले सिंह आदि सनख पद हैं।

गाथा १८१–भुजाओं से परिसर्पण (गति) करने वाले नकुल, मूषक आदि भुज परिसर्प हैं। तथा उर (वक्ष, छाती) से परिसर्पण करने वाले सर्प आदि उर-परिसर्प हैं।

गाथा १८५–स्थलचरों की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व तीन पल्योपम की बताई है, उसका अभिप्राय यह है कि पल्योपम आयु वाले तो मरकर पुनः वहीं पल्योपम की स्थिति वाले स्थलचर होते नहीं हैं। मरकर देवलोक में जाते हैं। पूर्व कोटि आयु वाले अवश्य इतनी ही स्थिति वाले के रूप में पुनः उत्पन्न हो सकते हैं। वे भी सात आठ भव से अधिक नहीं। अतः पूर्वकोटि आयु के पृथक्त्व भव ग्रहण कर अन्त में पल्योपम आयु पाने वाले जीवों की अपेक्षा से यह उत्कृष्ट कायस्थिति बताई है।

गाथा १८८–चर्म की पंखों वाले चमगादड़ आदि चर्म पक्षी हैं। और रोम की पंखों वाले हंस आदि रोम पक्षी हैं। समुद्ग अर्थात् डिब्बा के समान सदैव बन्द पंखों वाले समुद्ग पक्षी होते हैं। सदैव फैली हुई पंखों वाले विततपक्षी कहलाते हैं।

Salient Elucidations

Gāthā 5–There are two forms of a thing (substance) part and whole. Dharmāstikāya etc., form-free non-soul substances are really whole substances. Still these are divided into three parts (1) Compound (skandha) (2) part of a compound (deśa) and smallest part of a compound (pradeśa). In the compound of Dharmāstikāya, the parts and smallest parts are not real, but imagined by intelligence. An indivisible smallest particle of matter (atom) occupies as much place, that indivisible division, which cannot be divided again, ultimate subtle part is called pradeśa. Hypothetical by innumerable pradeśas the various small and big parts in a compound are deśas. One and whole substance is called compound. By view point of compound Dharmāstikāya and Adharmāstikāya are one and whole. Innumerable are their deśas and pradeśas. Innumerable have the innumerable parts too. This should be kept in mind. There are infinite pradeśas in space (ākāśa) Loka space has innumerable and Aloka space has infinite. So considering both (loka and aloka) spaces, space consists infinite pradeśas. But with regard to compound space is one and whole.

Gāthā 6–Time (kāla) is called here *addhāsamaya*. It is because, *samaya* is used in various senses, like–time, colour, standard, scriptures, theory, tenets, principle, doctrine, dogma etc. But to distinguish from other meanings prefix *addhā* is added to the word *samaya* to ascertain its meaning kāla–time.

According to the Vṛtti of Abhayadeva of Sthānāṅga (4, 1, 264) time is related to the movement of sun. Therefore time in the form of day, night etc., is only in human abode, which is limited to two and a half great islands, and not elsewhere. Imagination of deśa and pradeśa is not possible in time because it is indivisible as it is of one samaya by naumenal viewpoint. Therefore it is supposed neither compound (skandha) nor astikāya.

Gāthā 7–Samaya kṣetra–Where samaya, āvalikā, fortnight, month etc., time is acknowledged Jambūdvipa, Dhātakīkhaṇḍadvīpa and half Puṣkaradvipa–are called human abode or samaya kṣetra.

Gāthā 9–Time is beginningless and endless with regard to continuous flow. But regarding day, night etc., it is with beginning and end too.

Gāthā 10–There are four kinds of matter (1) compound-molecule (skandha) (2) deśa (3) pradeśa and (4) atom. Atom is only basic substance matter. It cannot be divided in any other part. Being indivisible it is called atom. United two atoms and jointly activity it becomes molecule of two-pradeśas or bi-pradeśī molecule. In the same way beginning from tri-pradeśī molecules infinite-pradeśī molecules exist. There are infinite molecules of matter. Till the atom united in molecule, it (atom) is called pradeśa and when it (atom) remains separate, then it is called atom.

Gāthā 13-14–The meaning of stability of matter substance is after minimumly one samaya and maximumly innumerable time the position is changed. Either molecule is dispersed or a new atom being united to molecule becomes a pradeśa.

Interval here means the gap of time. Moving from the particular space-point and again reaching to the same space-point, the time in between.

Gāthā 15-46–Among the special attributes of matter form is also a special attribute. Form is of two kinds–(1) itthaṁstha and (2) anitthaṁstha. Former is definite and later is indefinite. Itthaṁstha or definite form is of five kinds–(1) parimaṇḍala–circular like ring or bracelet (2) Vṛitta–globular or round like ball, (3) tryaṁśa–triangular (4) samacaturasra–square and (5) āyata–rectangular or cylinderical-long like bamboo or rope. (see illustration)

The colour, smell, taste, touch etc., the attributes or developments of matter are graspable by senses, so these are vividly described. Black etc., colours are sub-divisible by smell etc. Then black etc., five colours, each multiplied by twenty divisions become of one hundred kinds In the same way 23 of pleasant smell and twentythree of bad smell both become fortysix kinds. In the same way five types of tastes multiplied by twenty become of one hundred kinds. Likewise soft etc., eight types of touches, the seventeen kinds of each touch all become one hundred thirtysix, and adding twenty types of each form, of all the five forms the kinds of form become one hundred, thus all these kinds of the attributes of matter are four hundred eightytwo.

These all kinds are described generally, considering deeply with regard to gradations, there are infinite kinds of each.

Gāthā 48–All the liberated souls are alike. Here described kinds, like–women, men etc., are with regard to their former birth, from which they attained liberation; but in present all perfect souls are alike, still there is difference of the space-points each of them occupy (avagāhanā). Avagāhanā does not denote body; but being a substance, the soul possesses invisible form, because substance is never without form. Soul occupies as much space-points that is called its avagāhanā.

Gāthā 56–Emancipated souls are stayed at the end of universe (loka), it means that their upward movement is only upto that place. Further movement is hindered due to absence of Dharmāstikāya, which is the fulcrum of motion.

Gāthā 64–Emancipated soul occupies the space-points, one-third less than the height of body of former birth. Maximum height of body in previous birth is supposed five hundred dhanuṣas, therefore in liberated state, by filling the hollow parts of body soul becomes dense or solid, so it is reduced by one-third and remains three hundred thirtythree dhanuṣa and thirtytwo aṅgulas; and the souls of minimum height, in their previous birth, which is of two hātha (hands) only remains one hātha (hand) and eight aṅgula (fingers) only.

Gāthā 72–In this couplet thirtysix kinds are said of rough earth; while in Prajñāpanā, these are enumerated as forty. Why only so much. This enumeration is based on the primacy of general point of view; but really there are innumerable kinds.

The writer of this sūtra (holy text) has solemnly declared to describe thirtysix kinds; but in the enumeration of the divisions of gems, four are more. Vṛttikāra said that these should be regarded as sub-divisions and amalgamated in others, but which is to be incorporated in what–it is not clarified.

Gāthā 93–Sādhāraṇa (common) means the same or one. The infinite souls shelter in one and the same body are called sādhāraṇa śarīrī (common or one-bodied). Oneness of body is an elliptical expression. Their grasping (food) and exhaling-inhaling–respiration also are one and the same.

Having different and separate body, the souls are called each-bodied. The body of one soul cannot be of other soul.

The longest age duration of each-bodied vegetation is of ten thousand years and shortest is of antarmuhūrta. But the longest and shortest age duration of common-bodied vegetation is of antarmuhūrta only.

Gāthā 104–Panaka means sevāla or lichen or moss on water. But here in the description of body duration the word panaka (moss or lichen) denotes whole of the vegetation body (world). Generally the longest body duration of plant-beings is described of infinite time, which is taking together the common-bodied and each-bodied flora-beings. Separately and with special point of view, the vegetation, subtle and gross nigod souls' body duration is of innumerable time. Body duration of each

bodied flora-beings is minimumly of antarmuhūrta and maximumly of seventy crores of crores of sāgaropamas. Collectively the shortest body duration of nigoda-beings is of antarmuhūrta and longest is of infinite time. The longest body-duration of gross nigoda-beings is of seventy crores of crores sāgaropamas and of subtle nigoda-beings of innumerable time; the shortest of both is of antarmuhūrta.

Gāthā 107–Fire-bodied, air-bodied and thick (udāra) movable beings–these three kinds are of mobile beings. Among these three, the fire-bodied and air-bodied are one-sensed beings, hence in other scripture these are enumerated in five immobile beings. This is dogmatic version. Due to rise of sthāvara nāma karma, really these are sthāvara (immobile), not mobile. But due to the movement from one place to another fire-bodied and air-bodied beings are enumerated in mobile beings. Consequently two kinds of mobile beings are done–(1) thick (udāra) and (2) non-thick (anudāra). Coming further or afterwards fire-bodied and air-bodied beings are called as 'gatitrasa' and due to arousement of trasa nāma karma, two-sensed beings etc., are called as 'labdhi trasa'. All these three are said 'trasa' in Sthānāṅga sūtra. Śwetāmbara Tattvārtha sūtra also follows the same. The first part (śruta-skandha) of Ācārāṅga sūtra, which is regarded as the oldest holy text of Jainas, in that the order of soul-abode is of a very different type, i. e., (1) Earth (2) Fire (3) Vegetation, (4) Trasa and (5) Air.

Gāthā 169–The shortest interval period of coming out of hell and taking birth again in hell is told of antarmuhūrta. It may be possible in this way. Coming out of hell, the hellish soul can take birth from the womb of a woman or she-animal and those must have age duration of numerable years. There (in the womb) with most cruel and sinful thought and completing the shortest age duration, he may take birth again in hell.

Gāthā 170–Extreme blockheadedness is called insensibility (saṁmūrcchā). Such being is called as sense-lacked. Not taking birth from womb, the animals and men, in the absence of mind-development always remain in dense insensible state.

In the word 'garbha vyutkrāntika' vyutkrāntika stands for origination.

Gāthā 180–Among quadruped terrestrial animals solidungular are as horse etc., whose toes are one, solid and undivided. Cows etc., are biungular animals, whose toes are divided in two parts. Like stalk of lotus whose feet are circular, as elephant, these are called gaṇḍipada. Animals having toes with nails, like–lion are sanakha pada.

Gāthā 181–Moving by arms, like–mongoose, rats etc., are movers by arms (bhuja parisarpa) and moving on breast, like serpent etc., are movers on breast (ura parisarpa)

Gāthā 185–The longest body duration of terrestrial animals and men is said of pūrva koṭi pṛthaktva plus three palyopama. The meaning of it is, that the terrestrials of palyopama age-duration cannot take rebirth in the same terrestrials, once dying, they become gods. But having the age duration of pūrvakoṭi may take birth of the same age-duration terrestrials. But they also cannot be born more than seven or eight times continuously. Therefore taking in view the lives of pūrva koṭi age duration and in the end the attainers of palyopama age duration this body-duration is said of such souls.

Gāthā 188–The birds of membranous wings are bats and of feathered wings are geese, of box shapped wings, which always remain closed are samudga birds and of outspread wings are vitata birds.